प्रमाण-पत्र.

डॉ0 शशिकान्त अग्निहोत्री,
व्याख्याता-हिन्दी-विभाग,
अतर्रा पो0ग्रे0 कालेज,
अतर्रा (बाँदा)

बाँदा रोड,
अतर्रा (बाँदा)
210201

दिनांक 3-9-1992

एतद् द्वारा प्रमाणित किया जाता है कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से शोध हेतु स्वीकृत विषय ' शिवानी के साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन का विश्लेषणात्मक अध्ययन ' का कार्य श्रीमती राधारानी ने मेरे निर्देशन पर लगभग 300 दिन तक शोध केन्द्र में रहकर कुशलता पूर्वक सम्पन्न किया है ।

मैं इनके उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभाकांक्षी हूँ ।

-शशिकान्त अग्निहोत्री
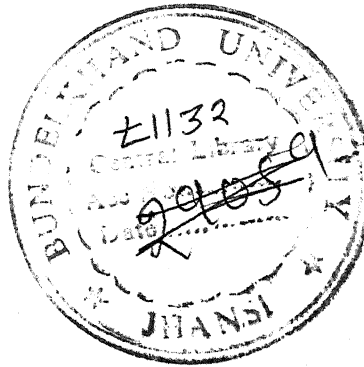
आज विश्व-सृष्टि के बढ़ते जनसंकुल एवं मानव-सृष्टि के बढ़ते वैज्ञानिक संसाधनों के मध्य शिक्षा के क्षेत्र में छात्र-छात्राओं की शोध - परक प्रवृत्ति में भी अच्छी - खासी बाढ़ सी आ गयी है । इस बाढ़ की एक इकाई मैं भी बनूँगी, यह कभी कल्पना ही नहीं की थी । यद्यपि पठन-पाठन में मेरी काफी रूचि रही है । शिवानी जी को मैंने पहले भी पढ़ा था, किन्तु यह कभी नहीं सोचा था कि उनके साहित्य पर मुझे शोध-कार्य करने का सुअवसर भी प्राप्त होगा । यह मेरा सौभाग्य ही है कि मुझे उनके साहित्य पर शोध - प्रबन्ध प्रस्तुत करने का एक सुखद संयोग प्राप्त हुआ ।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्यकारों में शिवानी का नाम अग्रगण्य है । उनके उपन्यासों में शरदचन्द्र जैसी भावुकता एवं प्रेम चन्द्र जैसी यथार्थवादिता के दिग्दर्शन होते हैं । शिवानी के साहित्य में आधुनिकता एवं आभिजात्य वर्ग का जैसा प्रगल्भ चित्रण मिलता है , वैसा अन्यत्र नहीं । कभी वे कुमायूँ के ग्रामीण अंचलों में रहीं तो कभी राजा- महाराजाओं के राजसी वैभव में । कभी उन्होनें सरकारी अफसरों की लालफीताशाही एवं नेताओं के खोखले एवं पाखण्डी दाँवपेंचों को देखा तो कभी भारतीय जनजीवन के वैविध्य को परखा । शिवानी ने अपने साहित्य में इसी युगबोध को जीने की चेष्टा की है ।

आज विश्वजनीन मानवता में असन्तोष, कुण्ठा, संत्रास आदि की जो विसंगतियाँ उभर कर आ रही है, उसका प्रमुख कारण सांस्कृतिक मूल्यों को ठुकराकर उच्छृखल जीवन जीना ही है । शिवानी ने इसी जीवन्त परिवेश एवं समृद्ध कथानकों को अपनी लेखनी का वर्ण्य-विषय बनाया है और अपनी मार्मिक संवेदना एवं व्यापक जीवन दृष्टि से उसे अभिव्यंजित किया है । इसीलिये शिवानी का साहित्य भोगे हुए यथार्थ की तरह जीवन्त लगता है । यदि आधुनिक हिन्दी साहित्य से शिवानी एवं उनके साहित्य को पृथक कर दिया जाये तो वह न केवल आभाहीन प्रतीत होगा अपितु निष्प्राण सा लगेगा ।

शिवानी का साहित्य भारतीय-संस्कृति एवं भारतीय दर्शन से ओतप्रोत है । भारतीय - संस्कृति के नीतिपरक तत्वों के अभाव में सृजित साहित्य कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता है । और न वह युग को दिशा बोध देने में सक्षम हो सकता है । शिवानी ने साहित्य के इन्हीं शाश्वत् सत्य-सूत्रों का चयन कर अपने सृजन का आधार बनाया है ।

साहित्य में आदर्श एवं नैतिकता का वही महत्त्व है जितना प्राणी के लिये भोजन और वायु का, सुमन के लिये रंग और सुगंध का, नदी के लिये नीर और तीर का ।

मानवीय जीवन चरित्र में जहाँ भी आदर्श जीवन्त रूप लेता है, वहाँ नैतिकता के सहज दर्शन होते हैं । नैतिकता के अभाव में आदर्श की परिकल्पना सहज नहीं है । संभवतः इसी लिये श्रीमती गौरा पन्त शिवानी ने अपने उपन्यासों, कहानियों, संस्मरणों एवं निबन्धों में विभिन्न सन्दर्भों में नैतिकता एवं आदर्श की उपस्थापना के लिये संघर्षशील व्यक्तित्व की संरचना भी की है ।

समाज अपने आदर्श चरित्रों से नैतिकता की जो अपेक्षा करता है, वही शिवानी के साहित्य में अभिव्यक्त है । वस्तुतः नैतिकता शिवानी के साहित्य का परम लक्ष्य है और मानवीय जीवन का शाश्वत् सत्य भी ।

साहित्य का घड़ा यदि नैतिकता के निर्मल नीर से रिक्त होगा तो उसकी उपयोगिता ही क्या रह जायेगी ? सच्चा साहित्यकार तो साहित्य रूपी प्याऊ खोलकर नैतिकता का पावन नीर पिलाकर समाज को स्वस्थ मानसिकता प्रदान करने की सतत् चेष्टा करता है । साहित्य का अर्थ ही सबका हित करना है अर्थात् साहित्यकार उस प्रवृत्ति का व्यक्ति होता है जो अपने लेखन से एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना कर उसके हित की बात करता है । हित सदैव नैतिकता में ही निहित होता है जब तक असद् से सद् की ओर हमारी चिन्तन प्रक्रिया उन्मुख नहीं होगी तब तक सुख की मृग मरीचिका में भटकते हुए हम दुःख का ही मुख देखते रहेंगे ।

भारतीय-संस्कृति एवं भारतीय जीवन-दर्शन से ओत-प्रोत होने के कारण शिवानी नारी प्रतिष्ठा के प्रति भी आग्रहशील दिखायी देती हैं । "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" कहकर मनुस्मृतिकार ने मनुष्य को नारी प्रतिष्ठा के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाने का सद्विचार व्यक्त किया है वह प्रत्येक युग एवं देश के लिये ध्रुव सत्य रहा है और आगे भी समाज को संगठित बनाये रखने में अपनी महती भूमिका निभाता रहेगा ।

नारी को चरणदासी मानकर चरणपादुकाओं से उसका सत्कार करने वाले अथवा उसे भोग्या सम्पदा समझने वाले पुरुष भले ही मनु के इस कथन से सहमत न हों - किन्तु इसका आशय यह भी नहीं है कि मनु का कथन अप्रासंगिक है । यह तो उन व्यक्तियों की स्वार्थलिप्सा है जो न तो समाज के लिये जीते हैं और न ही संसार के लिये, वे तो केवल स्वयं के लिये जीते हैं ।

भारतीय दर्शन नारी और पुरूष के उन श्रेष्ठ सम्बन्धों का उदात्त दर्शन है जिसमें नारी - नारी होकर भी पुरूष की अर्द्धांगिनी ही होती है और पुरूष- पुरूष होकर भी विना नारी के अपूर्ण रहता है । दोनों का एकत्व ही उनका पूर्णत्व है । एक के अभाव में दूसरा निष्क्रिय ही नहीं, निष्प्राण भी हो जाता है । दोनों की पारस्परिक समर्पण भावना ही परिवार का रूप धारण करती है । यही कारण है कि भारतीय परिवार आज भी अपनी अस्मिता बनाये हुए हैं ।

ऐसा भी नहीं है कि युग-परिवर्तन एवं क्षीण होते जा रहे मानवीय-मूल्यों के साथ नारी के स्वरूप में परिवर्तन न आया हो । संभवतः इसलिये नारी होकर भी शिवानी ने नारी की परत दर परत खोलकर उसकी मनोगत भावनाओं का ज्यों का त्यों उद्घाटन किया है । इसमे वे जरा भी नहीं हिचकीं । यही उनकी विशेष उपलब्धि एवं विशिष्ट चरित्रांकन कला है ।

वस्तुतः शिवानी के साहित्य में चरित्रांकन एवं मानवीय चरित्र में विविधिता के मध्य आदर्श का समन्वय स्वयं में एक उपलब्धि है । शिवानी ने अपने साहित्य के माध्यम से एक ओर समाज-सापेक्ष युगबोध को जीने की चेष्टा की है तो दूसरी ओर विभिन्न पात्रों के माध्यम से एक उच्चादर्श की परिकल्पना कर दृढ़ संकल्प के रूप में आदर्शवाद को भारतीय मानसिकता से ओतप्रोत रूप दिया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में शिवानी के उपन्यासों, कहानियों, संस्मरणों एवं निबन्धों के आदर्शनिष्ठ पात्रों का विश्लेषण एवं उनके नैतिक दर्शन का सम्यक् विवेचन किया गया है शिवानी के साहित्य के विवेचन, आदर्शवाद तथा पात्रों के नैतिक दृष्टि से विश्लेषणात्मक अध्ययन के निमित्त लिखा गया यह शोध-प्रबन्ध अपने आप में पूर्ण सिद्ध होगा, यह नहीं कहा जा सकता । किन्तु इसके मूल्यॉकन में मेरी पूरी निष्ठा एवं लगन समर्पित हैं ।

वागदेवी की असीम अनुकम्पा से मुझे अपने शोध - कार्य काल में सर्वत्र सहयोग ही मिला । मैं डा० अशोक त्रिवेदी जी के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने मुझे इस शोध-कार्य के लिये प्रेरित किया, वे मेरी गहन कृतज्ञता के पात्र हैं । शोध-सामग्री संकलन में सहायता देने वाले श्री एवं श्रीमती हेमन्त पन्त की भी मैं हृदय से आभारी हूँ ।

मैं अपने परम श्रद्धेय गुरूदेव (शोध-निदेशक) डॉ॰ शशिकान्त अग्निहोत्री जी की आजन्म ऋणी रहूँगी जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर सदैव मेरा मार्ग दर्शन किया एवं मेरे शोध - प्रबन्ध के संवर्द्धन में अपूर्व योगदान दिया ।

Radha Rani
श्रीमती राधारानी

बिन्दकी - फतेहपुर

जुलाई - 1992.

अनुक्रमणिका

(घ) **शिवानी के उपन्यासों में नीति और नैतिकता** - नीति - , नीति - तत्व -, नैतिकता - , शिवानी के उपन्यासों में नीति और नैतिकता - ,

252-303.

चतुर्थ अध्याय - शिवानी की कहानियों में आदर्शवाद एवं नैतिकता का दर्शन - (क) **शिवानी की कहानियों में आदर्श चरित्र-** चनुली - , मिसेज बेदी - , बसन्ती दी -, लक्ष्मी, कप्तान जोशी - , बिन्दु - , आरती सक्सेना - , पुष्पा पन्त - , पुट्टी - , सुहासिनी - , बेगम अख्तरी - ,

(ख) आदर्श **पात्रों की समाज - सापेक्ष विचार धारा** -

(ग) कहानी के **पात्रों में जीवन संघर्ष के प्रति आस्था** -

(घ) शिवानी की कहानियों में **पुरूष पात्रों एवं नारी पात्रों के आदर्श की तुलना** -

(ड.) शिवानी की कहानियों में नैतिक चरित्र एवं नैतिक दर्शन -

304-347.

पंचम अध्याय - शिवानी के संस्मरणों में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन - क- **आदर्श व्यक्तित्व प्रधान संस्मरण** -

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ - , आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - , श्रीमती इन्दिरा गाँधी - , मूर्तिकार कृपालदत्त त्रिपाठी- , प्रोफेसर चन्द्रा , - भारत की प्रथम महिला डाक्टर आनन्दी गोपाल - पं0 गोविन्द नारायण नाटू- , मि0 हेनरी , बालक ध्रुव कुण्डु - , लक्ष्मी कान्तम्मा रेड्डी - , रामरती - , गंगा बाबू - , अमृत लाल नागर - , तीन समाज सेविकायें - (ख) **घटना प्रधान संस्समरणों का आदर्श** - , शान्ति निकेतन एवं गुरू पल्ली की घटनायें-आंवला का रसास्वादन और दण्ड - , जम्हाई, और वैष्णवी त्रिपुण्ड -, शर्म नहीं आयी तुम्हें - , अन्याय सहन करना अपराध है - , जाति का आधार जन्म नहीं है - , गुरू की कैसी परीक्षा - , ईश्वर भी माफ कर देगा - , परिणति बोध - , अमिट चिन्ह का दण्ड - , (ग) **स्थल प्रधान संस्मरणों का आदर्श**- , विश्वभारती - शान्ति निकेतन - , शील - सौजन्य का देश भारत - कुमॉयू मण्डल - , नैनीताल में नन्दा देवी - , नैमिषारण्य - , कपालेश्वर देवालय - , महाबलीपुरम् - , पक्षीतीर्थ - , (घ) **संस्मरणों में नैतिकता का निर्वाह** -

348-384.

षष्ठम अध्याय - शिवानी के निबन्धों में आदर्शवादी अनुचिन्तन एवं नैतिक दर्शन - (क) शिवानी के निबन्ध में आदर्श का आधार - शिवानी के निबन्धों में भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में आदर्शों का सामाजिक आधार - , शिवानी के निबन्धों में आदर्श का पारिवारिक आधार - , शिवानी के निबन्धों में आदर्श का वैयक्तिक आधार - , शिवानी के निबन्धों में आदर्श का साहित्यिक आधार - , (ख) आदर्शवादी विचारधारा की प्रधानता - (ग) शिवानी के निबन्धों में नैतिकता का आग्रह - , (घ) निबन्ध विधा में नैतिक दर्शन एवं आदर्श अभिव्यक्ति का समन्वय -

385-416.

सप्तम अध्याय - शिवानी के साहित्य में आदर्शवाद का लक्ष्य एवं नैतिकताकी उपलब्धि - (क) समाज और नैतिकता (ख) साहित्य और नैतिकता - (ग) मानवतावादी नैतिकता (घ) ङ-नारी प्रतिष्ठा का नैतिक आग्रह - ङ.वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का निर्वाह - , वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का निर्वाह करने वाले नारी एवं पुरूष पात्र - , आत्माभिमानी जया - , रामरती - , ललिता - , पार्वती - , सुधा - , ठाकुर की तीन पत्नियां - आरती सक्सेना - , माधवी - , बेगम अख्तरी - , चन्नो - , रमा - , पुट्टी-, कप्तान जोशी - , वकील पुत्र एवं रहमान - , इश्तियाक अहमद अब्बादी - , हयात सिंह - ,

शिवानी के साहित्य में आदर्शवाद का लक्ष्य -

शिवानी के साहित्य में नैतिकता की उपलब्धि -

अष्टम अध्याय - शिवानी की आदर्श एवं नैतिकता

प्रधान जीवन शैली - 417-432.

उपसंहार -

प्रथम अध्याय

स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी साहित्य और शिवानी

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य और शिवानी

यद्यपि श्रेष्ठ साहित्य की संरचना के लिये किसी काल विशेष को महत्त्व देना तर्क संगत नही है, फिर भी साहित्य के साथ साहित्यकार की मानसिकता पर किसी प्रकार की परतन्त्रता का दबाव न होने पर जो स्वतन्त्र अनुभूति होती है वह निश्चय ही चिन्तन की नई उंचाइयों के दिशा-बोध के लिये संकेतक हो सकती है। यह सच है कि परतन्त्रता-काल में भी कबीर, जायसी, सूर, मीरा और तुलसी जैसे साहित्य मनीषी सफल साहित्य सर्जक बन सके और भारत के स्वतन्त्र होने के पश्चात् भी कबीर, सूर और तुलसी जैसा साहित्यकार सामने नही आ सका।

इसका यह तात्पर्य नही है कि इन साहित्यकारों के अतिरिक्त अन्य कोई साहित्यकार है ही नही किन्तु लोकहित चिन्तन का जो सर्वोच्च आदर्श इन कवियों ने प्रतिष्ठित किया था वह हिन्दी साहित्य में आधारशिला या नींव के पत्थर के रूप में प्रतिष्ठापित माना जा सकता है। यदि परतन्त्र भारत में स्वतन्त्रता की अलख जगाने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद दिवेदी, मुंशी प्रेमचन्द्र, बालकृष्ण शर्मा "नवीन", मैथलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत, निराला और दिनकर आदि ने अपनी वाणी का जयघोष साहित्य क्षेत्र में प्रस्तुत किया है तो स्वातन्त्र्योत्तर काल के साहित्यकारों ने स्वतन्त्रता की उपलब्धि की रक्षा तथा उन्नति की नयी दिशाओं की नयी सोच अपने साहित्य में पैदा की है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल के साथ ही साहित्यकार के कल्पनाशील सर्जकमन भी कहीं न कहीं स्वतन्त्र चेता सिद्ध हुये हैं। परिणामतः साहित्यकारों की सोच में राष्ट्रवादी सोच और सामाजिक मर्यादाओं की सोच, पारिवारिक दायित्वों की सोच तथा स्वतन्त्र भारत के सर्व स्वतन्त्रभावी नागरिकों की सोच अनुप्रमाणित हुई है। काव्य विधा से निकली हुई सोच गद्य के असीम क्षेत्र में विस्तृत आकार लेने में संकोच को छोड़ती हुई दिखती है। इसी प्रक्रिया में जन्मी है शिवानी की सोच। यद्यपि इस तथ्य को अस्वीकार नही किया जा सकता कि भारत पुरूष प्रधान संस्कृति और सभ्यता से बोझिल होने पर भी सुदृढ़ नारी के व्यक्तित्व की उपेक्षा करने का साहस नही करता तथा दृढ़ता के साथ किसी

भी क्षेत्र में दिशामापक चरण बढ़ाने वाली सर्जक नारियों की सहर्ष स्वीकृति भारतीय साहित्य के संसार में स्वीकृत हो सकी है।

जैसे काव्य के क्षेत्र में महाकाव्य न लिखने पर भी अपनी वेदना के बल पर महादेवी अपने नाम को जीवन्तता प्रदान कर सकी हैं और साहित्य में वेदना के साथ नारी के अस्तित्व को सार्थकता दे सकी हैं ठीक उसी प्रकार कविता से अलग गद्य विधाओं के क्षेत्र में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, इलाचन्द्र जोशी, यशपाल, जैनेन्द्र कुमार, महादेवी वर्मा, अज्ञेय आदि बहुसंख्यक गद्यकारों की समकक्षता में अपने शिल्प विधान, भाषा कौशल एवं प्रस्तुतीकरण पटुता के सहारे नारी के व्यक्तित्व को एक आयाम देती हुई प्रतीत होती है श्रीमती गौरा पंत शिवानी- जो कविकुलगुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर के शांति निकेतन से नारी दमन के विरोध की मंत्रशक्ति से अनुप्राणित हैं और अपनी अभिव्यक्ति से भारतीय लोगों में एक सार्थक सोच पैदा करने के लिये कलमबद्ध बयान देने में हर क्षण तत्पर हैं।

क- स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी साहित्यकार:

स्वातन्त्रय भावना का आधार:

स्वातन्त्रय पूर्व और स्वातन्त्रयोत्तर को रेखांकित करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि स्वतन्त्रता क्या है ? जिसके लिये 1857 का गदर, अंडमान निकोबार का कालापानी, अमृतसर के जलियां वाला बाग की बेजुबान कहानी और चन्द्रशेखर, भगतसिंह, खुदीराम बोस जैसे क्रान्तिकारी नवजवानों की गुमनाम जवानी, नेता सुभाषचन्द्र बोस और उनकी "आजाद हिन्द फौज" के बुलन्द हौसले तथा सत्य, अहिंसा और भाईचारा की निष्क्रिय नीति को राजनीति का मेरुदण्ड मानने वाले मोहनदास करमचन्द्र गांधी की अंततः हे राम की गूंज किसी न किसी रूप में अपनी अर्थवत्ता सिद्ध करने में सक्षम है। भारत का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारत पर जब जब आक्रमण हुये, साहित्यकारों ने देश और राष्ट्र की रक्षा के लिये जनजागरण का कार्य किया है।

मुगल शासन के पश्चात् धीरे-धीरे हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता में भाईचारा तथा पारस्परिक सामंजस्य की स्थापना का कार्य हुआ जिसका एक मात्र प्रमाण है ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से शासन सत्ता तक पहुंचने वाले अंग्रेजों के विरूद्ध हिन्दू और मुस्लिम तथा सिक्खों ने साथ मिलकर विभिन्न रूपों में शोषण के प्रतीक ब्रिटिश शासन से लोहा लिया। ब्रिटिश शासन काल के भारत में अंग्रेजों ने भारत से सोना-चांदी के साथ ही सर्वोत्तम रत्न, जवाहरात एवं दुर्लभ कलाकृतियों को लूटा और ब्रिटिश संग्रहालय के साथ ही अपने-अपने घरों को भी अलंकृत किया। अंग्रेजों ने इसके बदले में भारत को दिया गुलामी, खुलेआम भारतीय महिलाओं की बेइज्जती, स्वतन्त्रता के इच्छुक नवजवानों को फांसी के फंदे और अहिंसक आन्दोलनकारियों को लाठी-डंडो की बेरहम यादें।

ब्रिटिश काल के भारत में बड़े-बड़े शहरों में माल रोड, ठंडी सड़क और सिविल लाइन्स जैसे क्षेत्रों की सड़कों में भारतीयों को चलने की आजादी नहीं थी। अपने ही देश की धरती में, अपनी ही मां की गोद में और अपने ही आंगन में भारत के सभी सपूत अंग्रेजों के काले कानूनों के रहते परतन्त्र ही तो थे। यह वह समय था जब मुटठी भर नमक के लिये लोगों को अपनी पीठ पर अंग्रेज सैनिकों के कोड़े सहने पड़ते थे। तन ढकने के लिये माताओं और नवयुवतियों को अंग्रेजों की कण्ट्रोल-नीति

के कारण एक-एक धोती के लिये तरसना पड़ता था। इन्हीं परिस्थितियों को भारतीय साहित्यकारों ने स्वातन्त्र्य पूर्व की परतन्त्रता का नाम दिया है। अनिच्छित भाव से भारतीयों की परवशता तथा अपनी धरती पर अंग्रेजों की आज्ञा मानने की विवशता को ही स्वतन्त्रता संग्राम सेनानियों ने गुलामी का नाम दिया था। श्रेष्ठ संपन्न भारतीय भाषाओं के होते हुये भी केवल क्लर्क बनने के लिये अंग्रेजी की अनिवार्यता को स्वाभिमानी साहित्यकारों ने अंग्रेजी को गुलामी की भाषा और शोषण का प्रतीक मान लिया था। इन्हीं परिस्थितियों से देश को मुक्त कराने के लिये जो राजनीतिक और गैर राजनीतिक प्रयास हुये उन्हें स्वतन्त्रता-आन्दोलन या स्वतन्त्रता-संग्राम का नाम दिया गया है।

स्वातन्त्र्य पूर्व की इन्हीं परिस्थितियों में भारत के पूर्वी और पश्चिम बंगाल को जो भुखमरी और महामारी मिली, देश के विभाजन के नाम पर भारतीयों का जो खून बहा उसमें सब की सब स्वातन्त्र्य पूर्व की वीभत्स स्मृतियां ही हैं। भारत की परतन्त्रता और भारत की स्वतन्त्रता के मध्य साक्ष्य के रूप में 15 अगस्त 1947 के आरम्भ में सत्ता का हस्तान्तरण भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की बहु प्रतीक्षित उपलब्धि मानी जाती है। स्वातन्त्र्य पूर्व और स्वातन्त्र्योत्तर के मध्य 15 अगस्त का प्रशस्त स्वतन्त्रता दिवस निश्चय ही एक मध्य रेखा है, एक काल खण्ड है, एक परिस्थिति-बोध है जिसके पश्चात् विभाजन से बचे हुये भारत का शेष अस्तित्व अपना केवल अपना, प्रतीत होता है। इसके पहले हिन्दी के साहित्यकारों ने अपने-अपने साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से स्वतन्त्रता की परिकल्पना को जीवन्त (साकार) रूप देने की चेष्टा की और स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय साहित्यकारों ने दुर्लभ स्वातन्त्र्य को संरक्षित करने का संकल्प लिया। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में एक नयी सोच, एक नयी स्वतन्त्रता और नये भारत का दिशा-बोध मिलता है। मैथिलीशरण, तथ्य का "जयभारत" इसी तत्य की उद्घोषणा करता है। स्वातन्त्र्य पूर्व के साहित्यकारों ने भारत के नवनिर्माण की जो परिकल्पना की थी उसको चरितार्थ करने का समय स्वातन्त्र्योत्तर काल में ही सामने आया- जैसे मुंशी प्रेमचन्द्र ने जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की परिकल्पना के साथ ही उच्च और निम्न वर्ग के मध्य एक सामंजस्यपूर्ण समाज की संरचना पर बल दिया था प्रेमचन्द्र के इसी प्रयास को भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं0 जवाहरलाल नेहरू ने राजनैतिक और संवैधानिक निर्णयों के माध्यम सेप्रभावी कर दिखाया है।

यदि स्वातन्त्र्य पूर्व की परिस्थितियां भारतीयों की सहनशीलता, कर्त्तव्यपरायणता और बलिदानी मनोवृत्ति की द्योतक है तो स्वातन्त्र्योत्तर परिस्थितियां नये समाज, नये भारत के नवनिर्माण के लिये औद्योगिक क्रान्ति, हरित क्रान्ति तथा नारी शिक्षा के नये मानदण्ड के रूप में एक उज्ज्वल दिशा की ओर संकेत करती है। निश्चय ही नयी सोच और नयी दिशा के बोध के लिये भारत साहित्यकारों का सदैव ऋणी रहेगा, जिन्होंने अपनी कृतियों के माध्यम से शासन सत्ता के कर्णधारों को नयी सोच देकर जनहित हेतु मार्गदर्शन किया है।

स्वातन्त्र्य हेतु स्वातन्त्र्य पूर्व साहित्यकारों की परम्पराः

स्वातन्त्र्य पूर्व हिन्दी साहित्यकारों की परम्परा में अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, द्वारिका प्रसाद मिश्र, बल्देव प्रसाद मिश्र, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", सुमित्रानन्दन पंत, रामधारी सिंह "दिनकर", सच्चिदानन्द, हीरानन्द वात्स्यायन "अज्ञेय", हरिवंशराय बच्चन, डा० श्याम सुन्दर दास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, मुंशी प्रेमचन्द्र, यशपाल, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव आदि लब्धप्रतिष्ठ हैं। जिस प्रकार स्वातन्त्र्य पूर्व हिन्दी को दिशा देने वाले भारतेन्दु मण्डल से लाला श्रीनिवास दास, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण "भट्ट", अम्बिकादत्त व्यास, बालमुकुन्द गुप्त और प्रेमधन हरिश्चंद्रीय हिन्दी के पक्षधर होने पर भी गद्य लेखन में सुरुचि भिन्नता के पक्षधर थे, उसी प्रकार द्विवेदी युग में श्याम सुन्दर दास, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, चंडी प्रसाद, हृदयेश आदि की भाषा ने हिन्दी को नया कलेवर देने की चेष्टा की है। छायावादी युग के प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी के स्तम्भ-चतुष्टय ने गद्य और पद्य में हिन्दी को जो मनोहारी रूप दिया है वह लोक विदित है। स्वातन्त्र्य पूर्व के लेखकों में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अज्ञेय और डा० नगेन्द्र परवर्ती साहित्यकारों के लिये आलोचना के क्षेत्र में मानदण्ड बने हुये हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्यकारों मे यद्यपि हजारी प्रसाद द्विवेदी, अज्ञेय, हरिवंशराय बच्चन, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह "दिनकर", सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", महादेवी, यशपाल आदि जैसे अनेक नाम परिगणित होते हैं, फिर भी इनके

अतिरिक्त स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्यकारों की लम्बी परम्परा है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बाबू गुलाब राय, रामकृष्ण दास, वियोगी हरि, दिनेशनन्दिनी, डालमियां, जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, गोविन्द बल्लभ पंत, हरिकृष्ण प्रेमी, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक", सेठ गोविन्द दास, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, वृन्दावन लाल वर्मा, सद्गुरू शरण अवस्थी, रामनरेश त्रिपाठी, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामकुमार वर्मा, जगदीश चन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे आदि अधिक श्राव्य है। इन्हीं साहित्यकारों के अनुक्रम में जुड़ता है शिवानी का नाम।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्यकारों की विशेष चर्चा हिन्दी साहित्य की विधाओं के सन्दर्भ में विशेषतः देखी जा सकती है।

ख- स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य की विधायें और शिवानीः

भारतीय साहित्य के क्षेत्र में प्राचीन और आधुनिक दृष्टि से साहित्यिक विधाओं में एक ओर विविधता आई है तो दूसरी ओर साहित्यिक विधाओं के मानदण्ड स्थापित हुये हैं।

मूलतः साहित्य पद्यात्मक और गद्यात्मक दृष्टि से विभक्त किया जाता है। पद्यात्मक साहित्य में भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि से प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य की अवधारणा मिलती है। प्रबन्ध काव्य में महाकाव्य और खण्डकाव्य (नाम) नाम से भेद किये गये हैं। मुक्तक काव्य में गीत, प्रगीत, मुक्तक आदि उपलब्ध हैं। किन्तु आधुनिक युग की सशक्त लेखिका शिवानी ने पद्यात्मक विधा में किंचितमात्र भी अपने बुद्धिकौशल का जौहर नहीं दिखाया। अतः इन विधाओं का विस्तृत वर्णन विषयानुकूल नहीं होगा।

यद्यपि साहित्य की पद्यात्मक धारा में प्रबन्ध काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य एवं खण्डकाव्य स्वीकृत हैं तथा प्रबन्धेतर काव्य के अन्तर्गत मुक्तक काव्य के माध्यम से गीत, प्रगीत, नवगीत, लोकगीत आदि काव्य विधाएँ लोकानुरंजन का आधार बनती रही हैं फिर भी आधुनिक युग में पद्य के समकक्ष आरम्भ हुये गद्य साहित्य में पद्य की अपेक्षा

वैविध्य आया है। यदि पद्य या काव्य छन्दोबद्धता से आरम्भ होकर मुक्त छन्द होती हुई नई कविता और अकविता तक पहुंचा है तो गद्य की यात्रा राजा-रजवाड़ों के लेखा-जोखा के जंजाल से निकलकर जनजीवन के मानवीय संवेदनाओं को समेटते हुये उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, एकांकी, रिपोर्ताज, संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रा-वृतान्त, पत्र साहित्य, डायरी साहित्य, आलोचना, फीचर, पत्रकारिता, लेख आदि बहुआयामी अन्तहीन विधाओं तक जा पहुंची हैं।

पद्य की तुलना में गद्य का जयघोष वास्तव में जनरव की समवेत स्वीकृति है। पद्य यदि गुलदस्ता है तो गद्य गलीचा सा फैल गया है। शिवानी शांति निकेतन से ही तत्वग्राही बुद्धि के लिये चर्चित रही है। इसीलिये उन्होंने साहित्य सर्जना के लिये पद्य के मोदक में लुब्ध न होकर गद्य की गौरव गरिमा की ओर आकृष्ट हुई एवं बड़ी सहजता से अपनी लेखनी का सहचर खोज लिया। भले ही शिवानी की लेखनी का सहचर गद्य साहित्य में बहुआयामी बहुचर सिद्ध हो रहा हो।

वास्तव में शिवानी को शांति निकेतन एवं रवीन्द्र साहित्य से मनोनुकूल प्रेरणा भूमि प्राप्त हुई थी। सर्जनशीलता नारी का प्राकृतिक गुण है। शिवानी में वही सर्जनशीलता सम्पन्न नारी साहित्याभिमुख प्रतीत होती है।

हिन्दी की गद्यात्मक विधाएँ

हिन्दी गद्यात्मक विधाओं का विकास हिन्दुस्तानी और खड़ी बोली हिन्दी के विकास क्रम में आबद्ध है। इन्हीं दोनों के कारण हिन्दी को एक ओर संस्कृत का अतुल शब्द भण्डार मिला और दूसरी ओर हिन्दुस्तानी के माध्यम से अरबी और फारसी का मुगलकालीन अवशेष, जो सामान्यतः जनभाषा का अंग बनकर सर्वत्र ग्राह्य है। हिन्दी गद्य के विकास में लल्लू लाल, सदल मिश्र, सदासुख लाल तथा इंशा अल्ला खां को सुदृढ़ स्तम्भ माना जाता है। इनमें लल्लू लाल और सदल मिश्र हिन्दी में संस्कृत शब्दों के प्रयोग के पक्षधर थे तथा सदासुख लाल और इंशा अल्ला खां अरबी और फारसी शब्दों के प्रवाहपूर्ण पक्षधर प्रतीत होते थे। आयार्च रामचन्द्र शुक्ल ने इसी दृष्टि से लिखा है-

"इस सम्बन्ध में ध्यान देने की बात यह है कि इन ईसाई अनुवादकों में सदासुख लाल और लल्लू लाल की विशुद्ध भाषा को ही आदर्श माना, उर्दूपन को बिल्कुल दूर रखा, इससे यही सूचित होता है कि फारसी अरबी मिली भाषा से साधारण जनता का लगाव नहीं था जिसके बीच मत का प्रचार करना था।"[1]

वास्तव में हिन्दी गद्य के स्वरूप निर्माण और विकास में एक ओर धार्मिक संस्थाओं ने अपूर्व योगदान दिया है दूसरी ओर फोर्ट विलियम कालेज के विद्यार्थियों के माध्यम से अंग्रेजी से प्रभावित रूप सामने आया है। डा0 रामचन्द्र तिवारी के विचार से- "इन दोनों में, अंग्रेजी की प्रतिकूलता के कारण, फोर्ट विलियम कालेज के पंडितों से हिन्दी गद्य को अपेक्षित शक्ति न मिल सकी। धार्मिक संस्थाओं को जनता के निकट पहुंचना था, अतः उन्हें "हिन्दुई" का आधार लेना पड़ा था, किन्तु उनके द्वारा भी हिन्दी गद्य को न तो प्रौढ़ता मिली न स्थिरता। ईसाई प्रचारक अधिक ग्रामीण शैली लेकर चले थे, दूसरी ओर ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज के ग्रन्थों में संस्कृतनिष्ठ गद्य का प्रयोग था।"[2]

हिन्दी साहित्य में विशेषतः गद्य के क्षेत्र में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अभ्युदय के साथ ही विधामूलक विविधता परिलक्षित होने लगी थी। भारतेन्दु की वाक्य रचना में नाटकीयता अद्भुत है। भारतेन्दु के समसामयिक लेखकों ने भी गद्य लेखन को निबन्ध लेखन की श्रेणी में परिवर्तित किया था। ऐसे गद्य लेखकों में पं0 प्रतापनारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी, ठाकुर जगमोहन सिंह तथा पं0 बालकृष्ण भट्ट थे।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतेन्दु काल से लेकर प्रयोगवादी युग तक निबन्ध, नाटक, कहानी, उपन्यास, एकांकी, आलोचना की जो विधाएँ प्राप्त हुईं वे उत्तरोत्तर प्रौढ़ता को प्राप्त करती हुई प्रस्तुत काल में विकास के चरम शिखर पर जा पहुंची हैं।

1- हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 423

2- हिन्दी का गद्य साहित्य, डा0 रामचन्द्र तिवारी, द्वितीय संस्करण, पृ0 24

वर्तमान हिन्दी गद्य साहित्य की विधाओं के अन्तर्गत उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, एकांकी, जीवनी साहित्य, यात्रा साहित्य, आत्मकथा साहित्य, पत्र साहित्य, रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, आलोचना (समीक्षा) पत्रकारिता, डायरी, एकालाप, इण्टरव्यू, केरीकेचर, लघुकथा, लघु उपन्यास, बहुआयामी नवीन विधाओं का प्रादुर्भाव द्रुतगति से हुआ है। ये विधाएँ स्वातन्त्र्योत्तर युग बोध के पूर्ण साक्षात्कार की प्रतीक हैं। बहुप्रज्ञ "गौरा पंत शिवानी" ने इनमें से अधिकांश विधाओं को अपनी सजीव लेखनी से गौरवान्वित किया है।

वस्तुतः शिवानी ने आधुनिक युग में व्याप्त जीवन की जटिलता, सन्दर्भों का वैविध्य, यर्थाथ के अनेक स्तर और पहलू, मन की गुत्थियां, स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की रहस्यमयता, जीवन-प्रवाह का शत सहस्त्र धाराओं में प्रवाहमान रूप, प्रकृति और मानव के संघर्ष की अनादि अनन्त गाथा, विराट प्रकृति के अनन्त रहस्यों को बूझने के प्रयत्न में एकत्रित संघर्षशील अदम्य जिजीविषा वाले मानवों की अनुभव राशि, यह सब कुछ इन विधाओं के माध्यम से बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है। इस यर्थाथ बोध के साथ ही उनके साहित्य में आदर्श और नैतिकता की अजस्र धारा का सतत् प्रवाह भी सर्वत्र दृष्टिगत होता है।

जिन विधाओं को शिवानी की लेखनी ने अपने चमत्कारी वैभव से महिमामंडित बनाया है उनका विस्तृत वर्णन किये बिना उनकी साहित्यिक प्रतिभा का मूल्यांकन असंभव ही नही दुस्साध्य भी होगा। अतः सबसे पहले उनकी उपन्यास विधा का वर्णन उचित होगा।

हिन्दी की उपन्यास विधाः

उपन्यास हिन्दी गद्य साहित्य की एक विशिष्ट विधा है। उपन्यास शब्द का व्युत्पत्ति- लभ्य अर्थ है- उप अर्थात् निकट, न्यास अर्थात् रखा हुआ यानी साहित्य का वह अंग जिसका विकास अपेक्षाकृत आधुनिक काल में मानवीय जीवन की धरोहर के रूप में हुआ। "उपन्यास" मूलतः मनुष्य के जीवन में साहित्यकार की बढ़ती हुई दिलचस्पी का ही द्योतक है। उपन्यास को परिभाषित करते हुये मुंशी प्रेमचन्द्र ने कहा है- "उपन्यास

की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है लेकिन यह कायदा है कि जो चीज जितनी सरल होती है, उसकी भाषा उतनी ही मुश्किल होती है। मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"[1]

उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक प्रमुख कलाकृति है। हिन्दी में उपन्यास रचना की प्रेरणा बंगला साहित्य से प्राप्त हुई। प्रेमचन्द्र पूर्व युग में सन् 1877 ई0 में पं0 श्रद्धाराम फुल्लौरी ने "भाग्यवती" नामक सामाजिक उपन्यास लिखकर ख्याति लाभ किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने "हिन्दी साहित्य का इतिहास" नामक अपने ग्रन्थ में पृष्ठ 446 में "भाग्यवती" की प्रशंसा की है। उपन्यास विधा प्रेमचन्द युग में आकर निश्चय ही सर्वमान्य विधा सिद्ध हुई। बंगला भाषा के उपन्यासों के प्रभाव और प्रकाश में अनुवाद के साथ ही मौलिक उपन्यासों की रचना आरम्भ हुई। किशोरी लाल गोस्वामी का "परीक्षा गुरू" 1882 ई0, "पुनर्जन्म या सौतिया डाह" 1907 ई0, देवी प्रसाद शर्मा "उपाध्याय का उपन्यास" "सुन्दर सरोजनी" हिन्दी के प्रेमचन्द पूर्ण युग के उपन्यासों में आरम्भिक उपन्यास माने जाते हैं। प्रेमचन्द युग तक आते-आते हिन्दी उपन्यास सामाजिक, ऐतिहासिक, घटनात्मक दृष्टि से लिखे गये। सामाजिक उपन्यासों में चरित्र प्रधान, भावप्रधान और सामाजिक घटना प्रधान उपन्यास मिलते हैं। ऐतिहासिक उपन्यासों में विशुद्ध ऐतिहासिक तथा काल्पनिक रोमांस युक्त ऐतिहासिक उपन्यास उपलब्ध होते हैं। घटनात्मक उपन्यासों में तिलस्मी, ऐय्याशी, जासूसी, साहसिक एवं विचित्र घटना प्रधान उपन्यास परिगणित होते हैं। यह सत्य है कि प्रेमचन्द के पदार्पण के साथ ही उपन्यास जगत में सामाजिकता और आदर्शवाद को स्वीकृति मिली है। वास्तव में प्रेमचन्द मनुष्य के लिये मनुष्य की उपादेयता मानवीय सन्दर्भ में सर्वोपरि मानते थे इसीलिये प्रेमचन्द "कुछ विचार" शीर्षक निबन्ध ग्रन्थ में मानवतावाद से प्रभावित परिलक्षित होते हैं।"[2]

1- कुछ विचार, मुंशी प्रेमचन्द, शीर्षक "उपन्यास" पृष्ठ 49, नवीन संस्करण

2- कुछ विचार, मुंशी प्रेमचन्द, पृष्ठ 145, संस्करण 1939

यह सत्य है कि "सेवा सदन" 1918 से लेकर "गोदान" §1936 ई0§ तक अट्ठारह वर्ष की औपन्यासिक सर्जना की यात्रा में आदर्शवादी मानवता, क्रान्तिकारी परिवर्तन को अंकुरित कर चुकी थी। डा0 रामचन्द्र तिवारी के अनुसार- "प्रेमचन्द का 'गोदान' एक ऐसी मनोभूमि पर प्रतिष्ठित है जहां जैनेन्द्र की आत्मकेन्द्रित अन्तर्मुखी पीड़ा, इलाचन्द्र जोशी की कामकुण्ठाजनित जटिल व्यक्ति चेतना, यशपाल का समाजवादी यथार्थवाद, भगवती चरण वर्मा और उपेन्द्र नाथ अश्क का रूमानी समाजोन्मुख व्यक्तिवाद तथा अमृतलाल नागर का सर्वमांगलिक मानववाद सभी के प्रेरणासूत्र लक्षित किये जा सकते हैं।"[1]

मुंशी प्रेमचन्द ने परवर्ती हिन्दी उपन्यास विधा के सम्बन्ध में भविष्यदृष्टा की तरह यह घोषणा कर दी थी कि----"भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या किसी छोटे आदमी का। उसकी छोटाई-बड़ाई का फैसला उन कठिनाइयों से किया जायेगा कि जिन पर उसने विजय पाई है। हां! वह चरित्र इस ढंग से लिखा जायेगा कि वह उपन्यास मालूम हो। अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखाना होगा।"[2]

प्रेमचन्द्रोत्तर युगीन उपन्यासकारों के साथ ही स्वातन्त्र्योत्तर काल के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द्र की भविष्यवाणी मुखरित होती हुई परिलक्षित होती है। चतुरसेन शास्त्री, भगवती प्रसाद बाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा जैसे साहित्यकार एक ओर प्रेमचन्द्र युग और प्रेमचन्दोत्तर युग के मध्य अटूट श्रृंखला की प्रथम कड़ी प्रतीत होते हैं दूसरी ओर अपनी श्रृंखला को स्वातन्त्र्योत्तर युग तक विस्तार देने में सफल हुये हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य के कालजयी उपन्यासकार हैं- इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवती चरण वर्मा, वृन्दावन लाल वर्मा, भगवती प्रसाद बाजपेयी,

---

1- हिन्दी का गद्य साहित्य, §वार्षिक-हिन्दी उपन्यासों का विस्तार§, डा0 रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 123, द्वितीय संस्करण

2- कुछ विचार, प्रेमचन्द, पृष्ठ 14, संस्करण 1939

यशपाल, बेचन शर्मा "उग्र", ऋषभचरण जैन, अज्ञेय, रामेश्वर शुक्ल "अंचल", राहुल सांकृत्यायन, मन्मथनाथ गुप्त, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, हजारी प्रसाद द्विवेदी, चतुरसेन शास्त्री, उदयशंकर भट्ट, प्रभाकर माचवे, देवेन्द्र सत्यार्थी, भैरव प्रसाद गुप्त, कृष्णचन्दर, फणीश्वर नाथ रेणु, नागार्जुन, लक्ष्मीनारायण लाल, धर्मवीर भारती, डा0 रघुवंश, अमृतराय, डा0 देवराज, कृष्णचन्द्र शर्मा "भिक्खु", विष्णु प्रभाकर, रुद्र काशिकेय, अनन्त गोपाल, नरेश मेहता, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, लक्ष्मीकांत वर्मा, कंचनलता सब्बरवाल, शिवानी, श्री लाल शुक्ल, शैलेश मटियानी, कमलेश्वर, मारकण्डेय, ठाकुर प्रसाद सिंह, दुष्यन्त कुमार, निर्मल वर्मा, मनहर चौहान आदि जिन्होने अपनी अपनी कृतियों से उपन्यास विधा के अक्षय कोष की श्रीवृद्दि की है। इन गणमान्य नामों में एक नाम शिवानी का भी है।

उपन्यास विधा में शिवानी के उपन्यासः

आभिजात्य वर्ग के सुकुमार कली, पहाड़ी संस्कृति में पली, शांति निकेतन की शांति सीप में मोती सी ढली, वर्तमान युग की एक मूर्द्धन्य उपन्यासकार शिवानी ने "पगली" और "कृष्णकली" जैसी नायिकाओं के माध्यमसे उपन्यास जगत् में शरतचन्द्र और प्रेमचन्द जैसे युगबोध कराने वाली जो प्रतिष्ठा अर्जित की है वह किसी भी उपन्यासकार के लिये मात्सर्य ओर प्रतिस्पर्धा का विषय बन सकती है।

वर्तमान साहित्य पटल में अन्य कोई महिला साहित्यकार इतनी बहुज्ञ, बहुश्रुत एवं बहुचर्चित नहीं दिखाई देती है जिसकी तुलना शिवानी से की जा सके। शिवानी की तुलना केवल शिवानी से की जा सकती है क्योंकि शिवानी अपने शिल्प, भाषा, कथानक, आदर्श पात्रों एवं नैतिक मूल्यों केकारण अद्वितीय हैं।

यह कहना जितना सहज प्रतीत होता है, वस्तुतः उतना होता नही है कि नारी को नारी के मनोभावों का चित्रण करने में कैसी कठिनाई ? वह तो एक तरह से स्वयं का ही चित्रण होता है फिर अपने अनुभवों को मुक्त यथार्थ को शब्दों का जामा पहना देने में कौन सी अद्भुत या असंभव सी बात है ? यदि कोई अपनी आप बीती को नही लिख सकता तो दूसरी पर क्या बीती है या बीत रही है, उसे उतनी सफलतापूर्वक

कागज पर उतारा नहीं जा सकता। यह भी एक दुर्भाग्य का विषय है कि नारी-नारी का चित्रण करने में एक प्रकार के संकोच का अनुभव करती है। संभवतः इससे नारी के अन्तर्जगत की वह खिड़की खुल जाने का भय बना रहता है जिससे पुरुष वर्ग या सारा समाज अपनी दृष्टि से झांक-झांककर निर्वस्त्र करने का प्रयास कर सकता है। इसीलिये वह नारी पात्रों का चरित्रांकन करने में बहुत सी बातों को या तो छिपा जाती है या इतने मर्यादित ढंग से पर्दे की ओट में प्रस्तुत करती है जिससे मनोभावों की उचित अभिव्यक्ति नहीं हो पाती और वह महिला कथाकार चाहकर भी अपनी कृति को जीवन्त नहीं बना पाती है। लेकिन शिवानी ने सोच की इस घुन लगी रूढ़िवादी मानसिकता से हटकर अपनी रचना धर्मिता में नारी को ही मुख्यतः अपने उपन्यासों का पात्र बनाया है और उनके मानसिक विकारों, अन्तर्द्वन्द्वों, संघर्षों, तनावों एवं संकल्पों का जिस प्रकार शिष्ट एवं सटीक शब्दावली में विश्लेषण प्रस्तुत कर अपने साहस का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं, हिन्दी साहित्य के लिये एक दुलर्भ उपलब्धि भी है।

शिवानी ने जहां एक ओर बड़े उपन्यासों की सर्जना की हैं, वहीं दूसरी ओर लघु उपन्यास भी लिखे हैं। यद्यपि लघु उपन्यासों की तुलना में उनके बड़े उपन्यास सीमित ही हैं। जिनकी गणना क्रमशः प्रस्तुत है-

शिवानी दारा रचित बड़े उपन्यास

1- मायापुरी (सन् 1957 में प्रकाशित)

2- चौदह फेरे (सन् 1960 में प्रकाशित)

3- कृष्णकली (सन् 1962 में प्रकाशित)

4- भैरवी (सन् 1969 में प्रकाशित)

5- श्मशान चंपा (सन् 1972 में प्रकाशित)

6- सुरंगमा (सन् 1979 में प्रकाशित)

7- अतिथि (सन् 1987 में प्रकाशित)

8- कालिन्दी (सन् 1991 में प्रकाशित)

लघु उपन्यासः

लघु उपन्यास न तो परिवार के साथ बैठकर किया जाने वाला रात्रि का भोजन है और न ही ब्रेड और बटर के साथ ली जाने वाली सुबह की चाय। बल्कि यह टिफिन में पराठा-सब्जी-अचार आदि से भरा हुआ लंच है। जहां सायंकालीन भोजन एक उपन्यास का रूप है जिसमें परिवार के विभिन्न सदस्यों की तरह अनेक पात्र होते हैं और जिस प्रकार डायनिंग टेबिल पर वे सभी सदस्य अपनी दिन भर की आप बीती सुनने और सुनाने को आतुर रहते हैं और जिसमें घर, पड़ोस, दफ्तर, स्कूल, बाजार-हाट, रिश्तेदार आदि सभी का जिक्र उस अवधि में हो जाता है इससे जहां भोजन में रूचि बढ़ती है वहीं उसका स्वाद द्विगुणित हो जाता है। ठीक ऐसा ही उपन्यासों का हाल होता है। अधिक पात्र, अधिकाधिक घटनायें एवं उन घटनाओं के माध्यम से एक सम्पूर्ण जीवन और समाज का चित्रण होता है। इसके विपरीत सुबह की चाय कहानी की तरह मक्खन लगी ब्रेड के साथ जो ताजगी और स्फूर्ति देती है वह अपने बौने स्वरूप में बामन सी विश्व को तीन पगों में नाप लेने की क्षमता प्रदान कर सारा दिन काम करने की सामर्थ्य प्रदान करती है।

आज के मशीनी युग में व्यक्ति का काम न तो अकेले सुबह की चाय से चल सकता है और न ही रात्रि के सुस्वादु भोजन के लिये वह सारा दिन उपवास ही रख सकता है। उसे आवश्यकता होती है दोपहर के लंच की यानी लघु उपन्यास की जिसमें उसे भोजन जैसी तृप्ति का आभास होता है और चाय जैसी काम करने की स्फूर्ति का पुनरावृत्ति। लघु उपन्यास व्यस्त जीवन में समस्त मस्तिष्कों का अल्प समय में कायाकल्प कर अपनी उपादेयता सिद्ध कर रहे हैं।

सारांशतः लघु उपन्यास न तो लम्बी कहानी है और न ही उपन्यासों का संक्षिप्त स्वरूप। इनमें न तो कहानी जैसा कठिन कसाव होता है और न ही उपन्यासों जैसी विषय विस्तार की विस्तृत छूट। लघु उपन्यास वस्तुतः कहानी और उपन्यास के बीच की वह पूरक विधा है, साहित्यिक सेतु है जिसमें एक छोर पर कहानी की रोचकता है तो दूसरे छोर पर उपन्यास का आनन्द। इस सेतु पर खड़े होकर पाठक एक साथ दोनों का रसास्वादन कर सकता है। यानी "चीप एण्ड दि बेस्ट"।

शिवानी ने आज के पाठकों की व्यस्तता और उनकी बदलती हुई रूचियों के अनुसार लघु उपन्यासों की सृष्टि अधिक की है। इसी कारण उनका नाम लघु उपन्यासों के क्षेत्र में अग्रगण्य हो गया।

शिवानी द्वारा रचित छोटे उपन्यास

1- कैंजा §सन् 1975 में प्रकाशित§

2- रतिविलाप §सन् 1975 में प्रकाशित§

3- किशुनली §सन् 1975 में प्रकाशित "रतिविलाप" में संकलित§

4- अभिनय §सन् 1975 में प्रकाशित रतिविलाप में संकलित§

5- स्वयंसिद्धा 1976 में प्रकाशित

6- विषकन्या §सन् 1977 में प्रकाशित§

7- रथ्या §सन् 1977 में प्रकाशित§

8- माणिक §सन् 1978 में प्रकाशित§

9- गैंडा §सन् 1978 में प्रकाशित§

10- कृष्णवेणी §सन् 1981 में प्रकाशित§

11- मोहब्बत §सन् 1984 में प्रकाशित "आकष" में संकलित§

12- विवर्त्त §सन् 1985 में प्रकाशित§

13- तीसरा बेटा §सन् 1985 में प्रकाशित विवर्त्त, में संकलित§

14- पूतों वाली §सन् 1986 में प्रकाशित§

15- बदला §सन् 1986 में प्रकाशित "पूतों वाली" में संकलित§

16- चल खुसरो घर आपने §सन् 1987 में प्रकाशित§

17- तिलपात्र §सन् 1987 में प्रकाशित 'चल खुसरो घर आपने" में संकलित§

18- पाथेय §सन् 1989 में प्रकाशित "मेरा भाई" में संकलित§

19- कस्तूरीमृग §सन् 1990 में प्रकाशित§

20- उपप्रेती §सन् 1991 में प्रकाशित§

21- दो सखियां §सन् 1991 में प्रकाशित "उपप्रेती" में संकलित§

हिन्दी की प्रमुख विधा कहानीः

भारत में कहानी विधा भारत की तरह ही प्राचीन है। कभी यह विधा अलिखित रूप में बड़े-बूढ़ों और बालकों के मध्य मनोरंजक तारतम्य का आधार बनती रही तो कभी जीवन संघर्ष के धरातल पर अनुभव गत शिक्षा की सार्थकता बांटने में समाजोपयोगी सिद्ध होती है। कुछ विद्वान कहानियों का स्रोत वेदों में वर्णित कुछ कथानकों से सिद्ध करते हैं और कुछ विद्वान गौतम बुद्ध के समकालीन साहित्य की कथाओं से कहानियों को सम्पृक्त करते हैं। हितोपदेश, पंचतन्त्र, कथासरित्सागर जैसे कथाग्रन्थ इस तथ्य के संकेतक हैं कि कहानी का लक्ष्य मानव जीवन को समाज सापेक्ष बनाना है तथा पारस्परिक सम्बन्धों में सह अस्तित्व एवं सहभागिता को स्वीकारना है। अनुचित का पश्चाताप और उचित का पुरस्कार किसी भी कहानी की शिक्षाप्रद धारणाएँ हैं।

लोक जीवन से पैदा होने वाली कहानियां लोकोत्तर श्रेष्ठता की परिकल्पना कर देवोपम जीवन की अवधारणा करती हुई भी मिलती हैं। यद्यपि यह सत्य है कि हिन्दी में कहानी लेखन की परम्परा का विकास बंगला के अनूदित साहित्य के प्रभाव और परिप्रेक्ष्य में हुआ जिससे हिन्दी कथाकारों के समक्ष एक कथाभूमि स्पष्ट हुई और मौलिक कहानियों की रचना धर्मिता के लिये हिन्दी के कथाकार उत्प्रेरित हुये। देवकीनन्दन खत्री, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे साहित्यकार कथा शैली को मानवीय मूल्यों से सम्पृक्त करने में अग्रगण्य सिद्ध हुये। बीसवीं शताब्दी में कहानी को जो स्थायित्व चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने दिया है वह आज भी हिन्दी के कथाकारों के लिये लक्ष्य है, वह ऐसा गन्तव्य है जो हर कथाकार के लिये गन्तव्य ही रहेगा।

वस्तुतः हिन्दी कहानियों का प्रारम्भ "सरस्वती" के प्रकाशन से स्वीकार किया जाता है। स्वातन्त्र्योत्तर युग तक आते-आते कहानियां यथार्थमूलक हो गईं। यह यथार्थ का बोध विविध रूपों में व्यक्ति के अवसाद के रूप में, पारिवारिक विघटन के रूप में, सामाजिक मूल्यों की क्रान्ति के रूप में कहानियों के माध्यम से व्यक्त होने लगा। आज का कोई भी कहानीकार जीवन के यथार्थ से अछूता नहीं रहा। कमलेश्वर ने "मांस का

दरिया में" यथार्थ को "नयी कहानी" का मूल स्रोत स्वीकार करते हुये लिखा है- "नयी कहानी आग्रहों की कहानी नहीं है, प्रवृत्तियों की हो सकती है और उसका मूल स्रोत है- जीवन का यथार्थ बोध और इस यथार्थ को लेकर चलने वाला वह विराट् मध्य और निम्न मध्य वर्ग है, जो अपनी जीवन शक्ति से आज के दुर्दान्त संकट को जाने अनजाने झेल रहा है। उसका केन्द्रीय पात्र है {अपने विविध रूपों और परिवेशों में} जीवन को वहन करने वाला व्यक्ति।"[1] तात्पर्य यह है कि आज का हर कहानी लेखक यथार्थ को स्वीकार करके चल रहा है। यथार्थ की यही व्यापक स्वीकृति नयी कहानी की केन्द्रीय प्रवृत्ति है।

यथार्थ की इसी प्रवृत्ति को स्वीकार करते हुये राजेन्द्र यादव ने एक दुनियाः समानान्तर की भूमिका में लिखा है- "आज का नवजवान माथा झुकाये, घुटनों पर कुहनियां टिकाये, हथेलियों में सिर पकड़े, हताश, दिशाहारा, परस्त, बीमार किसी चमत्कारी घटना की प्रतीक्षा में बैठा है और जो कुछ आस-पास हो रहा है, उसे सब झूठ-फरेब, दगाबाजी और धोखा लगता है।"[2] मन्नू भण्डारी ने भी "यही सच है" नामक कहानी संग्रह के फ्लेप पर लिखा है- "मन्नू की कहानियों की दो विशेषतायें उसे अपने समकालीनों से अलग करती है हैं----व्यर्थ के भावोच्छ्वास में नारी के अंचल का दूध और आंखों का पानी दिखाकर उसने पाठकों की दया नहीं वसूली-----वह एकदम यथार्थ के धरातल पर नारी का नारी की दृष्टि से अंकन करती है।"[3]

वस्तुतः आज की कहानियों में यथार्थ की व्यापक स्वीकृति, वर्ग संघर्ष से पीड़ित व्यक्ति मानव का चित्रण, प्रत्येक वर्ग का चित्रण, व्यक्ति की प्रतिष्ठा, छिछली भावुकता का ह्रास मध्य वर्गीय जीवन चेतना, दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित प्रश्नों का विचार

1- "मांस का दरिया" कमलेश्वर, आत्मकथा पृष्ठ 6 {7}

2- "एक दुनियाः समानानान्तरः राजेन्द्र यादव, भूमिका, पृष्ठ 20

3- "यही सच है" मन्नू भण्डारी, कहानी संग्रह के फ्लेप से उद्धृत।

चरमसीमा का अभाव एवं परिवेश का चित्रण, नयी कहानी का शिल्प विधान, सांकेतिकता, बिम्बविधान एवं प्रतीक योजना, वैचित्रयपूर्ण नवीन शिल्प प्रयोग का बाहुल्य है। शिवप्रसाद सिंह ने "कर्मनाशा की हार" में अपनी कहानियों के सम्बन्ध में लिखा है- "मनुष्य और उसकी जिन्दगी के प्रति मुझे मोह है। जो अपने अस्तित्व को उबारने के लिये विविध प्रकार के क्षेत्रों में विरोधी शक्तियों से जूझ रहा है, अंधविश्वास, उपेक्षा, विवशता, प्रताड़ना, अतृप्ति, शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार और क्षुद्र स्वार्थान्धता के नीचे पिसता हुआ भी जो अपने सामाजिक और वैयक्तिक हक के लिये लड़ता है, हंसता है, रोता है। बार-बार गिरकर भी जो अपने लक्ष्य से मुंह नही मोड़ता वह मनुष्य तमाम शारीरिक कमजोरियों और मानसिक दुर्बलताओं के बावजूद महान है, इसी मनुष्यता के कतिपय अंशों का चित्रण इन कहानियों का उद्देश्य रहा है।"[1]

प्रेमचन्द युग का कथाकार सब कुछ स्वयं कह देना चाहता था। आज कहानी स्वयं बोलने लगी है। आज जीवन के संदर्भ बदल गये हैं। इन बदले हुये सन्दर्भों ने कथाकार की अन्तश्चेतना में नवीन मनः स्थितियों की सृष्टि भी की है। इसीलिये नयी कहानियों में शिल्पगत नवीनता कथ्य की नवीनता का अनिवार्य परिणाम बन गई है। इस सन्दर्भ में उपेन्द्रनाथ अश्क ने लिखा भी है- "दृष्टि बदली, मानव और जीवन को देखने के ढंग बदले तो कहानी का शिल्प भी बदला। पहले की सी कथानक प्रधान, झटका देने वाली और मधुर टीस उत्पन्न करने वाली गठी-गठायी कहानियों के बदले जीवन को गहमा गहमी, रंगारंगी, कटु-यथार्थता, जटिलता, संश्लिष्टता का प्रतिबिम्ब लिये हुये, सीदे सादे स्केच की सी; निबन्ध की सी; संस्मरण या यात्रा विवरण की सी; कुछ प्रभावों अथवा स्मृतियों का गुम्फन मात्र, वर्णनात्मक, चित्रात्मक, डायरी के पन्नों अथवा पत्रों का रूप लिये हुये, एक ओर लोक कथा और दूसरी ओर उपन्यास की हदों को छूती हुई तरह-तरह की कहानियां लिखी जाने लगीं।"[2]

1- "कर्मनाशा की हार" शिवप्रसाद सिंह, भूमिका, पृष्ठ 6

2- "हिन्दी कहानियां और फैशन", उपेन्द्रनाथ अश्क, पृष्ठ 113

निष्कर्षतः आज वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, संस्मरण, डायरी, पत्र, नोट्स, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, संवाद आदि भिन्न-भिन्न शैलियों में यथार्थपरक कहानियां लिखी जा रही हैं। इस समय गद्य की अन्य विधाओं की तुलना में कहानी का व्यापक विकास हुआ है। आधुनिक पुरूष कथाकारों में मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मारकण्डेय, शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई, रमेश बक्षी, अमरकान्त, अमृतराय, शानी, निर्मल वर्मा, रामकुमार, ठाकुर प्रसाद सिंह, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीनारायण लाल, शैलेश मटियानी, भगवती सिंह, हर्षनाथ, पानू खोलिया, शमशेर सिंह नरूला, विष्णु प्रभाकर, ओंकार शरद, श्रीकान्त वर्मा, कृष्ण बल्देव वैद, गिरिराज किशोर, रवीन्द्र कालिया, अवधनारायण सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, कैलाश कात्यायन, बलवन्त सिंह, गंगाप्रसाद मिश्र, मृत्युंजय उपाध्याय, गुरूदयाल सिंह, गंगा प्रसाद विमल, परेश आदि के नाम गणमान्य हैं।

स्त्री कहानीकारों में शिवानी, रजनी पनिकर, विजया चौहान, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, सीमा बोरा, सलमा सिद्दीकी, अमृता प्रीतम, शान्ति मेहरोत्रा, मेहरून्निसा परवेज आदि के नाम प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। शिवानी जी ने भी खूब कहानियां लिखी हैं और अपनी कहानियों में आज की नारी के जीवन की कटुता, रिक्तता, खोखलापन, उदासी, घुटन, अलगाव, निरूद्देश्यता ऊब और अजनबीपन की अनुभूति का तीखा उभार प्रस्तुत किया है।
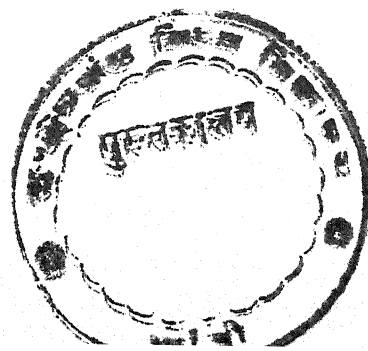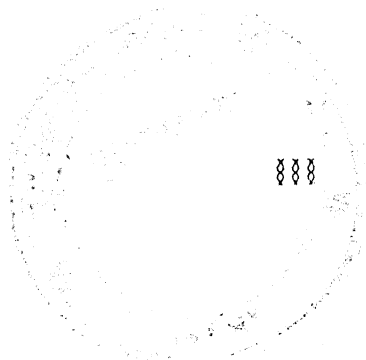
स्वातन्त्र्योत्तर कहानी विधा में शिवानी की कहानियां:

स्वातन्त्र्योत्तर युग बोध एवं यथार्थ से युक्त कहानियों की जो बहुमूल्य थाती शिवानी ने हिन्दी साहित्य जगत् को सौंपी है, अभी तक शायद किसी ने नहीं। शिवानी की एक-एक कहानी स्वयं में संस्मरणों सी स्मरणीय है। उपन्यासों के पाकेट संस्करण के माध्यम से शिवानी की कहानियां पात्रों को पाठकों के सम्मुख साक्षात् खड़ा कर देने का सामर्थ्य लिये हुये होती हैं। अपनी इसी कुशलता के बल पर आज शिवानी हिन्दी साहित्य की श्री बनी हुई है। उनकी कहानियां न ही किसी से मेल खाती है और न ही अन्य लोक की प्रतीत होती हैं। वे इतनी सहज और स्वाभाविक होती हैं कि हर पाठक उनमें कहीं न कहीं अपना सम्बन्ध, अपना दुःख-दर्द खोज ही लेता है और वे कहानियां उसे अपने ही परिवेश में घटी हुई सत्य घटनाओं सी प्रतीत होती हैं।

पाठक और पात्रों के बीच इस प्रकार के तादात्म्य को स्थापित करने में सिद्धहस्त होने के कारण ही शिवानी के पास पाठकों के ढेरों पत्र पहुंचते रहते हैं जिनमें यही प्रश्न बहुलता में पूछे जाते हैं कि क्या अमुक पात्र फलां था------अमुक पात्र फलां था ? इन पत्र संकटों का उल्लेख स्वयं शिवानी के शब्दों में- "मैंने कहानी लिखी, आपने पढ़ी, आपको अच्छी लगी, मेरा काम यहीं समाप्त हो जाता है। पाठकों को हितोपदेशी उपदेश देना मेरा अभिप्राय नहीं था। अब मैं कैफियत दूं, उसके अस्तित्व का पुष्ट प्रमाण दूं, आपके तर्कों का उत्तर दूं, यह धैर्य या क्षमता मुझमें नहीं है। उसकी एक-एक उन्मत्त मुद्रा मुझे आज भी दो के पहाड़े सी कंठस्थ है। और उसे कलम की नोक पर उतारना मेरे लिये उतना ही सहज है जितना गटागट पानी का गिलास गटकना। मै इतिहास नहीं लिखती, कहानी लिखती हूँ। कहानी में कहां यथार्थ है यह बताना मेरा काम नहीं है। कहानी की खूबी यही है कि पाठक अन्त तक कल्पना को भी यथार्थ समझ गटकता रहे।"[1]

वास्तव में जिन घटनाओं या चरित्रों को सामान्य जन अनदेखाकर आगे बढ़ जाते हैं वही सब शिवानी की साहित्यिक सर्जना के केन्द्र बिन्दु बन हितोपदेश की कहानियों के आधुनिक संस्करण के रूप में पाठकों के समक्ष चलचित्र की तरह आते हुये प्रतीत

1- अकथ, शिवानी, निवेदन, पृष्ठ 7, संस्करण 1986

होते हैं।

शिवानी कल्पना और यथार्थ में सदैव सन्देह की स्थिति बनाये रखने को ही कथाकार की सिद्धहस्तता मानती हैं। उनकी दृष्टि में कल्पना भी यथार्थ की तरह लगे और यथार्थ पर काल्पनिक होने का आरोप बना रहे, यही सन्देह पाठकों में कौतूहल को जन्म देता है फिर भी शिवानी यथार्थ की पृष्ठभूमि पर ही कल्पना के ईंट गारों से अपना कथामहल निर्मित करती हैं, ऐसा मेरा विश्वास है। अन्धे को अन्धा कह देना जितना कष्टदायी होता है उतना ही शिवानी से यह पूछना कि क्या इसके पात्र काल्पनिक हैं या वास्तविक ?

इसी कष्ट का अनुभव करते हुये उन्होंने "आकथ" में लिखा है- वर्षो बाद उसी (किसी) स्मृति को मैने कथानक में गूंथ दिया तो मेरे कई पाठक उस कथानक में इतिहास ढूंढ़ मुझसे कैफियत मांगने लगे। यहीं पर मैं विवशता से झुंझला उठती हूँ।

शिवानी का ऐसी परिस्थितियों में झुंझला उठना स्वाभाविक ही है क्योंकि इससे उसकी रचना प्रक्रिया बाधित होती है। मन खिन्न हो बार-बार यही सोचता होगा कि लेखन को तिलांजलि दे, लेखनी से नाता तोड़ लें। यह एक प्रकार की तीखी आलोचना होती है जो किसी भी लेखक को तिलमिला देने के लिये पर्याप्त होती है। कारण, कोई भी व्यक्ति अपना ट्रेड सीक्रेट (व्यवसायिक रहस्य) दूसरे को बताना नहीं चाहता, चाहे वह वणिक पुत्र हो या साहित्यकार।

वे अपने उत्पादों को ही उपभोक्ता की दृष्टि में लाना अपना लक्ष्य मानते हैं न कि "रॉ मैटीरियल" की विस्तृत जानकारी देना क्योंकि रॉ मैटीरियल का खुलासा हो जाने पर उत्पाद का आकर्षण धूमिल पड़ जाता है। यद्यपि यह किसी भी साहित्यकार के लिये गौरव की बात होती है कि उसके पाठक उसके पात्रों के विषय में जानने की जिज्ञासा रखते हैं फिर भी वह ऐसे खुलासा से इसलिये बचता है क्योंकि कभी-कभी ये खुलासा जनहित में नहीं होते।

1- आकथ, शिवानी, कथ्य, पृष्ठ 7

शिवानी की उल्लेखनीय कहानियां जिन्हें साहित्यिक गौरव और पाठकों की प्रभूत प्रशंसा प्राप्त है, इस प्रकार हैं-

प्रकाशित कृति का नाम	संकलित कहानियां
1- मेरी प्रिय कहानियां- (कहानी संग्रह)	1-करिये छिमा, 2-पुष्पहार, 3-के, 4-चीलगाड़ी, 5-सती, 6-ज्येष्ठा, 7-शपथ, 8-अपराधी कौन, 9-तोप, 10-मधुयामिनी
2- अपराधिनी-(कहानी संग्रह)	1-जा रे एकाकी, 2-छिः मम्मी तुम गंदी हो, 3-साधो, ई मुर्दन के गांव, 4-अलख माई, 5-चांद
3- करिये छिमा- (कहानी संग्रह)	1-करिये छिमा, 2-जिलाधीश, 3-दो बहनें, 4-उपहार, 5-केया, 6-चीलगाड़ी
4- कैंजा (लघु उपन्यास)	1-ज्यूडिथ से जयन्ती, 2-भिक्षुणी, 3-मामा जी, 4-अनाथ, 5-भूल, 6-सती, 7-मौसी
5- रतिविलाप (लघु उपन्यास)	1-गजदन्त, 2-मित्र, 3-दादी
6- स्वयंसिद्धा (लघु उपन्यास)	1-अपराजिता, 2-निर्वाण, 3-सौत, 4-तीन कन्या, 5-चन्नी, 6-तोमार जे दोखिन मुख
7- विषकन्या (लघु उपन्यास)	1-ज्येष्ठा, 2-शपथ, 3-घण्टा, 4-के, 5-पुष्पहार
8- माणिक (लघु उपन्यास)	1-तर्पण, 2-जोकर, 3-स्वप्न और सत्य, 4-चार दिन की, 5-कालू, 6-आणि जे बनलता, 7-दानामियां
9- गैण्डा (लघु उपन्यास)	1-भीलनी, 2-चलोगी चन्द्रिका ?
10- कृष्णवेणी (लघु उपन्यास)	1-प्रतीक्षा, 2-लाटी, 3-पिटी हुई गोट, 4-दो स्मृतिचिन्ह, 5-विप्रलब्धा, 6-शायद
11- पूतों वाली (लघु उपन्यास)	1-श्राप, 2-लिखूं, 3-मेरा भाई

12- मेरा भाई §कहानी संग्रह§	1-मेरा भाई, 2-भूली कहां हूँ, 3-ताजमहल, अमरूद या भाभी, 4-कोयलिया मत कर पुकार, 5- ललिता, 6-चन्दन, 7-डा0 खजानचन्द्र, 8-चिरसाथी मोर, 9-केशव कहि न जाये, 10-बंकिम तोमार नाम
13- चिरस्वयंवरा §कहानी संग्रह§	1-चिरस्वयंवरा, 2-मास्टरनी, 3-धुआं, 4-गूंगा, 5-लाल हवेली, 6-शिबो, 7-नथ, 8-गहरी नींद, 9-खुदा हाफिज, 10-ठाकुर का बेटा
14- उपप्रेती §लघु उपन्यास§	माई
15- रथ्या §लघु उपन्यास§	1-अपराधी कौन, 2-प्रतिशोध, 3-भरण सागर पारे
16- एक थी रामरती §संस्मरण एवं व्यक्ति चित्र संग्रह§	1-चांचरी

हिन्दी साहित्य की विधाः

संस्मरण और रेखाचित्रः

हिन्दी गद्य साहित्य की विधा "संस्मरण" की व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग तथा स्मरण शब्द के योग से हुई जिसका अर्थ सम्यक् स्मरण होता है। यह सम्यक् स्मरण किसी स्मरणीय व्यक्ति की स्मरणीय विशिष्टताओं का शाब्दिक चित्रण होता है। व्यक्ति या घटना तभी संस्मरण का रूप लेती है जब उसमें असाधारणता, अलौकिकता या विलक्षणता सामान्य से परे होती है क्योंकि सामान्य जीवन में सामान्य घटनायें इतने सामान्य रूप से ली जाती हैं कि उनके लेखा-जोखा रखने का न तो कोई औचित्य होता है, न कोई आवश्यकता। अतः मस्तिष्क पर वे अपनी छाप नही छोड़ पाती हैं किन्तु जिनमें कुछ विशिष्टता होती है वे मस्तिष्क में अपनी छाप अवश्य छोड़ती हैं। यही विशिष्टता जब किसी शब्दशिल्पी की अनुभूति बनती है तभी वह उन्हें संस्मरणों में या रेखाचित्रों में ढाल देता है।

यद्यपि रेखाचित्र और संस्मरण में काफी कुछ समानता होती है फिर भी यदि दोनों में विभिन्नता न हो तो वे दो विधाओं के रूप में इस तरह फल फूल न रही होतीं।

संस्मरण का सम्बन्ध पूर्णतया अतीत से होता है जबकि रेखाचित्र अतीत एवं वर्तमान के साथ-साथ काल्पनिक भविष्य का भी हो सकता है।

संस्मरण ओर रेखाचित्रों में काफी निकटता भी होती है तभी तो इन दोनों विधाओं की चर्चा एक साथ ही की जाती है। संस्मरण एवं रेखाचित्र को अलग-अलग परिभाषित करते हुये डा0 रामचन्द्र तिवारी ने कहा है- "संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है, स्मर्यमाण के जीवन के वे पहलू, वे संदर्भ, और वे चारित्रिक वैशिष्ट्यजो स्मरणकर्ता को स्मृत रह जाते हैं, उन्हें वह अपने शब्दों में क्रमबद्ध कर अंकित करता है। स्मरण वही रह जाता है जो महत्व, विशिष्ट विचित्र और प्रिय हो। स्मर्यमाण को अंकित करते हुये लेखक स्वयं भी अंकित होता चलता है। संस्मरण में विषय और विषयी दोनों ही रूपायित होते हैं। इसमें स्मरणकर्त्ता पूर्णतः तटस्थ नही रह पाता।"[1]

डा0 रामचन्द्र तिवारी के अनुसार "रेखाचित्र में भी किसी व्यक्ति, वस्तु या सन्दर्भ का अंकन किया जाता है। यह अंकन पूर्णतः तटस्थ भाव से निर्लिप्त रह कर किया जाता है। रेखाचित्र में रेखायें बोलती है। रेखाचित्रकार रेखांकन करते समय अपने को तटस्थ रखने की चेष्टा करता है। वस्तु को ही महत्व देता है। विषय को ही रूपायित करता है। जब कभी उसकी तटस्थता भंग होती है तो रंगों की चटक में रेखायें डूब जाती हैं।"[2]

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में गद्य की विधा को रेखाचित्र को समृद्ध एवं सशक्त बनाने में महिमामयी महादेवी वर्मा के संस्मरण एवं रेखाचित्र बेजोड़ हैं। उनके "अतीत के चल-चित्र", "स्मृति की रेखायें", "श्रृंखला की कड़ियां", "पथ के साथी"

1- हिन्दी का गद्य साहित्य, डा0 रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 197

2- हिन्दी का गद्य साहित्य, डा0 रामचन्द्र तिवारी, पृ0 197-198

और "स्मारिका" रेखाचित्रों के अनुपम मानदण्ड हैं। इनमें उन्होंने सामाजिक वैषम्य, पददलित वर्ग की दीनहीनता से कहीं अधिक अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों का चित्रांकन किया है। "अतीत के चल-चित्र" में उन्होंने अपने स्मृति चित्रों के सम्बन्ध में लिखा भी है- "इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था। अन्धेरे की वस्तुओं को हम अपने प्रकाश की धुंधली या उजली परिधि में लाकर ही देख पाते हैं, उसके बाहर तो वे अनन्त अंधकार के अंश हैं। परन्तु मेरी निकटता जनित आत्म विज्ञापन उस राख से अधिक महत्व नहीं रखता, जो आग को बहुत समय तक सजीव रखने के लिये अंगारों को घेरे रखती है।"[1]

वस्तुतः किसी साधारण व्यक्ति को उसके व्यक्तित्व को स्मर्यमाण बना पाना एवं निर्जीव पदार्थो को रेखांकित कर पाना इतना सहज नहीं है। यह अन्तःकरण की भावप्रवणता, आर्द्रता और गहन शब्द साधना से ही संभव हो सकता है। महादेवी वर्मा के परिप्रेक्ष्य में यह कहना असंगत न होगा कि संस्मरणकार संस्मरण के लेखन में संस्मरणीय चरित्र पर मुग्ध होकर ऐसा तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि संस्मरणीय के चित्रण के साथ-साथ वह अपना भी चित्रण अनजाने में करता चलता है।

उक्त विधा को गौरवान्वित करने में श्री बनारसीदास चतुर्वेदी का भी अन्यतम स्थान है। उन्होंने संस्मरण रेखाचित्र और आत्मचरित में घनिष्टता स्थापित करते हुये लिखा है- "संस्मरण, रेखाचित्र और आत्मचरित इन तीनों का एक दूसरे से इतना घनिष्ट सम्बन्ध है कि एक की सीमा दूसरे से कहां मिलती है और कहां अलग हो जाती है इसका निर्णय करना कठिन है।"[2] चतुर्वेदी जी के "हमारे आराध्य और संस्मरण, 1952 ई0, तथा "रेखाचित्र" 1952 ई0 और "सेतुबन्ध" आदि संग्रह अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

यद्यपि हिन्दी में पं0 पद्मपराग शर्मा के "पद्मपराग" से सफल संस्मरणों की परम्परा का प्रारम्भ स्वीकार किया जाता है किन्तु अधिक कलात्मक और सजीव संस्मरण

1- अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, अपनी बात, पृष्ठ 2

2- संस्मरण, पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ0 8, संस्करण, 1958 ई0

द्विवेदी युग के बाद ही लिखे गये हैं। इस दिशा में रामवृक्ष बेनीपुरी अपने अद्भुत शब्द शिल्प के लिये सिद्धहस्त हैं। उनकी "लाल-तारा", "माटी की मूर्ति", "गेहूँ और गुलाब" तथा "मील के पत्थर" आदि विशिष्ट रचनायें हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ साहित्यकारों, कवियों और आलोचकों ने भी इस विधा में प्रशंसनीय कार्य किया है। प्रकाशचन्द्र गुप्त कृत "मिट्टी के पुतले" तथा "पुरानी स्मृतियां" और नये स्केच, शिवपूजन सहाय कृत "वे दिन वे लोग" 1964 ई0, माखनलाल चतुर्वेदी कृत "समय के पांव" 1962 ई0, सेठ गोविन्द दास कृत "स्मृतिकण" 1959 ई0, विष्णु प्रभाकर कृत "जाने-अनजाने" 1962 ई0, विनय मोहन शर्मा कृत "रेखा और रंग" 1964 ई0, डा0 नगेन्द्र कृत "चेतना के बिम्ब" 1967 ई0, जगदीश चन्द्र माथुर कृत "दस तस्वीरें" कन्हैया लाल मिश्र "प्रभाकर" कृत "भूले हुये चेहरे", "जिन्दगी मुसकाई", माटी हो गई सोना" और "दीप जले शंख बजे", राधिकारमण प्रसाद सिंह कृत "टूटा तारा" उपेन्द्र नाथ अश्क कृत "रेखायें और चित्र", "मंटो मेरा दुश्मन", तथा ज्यादा अपनी कम परायी", दिनकर जी कृत "लोकदेव नेहरू" तथा संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ आदि इसकी समृद्ध व विशिष्ट कृतियां हैं। सत्यवती मलिक की "अमिट रेखायें" तथा शान्ति प्रिय द्विवेदी की "स्मृतियां और कृतियां", राहुल सांकृत्यायन कृत "बचपन की स्मृतियां" जिनका मैं कृतज्ञ" तथा "मेरे असहयोग के साथी के अतिरिक्त हरिवंश राय बच्चन, सत्यजीवन वर्मा, सम्पूर्णानन्द, ओंकार शरद, कैलाशनाथ काटजू, प्रेमनारायण टण्डन, विनोद शंकर व्यास, हरिभाऊ उपाध्याय, रामवृक्ष दास, महेन्द्र भटनागर, डा0 हरगुलाल, पद्मिनी मेनन, लक्ष्मीनारायण लाल, सुधांशु, कुन्तल गोयल आदि की कृतियां इस विधा की अपूर्व उपलब्धियां हैं।

संस्मरण और रेखाचित्र का यह अभूतपूर्व विकास स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी गद्य साहित्य की विशेषता है। आधुनिक युग की इस विधा पर शिवानी ने भी खूब लिखा है और निरन्तर लिख रही हैं।

शिवानी के संस्मरण और रेखाचित्रः

यदि विहंगम दृष्टि से शिवानी के साहित्य का अध्ययन किया जाये तो उनका समग्र साहित्य ही कहीं संस्मरण तो कहीं रेखाचित्र नजर आता है। प्रस्तुत काल में शिवानी,

संस्मरणों की धनी महादेवी वर्मा जो अब स्वयं संस्मरण बन चुकी है, की रिक्तता की पूर्ति इतनी बखूबी कर रही हैं कि आधुनिक संस्मरणलेखिकाओं में सर्वाग्रगण्यमान हैं।

आमादेर शान्ति निकेतनः

वस्तुतः शिवानी के संस्मरण उनकी गुलदस्तई भाषा में इतने प्राणवान हो उठते हैं कि स्मर्यमाण प्राणी शिवानी की बजाय स्वयं अपना परिचय देने लगते हैं। घटनायें साकार हो उठती हैं, अमूर्त मूर्तमान हो उठता है। जहां यह संस्मरणों का उत्कर्ष है वहीं शिवानी का शिल्प वैशिष्ट्य। उदाहरणार्थ शिवानी की संस्मरणात्मक पुस्तक "आमादेर शान्ति निकेतन" की भूमिका में स्वयं बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है- "जैसे कोई कुशल कलाकार अपनी तूलिका के कम से कम प्रयोग द्वारा अनेक सजीव चित्र उपस्थित कर देता है, वैसे ही इस छोटी सी पुस्तक की यशस्वी लेखिका ने, गुरूदेव तथा उनके आश्रम की बीसियों मनोहर झांकियां, पाठकों को दिखला दी हैं।"[1]

शिवानी, उनकी बड़ी बहन जयन्ती और बड़े भाई त्रिभुवन पर गुरूदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर का अनन्य अनुराग था। शिवानी की वर्तमान साहित्यिक उपलब्धि शान्ति निकेतन की ही देन है। जयन्ती से स्वयं गुरूदेव ने कहा था- "शान्ति निकेतन का कोई भी छात्र या छात्रा कहीं जायेगा तो एक छोटे से शान्ति निकेतन का निर्माण करने की इच्छा उसके मन में सदैव जाग्रत रहेगा।"[2] गुरूदेव की यह अमरवाणी आज शिवानी की लेखनी से मुखरित हो रही है। शिवानी ही नहीं शान्ति निकेतन के अधिकांश प्राक्तन छात्र-छात्राओं ने गुरूदेव की इस वाणी को अमरत्व प्रदान किया। सत्यजित राय, सुचित्रा मित्रा , मृणालिनी स्वामीनाथन आदि छात्र-छात्राओं ने गुरूदेव की इस देववाणी को अपने जीवन में ही उतार लिया था।

देश की तेजपुंज प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी भी शान्ति निकेतन की छात्रा थीं, वह अपने आश्रम के सहपाठियों के प्रति कितनी स्नेह प्रवण थीं इसका सजीव चित्रण

1- आमादेर शान्ति निकेतन, शिवानी, भूमिका, पृ09, संस्करण 1986

2- वही " " 8 "

भी शिवानी ने अपने इस आमादेर निकेतन में बड़े ही मनमोहक ढंग से प्रस्तुत किया है- "छोटा सा स्कूल भी सहसाउस महिमामयी अतिथि (इन्दिरा गांधी) की आगमनी से महिमामय हो उठा, अमला दी मेरी भी अभिन्न मित्र थीं, किन्तु अपनी अकर्मण्यता के बीच थोड़ा-सा समय निकाल मैं लखनऊ से बनारस नही पहुंच पाई। वहीं देश की प्रधानमंत्री देश-विदेश में निरन्तर चक्र सी घूमती रहने पर भी, अक्लांत औदार्य से अपनी वर्षों पूर्व की मैत्री को सफलता से निभा गईं।"[1]

विदेशी छात्रायें शान्ति निकेतन से अपने घर वापस नहीं जाना चाहतीं। सुदूर दक्षिण की एक छात्रा ने तो आश्रम की एक पत्रिका में भी लिख दिया था- "शान्ति निकेतन से घर लौटना ऐसा लगता है जैसे हम घर से बिछुड़ रहे हों।" (Going home from Shanti Niketan is like going from home)[2] चीना - भवन के प्रोफेसर तान का नन्हा पुत्र "तान ली" गुरूदेव को ही अपनी मां मानता है- "गुरूदेव आमादेर मां"।[3] ऐसी थी गुरूदेव की विभूति।

इसके अतिरिक्त पं0 हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे अनेक विद्वानों का सान्निध्य भी शिवानी को आश्रम में मिला, जिनका सूक्ष्म चित्रण भी शिवानी ने अपनी इस पुस्तक में यथास्थान किया है।

वातायन में संकलित संस्मरणः

"वातायन" शिवानी का एक ऐसा विवादग्रस्त संग्रह है जिसे कुछ लोग निबन्ध संग्रह की संज्ञा देते हैं तो कुछ लोग इसे संस्मरण एवं रेखाचित्र मानते हैं। इस विवाद पर अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करते हुये "वातायन" की भूमिका में स्वतंत्र भारत के संपादक अशोक जी कहते हैं- "इनको निबन्ध की संज्ञा देने से इनका ठीक परिचय नहीं मिलता। यह झांकियां हैं, केवल बाहरी नहीं अन्तर की भी।"[4] वातायन की जन्मपत्री सी

1- आमादेर शान्ति निकेतन, शिवनी पृष्ठ 112, संकरण 1986
2- वही " " " 63 " "
3- वही " " " 84 " "
4- वातायन, शिवानी, भूमिका, संस्करण, 1987

पढ़ते हुये वे पुनः लिखते हैं- लखनऊ के दैनिक स्वतंत्र भारत में प्रति सप्ताह "वातायन" को पढ़ने के लिये लोग कितने लालायित रहते हैं, इनको पढ़ने के बाद कितने फोन और पत्र आते हैं, लेखिका और सम्पादक दोनों के पास, यह इनकी ﴾शिवानी की﴿ लोकप्रियता का प्रमाण है। शिवानी की प्रतिभा का यह एक नया आयाम है।"[1]

शिवानी जी के इस "वातायन" से केवल मलयसुगन्धित पवन के शीतल झोंके ही आकर मन को-आच्छादित नहीं करते बल्कि इस "वातायन" से आज के समाज के वे सूक्ष्म दृश्य भी दिखते हैं जो हमें, हमारी नैतिकता को प्रश्नचिन्ह की शूली पर प्रभु यीशु की तरह टांग देते हैं। एक तरफ कीमती कारों पर कीमती होटलों में कीमती डिनर ले रहे लोग तो दूसरी तरफ फुटपाथ पर एक-एक पैसे की याचना करते भिक्षुक, तो कहीं लालफीताशाही का शिकार होने वाली मृत पति की पेंशन के लिये दफ्तरों की धूल चाटने वाली महिला आदि अनेक अनुभव जो सामयिक और मार्मिक दोनों ही हैं, ऐसे दृश्यों की झलक उनके वातायन को पढ़कर देखने को मिल जाती है।

चिरस्वयंवरा में संकलित संस्मरण:

"चिरस्वयंवरा" शिवानी की कहानियों और सत्य कथात्मक संस्मरणों का संग्रह है। इसमें संग्रहीत संस्मरण हैं- बिन्नू, तुई जे पुरूष मानुष रे, कीर्ति स्तम्भ[2], आपबीती, एक अनाघ्रात पुष्प।

एक थी रामरती में संकलित संस्मरण:

"एक थी रामरती" में भी शिवानी के व्यक्ति चित्र एवं संस्मरण संग्रहीत हैं। "एक थी रामरती" स्वयं में ही एक संस्मरणीय हस्ती हैं। साथ में अन्य संस्मरण हैं- "जो मिले सुर" गंगाबाबू कौन, परमतृप्ति, का सखि साजन, अब न आखिर ﴾15 अप्रैल 1990, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पृष्ठ 24-25 में अब न आखितर आवत कोऊ शीर्षक से प्रकाशित﴿ इसके अतिरिक्त इस संग्रह में स्मृति चिन्तन में भी कुछ स्मृतियां

1- वातायन, शिवानी, भूमिका, संस्करण 1987

2- कीर्तिस्तम्भ 1973 में "स्मारिका" में भी प्रकाशित

संस्मरणात्मक टोन {अंदाज} में लिखित हैं- रजवाड़े और ब्याह, बुढ़ापे की पेंशन, सुपर वुमेन, आत्मिक शक्ति, फोन का दण्ड, यहूदी की लड़की, पालागान, कुंभ मेला और तिवाड़ी, उज्ज्वल वर्ष, समय की गति, रवीन्द्रनाथ सर्वभारतीय, सच्चा गुरू।

जालक में संकलित संस्मरणः

"जालक" भी शिवानी का संस्मरण से अधिक स्मृति चित्रण है जो उनकी खट्टी मीठी स्मृतियों का सघन जालक है। दूसरे शब्दों में यह एक ऐसा सशक्त मकड़जाल है जिसके तन्तुओं में विभिन्न स्थानों में घटित क्रमबद्ध अट्ठाईस घटनायें चित्रित हो उठी हैं।

दरीचा में संकलित संस्मरणः

"दरीचा" भी उनका संस्मरणात्मक संग्रह है जिसमें संख्यामूलक बाईस संस्मरण संग्रहीत हैं। इसमें लेखिका ने विभिन्न चरित्रों के सजीव चित्रण के साथ-साथ बौद्धिक विचारों को भी बड़े ही सरल तथा मनोरंजक शैली में प्रस्तुत किया है। शिवानी के चार संस्मरण "शुचि स्मिता" साप्ताहिक हिन्दुस्तान 29 सितम्बर 1991, "यात्री आमी ओरे" साप्ताहिक हिन्दुस्तान 6 अक्टूबर 1991, "अरूंधती" 13 अक्टूबर 1991 एवं "सुशीला" साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 20 अक्टूबर 1991 में भी क्रमशः प्रकाशित हुये हैं।

यात्रिक में भी शिवानी के यात्रा-वृतान्त के अतिरिक्त सोलह संस्मरण संकलित हैं।

हिन्दी साहित्य की विधा- यात्रा साहित्यः

हिन्दी गद्य साहित्य में "यात्रा-वृत्तान्त" लिखने की परम्परा का सूत्रपात भी भारतेन्दु जी द्वारा ही हुआ। इसके पहले भारतीय साहित्य में यात्रा- वृत्तान्तों को लिपिबद्ध करने की परम्परा दृष्टिगत नहीं हुई। भारतेन्दु जी ने "सरयूपार की यात्रा", "मेहदावल की यात्रा", लखनऊ की यात्रा" आदि शीर्षकों से अपने यात्रा-वृतान्तों का बड़ा ही रोचक और सजीव वर्णन किया है। उस समय यह विधा गद्य की स्वतन्त्र विधा के रूप में मान्य नही थी अतः उस समय इस विधा को आलोचकों ने निबन्ध विधा के अन्तर्गत ही समाविष्ट कर लिया था।

यात्रा वृतान्त भी कथात्मक दस्तावेज की तरह अपने आप में पूर्ण होते हैं। यात्रा साहित्य में यायावर अपने कुशल चित्रण और गहरे भाव बोध के साथ अपनी कथा यात्रा को इस तरह प्राणवान और मर्म को स्पर्श कर लेने वाली अनुभूतियों से समाविष्ट कर ऐसा जीवंत चित्रांकन प्रस्तुत करता है कि पाठक की जिज्ञासा- वृत्ति स्वयमेव तुष्ट हो जाती है और वह अभिभूत हो उठता है। यात्राकार अपने यात्रा काल में जो कुछ भी देखता, सुनता और महसूस करता है, उन्हीं सब विशिष्टताओं को समग्र रूप से यात्रा- वृत्तान्त में समेट लेता है। यात्रा वृत्तान्तों के सम्बन्ध में डा0 रामचन्द्र तिवारी के विचार बड़े ही सूक्ष्म हैं- "यात्रा वृतान्तों में देश-विदेश के प्राकृतिक दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तुचित्र यायावर लेखक के मानस में स्थापित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं।"[1]

यात्रा- वृत्तान्त सामान्य वर्णन शैली के अतिरिक्त, डायरी, पत्र और रिपोर्ताज शैली में भी लिखे जाते हैं अतः इनमें निबन्ध, कथा, संस्मरण आदि कई गद्य रूपों का आनन्द एक साथ मिलता है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् इस विधा की अखण्ड परम्परा परिलक्षित हुई और उत्तरोत्तर इसका विकास होता गया।

राहुल सांकृत्यायन कृत "किन्नर देश में 1948 में एवं "रूस में 25 मास, 1952 ई0, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी कृत "पैरों में पंख बांधकर" 1952 ई0 और "उड़ते चलो उड़ते चलो" 1954 ई0, यशपाल कृत "लोहे की दीवार के दोनों ओर" 1953 ई0, अज्ञेयकृत "अरे यायावर रहेगा याद" 1953 ई0 और "एक बूंद सहसा उछली" 1960 ई0, डा0 भगवतशरण उपाध्याय कृत "कलकत्ता से पेकिंग" 1955 ई0 एवं "सागर की लहरों पर" 1951 ई0, रामधारी सिंह "दिनकर" कृत "देश-विदेश" 1957 ई0, प्रभाकर माचवे कृत "गोरी नजरों में हम" 1964 ई0, मोहन राकेश कृत "आखिरी

1- हिन्दी का गद्य साहित्य, डा0 रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 197

चट्टान तक" 1953 ई0, ब्रजकिशोर नारायण कृत "नन्दन से लन्दन" 1957 ई0 प्रभाकर द्विवेदी कृत "पार उतर कहं जइहौ" 1958 ई0, डा0 रघुवंश कृत "हरी घाटी" 1963 ई0 तथा धर्मवीर भारती कृत "यादें यूरप की" आदि रचनायें अधिक प्रशंसनीय व बहुचर्चित हैं जिन्होने हिन्दी "यात्रा-साहित्य" को परिमार्जित एवं परिष्कृत किया है।

शिवानी ने भी यात्रा-साहित्य को अपनी दो महत्त्वपूर्ण कृतियां प्रदान की हैं। §1§यात्रिक §2§ चरैवेति।

शिवानी के यात्रा- वृत्तान्तः

भारतेन्दु जी ने उत्तर भारत के नगरों की यात्रा के पश्चात् अपने यात्रा साहित्य को प्रेरणास्पद बनाया था तो शिवानी ने विदेशों की यात्राओं के पश्चात् यात्रा-वृत्तान्त के माध्यम से अपने अनुभवों को साहित्य जगत के लिये समर्पित कर दिया है। "यात्रिक" शिवानी का इंग्लैंड-यात्रा का आंखों देखा वृत्त-चित्र है जिसमें वे अपने पाठकों को बिन न्योते ही अपने पुत्र की वरयात्रा §बारात§ करवा देती हैं। यह उनकी अप्रतिम वर्णन शैली की सजीवता ही मानी जायेगी। इसके अतिरिक्त स्वभाववश शिवानी ने इसमें कुछ इंग्लैंड यात्रा से इतर संस्मरण भी समाहित किये हैं।

"चरैवेति" भी शिवानी की यात्रा- वृत्तान्तपरक उत्कृष्ट कृति है। इसमें शिवानी ने अपनी भारत से मास्को तक की यात्रा का वर्णन किया है। इसे वे अपनी सबसे प्रिय रचना मानती हैं। किन्तु अभी तक आलोचकों एवं समीक्षकों की दृष्टि शायद इस पर नहीं पड़ी। दुर्गाप्रसाद नौटियाल के प्रश्न- "आप अपनी सर्वोत्तम कृति या रचना किसे मानती हैं ? क्या लेखक और पाठक की इस सम्बन्ध में अलग-अलग अवधारणायें हो सकती हैं ? आपकी क्या राय है ?" इसके उत्तर में शिवानी ने कहा है- "वैसे पाठकों ने अभी तक

1- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 9 सितम्बर, 199·, पृ0 33 पर प्रकाशित स्वनामधन्या कथाशिल्पी, शिवानी से दुर्गाप्रसाद नौटियाल की हिन्दी दिवस §14 सितम्बर§ पर विशेष बातचीत।

जिस कृति को सर्वाधिक सराहा है, वह है- कृष्णकली फिर भी यदि आप प्रिय रचना कहकर मुझसे जानना चाहते हैं तो मै यात्रा वृत्तान्त चरैवेति का नाम लूँगी। इसमें भारत से मास्को तक की यात्रा का विवरण है। मेरी प्रिय रचना यही चरैवेति है क्योंकि मैने इसे अत्यधिक परिश्रम और ईमानदारी से लिखा है। हालांकि आलोचकों ने इस कृति को न जाने क्या सोचकर उल्लेख योग्य नही समझा और न ही समीक्षकों ने कहीं इसका उल्लेख करना आवश्यक समझा है।"[1]

वस्तुतः शिवानी को इस बात का क्षोभ नहीं है कि उनकी यह सद्यः प्रकाशित रचना बहुचर्चित नहीं हो सकी बल्कि क्षोभ इसलिए है कि यह रचना न तो कल्पनाप्रसूत औपन्यासिक घटना है और न ही मात्र यात्रा वृत्तान्त इस रचना में शिवानी ने भारतीय संस्कृति, भारतीय दर्शन और उच्च नैतिक मूल्यों की गरिमा स्थापित करने के साथ ही रूस की अनुशासनबद्ध जीवन संस्कृति से वर्तमान दिन-प्रति-दिन पतनोन्मुखी भारतीय जीवन शैली से तुलना करने की चेष्टा की तो उन्हें रूस की समृद्धि और भारत की निर्धनता का राज समझते देर न लगी। "चरैवेति" के माध्यम से शिवानी ने इस बात पर जोर देना चाहा है कि यदि हम अपनी गौरवमयी संस्कृति के साथ अपने मित्र देश रूस से अनुशासनबद्धता की सीख आत्मसात कर सकें तो हमारा भारत अतीत के गौरव के कीर्तिमान को भी लांघ सकता है।

शिवानी के कथन की सत्यता इस बात से आंकी जा सकती है कि आज खण्डित हो जाने के बाद भी 1992 के ओलम्पिक खेल में रूस का वर्चस्व है जबकि भारत का नाम पदक-तालिका से गायब है। शिवानी के क्षोभ का एक कारण और भी है कि भारतीय मनीषियों के कारण ही शिवानी को वहां अपेक्षा से अधिक सम्मान मिला, जबकि उन्हीं मनीषियों को भारत में जयन्तियों तक सीमित कर राजनेताओं ने उनके सम्मान पर स्वयं कब्जा कर लिया है।

मास्को (रूस) में जहां शिवानी को अनुशासन के प्रति लोगों की जागरूकता एवं निष्ठा देखने को मिली, वहीं भारत में लगभग प्रत्येक स्थान पर अधिकांशतः या अंशतः भ्रष्टाचार की भावना अवश्य देखने को मिली है। यहां के राजनेता शिखर पुरूष होते हैं। उनके समक्ष न तो विद्वानों की विद्वता महत्वपूर्ण है और न ही कलाकारों,

खिलाड़ियों, शिल्पियों आदि का कोई अस्तित्व है। यही कारण है कि आज भारत में नेताबनने की जो होड़ जारी है, वह एक न एक दिन भारत को इस दौड़ में चारों खाने चित्त कर सकती है। अभी भी समय है कि हम शिवानी की भावनाओं का आदर करें, तद्नुसार आचरण कर नवीन किन्तु समृद्ध भारत की कल्पना को एक बार पुनः हम स्वयं साकार कर सकते हैं।

इसके लिए आवश्यक है कि हम विदेश भ्रमण मात्र मनोरंजनार्थ न करें। प्रत्युत हमें वहां से प्राप्त होने वाले अनुभवों से अपनी दिशाहीनता और कमियों का आकलन कर भारतीय संस्कृति, विश्व मानवता, पारस्परिक सद्भाव की भावनाओं को लेकर सदैव समृद्ध पथ पर अनुशासित नागरिक की भांति चलने का सतत् प्रयास करना चाहिए।

रूस यात्रा-वृतान्त के अतिरिक्त "चरैवेति" में कुछ प्रसिद्ध महिलाओं एवं पुरूषों के जीवन्त रेखा-चित्र भी हैं। इन अंतरंग रेखाचित्रों के अतिरिक्त भी इस संकलन में कई रोचक, प्रेरक और ज्ञानवर्धक रचनाएं भी प्रस्तुत की हैं शिवानी जी ने ।

"जब स्त्री जागती है" में शिवानी जी ने नारी जागरण का जो शंखनाद किया है वह सचमुच नारी जाति के लिए एक प्रेरणा भरा पैगाम है।

निबन्ध विधा

लेख के धरातल पर जन्म लेने वाला निबन्ध अपनी विषय निबद्धता में सामान्य लेखों को पीछे छोड़ता हुआ बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रताप नारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी, श्रीनिवास दास, मोहनलाल कृष्ण लाल पण्ड्या, काशीनाथ खत्री, राधाचरण गोस्वामी, चन्द्रभूषण चातुर्वेद की लेखनी से पुष्ट होते हुए आचार्य महाबीरप्रसाद दिवेदी से दांवपेंच सीखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सान्निध्य में पौढ़ता को प्राप्त हो गया है।

डा0 लक्ष्मीशंकर वार्ष्णेय के निष्कर्ष के अनुसार भारत में हिन्दी के प्रथम निबन्धकार पं0 बालकृष्ण भट्ट को मानना चाहिए।[1] भारतेन्दु युगीन निबन्ध के लेखक श्री शिवनाथ ने श्री सदासुखलाल के "सुरासुर निर्णय" को हिन्दी का प्रथम निबन्ध स्वीकारा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने निबन्धों की परम्परा का सूत्रपात्र भारतेन्दु युग से स्वीकार किया है।

वास्तव में श्री सदासुखलाल हिन्दी के प्रारम्भिक लेखकों में थे और बालकृष्ण भट्ट, भारतेन्दु युग के एक स्तम्भ थे अतः निबन्ध का विकास निबन्ध रूप में भारतेन्दु युग से ही स्वीकार किया जा सकता है।

निबन्ध शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की गई है - 1. नि+बन्धन+ल्युट् - निबध्यते अस्मिन् इति अधिकरणे निबन्धनम् अर्थात् जिसमें विचार बांधा या गूंथा गया हो, 2. नि+बन्ध+घञ् - निश्चितार्थेन विषयम् अधिकृत्य बंधनम् अर्थात् निश्चित रूप से किसी विषम विचारों की श्रृंखला बांधना, रोकना, संग्रह करना आदि। निबन्ध अंग्रेजी शब्द "एसे" Essay का हिन्दी रूपान्तर है। "ऐसे " शब्द फ्रेंच भाषा के "एसाई" व लैटिन के "एक्जीअम" से ग्रहीत है, जिसका तातत्पर्य होता है, मापना, तौलना नपी तुली वाणी यद्यपि साहित्य की किसी भी विधा को एक सीमित परिभाषा में नहीं बांधा जा सकता, निबन्ध के लिए तो यह और भी कठिन है फिर भी कुछ प्रसिद्ध निबन्धकारों ने निबन्ध को परिभाषित किया है।

1- आधुनिक हिन्दी साहित्य, डा0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, पृष्ठ 149.

निबन्ध साहित्य के जनक प्रसिद्ध फ्रेंच साहित्य कार मानटेन ने निबन्ध में आत्माभिव्यक्ति को ही सर्वाधिक महत्व किया है- "I am myself the subject of my look."[1] (Montaigne)..

अंग्रेजी साहित्य के प्रथम निबन्धकार लार्ड बेकन ने निबन्ध को बिखराव युक्त चिन्तन §डिस्पर्ड मेडिटेशन§ कहा है। डा0 जानसन ने निबन्ध को मस्तिष्क की ढीली ढाली उद्भावना और अव्यवस्थित तथा अपरिपक्व रचना के रूप में स्वीकारा है। अलेक्जेण्डर स्मिथ ने निबन्ध को गीतिकाव्य के निकट माना है और उसे रचयिता की मनः स्थिति पर आधृत कहा जाता है। आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी मे निबन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया गया है।- - "किशी विशिष्टि विषय या उसकी शाखा के सम्बन्ध में एक मध्यम आकार की गद्य रचना को निबन्ध कहते हैं। जो अपने मूल रूप से अपूर्ण सी होती थी किन्तु जो अब कथ्य में सीमित परन्तु शैली में समृद्ध होती है।" डब्लू0 एच0 हडसन के अनुसार वास्तविक निबन्ध प्रकृतितः वैयक्तिक होता है। प्रबन्ध वस्तु परक हो सकता है, किन्तु निबन्ध व्यक्ति प्रधान होता है।

बाबू गुलाबराय के अनुसार "निबन्ध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार केभीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन स्वच्छन्दता सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।"[1] डा0 कौतिमरे के अनुसार-"निबन्ध वह साहित्यिक और ललित गद्य रचना है जिसमें लेखक किसी विचार या विषय से प्रभावित होकर अपनी भाषा में, अपनी भावों या विचारों की क्रिया तथा प्रतिक्रिया को ऐसे सजीव ढंग से व्यक्त करता हुआ पाठक की मनोवृत्तियों को सचेत करता है कि वह कुछ काल के लिये प्रभावित होंता रहे या विचार करता रहे।"[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अनुसार- "यदि पद्य कवियों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।"[3] निष्कर्षतः निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों को सरल सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।"

1- काव्य का रूप, बाबु गुलाबराय, पृ022।
2- डा0 कोतिमरे-हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपों का उद्भव और विकास, पृ0253
3- हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल, पृ0464

वस्तुतः निबन्ध में व्यक्तित्व एवं कला का घनिष्ठ योग रहता है। निबन्ध के माध्यम से रचनाकार के अन्तर्मन की गहराई का आकलन किया जा सकता है। समसामयिक समस्याओं एवं विचारों से जितना गहन सम्बन्ध निबन्ध का होता है, साहित्य की अन्य विधाओं से उतना नहीं। अतः निबन्ध के माध्यम से न केवल लेखक के व्यक्तित्व की परख सम्भव है, बल्कि उसके समय के समाज की धड़कन का भी सम्यक् आकलन हो जाता है।

स्वातन्त्र्योत्तर युग के प्रमुख निबन्धकारों में आचार्यहजारीप्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, डा0 धर्मवीर भारती, वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री वियोगी हरि, सद्गुरू शरण अवस्थी, श्री इलाचन्द्र जोशी, रामधारी सिंह दिनकर, डा0 विद्यानिवास मिश्र, प्रभाकर माचवे, शांतिप्रिय द्विवेदी, जैनेन्द्र कुमार, डा0 सत्येन्द्र, अज्ञेय आदि नाम गणनीय हैं।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों की आधार भूमि भारतीय संस्कृति है। अशोक के फूल 1948, कल्पलता 1951, विचार और वितर्क 1957, विचार प्रवाह 1959, कुटज 1964 तथा साहित्य सहचर 1965 द्विवेदी जी के प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह हैं।

महादेवी वर्मा अलंकृत भावमय, विचारपूर्ण एवं प्राञ्जल गद्य रचना में अद्वितीय रहीं क्षणदा 1957, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध 1964 ई0 इनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह हैं। महादेवी वर्मा जी ने अपने निबन्धों के माध्यम से हिन्दी गद्य को एक अभिनव गरिमा से मण्डित किया है।

डा0 धर्मवीर भारती ने ठेले पर हिमालय शीर्षक संग्रह में गद्य की प्रायः सभी अधुनातन विधाओं का प्रयोग किया है। मानव मूल्य और साहित्य 1960 ई0 भारती जी का नवचिन्तन सम्बन्धी गम्भीर निबन्धों का संग्रह है।

§§§

डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल इतिहास एवं संस्कृति के अन्वेषक, अध्येता विचारक एवं व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके "पृथ्वी पुत्र" 1949 ई0 'मातृभूमि' 'कला और संस्कृति' 1958 ई0 'वेद - विद्या' 1959 ई0 "वाग्धारा" 1960 ई0 आदि प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह है। श्री वियोगी हरि के निबन्ध भाव प्रधान हैं। 'यों भी तो देखिये' 1958 ई0 वियोगी हरि जी का प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह है।

सद्गुरू शरण अवस्थी मुख्यतः विचारात्मक निबन्ध लेखक थे। "बुद्धितरंग और साहित्यतरंग 1956 ई0 इनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह है।

श्री इलाचन्द्र जोशी के निबन्ध गम्भीर चिन्तन विवेचन और विश्लेषण के लिये प्रसिद्ध हैं। इनके "विश्लेषण "1953 ई0, 'साहित्य चिन्तन' 1954 ई0 तथा 'देखा-परखा' 1957 ई0 प्रमुख निबन्ध संग्रह हैं।

श्री रामधारी सिंह दिनकर जी के विचारात्मक एंव व्यवहारिक समीक्षा से सम्बद्ध निबन्धो में भी एक प्रकार का लालित्य है। 'अर्धनारीश्वर' 1952 ई0 'रेती के फूल' 1954 ई0, 'वेणुवन' 1958 ई0 'उजली आग' 1959 ई0 और वटपीपल 1961 आदि इनके प्रसिद्ध निबन्ध संग्रह हैं।

पं0 शान्तिप्रिय द्विवेदी मृदुता गति एंव चेतना से युक्त प्रकृति सौन्दर्य के साहित्यकार है। "प्रतिष्ठान " 1953 ई0 "साकल्य "1955 ई0 "समवेत ~~ई0~~" 1960 ई0 " "परिकमा" 1962 ई0 आदि इनके सामाजिक,सांस्कृतिक एंव साहित्यिक निबन्धों के संग्रह हैं।

वस्तुतःआधुनिक युग के निबन्धों में समीक्षात्मक निबन्धों का प्राधान्य है। इस युग के निबन्ध साहित्य में विश्लेषण की प्रवृत्ति ने विशेष शक्ति अर्जित की है तथा भाषा में साहित्य का समावेश भी हुआ है आधुनिक युग की भाषा शैली परिष्कृत एंव सुसंस्कृत है। इस युग में प्रायः सभी प्रकार के निबन्धों का पूर्ण विकास हुआ है किन्तु बाबूगुलाब राय के अनुसार आज का निबन्ध साहित्य आलोचना की ओर बढ़ रहा है--" आज का हिन्दी निबन्ध साहित्य अधिकांश में आलोचना की ओर दौड़ा जा रहा है। आजकल आचार्यत्व की चाह रीतिकाल से कुछ बढ़ी चढ़ी है।

1- आलोचना, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य, विशेषांक 4, पृष्ठ 128 परउद्धृत

निबन्ध विधा और शिवानी

विद्वानों का मत है कि गद्य यदि साहित्य की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है। शिवानी का आकष उनके साहित्य का "आकष" है। "आकष" उनके ललित निबन्धों का संग्रह है। इसमें संकलित उनके सोलह निबन्ध चन्द्रमा की सोलह कलाओं की तरह अलग-अलग लिखकर भी पूर्ण चन्द्र के अस्तित्व का आभास कराने में पूर्णतया सफल हुये हैं। 'क्या इतना आसान है मां का ऋण चुकाना' मां के ममत्व की व्यथा कथा है वहीं 'बच्चे को जन्म देना काफी नही है' में कामकाजी महिलाओं के वात्सल्य वैधुर्य की भर्त्सना भी की गयी है। 'नारी ही नारी की शत्रु है' में पर्दाफास किया गया है कि वस्तुतः एक नारी ही नारी की एक शत्रु है पुरूष की तुलना में नारी अपनी जाति का जितना अमंगल करती है उतना पुरूष नहीं । हिन्दुस्तान में हिन्दी की दुर्दशा से शिवानी का दुखी होना स्वाभाविक है । तभी उन्होंने 'हिन्दी को हम कहां ले जा रहे हैं।' और 'हिन्दुस्तान में उर्दू जनभाषा कभी नहीं रही' जैसे निबन्ध लिखकर यह दर्शाने का प्रयास किया है कि अभी भी हमारी गुलामी बरकरार है और हमारी अव्यवस्था की जड़ें भ्रष्टाचार में है। यदि हम इससे उबरना चाहें तो हमें जापान की समृद्धि का रहस्य अवश्य समझना चाहिये । 'मजे का सफर' जहां उनकी चिरपरिचित शैली का नमूना है वहीं 'नन्ही नन्ही बुंदियां रे सावन का मेरा झूलना' उनके प्रकृति प्रेम और नारी के मनभावन सावन का प्रमाण है। इसी के साथ 'कुरूष्व मुनि शार्दूल तथा मां चिरजीविनम् में जहां लेखिका की सांस्कृतिक मूल्यों के ह्रास की व्यथा कथा है वहीं जुनू तो थयुं 'पुर्नजन्म में विश्वास को दर्शाता घटना परक निबन्ध। शिवानी अपने उन श्रद्धेय परिचितों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करने में भी नहीं चूकीं जिन्होने उनके जीवन में प्रेरणा एंव सौहार्द भरा यथा कृपालदत्त त्रिपाठी, सारंगी सम्राट बैजनाथ मिश्र और पं० कृष्णरावशंकर पंडित "। कस्तूरी मृग में संकलित यथा- हे विदेशिनी हम तुम्हें पहचानते हैं, मरनो भलो स्वदेश को " स्वतन्त्रता तो मिल गयी लेकिन कहां है वह स्वर्ग : भौतिक सुखों की मरीचिका में भटकते प्रवासी भारतीय रत्न, इसलिये न देवें कि वह बेटा नहीं है , आदि विशेष उल्लेखनीय हैं । इसके अतिरिक्त 'को माता पिता तुम्हारे' में एक अवैध युग की विचित्र विडम्बना का चित्रण है " एक अतिसुविधावादी समाज की विडम्बना' में मशीनी दाह संस्कार पर लिखी प्रतिक्रिया' मिठास लन्दन की' में प्रवासी भारतीयों की कसक,' 'घूमने और घूरने का दर्शनशास्त्र' में विदेशी पर्यटक पर कटाक्ष' फैशन की राजनीति राजनीति के

फैशन' में बेतुकी बेढंगी वेशभूषा धारण करने वालों पर करारा प्रहार 'फल कर्मों का हम न भोगें झूठी है ये आशा' में अपनी संस्कृति पर स्वयं कुल्हाड़ी चलाने वाले भारतीयों की भर्त्सना 'हमारा पुरूष वर्ग और एक पगली की नियात' में एक विक्षिप्त पगली भी पुरूष की नारी लोलुप दृष्टि से नहीं बच पाती 'मेरा पिया मोरि बात न पूछे, तऊ सुहागन नाम' में पतिपरायण भारतीय पत्नियों की सहृदयता 'म्हाने चाकर मत राखों जी' में आधुनिक नारी की उपलब्धि 'आगे बढ़ने के लिये पीछे मुड़ना होता है' में पाश्चात्य शिक्षा के मद में मदालस होती जा रही पत्नियों को मुड़कर द्रौपदी कुन्ती, शांडिली आदि को देखने का आग्रह 'रोग शय्या पर स्मृतियों के कारवां' में निठल्लू पतियों पर छीटाकसी 'मरण सागर के पार' में शिवानी का पुनर्जन्म में विश्वास 'बदल रहा है प्रकृति का पैंतरा भी' में प्रकृति के बदले हुये रूख का वर्णन 'सुख-दुख गोद के' में एक विदेशी महिला मिसेज मर्च की सेवापरायणता, 'गहरे पानी पैठि', में कठोर परिश्रम की ओर इंगित शिवानी की सीख एंव 'क्या आज सम्भव है निर्भीक सम्पादक और प्रखर सम्पादकीय' में एक आदर्श सम्पादक के नैतिक मूल्यों को टटोलती शिवानी की दृष्टि भी महत्वपूर्ण हैं।

उपप्रेतो, में संकलित भूलभुलैया एवं कसौटी के अन्तर्गत सम्प्रस्तुत रचनायें भी निबन्धात्मक है।

यथा- ज्योतिष नहीं ज्योतिषियों से बचिये मानव की मृग भ्रान्ति, 'वह राष्ट्रप्रमुख कैसा जिसके शत्रु न हों,' जो जो बोते है सो पाते है, 'दूरदर्शन, वे लोग और हम लोग' "विजय का क्षण: अग्निपरीक्षा, "बीते दिनों की राम कहानी, "मानव जीवन की भूल भुलैया' डगमगाता ग्रास का सिंहासन,' 'कठिन है, संचय के मोह से उबरना, "पाप,कलुष और भ्रष्टाचार के बावजूद," "प्रेतों से सावधान," भारतीय चिकित्सा के गौरव मय पृष्ठ, आदि शिवानी के महत्वपूर्ण निबन्ध हैं।

"चरैवेति में भी कुछ समाज सापेक्ष निबन्ध संकलित है,- यथा-"गुहार", "सुना तुमने सुना, उन्हें कठिन चक्रव्यूह में घेर --", 'हम ऋणी हैं। जिनके' जापानी युवा वर्ग आत्महत्या का उफान 'छलावा है उन्नति का दावा,' 'जिन्हे मैं समझा नहीं पायी,' 'यह जहर कौन फैला रहा है,' 'जब स्त्री जागती है,' आदि निबन्ध सांस्कृतिक मूल्यों से विमुख हो रहे समाज पर करारा प्रहार करते हैं ।

साहित्य विधा- "रिपोर्ताज"

रिपोर्ताज शब्द विदेशी है। फ्रेंच भाषा के "रिपोर्ताज" शब्द को हिन्दी में प्रचलित कर दिया गया है। हिन्दी में रिपोर्ताज 1940 ई0 के आस-पास ही लिखे जाने लगे थे। रिपोर्ताज में किसी घटना को इतने प्रभावशाली और कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि उसकी अमिट छाप मानस-पटल पर अवश्य पड़ती है। रिपोर्ट में तथ्य चयन पर बल दिया जाता है न कि उसकी कलात्मकता पर। हिन्दी साहित्य कोष में रिपोर्ताज की परिभाषा दी गई है- "रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।"[1] रिपोर्ट में वास्तविक घटना को ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया जाता है। ठेठ भाषा में "रपट लिखाना" ही रिपोर्ट है।

हिन्दी में इस विधा का आरम्भ शिवदान सिंह चौहान की "लक्ष्मीपुरा" से माना जाता है। रांगेय राघव, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय, प्रभाकर माचवे, फणीश्वर नाथ रेणु, ठाकुर प्रसाद सिंह आदि कई प्रौढ़ साहित्यकारों ने सशक्त "रिपोर्ताज" लिखे हैं। 1941 ई0 में बंगाल के भीषण दुर्भिक्ष व महामारी की काली छाया को रांगेय राघव ने "रिपोर्ताज" के माध्यम से बड़ी मार्मिक शैली में प्रस्तुत किया था। इनका संकलन "तूफानों के बीच" नामक रचना में हुआ है। हिन्दी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का इस विधा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। "धर्मयुग" पत्रिका से "रिपोर्ताज" गद्य विधा को अधिक प्रेरणा और बल मिला है। आज की सभी प्रमुख पत्रिकाओं "नयापथ" "ज्ञानोदय" "कल्पना" "माध्यम" दिनमान, लहर, विग्रह, धर्मयुग तथा साप्ताहिक हिन्दुस्तान में जब तब सुन्दर रिपोर्ताज प्रकाशित होते रहते हैं ।

भदन्त आनन्द कोसल्यायन की "देश की मिट्टी बोलती है, शिवसागर मिश्र की "वे लड़ेंगें हजार साल, धर्मवरी भारती की "युद्ध यात्रा "कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर की "क्षण बोले कण मुस्कायें तथा शमशेर बहादुर सिंह की "प्लाट का मोर्चा" इस विधा की समर्थ रचनायें हैं।

1- हिन्दी साहित्य कोष-

शिवानी के रिपोर्ताज:

शिवानी के सशक्त रिपोर्ताज लखनऊसे प्रकाशित होने वाले समाचार पत्र स्वतंत्र भारत" में प्रकाशित हो चुके हैं, जिन्हे वातायन में संग्रहीत कर लिया गया है। 1979 में वातायन के संकलन पर शिवानी को रामचन्द्र शुक्ल पुरस्कार से सम्मानित भी किया जा चुका है। शिवानी ने अपने उपन्यासों में भी रिपोर्ताज शैली का मणिकांचन प्रयोग किया है।

साक्षत्कार एक विधा:

इण्टरव्यू अर्थात साक्षात्कार भेंट वार्ता या कोई विशेष परिचर्चा । इसमें इण्टर-व्यूकार किसी विशेष व्यक्ति जैसे साहित्यकार, राजनीतिज्ञ या कलाकार स्वं से भेंटकर अनेक प्रश्नों के माध्यम से उसको व्यक्तित्व एंव कृतित्व के बारे में समग्र जानकारी हासिल कर उन्ही के शब्दों में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करतें हैं। इण्टरव्यू कला, साहित्य राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान और मान्य विभूतियों का लिया जा सकता है। हिन्दी में इण्टरव्यू का श्री गणेश श्री बनारसी दास चतुर्वेदी जी ने रत्नाकार तथा प्रेंम चन्द्र से साक्षात्कार लेकर किया ।

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा लिया गया भदन्त आनन्द तथा चिरंजीतलाल एकाकी द्वारा महादेवी वर्मा का लिया गया इण्टरव्यू काफी महत्वपूर्ण है। पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने "मैं इनसे मिला" 1955 ई0 नाम से ~~भी~~ हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों का अच्छा इण्टरव्यू प्रस्तुत किया है। लक्ष्मी चन्द्र जैन ने "भगवान महावीर एक इण्टरव्यू " और शरद देवड़ा नें "हिन्दी की चार नवोदित लेखिकाओं से एक रंगमंचीय काल्पनिक इण्टरव्यू नाम से सुन्दर सजीव मानसिक साक्षात्कार प्रस्तुत किया है। इस विधा के विकास में अनेक पत्र पत्रिकाएं भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसी लोकप्रिय पत्रिकाओं में भाषा, साहित्य और कला के सम्बन्धों में प्रायः इण्टरव्यू प्रकाशित होते रहते हैं।

शिवानी से साक्षात्कार-

शिवानी जी से भी कई साक्षात्कार- आकष में संग्रहीत गौरापन्त शिवानी से बातचीत प्रस्तुति कृष्ण कुमार श्रीवास्तव "स्वनामधन्या कथाशिल्पी शिवानी से दुर्गाप्रसाद नौटियाल की हिन्दी दिवस §14 सितम्बर§ पर विशेष बातचीत' साप्ताहिक हिन्दुस्तान 9 सितम्बर 1990 तथा शिवानी और पद्मा सचदेव की अंतरंग बातचीत "शिवानी, शब्द-शब्द कहानी धर्मयुग,

16 मार्च 1992 में प्रकाशित हो चुके हैं।

शिवानी दारा लिये गये साक्षात्कार-

शिवानी ने लखनऊ "दूरदर्शन" के लिये अनेक साहित्यकारों एवं राजनेंताओं से साक्षात्कार लिये भी हैं। वे साक्षात्कार इस प्रकार हैं।

1- प्रधानमंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह[1],

2- अज्ञेय[2],

3- पडिंत किशन महाराज[3],

4- कुर्रतुल ऐन हैदर[4],

5- श्रीमती लक्ष्मी कान्तम्मा रेड्डी[5],

6- श्रीमती बेगम अख्तर[6],

साहित्य विधा "केरीकेचर"

किसी व्यक्ति विशेष के शील के विविध पहलुओं एंव उसकी असंगतिओं का हास्यगर्भित व्यंग्यपूर्ण चित्रण ही केरीकेचर कहलाता है। जेसे कार्टूनों में उनकी किसी विशिष्टविकृत मुद्रा को देखकर अनायास ही हंसी आ जाती है। डा0 नगेन्द्र द्वारा संपादित मानविकी पारिभाषिक कोश, में इसको परिभाषित करते हुये कहा गया है-"किसी की स्वभावगतअथवा शारीरिक विशेषताओं का चित्रकला, साहित्य अथवा नाटक में ऐसा व्यंग्ययात्मक अत्युक्तिपूर्ण अथवा विकृत चित्रण जिससे हंसी आए।"[7]

हिन्दी में केरीकेचर भी बहुत कम लिखे गये हैं। अमृत लाल नागर, रजिया सज्जाद, हरिशंकर परसाइ, बृजकिशोर नारायण, धर्मवीर भारती आदि लेखकों ने ही कुछ अच्छे केरीकेचर लिखे हैं। डा0 धर्मवीर भारती ने तो 'ठेले पर हिमालय' में अपनी प्रथम पत्नी का ही केरीकेचर प्रस्तुत किया है।

1- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 83

2- 3 एवं 4 यथोपरि

5- चिरस्वंयवरा (एक अनाघ्रात पुष्प) शिवानी, पृष्ठ 137--141

6- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 91--98

7- "मानविकी पारिभाषिक कोश" साहित्य खण्ड, डा0 नगेन्द्र, पृ035

शिवानी के साहित्य में केरीकेचर की झलकः

प्रस्तुत काल में हास्य और व्यंग्य का स्तर बढ़ता ही जा रहा है। अतः केरीकेचर के उज्ज्वल भविष्य की कामना की जा सकती है। यद्यपि शिवानी जी ने स्वतंत्र विधा के रूप में केरीकेचर नही लिखे लेकिन उनके साहित्य में तमाम हास्यगर्भित एवं व्यंग्यपूर्ण चित्रण भरे पड़े हैं जिन्हें पढ़कर अनायास ही हंसी छूट जाती है। उनकी इस शैली का एक उदाहरण दृष्टव्य है- "क्या इसी मंथरा की गली से गुजरना जरूरी था ? कभी इन्हीं बच्चों ने ताई का यह नाम धरा था "मन्थरा", जहां जाती वहीं आग लगा देतीं। पीठ पर सामान्य सा कूबड़ तंग पेशानी, कुटिल चुंधियाई आंखें, प्रतिपल फड़कते नथुने, विचित्र बनावट की नाक, ओठों पर निरन्तर थिरकती विद्रूप भरी मुस्कान, जैसे प्रतिपल किसी की हंसी उड़ा रही हों।"[2]

शिवानी का बाल साहित्यः

शिवानी बचपन से ही लिखने की शौकीन रही हैं। उन्होने कुछ बालोपयोगी पुस्तकें भी लिखी हैं।

1- सुखा गुलाबः

इसमें चार कहानियां संकलित हैं- 1-मूलन, 2-सूखा गुलाब, 3-हमका बिठाव धुंआगाड़ी मा बबुआ, 4- मामा गरजो।

2- स्वामिभक्त चूहाः

इसमें पांच कहानियां संकलित हैं- 1-स्वामीभक्त चूहा, 2-मक्कार कौआ, 3-कौआ और तीतर, 4-लोमड़ी और घुघुली, 5-राज के धान में धान।

3- राधिका सुन्दरीः

इसमें छः कहानियां संकलित हैं- 1-राधिका सुन्दरी, 2-चालाक लोमड़ी और भालू, 3-बुद्धिमान बकरी, 4-बिल्ली और मूसारानी, 5-घमंडी हाथी और बुद्धिमान चूहा, 6-पिद्दी और हाथी

ग- शिवानी का बाल्यकालिक विकासः

शिवानी के बचपन का नाम गौरा पाण्डेय। गौरा पाण्डेय के समग्र बाल्यकालिक विकास को समझने के लिये उनकी जन्मकालीन परिस्थितियों, शिक्षा व्यवस्था, परिवेश आदि पर दृष्टिपात करना तर्कसंगत होगा।

1- अतिथि, शिवानी, पृष्ठ, 50-51।

बचपन में गौरा नाम पाने वाली बालिका सचमुच सरस्वती पुत्र के फुल जन्मी थी। पं0 मदन मोहन मालवीय के अत्यन्त सन्निकट मित्र, बनारस के प्रतिष्ठित अधिवक्ता पं0 हरिराम पांडेय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक थे और हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के समय से काशी के विद्वत् समाज में गणमान्य थे। उनके पुत्र श्री अश्विनी कुमार पांडेय शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अपने पिता की तरह प्राध्यापन क्षेत्र में प्रविष्ट हुये और राजकोट (सौराष्ट्र-गुजरात) के राजकुमार कालेज में प्रोफेसर पद पर नियुक्त हुये थे । श्री अश्विनी कुमार पांडेय का विवाह लखनऊ के प्रसिद्ध चिकित्सक एंव समाज सेवी डा0 हरिदत्त पंत की पुत्री लीलावती से हुआ था। लीलावती संस्कृत, गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी में समान दक्षता रखती थीं । ऐसे वैदुष्यपूर्ण कुल में गौरा पांडेय को जन्म मिला । वही गौरा सुसंस्कृत संस्कारों, निष्ठापूर्ण कर्त्तव्यों सुदृढ़ निश्चय एंव अपने अदम्य आत्म विश्वास के कारण ही बहुप्रज्ञ शिवानी के रूप में प्रख्यात हुई।

(अ) जन्म, जन्मस्थान जन्मकाल एंव जन्मकुल -

बहुप्रज्ञ शिवानी का जन्म 17 अक्टूबर 1923 को शुभ मुहूर्त ब्रह्म वेला में राजकोट (गुजरात) में एक अतिसमृद्ध सुसंस्कृत सुशिक्षित, एंव उच्चवर्गीय परिवार में हुआ था। ब्रह्म मुहूर्त जन्मा शिवानी जन्म से ही प्रतिभा की धनी रही हैं। वे अपने वैयक्तिक परिचय के लिये अपने पैतृक परिचय की मुखापेक्षी कभी नहीं रहीं, प्रत्युत् युग-युगान्तर से उपेक्षित कन्या जन्म को उन्होंने अपने व्यक्तित्व से समाज की इस घृण्य मान्यता को सरेआम अंगूठा दिखाकर अपने कुल को भी परिचय के उत्तुंग शिखर पर पहुंचा दिया। यद्यपि उनके पिता-पितामह एवं ननिसाल के लोग काफी नामी ग्रामी थे लेकिन उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने उन्हें इन सबसे अलग-थलग करके एक साहित्यिक श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया।

शिवानी के पिता श्री अश्विनी कुमार पाण्डेय आधुनिक विचारों के पोषक एवं बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। वे प्राध्यापक के अतिरिक्त विभिन्न रियासतों- राजकोट, जूनागढ़, मैसूर, माणविदर, रामपुर, जसदन, ओरछा दतिया आदि के दीवान रहे। रामपुर में उन्होंने गृहमंत्री का पदभार भी संभाला था ।

जब रामपुर के नवाब रजाअली खां को गद्दी मिली तो उन्होंने फौरन श्री पाण्डेय जी को राम पुर बुलवा लिया । श्री पाण्डेय जी तत्कालीन मुस्लिम रियासत में पहले हिन्दू गृहमंत्री थे। गृहमंत्री के पद पर आसीन होने के बावजूद उन्हें पूजा के समय शंख बजाने की इजाजत लेनी पड़ती थी।

उन्हीं दिनो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये पं0 मदन मोहन मालवीय जी चंदा इकठ्ठा कर रहे थे। पाण्डेय जी ने उन्हें रियासत से एक लाख रूपया दिलवा दिया। इस बात पर वहां के मुसलमान पांडेय जी के खिलाफ हो गयें क्षुब्ध होकर उन्होंने त्याग पत्र दे दिया।

शिवानी की मां श्रीमती लीलावती पाण्डेय संस्कृत, गुजराती हिन्दी एवं अंग्रेजी में परम विदुषी थीं। गुजराती साहित्यकार मेघानी उनके प्रिय लेखक थे। घर में पढ़े-लिखे बुद्धि जीवियों का आना जाना था। झवेर चंद्र मेघानी का अना जाना था। लीलावती धर्म के प्रति आस्थावान एवं स्त्रियों की शिक्षा के प्रति काफी सजग थीं। लखनऊ का महिला कालेज उन्हीं के योग दान से बना था। अपने बच्चों के प्रति भी वे पूर्ण समर्पित भाव से जागरूक रहीं। पढ़ने लिखने के प्रति उन्हें जितना शौक था, उतना गहने के प्रति कभी नहीं रहा। इसका पुष्ट प्रमाण स्वयं उनकी पुत्री शिवानी के मुख से-"मेरीशादी के समय मां मुझे बैंक ले गयी थीं। सारे गहने बैंक में नीचे तहखाने में थे। नैनीताल बैंक मेरे ताऊ जी का था। मैंने पहली बार एक ऐसी औरत देखी थी, जिसने अपनी शादी में गहने जमा करवाये थे। और अब अपनी बेटी की शादी में निकलवाने आयी थीं।[1]

शिवानी के पितामह श्रीहरिराम पाण्डेय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्राध्यापक थे। तथा पं0 मदन मोहन मालवीय जी के परम मित्र एवं एक सफल अधिवक्ता थे। बनारस उस समय बुद्धजीवियों पंडितों व मनीषियों का गढ़ था। श्री हरिराम पाण्डेय भी उनमें से एक चर्चित व्यक्ति थे। उच्च पदारूढ होकर भी वे काफी रूढ़ थे। उनके अनुसार रूद्रीपाठ, विष्णुसहस्त्रनाम, के प्रणव मंत्र "ॐ" का उच्चारण नारी के लिये वर्जित था। शिवानी ने जालक में इसका प्रसंग दिया है-"अरे क्या करती है: मूर्खलड़की, लड़कियां रूद्रीपाठ नहीं करतीं।"[2]

1- धर्मयुग, 16मार्च1992, अंतरंग-शिवानी-शब्द-शब्दकहानी, पद्मासचदेवद्वाराप्रस्तुतपृ018

वे बड़े विद्वान संयमी एवं मृदुभाषी थे। सेवा मुक्ति के पश्चात् वे अल्मोड़ा में रहने लगे थे। उनकी लायब्रेरी किताबें से भरी- पूरी रहती थी। आंख से दिखाई न देने पर भी कौन सी किताब कहां रखी है, वे बता सकने में सक्षम थे।

शिवानी की दादी भी बड़ी सुन्दर थीं। वे अत्यन्त व्यक्तित्वसम्पन्नता, पतिपरायणा एवं तेजस्विनी महिला थी। शिवानी के पितामह कठोर अनुशासन प्रिय होने के पश्चात् भी कभी कभी अपनी तेजस्विनी पत्नी के सामने हथियार डाल देते थे। शिवानी की दादी भारी लहगे के ऊपर साढ़े तीन गज की बढ़िया रंगीन मलमल की ओढनी लेती थीं, पूरी बांह का ब्लाउज पहनती थीं, शहर वालों के लिये उनकी एक झलक देखना भी मुश्किल था।

शिवानी के नाना डा0 हरिदत्त पंत लखनऊ के तत्कालीन प्रसिद्ध चिकित्सक एवं सुप्रसिद्ध समाज सेवी थे। उस समय इलाज के लिये डाक्टरों को फीस नहीं मिलती थी फीस की जगह कोई ऊंची किन्तु विचित्र चीज मिलती थी। एक बार संडीला के राजा ने अपने रोगमुक्त हो जाने पर पंत जी को भारी-भारी गहनों से विभूषित हाथी दिया था। जो प्रतिदिन 5 सेर जलेबी और मन भर आटा उदरस्थ करता था। शिवानी की मां के आपत्ति करने पर "या तो यह मुआ हाथी पाल लो या परिवार।"[1] हाथी बेच दिया गया। फिर दिलीप पुर के नवाब साहब ने अपने स्वास्थ्य लाभ पर उन्हें गहनों से लदी-फंदी एक नचनिया घोड़ी दी जिसके नाज नखरे इतने गजब के थे कि उसे तुरन्त वहीं विदा करना पड़ा। तीसरी बार पंत जी ने अपने एक समृद्ध मरीज से मुंह खोलकर एक अभिनव फीस मांगी - " मुझे छेदी लाल की धर्मशाला खरीदकर दे दीजिये क्योंकि लखनउ में लड़कियों का कोई भी स्कूल नहीं है अतः वहीं पर पहली कन्यापाठशाला बनेगी।"[2] यही कन्या पाठशाला आज महिला कालेज का रूप ले चुकी है।

1- जालक, शिवानी, पृ091, संस्करण 1987

2- वही-शिवानी पृ091-92 संस्करण 1987

शिवानी की नानी बड़ी सुन्दर भव्य व्यक्तित्व सम्पन्नता एवं लखनऊ के सामाजिक जीवन में बहुचर्चित महिला थीं। कुमाऊँ समाज की दागबेल {नींव} भी उन्होंने ही डाली थी। ये थे शिवानी का समृद्ध, सुसम्पन्न सुसंस्कृत एंव सर्वेश्वर्यमय जन्मकुलः।

शिवानी का परिवार सात बहनों एवं दो भाइयों से भरा पूरा था। अपनी सूक्ष्म बुद्धि के कारण शिवानी अपने भाई बहनों में अग्रगण्य हैं। बड़ी बहन जयन्ती शान्तिनिकेतन की भारतमाता एंव आश्रम की वार्डन थीं। वे बंगला कुमाऊनी हिन्दी अंग्रेजी में लिखती भी हैं।

शिवानी के बड़े भाई त्रिभुवन जिनकी प्रारंभिक शिक्षा अंग्रेज गवर्नेस मिस ममफर्ड की देखरेख में हुई एवं उच्च शिक्षा बड़ी बहन जयन्ती के साथ शांतिनिकेतन में हुई। वे भी बड़े जीनिएस थे। स्वंय शिवानी के शब्दों में - "मेरे बड़े भाई त्रिभुवन जीनिएस थे, वे गुरूदेव के फेवरेट थे। देविका रानी ने देखा तो कहा मैं इन्हे ले जाऊगीं। गुरूदेव कहने लगे ये बुद्धिजीवी हैं।"[1] वास्तव में देविका रानी त्रिभुवन को फिल्म क्षेत्र में लाना चाहती थीं तभी गुरूदेवने मनोरंजक व्यंग्य किया जिसका यह तात्पर्य निकलता है कि फिल्मक्षेत्र में बुद्धिमान नहीं जाते। श्री त्रिभुवन बुद्धिजीवी है अतः फिल्मों में इनका प्रवेश उचित नही है। त्रिभुवन जी की शादी सुमित्रानंदन पंत की भतीजी के साथ हुई थी।

शिवानी के छोटे भाई राजा {हरिवल्लभ पाण्डेय} सम्प्रति प्रमुख संवाद समिति यूनीवार्ता के प्रधान सम्पादक हैं एवं एक सफल पत्रकार हैं। शिवानी के चाचा श्री देवीदत्त पाण्डेय जीवन भर अविवाहित रहे हैं। उन्हे आनन्दी अपना पुत्र मानती थीं।

1- धर्मयुग, 16 मार्च, 1992, शिवानी शब्द शब्द कहानी पद्मा सचदेव द्वारा प्रस्तुत पृ016

शिवानी की एक बड़ी बहन जिनकी शादी तेरह वर्ष की उम्र में ही हो गई थी उनके पति की तालाब में डूबकर मृत्यु हो गई। ससुराल पक्ष में अन्याय उनके साथ पहले ही कम नहीं थे। पति की मृत्यु के पश्चात और बढ़ गये फलस्वरूप उनकी भी, पच्चीस वर्ष की अल्पआयु में मृत्यु होगयी। शिवानी के पिता श्री अश्विनी कुमार पाण्डये इस सदमे को बर्दाश्त नहीं कर सके और शीघ्र ही उनका देहावसान हो गया ।

ब- शिवानी का बाल्यकाल-

रियासती वैभव में पलने के कारण शिवानी का बाल्य-काल अत्यन्त सुखी रहा। उनका बचपन कभी गुट्टा खेलने वाली बिन्नी के साथ बीता तो कभी ओरछा के महाराज राजा वीर सिंह जूं देवी की पुत्री सुधा राजा के साथ, कभी वे बिन्नी के द्वारा उपहारस्वरूप लाई गई कच्ची अमियां के वैभव के पराभूत हुई तो कभी बाल सखी सुधा राजा के राजसी ठाट-बाट की विपुलता से अभिभूत, कभी मुनीरजान के लखनऊ से लाये गये ओले ये बना बढ़िया शर्बत उन्हें पसन्द आता तो कभी रामपुर का मीनाबाजार उन्हें लुभाता। मुस्लिम रियासत में रहने के कारण रामपुर के मीनाबाजार के वैभव को देखने के लिये उन्हें तेरह वर्ष की उम्र में ही पहनना पड़ता था। छोटा भाई राजा पांच बरस का था तो भी उससे परदा होता था। नवाब साहब की विशेष आज्ञा से राजा को मीनाबाजार ले जाया जाता क्योंकि वहां सिर्फ औरतें ही जा सकती थीं। मीनाबाजार का वैभव देखिये शिवानी की कलम से -- क्या क्या परफ्यूम, जैसे क्या क्या कपड़े, क्या गहने, क्या विदेशी चीजें, जैसे इन्द्र की सभा हो। नवाब साहब आते तो दुकानों में हलचल स्तब्ध हो जाती। वे हर दुकान को देखते, सहराते। बड़े कला परखी थे।"[1] शिवानी पर नवाब साहब की बेगम का भी बड़ा स्नेह था। ईद में जोड़े भिजवाती थीं। महल में मनिहारिन बुआ भी आती थीं। सबको मुफ्त में चूड़ियां मिलती थीं। नाइन तेल लगाने आती थी। ये ठाट

1- धर्म युग, 16 मार्च 1992, शिवानी शब्द शब्द कहानी, पद्मा सचदेव द्वारा पृष्ठ 15,

बाट थे शिवानी के बचपन के। विभिन्न रियासतों में रहने के कारण शिवानी अपने बाल्यकाल में अपने पिता के साथ देश विदेशों में खूब घूमी हैं। फलतः अनेक आस्था एवं संस्कृतियों का शिवानी के बाल मानस पर विशेष प्रभाव पड़ा। आगे चलकर यही उनके समग्र साहित्य में परिलक्षित हुआ।

स- प्रारम्भिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा-

शिवानी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। उनके दादा जी का अनुशासन खूब कठोर था। एक तो उसका समय पाठशालायें ही उपलब्ध नहीं थीं, दूसरे उन्हें (पितामह) को लड़कियों का बाहर अकेले आना-जाना पसन्द नहीं था। वे भी पर्दा प्रथा के अनुयायी थे। वे अपने नाती-पोतों को अपने साथ ही सुबह सैर को ले जाया करते थे। मिस्टर एण्ड मिसेज स्मिथ शिवानी को पढ़ाने उनके बंगले पर आया करते थे। संस्कृत के शास्त्री जी आते थे, गणित के प्रोफेसर आते थे और अंग्रेजी उनके दादा जी स्वंय पढ़ाते थे। सिकन्दर मिंया सुबह घुड़सवारी सिखाने भी आते थे। उस समय घोड़े पर पर चढ़ने का आनन्द आसमान को जीतने जैसा होता था। अल्मोड़ा में शिवानी की प्रारम्भिक शिक्षा की दिनचर्या भी बड़ी कठिन थी। एकदम गुरुकुल जैसी। पांच बजे सुबह उठना दिन भर, पढ़ना, बाहर कहीं जाना-आना नहीं, रात को खा-पीकर सो जाना। यही दिनचर्या थी। घर में एक लायब्रेरी थी जो कसून लायब्रेरी के नाम से विख्यात थी। शिवानी के सभी भाई बहन बुद्धिजीवी थे। सब के सब किताबों में डूबे रहते।

शिवानी के बाबा जी की इच्छा थी कि इन सब बच्चों की शिक्षा संस्कृत में हो और पहाड़ी संस्कृति से भी जुड़ी रहे। अकस्मात् उन्हें एक बार अपनें मित्र प्रोफेसर अधिकारी के बच्चों को पढ़ाने के लिये शान्ति निकेतन छोड़ने जाना पड़ा। वे वहां के सौम्य-शांत वातावरण से इतना प्रभावित हुये कि शिवानी सहित कई बच्चों को वे गुरूदेव को ही सौंप आये और हिदायत दी कि इन्हें अपने पास ही रखना।

शिवानी जिस समय शान्तिनिकेतन भेजी गई थीं, उस समय उनकी उम्र बारह-तेरह वर्ष की थी। वहां उन्होने सातवीं कक्षा में प्रवेश लिया। इस उम्र में भी उनमें

असाधारण क्षमता थी। उनके इस विरल आकर्षणने सिर्फ गुरूदेव को ही नही वरन् आश्रम की सभी मूर्द्धन्य विभूतियों को भी अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और वे अल्प समय में ही सभी की स्नेहभाजन बन गई। शीघ्र ही उनकी हस्ताक्षर पुस्तिका प्रसिद्ध साहित्य कारों के दुर्लभ हस्ताक्षरों से भर गई और ईदगाह के चिमटे की भांति वह हस्ताक्षर पुस्तिका आश्रमकेछात्र छात्राओं की की ईर्ष्या का विषय बन गई। अपनी पुस्तक "आमादेर शान्तिनिकेतन" में शिवानी ने लिखा है- मेरे पास आज भी जलधर सेन, चारूबाबू, नरेन्द्र मिश्र, सजनीकान्त, दास आदि की लिखित ऐसी ही दुर्लभ पंक्तियां संग्रहीत हैं।[1] उनमें से एक के उद्धरण का लोभ संवरण मैं आज भी नही कर पा रही --

"हिमालयेर कन्या तूमी गौरीर मतन
नीरवे फुटेओ हांसी फूलेक जैमन
सकलेर भालो बेशे करो आपनार
शान्तिर निर्झर झरे
जीवने तोमर

(तुम हिमालय की कन्या गौरी सी हो। फूल की नीरव हंसी सी तुम प्रस्फुटित होती रहो। सबको प्यार कर अपना बनाओं और ईश्वर करे, शान्ति निर्झर तुम्हारे जीवन में बहता रहे। "[2]

अध्ययन के प्रति शिवानी की लगन एंव निष्ठा ने शीघ्र ही उन्हे बांग्ला भाषी बना दिया। इससे प्रसन्न होकर गुरूदेव ने जितना उदार पुरूस्कार शिवानी को दिया था उतना अन्य किसी को नहीं-"गुरूदेव ने स्वंय उस पुस्तिका के प्रथम पृष्ठ पर आश्रम के जापानी छात्र माकी की पेन्सिलसे रेखाचित्र अंकित कर, मुझे मेरे जीवन का सबसे बड़ा साहित्यिक पुरूस्कार दिया था।। जो आज भी एक अमूल्य निधि के रूप में मेरे पास सुरक्षित है। "[3]

शांतिनिकेतन में नौ वर्ष पढ़ने के पश्चात् शिवानी ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से विशेष सम्मान सहित बी0ए0 आनर्स की परीक्षा उत्तीर्णकी। अध्ययन के इन नौ वर्षो में उन्होंने हिन्दी शिक्षक हजारी प्रसाद द्विवेदी, तत्कालीन प्रिंसिपल डा0 धीरेन्द्र मोहन सेन, हिन्दी अध्यापक श्री भगवती प्रसाद चन्दोला मोहन लाल बाजपेई, आचार्य क्षिति मोहन

1-आमोदर,शांतिनिकेतन,शिवानी,पृ0 14,संस्करण,1989, 2-आमादेर शांतिनिकेतन,शिवानी,पृ0 14-15,संस्करण-1986, 3-आमादेर शांतिनिकेतन,शिवानी,पृ0 15,संस्करण-1986

राजनीति के प्रोफेसर अनिल चन्द्रा,शैलजा रंजन मजूमदार, शान्तिमय घोष, शिशिर दा, सन्तोष दा, इंदिरा देवी, किचन अध्यक्षा सरोजिनी देवी, अंग्रेजी अध्यापक बलराज साहनी आदि विद्वानों का अपार स्नेह व भरपूर सान्निध्य प्राप्त किया। शिवानी को आज भी इस बात पर गर्व है- "क्या अध्यापक थे, हजारी प्रसाद द्विवेदी हमें हिन्दी पढ़ाते थे, उनके स्नेह और व्यक्तित्व के क्या कहने। उनके सान्निध्य में रहना क्या हर किसी के भाग्य में था।" कितने विद्वान लोगों का आशीर्वाद रहा, कितनों का प्रभाव पड़ा, यह कहना कठिन है। गुरूदेव, हजारी प्रसाद द्विवेदी और कितने विद्वान। इस समुद्र में घुस जाओ तो बाहर निकलने पर यह कहना मुश्किल है कि आपके मन पर कौन सी नदी के छींटे पड़े हैं। यह कोई नहीं बता सकता।"[1]

विश्वविभूति गुरूदेव शिवानी के परम आदर्श थे और गुरूदेव भी अपनी इस श्रद्धालु शिष्या के प्रति कम उदार नहीं थे। शान्ति निकेतन के सुरम्य व अनुशासनमय वातावरण का भी शिवानी पर अमिट प्रभाव पड़ा। उन मधुर क्षणों की याद करते हुये वे पद्मा जी से कहती हैं- "पद्मा, जो नौ साल शान्तिनिकेतन में कटे, वह मेरी ज़िन्दगी का सबसे अच्छा समय था। शान्तिनिकेतन का भी वह स्वर्णयुग था। वहां जो लिखने-पढ़ने के शौकीन थे, उनका एक टैगोर स्टडी सर्कल था, हम सब उसमें जाते थे। सत्यजित राय को तब सभी माणिक "दा" कहते थे। वे चुपचाप हमें पुस्तकें दे जाते थे। गुरूदेव हमें तब कहते थे, "तुम लोग आश्रम से जाओगे तो उच्च कोटि के स्नॉब होकर जाओगे। कहीं नाक पर कुछ नहीं चढ़ेगा, हमेशा सादगी से रहना। प्रकृति के निकटतम सम्पर्क में रहना।"[2]

इस प्रकार शिवानी उच्च शिक्षा प्राप्त करके शान्ति निकेतन की तमाम यादें धरोहर के रूप में समेटे हुये अपने घर वापस आ गईं। शान्ति निकेतन का शान्त वातावरण और उनकी यही धरोहरें उनकी साहित्यिक विभूति बनीं।

1- धर्मयुग, 16 मार्च 1992, अंतरंग, शिवानी, शब्द-शब्द कहानी, पद्मा सचदेव द्वारा प्रस्तुत, पृष्ठ 16

2- वही, पृष्ठ 17

घ- शिवानी का व्यक्तित्व विकास-

शिवानी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टिपात करने से पहले व्यक्तित्व का अर्थ एंव परिभाषायें जान लेना आवश्यक होगा। व्यक्तित्व शब्द अग्रेंजी भाषा के Personality शब्द के हिन्दी रूपान्तर है।Personalityशब्द की उत्पत्ति अग्रेंजी के Personaशब्द से हुई। Persona अर्थात वेशभूषा। व्यक्तित्व के वास्तविक अर्थ के सम्बन्धों में विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किये गये है।

1- सामान्य दृष्टिकोण--

सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व का अर्थ उन गुणों से लगाया जाता है जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरों के ऊपर अपना प्रभाव जमाता है।

2- दार्शनिक दृष्टिकोण-

इस दृष्टिकोण के अनुसार "व्यक्तित्वपूर्णता का आदर्श और आत्मज्ञान है।"[2]

3- समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण-

समाज शास्त्रियों द्वारा व्यक्तित्व को समाज में प्रभाव डालने वाला गुण कहा गया है।"[2]

4- मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण

फ्रायड ने व्यक्तित्व के तीन अंग बताये है, इदम् ﴾Id﴿, अहम् (Ego) और परम अहम् या नैतिक मान। इदम् अचेतन मन में स्थित मूल प्रवृत्तियां तथा इच्छायें जो अनैतिक होती हैं और अपनी तृप्ति शीघ्र ही चाहती हैं। अहम् चेतना, इच्छा शक्ति, तर्क तथा बुद्धि है इसका सम्बन्ध इदम् और परम् दोनों से रहता है, परम् अहम् व्यक्ति का आदर्श है। यह अहम् को उसको दोषों के लिये ताड़ना देता है।

---

1. Personality is ideal of perfection. It is self realization.
2. Personality is the integration of the traitswhich determines the role and the status of the person in society. Personality might be, therefore, as social effectiveness.

5- मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण:

इस दृष्टिकोण में व्यक्तित्व की परिभाषा में वंशानुक्रम पर्यावरण दोनों को महत्त्व दिया जाता है। निष्कर्षत: व्यक्ति की जन्मजात एवं अर्जित विलक्षणताओं का गत्यात्मक संगठन ही व्यक्तित्व है।

व्यक्तित्व की परिभाषा-विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को इस प्रकार परिभाषित किया है:-

1- वारेन:

"व्यक्तित्व व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है जो उसके विकास की किसी भी अवस्था में होता है।"[1]

2- मन के अनुसार:

"व्यक्तित्व एक व्यक्ति की संरचना, व्यवहार के तरीकों, रुचियों, दृष्टिकोणों, क्षमताओं, योग्यताओं और अभिक्षमताओं का सबसे विशिष्ट संगठन है।"[2]

3- आलपोर्ट:

"व्यक्तित्व, व्यक्ति के अन्दर उन मनोशारीरिक प्रणालियों का गत्यात्मक संगठन है जो उसके परिवेश के साथ अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है।"[3]

व्यक्तित्व के अर्थ एवं परिभाषाओं पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यही निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में उसकी मनोशारीरिक प्रणालियों का, उसके वंशानुक्रम और पर्यावरण का विशेष महत्त्व होता है। वस्तुतः शिवानी के व्यक्तित्व विकास

---

1. Personality is the entire meutal organization of a human being at any stage of his development."
2. Personality may be defined as the more characteristics integration of an individual structures. Models of behaviours, interests, attitudes, capacities and aptitudes." Munn.[1]
3. Personality is the dynamic organization within the individual of those Psycho Physical system that determines his unique adjustment to his environment."

में भी उनकी संरचना ﴾मनोशारीरिक प्रणाली﴿ उनके वंशानुक्रम एवं परिवेश का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है",

व्यक्ति का व्यक्तित्व विकास शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक,बौद्धिक आदि धरातलों पर भौतिक और आध्यात्मिक दिशाओं में विकास शील अवश्य होता है। शिवानी जी का व्यक्तित्व भौतिक विकास के साथ लेखन के माध्यम से आध्यात्मिक विकास की ओर भी अग्रसर हुआ है। जैसे किसी भीड़ या जनसमूह में होते हुये भी कोई एक व्यक्ति सबसे पृथक स्थापित होता हुआ प्रतीत होता है। ठीक उसी प्रकार नारी समुदाय के मध्य रहकर भी शिवानी ने व्यक्ति रूप में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। शिवानी के व्यक्तित्व में सामान्य नारी इकाई के रूप में समाहित हो जाती.................................... है और समग्र रूप में शिवानी बनकर एक व्यक्तित्व, एक लेखिका, एक प्रबुद्ध सशक्त महिला साहित्यकार के रूप में दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में व्यक्तित्व में व्यक्ति का सामान्य समाप्त हो जाता है और एक असमान्य लोकोत्तर एंव अनुपम धारणाओं की सार्थकता देने वाला परिचय पूर्वापर सन्दर्भ बनता हुआ बहुत कुछ जुड़ता हुआ परिलक्षित होता है।

अ- **विवाह पूर्व शिवानी का व्यक्तित्व**

विवाह से पूर्व भी शिवानी अपूर्व व्यक्तित्व सम्पन्नता थीं, अपार प्रतिभा की धनी। ग्यारह वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने लिखना शुरू कर दिया था। इनकी कृतियां विश्वभारती एंव नटखट में प्रकाशित भी होती थीं। 'नटखट' एक बालपयोगी मासिक पत्रिका थी। जिसका प्रकाशन सन् 1936 में हुआ था। इसके सम्पादक श्री मदन मोहन अग्रवाल तथा श्री भुवन चन्द्र जोशी थे। इसे प्रमुख लेखक राजा सुरेश सिंह, श्री सोहन लाल द्विवेदी आदि थे। सन् 1973 में अल्मोड़ा द्वारा प्रकाशित "स्मारिका में श्री धर्मानन्द पाण्डेय ने शिवानी के बारे में लिखा भी है-- "नटखट का "मेरा बचपन अंक बड़ा ही लोकप्रिय रहा। गौरा पन्त जो अब "शिवानी" के नाम से लिखती हैं इनकी तब की कृतियां "नटखट" से ही प्रकाशित होती थीं"[1]

1- श्री राजकिशोर मिश्र, पी0सी0एस0, प्रभारी अधिकारी, 25वीं स्वतन्त्रता जयन्ती, अल्मोड़ा द्वारा "स्मारिका" 1973- "अल्मोड़ा में पत्रकारिता की परम्परा" शीर्षक से, श्री धर्मानन्द पाण्डेय, पृष्ठ 15

शिवानी की पहली कहानी "सिन्दूरी" भी "नटखट" में ही छपी थी। विश्वभारती में शिवानी छोटी-छोटी घरेलू बातें लिखा करती थीं। यह उनका परम सौभाग्य रहा कि उन्हें कई भाषायें सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं पर शिवानी का पूर्ण अधिकार शुरू से रहा है। जब वे केवल चौदह-पन्द्रह वर्ष की थीं तभी शान्तिनिकेतन में अंग्रेजी की एक आशुकवित्व प्रतियोगिता में अद्वितीय प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के धनी अपने अग्रज त्रिभुवन को भी पछाड़कर उन्होंने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया था। प्रतियोगिता थी-

"इफ आई विअर ए ब्वाय=

समस्यापूर्ति का समय सिर्फ पांच मिनट था। शिवानी के मुख से निकला-

इफ आई विअर ए ब्वॉय

व्हाट वुड बिकम ऑफ द ब्वॉय,

आई लव।"

निर्णायक थे स्वयं गुरूदेव। अपने गुरूदेव से प्राप्त दस रूपये का पहला पुरस्कार उनके लिये किसी नोबॅल पुरस्कार से कम न था। इस पुरस्कार ने जहां एक ओर उन्हें शान्तिनिकेतन में लोकप्रियता के उच्च शिखर पर पहुंचाया वहीं दूसरी ओर कुछ दिनों तक आश्रम की किसी भी वीथिका से उनका गुजरना भी दूभर कर दिया। वह जहां से भी निकलतीं, सहपाठियों के शब्दभेधी बाण सरसराने लगते-

"हे ! हू इज द लकी वन।"[1]

ऐसे ही एक बार जब वे ओरछा में थीं। मलेरिया बुखार ने उन्हें जकड़ लिया। फिर क्या था। बिस्तर पर लेटे ही लेटे कविता तैयार हो गई-

"मोको नहीं लागें भात

घी को देख जी अघात

हाय राम आठों जाम

कैसी कंपकंपाई है

1- जातक, शिवानी, पृष्ठ 123

थके बैन झुके नैन
तापै खात हो कुनैन
यम से हमारी प्रभु
ह्वै गई सगाई है

याही ओरछा में को
इच्छा करै हमारी प्रभो
मोरचा लै काल सौ
अकेले की लड़ाई है।"

ओरछा महाराज ने जब यह कविता सुनी तो उन्होंने अपना मुहरवाला कीमती सिगरेट का केस इनाम में शिवानी को दे दिया लेकिन शिवानी ने कहा- मैं तो सिगरेट पीती नहीं" तब उन्होंने कहा "चलो मेरी जेब में जो है वही ले लो"। जेब से पन्द्रह रूपये निकले। वो शिवानी को मिले। उस समय पन्द्रह रूपये का इनाम बहुत बड़ा इनाम होता था।

शिवानी एक ओर जहां पढ़ने-लिखने में कुशाग्र थीं, वहीं शरारत करने में भी अव्वल थीं। कभी किसी विदेशी के वैवाहिक विज्ञापन का जवाब दे बैठीं तो कभी बुर्का पहन सहेलियों के साथ घूमने ही निकल गईं। अपनी हर हरकत में शिवानी पकड़ी भी गईं। एक बार रात्रि में तीन-चार कुर्सियों को साड़ी की यवनिका से ढांप-ढूंप कर जब वह ताराशंकर का कोई उपन्यास पढ़ रही थीं, अचानक वार्डन की टार्च की रोशनी उनके चेहरे पर पड़ी। सुबह उनकी पीठ पर एक पट्टा चिपकाया गया जिसमें लिखा था-इसने आश्रम का नियम भंग किया है।" लड़कों की नजर पड़ते ही उनका उसी क्षण नवीन नामकरण भी कर दिया गया- "नियम भंगिनी।"[1] दण्डस्वरूप मिले इस उपहार को वह शायद कभी नहीं भूल पायेगीं। इसके अतिरिक्त आलू-परवल की शिकायत हो या मौलाना साहब की बेगम देखने की जिज्ञासा। शिवानी सबसे आगे रहतीं। बिल्ली के गले में घण्टी बांधने का दुरूह कार्य सदैव शिवानी को ही मिलता। एक कहावत है- "जो छात्र पढ़ने

1- कस्तूरी मृग, शिवानी, पृष्ठ 59

में तीव्र बुद्धि का होता है, शिक्षक उसकी सारी दण्ड्नीय शरारतें भी नजरअन्दाज कर देते है। इसीलिये शांतिनिकेतन मे शिवानी की धाक पूर्ववत् बनी रही।

अंत में यह कहना असंगत न होगा कि सूक्ष्म और पारखी दृष्टि शिवानी में शुरू से रही है। देश-विदेश के वैविध्य जीवन को उन्होनें अपनी खुली आखों से देखा है, उनके हृदयगत संत्रास एवं करूणा को ज्यों का त्यों समेटकर अपने में आत्मसात करने की क्षमता भी उनमें अपूर्व है। स्पष्ट है कि विवाह से पूर्व भी उनका व्यक्तितव कम असाधारण नहीं था। उनकी इस विलक्षणता को देखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी प्रभूत प्रशंसा करते हुये लिखा है-" गौरा शान्तिनिकेतन को छोटी सी मुन्नी, मेरी परम प्रिय बहिन और छात्रा बचपन में ही बड़ी सूक्ष्म बुद्वि की थी, उसकी दृष्टि बड़ीपैनी थी मेरे परम पारखी मित्र और गौरा के दूसरे अध्यापक पं0 निताई विनोद रस्तोगी कहा करते थे कि यह लड़की अवसर मिलने पर बहुत प्रतिभा शालिनी सिद्ध होगी। वे गौरा की भाषा और प्रकाशन भंगिमा को तभी बहुत दाद देते थे।"[1].

ब- विवाहोत्तर शिवानी का व्यक्तित्व -

शिवानी जब शांतिनिकेतन में ही थी तभी उनका विवाह तय हो गया था। बी0ए0 करने के पश्चात् सन् 1945 में शिवानी का विवाह श्रीयुत शुकदेव के साथ संपन्न हुआ। श्री पंत पढ़े लिखे विद्वान व्यक्ति थे। शुरू में लेक्चरर थे बाद में शिक्षा मंत्रालय में ज्वाइंट सेक्रेटरी (संयुक्त सचिव) के पद पर नियुक्त हो गये । विवाह के पश्चात् शिवानी के व्यक्तितत्व में और निखार आ गया। शिवानी के पति ने उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा को सहर्ष स्वीकार किया स्वीकार ही नहीं किया बल्कि निरन्तर सहयोग भी दिया । अपने पति की सहृदयता के बारे में शिवानी ने स्वंय कहा है कि शायद लव मैरिज करती तो भी इतना अच्छा पति नहीं मिलता। पति का सहयोग पाकर शिवानी की प्रतिभा और भी

1- मेरी प्रिय कहानियां, शिवानी, भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

अभिभूति हो उठी। पति के सहयोग से उनका लिखने का जो क्रम चला, आज तक चलता ही रहा बीच में कभी नहीं टूटा। शिवानी की पहली हिन्दी कहानी "जमींदार की मृत्यु"1951 में धर्मयुग में छपी थी। तभी से लेकर अब तक उन्होंने न जाने कितने उपन्यास, कहानियां, संस्मरण, यात्रावृत्तान्त लिखे हैं और निरन्तर लिख रही है। शिवानी ने अपने साहित्य में सामाजिक समस्याओं को भी जमकर उकेरा है। नारी की विचित्र विड्म्बना पर भी खूब लिखा है। शिवानी अपने पिता के साथ तो घूमी ही थीं, पति के साथ भी खूब जी भरकर घूमीं। कभी वे राजा महाराजाओं के माहौल में रही तो कभी कुमाऊं के ग्रामीण अंचलों में । कभी सरकारी अफसरों और नेताओं के खोखले जीवन को देखा परखा, तो कभी निम्नवर्गीय भारतीय जनजीवन की त्रासदीभरी करूण जीवन निष्ठा को। यही वैविध्य पूर्ण जीवन दर्शन ही शिवानी की लेखनी को अधिक सशक्त एवं सजीव बना सका है।

स- दाम्पत्य जीवन का शिवानी पर प्रभाव-

पति का हार्दिक स्नेह ही पत्नी के लिये ईश्वरीय वरदान है। एक उच्च पदाधिकारी अभिजात्य वर्ग की पति के स्निग्ध स्पर्श से शिवानी का जीवन कृतकृत्य हो उठा। पोषित्ता अभिजात्य वर्ग की कुलवधू बनकर और खिल उठी । फिर आभिजात्य वर्ग का जैसा सशक्त चित्रण शिवानी ने किया, आज तक कोई नहीं कर सका।

शिवानी का दाम्पत्य जीवन बहुत सुखी रहा । उनके साहित्य सृजन में उनका दाम्पत्य जीवन कभी बाधक नहीं बना। सास थीं नहीं, श्वसुर बहुत चाहते थे। कहते थे- "मां ने तुझे बी0ए0 तक पढ़ाया पर रोटी डालना न सिखाया। उनके इस परिहास में छिपे स्नेह से शिवानी गद्गद हो उठतीं । एक चचेरी जिठानी थी, वहीं शिवानी को सास की तरह प्यार करती थीं।

शिवानी के पति भी काफी अच्छे थे। उनकी वजह से ही शिवानी के लेखन कार्य में बाधा नहीं आई। शिवानी पर शांतिनिकेतन का प्रभाव तो था ही। पति की प्रेरणा, प्रशंसा भी कम सहायक नहीं हुई उनकी रचना प्रक्रिया में। अपने पति के औदार्य के बारे में वे स्वयं लिखती हैं- "मेरे पति अगर उदार न होते तो मैं कभी भी न लिख पाती। मेरा पारिवारिक जीवन बड़ा सुखी रहा। मेरे पति चाव से कहानी सुनते थे। कुछ ठीक न लगने पर कहते भी थे। पति से ज्यादा मित्र थे वे। कहानी में कुछ तो सामने होता है। कुछ निकालकर बाहर लाना पड़ता है। तावां डाले बिना सोने का गहना कहां बन पाता है।"[1]

दाम्पत्य जीवन में शिवानी के चार बच्चे हुये। घरमें सास न होने के कारण ये चारों बच्चे मायके में ही हुये। इनमें से तीन पुत्रियां वीणा, मृणाल, इरा। तीनों के पति आई0ए0एस0 अधिकारी एवं स्वयं तीनों भी कार्यरत हैं। मृणाल पाण्डे आधुनिक काल की उभरती हुई प्रतिभा, बहुचर्चित लेखिका एंव साप्ताहिक हिन्दुस्तान की सम्पादिका हैं। मृणाल पाण्डे टी0 वी0 सीरियल भी लिखती हैं । इनके टी0वी0 सीरियल "अधिकार" एवं 'बारहमासा' टी0 वी0 में प्रसारित भी हो चुके हैं। इन्होंने यूरोप और अमरीका में भी अध्यापन कार्य किया है। इनके पति हवाई के ईस्ट वेस्ट सेण्टर में है।

शिवानी के इकलौते पुत्र मुक्तेश पंत ब्रुक बाण्ड्स बैंगलोर में जनरल मैनेजर हैं। शिवानी ने अपने पुत्र की शादी लंदन में की है। विदेशी धरती में स्वदेशी रीति-रिवाजों के अनुसार किसी युगल का गठबन्धन हर किसी के लिये सहज व संभव नहीं होता।

सन् 1974 में शिवानी के पति का देहावसान हो गया। वार्धक्य में अचानक यूं जीवन सहचर के दिवंगत हो जाने से वे टूट सी गईं। उन्हें लगा जैसे वे राजमहिषी

1- धर्मयुग, 16 से 31 1992, अंतरंग शिवानी शब्द शब्द कहानी पद्मा सचदेव द्वारा प्रस्तुत, पृष्ठ 19

से भिक्षुणी हो गयी हैं। उनके जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही था। लेकिन तभी हजारी प्रसाद आये कहा, घबराओ नही" धैर्य रखो। मां की सांत्वना भरी चिठ्ठी आई ." जैसे मंदिर में देव होते हैं, पर हम देख नहीं पाते, सिर्फ मूर्ति ही नजर आती है उसी तरह तुम उन्हें न देख पाओगी पर वे हैं, तुम सबमें वे हैं।"[1] बच्चे भी अपनी मां का बड़ा ध्यान रखते थे। तभी शेलाकुल नागर जी आये तो वे रो पड़ीं -- नही नागर जी, अब मैं कभी नही लिख पाऊंगी। तब नागर जी ने समझाया था- " देखो गौरा बेन , मनुष्य दो तरह से जीता है, एक घुलकर, एक तपकर। हम नहीं चाहते तुम घुल कर जियो, तुम्हें तपकर जीना है, खूब लिखो और स्हायी में अपना दुख मिला दो"।[2] नागर जी ने यही शब्द शिवानी के लिये पाथेय बने। फिर तो हाथ के अस्थिभंग हो जाने पर भी उनकी लेखनी कभी शिथिल नहीं हुई।

द- शिवानी के व्यक्तित्व का दाम्पत्य जीवन पर प्रभाव -

अब तक तो यह स्पष्ट हो ही चुका है कि शिवानी असाणारण व्यक्तित्व की स्वामिनी थीं। व्यक्तितत्व दो तरह से परखा जाता है। बाह्य व्यक्तितत्व के द्वारा एवं आन्तरिक व्यक्तितत्व कें द्वारा। बाह्य व्यक्तितत्व में व्यक्ति की शारीरिक रचना, परिधान, उठना-बैठना हंसना, बोलना आदि आता है। अर्थात व्यक्ति अपने रूप रंग से, अपने ऊपर फबने वाले आकर्षक परिधानों से एवं अपनी मधुर वाणी से दूसरों को प्रभावित करता है। आन्तरिक व्यक्तितत्व में व्यक्ति के आचार- विचार उसकी प्रतिभा व श्रेष्ठ संस्कार आदि आते हैं। सच पूछा जाये तो मनुष्य का आन्तरिक व्यक्तितत्व ही दूसरों पर स्थायी प्रभाव छोड़ता है, बाह्य का आकर्षण तो क्षणिक होता है। सामान्य दृष्टिकोण के अनुसार तो व्यक्तितत्व का अर्थ ही उन गुणों से लगाया जाता है जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरों पर अपना प्रभाव छोड़ता है। मन के अनुसार - "व्यक्तितत्व एक व्यक्ति की संरचना, व्यवहार के तरीकों, रुचियो, दृष्टिकोणों, क्षमताओं ;

1- धर्मयुग, 16 से 31 मार्च 1992, अंतरंग, शिवानी, शब्द-शब्द कहानी, पद्मा सचदेव द्वारा प्रस्तुत, पृ019

2- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 15 अप्रैल 1990, शिवानी, पृ025

योग्यताओं और अभिक्षमताओं का सबसे विशिष्ट संगठन है।"--

"Personality may be defined as the more characteristics integration of an individual structures. Modes of behaviours, interests, attitudes, capacities and aptitudes."..............................

वस्तुतः शिवानी का व्यक्तित्व भी कुछ ऐसा ही था। उन्होंने अपने इस विशिष्ट व्यक्तित्व से केवल अपने मायके पक्ष को ही नही गौरवान्वित किया। बल्कि ससुराल पक्ष को भी महिमा मंडित बनाया। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव केवल उनके पति पर ही नही पड़ा, पूरे परिवार पर उन्होंने अपनी छाप छोड़ी।

शादी के पहले उनके ससुर कहा करते थे कि "बड़े घर की लड़की न ब्याहेंगे, एक पैसे का अगर हाथी मिले तो क्या खरीद लेना चाहिये।"[1] उनके घर में पर्दा होता था, सीधे पल्ले की साड़ी पहनी जाती थी।। खाना अपने हाथ से बनाया जाता था घर में सास भी नहीं थी। अतः पूरा काम शिवानी को ही करना पड़ा। मायके में काम-काज के लिये नौकर चाकर थे फिर भी शिवानी ने अपने हाथ से ही रोटी गनाई। चारों बच्चे संभाले। यद्यपि नौकर-चाकर ससुराल में भी थे लेकिन खाना अपने ही हाथ से बनाया जाता था। शिवानी ने ससुराल में कभी भी अपना बड़प्पन नही जताया। उनकी इस शालीनता से उनके ससुर बहुत प्रभावित हुये। ससुराल की किसी भी रीति-रिवाज का उन्होंने कभी विरोध नहीं किया मायके में वे सामिषभोजी थीं किन्तु ससुराल थी शुद्ध निरामिष भोजी उन्होंने मांसाहार की अभिलाषा कभी भी व्यक्त नहीं की--

"मायके में सामिषभोजी थी, किन्तु ससुराल थी कट्टर निरामिष पंतो में, जहां मांस तो दूर, प्याज का छिलका भी चौके में दिख जायें तो हुक्का पानी बन्द।"[2] उनका यह एड्जस्टिव नेचर ही उनके सफल दाम्पत्य जीवन का रहस्य बना। उनके इस विशिष्ट व्यक्तित्व की छाप उनकी सन्तानो पर पड़ी। प्रखर बुद्धि दामिनी मां का वरद् हस्त पाकर उनकी सन्तानें भी आज ऊंचे-ऊंचे ओहदों पर कार्यरत् हैं। उनके चारों लड़के लायक बने, इसका श्रेय भी वे अपने पति को ही देती हैं। यह उनकी पतिपरायणता की पराकाष्ठा है।

1- धर्मयुग, 16 मार्च से 31 1992, अंतरंग, शिवानी, शब्द-शब्द कहानी, पद्मा

य- दाम्पत्य जीवन में शिवानी द्वारा अनवरत् सहयोग और साहित्य सर्जना-

दाम्पत्य जीवन में शिवानी का अनवरत् सहयोग तो सराहनीय है ही, उनकी साहित्य सर्जना भी कम प्रशंसनीय नहीं है। अपने दाम्पत्य जीवन में उन्होंने जितनी देखभाल अपने पति की उतनी ही सेवा-सुश्रुषा अपने ससुर की भी थी। बच्चों की विधिवत् देखभाल एंव पालन पोषण किया। उनके घर में उनके अपने चार बच्चे, दो बच्चे बहन के, नौकर-चाकर, आने-जाने एवं मिलने जुलने वाले कई तरह के विघ्न थे, फिर भी वे लिखने का कार्य कर लेती थीं। उनके इस कार्य में उनके पति का पूरा-पूरा सहयोग रहा। उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुये वे लिखती हैं- " उनकी वजह से मैं लिखने के बारे में सोच सकी। उनकी वजह से कभी कोई बाधा नहीं आई। बडी सराहना भी करते थे। पर (नेताओं इत्यादि के वास्तविक चित्रण पर) सैंसर भी बहुत करते थे।"[1]

दाम्पत्य जीवन काल में ही शिवानी की पहली कहानी "जमींदार की मृत्यु" 1951 में धर्मयुग में छपी थी। इसके बाद शिवानी ने कहानीसेलेकर उपन्यास एवं आधुनिक युग की सर्वाधिक विकसित विधा "संस्मरण एंव रेखाचित्र" पर भी खूब लिखा। दाम्पत्य जीवन का सफल निर्वाह करते हुये उन्होंने कई बड़े उपन्यास- मायापुरी 1957, चौदह फेरे 1960, कृष्णकली 1962, भैरवी 1969, श्मशान चंपा 1972, एवं सुरंगमा आदि लिखे। कई कहानी संग्रह - अपराधिनी, मेरी प्रिय कहानियां, पुष्पहार, उपहार, स्वयंसिद्धा, गैंडा (लघु उपन्यास एवं कहानियां) एवं संस्मरण जालक, शान्तिनिकेतन आदि लिखे।

सन् 1974 में पति के अचानक दिवंगत हो जाने से कुछ समय तक तो वे अपने आपको नितान्त अकेली महसूस करती रहीं, उनका लेखन कार्य शिथिल रहा, किन्तु महामना अमृतलाल नागर जी कीप्रेरणा से उन्होंने जल्दी ही लिखना शुरू कर दिया और तब से आज तक लिख रही हैं। उनकी प्रत्येक रचना पहले से कहीं अधिक सशक्त व सजीव होती जा रही है। इस समय शिवानी हिन्दी साहित्य की रत्न किरीट हैं। वस्तुतः उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों ही महान् है।

1- धर्मयुग, 16 मार्च 1992, अंतरंग, शिवानी शब्द शब्द कहानी, पद्मा सचदेव [illegible]

पुरूस्कार-

शिवानी की कई कृतियों को ससम्मान पुरस्कृत भी किया गया है। उनकी "वातायन" ﴾संस्मरण﴿ को महाराष्ट्र सरकार ने 1979 में " रामचन्द्र शुक्ल पुरूस्कार " से सम्मानित किया है। इसके अतिरिक्त शिवानीकी " भैरवी " उपन्यास , "रतिविलाप" ﴾लघुउपन्यास﴿ एवं "कृष्णकली" उपन्यास आदि कृतियां को कई प्रदेशोंद्वारा समय-समय पर सम्मानित की गई है। भूतपूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 1980 में शिवानी को "पद्मश्री" की उपाधि भी प्रदान की थी।

हिन्दी दिवस ﴾14 सितम्बर﴿ 1990 में शिवानी को उ0प्र0 हिन्दी संस्थान द्वारा 1989 का संस्थान सम्मान भी प्राप्त हुआ है।

सूचना एवं प्रसारण मंत्री डा0 गिरजा व्यास द्वारा साहित्य, कला और पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवा के लिये शिवानी को मार्च 1992 में ﴾ वीरेन्द्र भट्ट पुरूस्कार﴿ प्राप्त हुआ है।

भविष्य में शिवानी जी को इनसे अच्छे पुरूस्कार प्राप्त होते रहेंगे, ऐसी आशा है। उन्हें इन्हीं पुरूस्कारों तक सीमित नहीं रखा जाना चाहिये, ऐसी मेरी मान्यता है। उनका साहित्य इन पुरस्कारों से कहीं ऊँचा है।

द्वितीय अध्याय

शिवानी के साहित्य में समाज सापेक्ष चिन्तन

६

शिवानी के साहित्य में समाज सापेक्ष चिन्तन

यद्यपि साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है लेकिन यह सतही तौर पर तो सत्य है किन्तु गहराई तक जाने पर यह उक्ति अपनी सार्थकता सिद्ध करने में असमर्थ हो जाती है क्योंकि दर्पण वस्तु के केवल वाह्य संरचना का ही प्रतिबिम्ब दर्शाता है, जबकि साहित्य समाज की मूल भावना जो मानवीय सम्बन्धों पर आधारित है, उन अन्तर्सम्बन्धों की यथार्थ स्थिति का बोध कराता है । साहित्यकार अपने सृजित पात्रों के चरित्र के माध्यम से समाज में क्या घट रहा है, की अभिव्यक्ति करता है । चूँकि वह अपने पात्रों का चयन समाज से ही करता है अतः उसके पात्रों का आचरण और उनकी समस्यायें समाज की समस्यायें होती हैं । यदि कोई साहित्यकार अपने पात्रों का चयन समाज से न करके उससे इतर समाज से करता है - जैसे - देवी - देवताओं के प्रसंग, तो भी इसका साहित्य समाज का वास्तविक चित्रण भले ही न हो किन्तु आदर्शमूलक होने के कारण समाजोपयोगी अवश्य होता है । वेद आदि इसी श्रेणी के साहित्य माने जा सकते हैं ।

वस्तुतः कल्पना का सहारा लेकर काल्पनिक साहित्य का सृजन आज के वैज्ञानिक युग में न तो पाठकों को उनकी पाठ्य खुराक पूरी तरह दे पाता है और न ही साहित्यकार को प्रतिष्ठा । आज का प्रबुद्ध पाठक साहित्य से विज्ञान जैसे तथ्यों की अपेक्षा रखता है । वह चाहता है कि साहित्यकार घटनाओं का विवरण देकर ही अपने दायित्व की इतिश्री न कर ले, बल्कि उसकी विवेचना एवं विश्लेषण करके समाज को स्पष्ट रूप से उन तथ्यों से अवगत कराये जिसके कारण समाज विघटित और असामाजिक होता है । सत्यकथाओं जैसी पत्रिकाएँ पाठकों की इसी दिलचस्पी का परिणाम हैं । शिवानी ने भी अपने साहित्य में यही सब समेटा है, संजोया है और इसी का अपने सृजन का केन्द्रीय विषय बनाया है ।

शिवानी की चाहे जिस विधा को ले लीजिए उसमें समाज की समस्याएं और ऐसी समस्याएं जिनकी ओर सामान्य साहित्यकार या तो अपनी द्रृष्टि डाल नहीं पाता है और यदि डालता भी है तो उस पर अपनी लेखनी चलाना नहीं चाहता क्योंकि उसके लिये यह विषय और यह समस्याएं जोखिम भरे होते हैं । शिवानी ने अपने लेखन में इसी जोखिम को उठाया है और

जो कुछ उन्हें उनका साहित्य यश, प्रतिष्ठा, धन आदि के रूप में दे रहा है वह उनके इसी जोखिम का परिणाम है । अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त के अनुसार लाभ जोखिम उठाने का ही प्रतिफल होता है ।

शिवानी ने समाज को अनेक रूपों में देखा है । उनका सामाजिक चिन्तन बहुआयामी अनुभवों से समृद्ध है । न तो उसमें कोरी भावुकता है और न ही पक्षपात पूर्ण विवेचना । एक सचेष्ट एवं जागरूक दर्शक की भाँति उन्होंनें समाज को चित्रित करने का प्रयास किया है । इस प्रयास के अन्तर्गत वे अपने पात्रों के अन्तर्मन को इतनी गहराई तक छूने में सफल हुई हैं कि उनके पाठक और परिचित उनकी प्रत्येक कृति पर पूछ बैठते हैं कि क्या ये पात्र वास्तविक हैं और फलां - फलां है ? यह शिवानी के समाज-सापेक्ष यथार्थ चिन्तन का सफल निदर्शन है । शिवानी का उद्देश्य भारतीय समाज को आदर्श और नैतिकता के उसी चरम उत्कर्ष पर पुनः पहुँचाना है जहाँ वह अपने गौरवशाली अतीत में था । इसके लिये उन्होनें उन्हीं पात्रों को अपने लेखन में महत्त्व दिया है जो उनकी भावना के संप्रेषक और उद्देश्य के संवाहक बन सकें ।

हम भारतीयों के लिये पाश्चात्य संस्कृति अनुपयुक्त ही नहीं हानिकारक भी है। अतः उन्होनें अपने विदेशी अनुभवों का उल्लेख कर अपने चिन्तन को सामाजिक बना दिया है । वस्तुतः देखा जाये तो भारतीय समाज उनके समाज-सापेक्ष चिन्तन का अभिऋणी है । इस ऋण से समाज तभी उऋण हो सकता है जब वह नैतिकता के मार्ग पर चल आदर्श के लक्ष्य को प्राप्त कर ले । अतः निर्विवाद रूप से यह कहा जा सकता है कि शिवानी का साहित्य समाज सापेक्ष चिन्तन का साहित्य है क्योंकि उनके साहित्य में समाज सुधार की चिन्ता सर्वत्र व्याप्त है ।

क. समाज एक संस्था

समाज -

'Wherever there is life there is society'[1] ('जहाॅ जीवन है वहाॅ समाज है ') मैकाइवर का यह कथन , समाज के विस्तृत स्वरूप को दर्शाता है । यद्यपि व्यवहारिक रूप से हम व्यक्तियों तक ही समाज को स्वीकार करते हैं, किन्तु समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर हम अन्ततः मैकाइवर के मत से सहमत हो जाते हैं कि सभी जीवधारियों के अपने - अपने समाज होते हैं । जैसे पशु समुदाय भी एक समाज है । लेकिन समाज का वास्तविक अर्थ व्यक्तियों के विशेष समूह से लगाया जाता है । यहाॅ तक कि अनेक संगठित और असंगठित समूहों को समाज शब्द से जोड़कर एक सामाजिक संस्था का बोध कराने के सफल प्रयास किये गये हैं । यथा - आर्य समाज, हिन्दू समाज, ब्रह्म समाज, विद्यार्थी समाज, महिला समाज, मानव समाज आदि प्रमुख रूप से उल्लेखनीय उदाहरण हैं । इन सबसे समाज के साधारण अर्थ का बोध होता है न कि समाज के वैज्ञानिक अथवा विशिष्ट स्वरूप का, क्योंकि किसी ने इनका प्रयोग व्यक्तियों के समूह के रूप में किया है तो किसी ने समिति के रूप में, किसी ने समुदाय तो किसी अन्य ने संस्था के रूप में किया है । इस प्रकार इनके द्वारा समाज के वास्तविक स्वरूप का दर्शन हो पाना कठिन हो गया है । समाज के स्वरूप की इस अनिश्चितता को दूर करने के लिये विभिन्न समाज शास्त्रियों ने समाज को अनेक प्रकार से परिभाषित कर एक स्पष्ट एवं वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयास किया है । इनमें से कुछ का उल्लेख करना विषयानुकूल होगा -

गिडिंग्स के अनुसार - " समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक सम्बन्धों का योग है, जिसमें परस्पर सम्बन्ध रखने वाले एक साथ संगठित होते हैं ।"[2]

समाज के अर्थ से सम्बन्धित गिडिंग्स के उक्त कथन से स्पष्ट है कि मनुष्य सामाजिक होने के नाते समय - समय पर विभिनन समूहों और संगठनों को जन्म देता आया है और इनके निर्माण द्वारा अपने स्वभाव की अभिव्यक्ति करता रहा है । बाद में यही संघ,

---

1- R.M. Maciver & C.H. Page: Society, Page. 6

2- Principles of Sociology, Giddings, Page 27.

समूह और संगठन उसके व्यवहार के नियामक बने हैं । मानव जिस समाज का निर्माता होता है, वही समाज उसका नियन्ता हो जाता है । इस प्रकार वह अपने ही बनाये हुए समाज या सामाजिक व्यवस्थाओं द्वारा स्वयं नियंत्रित होता रहता है । मनुष्य द्वारा स्थापित यही सामाजिक संगठन मानव के समाजीकरण के प्रमुख साधन होते हैं । यही संगठन जिन्हें हम समाज का नाम दे देते हैं । मानव के पारस्परिक व्यवहार के लिये मूल्यों, प्रतिमानों और मानकों का निर्माण करते हैं और व्यक्ति को तदनुसार व्यवहार करने की आज्ञा देते हैं ।

मैकाइवर और पेज के अनुसार - " Society is a system of usages and procedures, of authority and mutual aid, of many groupings and divisions, of controls of human behavior and of liberties. This ever-changing, complex system we call society. It is the web of social relationships. And it is always changing. "[1]

वस्तुतः समाज रीतियों तथा कार्य प्रणालियों, प्रभुत्व एवं पारस्परिक सहयोग, अनेक समूहों एवं वर्गों की, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों एवं स्वतन्त्रताओं की व्यवस्था है । मैकाइवर इस जटिल व्यवस्था को ही समाज की संज्ञा देते हैं और कहते हैं - यह व्यवस्था सदैव एक सी नहीं बनी रहती है , इसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है । इसलिये समाज का स्वरूप समय - समय पर बदला हुआ देखने को मिलता है । समाज का यह बदलता हुआ स्वरूप उसके समकालीन साहित्य और विज्ञान को भी प्रभावित करता है । मैकाइवर ने समाज के सन्दर्भ में जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात कही है वह है सामाजिक सम्बन्ध । उनके अनुसार सामाजिक सम्बन्ध समाज का प्राण तत्व है अर्थात् समाज सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है और सामाजिक सम्बन्ध मकड़ी के जाले की तरह एक दूसरे से जुड़े होते हैं । इन्हीं सम्बन्धों के माध्यम से व्यक्ति समाज के आदर्शों के अनुकूल आचरण करता हुआ, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता हुआ सफल एवं सक्षम होता है । सम्बन्धों के अभाव में उसका जीवन एकाकी और अनुपयोगी हो जाता है ।

1- R.M. Maciver & C.H. Page: Society, Page .5.

र्यूटर के अनुसार - ' समाज एक अमूर्त धारणा है जो एक समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धो की सम्पूर्णता का बोध कराती हैं । '

" An abstract term that connotes the complex of interrelations that exist between and among the members of the group.[1]

वस्तुतः समाज अमूर्त होता है इसीलिये सामाजिक सम्बन्ध भी अमूर्त होते हैं । यह बात भले ही कहने और सुनने में असंगत सी जान पड़े कि व्यक्तियों से निर्मित समाज अमूर्त कैसे हो सकता है किन्तु आज सभी समाज शास्त्री इस बात को एक मत होकर स्वीकार करते हैं कि समाज व्यक्तियों का संगठन नहीं, उनके आपसी सम्बन्धों की सम्पूर्णता का बोध कराने वाला एक जटिल जाल है, एक जटिल व्यवस्था है । जिस प्रकार मात्र ईंटों के ढेर को एक भवन का नाम नहीं दिया जा सकता है उसी प्रकार व्यक्तियों के समूह को समाज भी नहीं कहा जा सकता है । भवन का निर्माण तो तब होता है जब उसकी एक - एक ईंट सीमेण्ट या गारे से अन्य ईंटों से जुडकर - एक व्यवस्थित प्रतिमान को जन्म देती है । ठीक इसी प्रकार जब एक-एक व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से सामाजिक सम्बन्ध स्थापित कर एक व्यवस्था को जन्म देता है तब यही व्यवस्था समाज के नाम से जानी जाती है ।

राइट के अनुसार - ' समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है, यह समूहों में रहने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है ।"- " Society is not a group of people, it is the system of relatioship that exists between the individulas of the group." Wright.[2]

वस्तुतः समाज मानवीय सम्बन्धों की एक व्यवस्था ही है । ये सम्बन्ध जितने मजबूत होते हैं , समाज उतना ही स्थायी होता है, और चिरस्थायी समाज की सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था का ही व्यक्तियों पर प्रभाव पड़ता है। समाज के अनुसार ही सामाजिक व्यक्ति के संस्कार बनते और ढलते हैं । कभी भी कोई भी साहित्य समाज के प्रभाव से अछूता नहीं रहा है । उसमें तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्बन अवश्य हुआ है । उसे उस युग की विचार धारा ने अवश्य प्रभावित किया है । अतएव किसी भी साहित्य का मूलयाँकन यदि तत्कालीन समाज के परिप्रेक्ष्य में नहीं किया जाता तो वह मूल्याँकन अपने में पूर्ण नहीं होता है ,

---

1- E.B. Reuter, Handbook of sociology, Page-157.

क्योंकि सामाजिक सम्बन्धों की यह व्यवस्था निरन्तर बदलती रहती है; क्योंकि सामाजिक सम्बन्ध बदलते रहते हैं । जिसके फलस्वरूप सामाजिक चिन्तन - प्रकिया भी बदलती रहती है ।

सामाजिक चिन्तन की बदली हुई प्रक्रिया साहित्यकारों को नवीन सर्जना के लिये नवीन सामग्री, अभिव्यक्ति , द्रृष्टि और दिशा प्रदान करती है । एक ही कथानक को लेकर विभिन्न युगों में लिखा गया साहित्य एक जैसा नहीं रहा है । इतना ही नहीं आज का परिवर्तित द्रुतगामी समाज समय की कमी से इतना त्रस्त है कि वह लम्बे कथानकों में नहीं उलझना चाहता है । वह कम शब्दों में अधिकाधिक जानना, समझना और आनंद लेना चाहता है । संभवतः लघु आख्यानों, लघु उपन्यासों और लघुगीतों का जन्म इसी के परिणाम स्वरूप हुआ है और तीव्र गति से होता जा रहा है । इसीलिये अधिकाँश साहित्य समाज-सापेक्ष होता है , क्योंकि साहित्य तो समाज में समाज द्वारा समाज के लिये समाज के धरातल पर पैदा होता है । जैसे समाज अमूर्त होते हुए भी अपने अस्तित्व का आभास करा देता है वैसे ही साहित्य की पुस्तकाकृति में अमूर्त ही होता है फिर भी अपने अस्तित्व की सुगन्ध शारदीय ज्योत्स्ना की तरह विकीर्ण करता है । शिवानी इसी सुगन्ध की अभ्यस्त हैं ।

संस्था -

'संस्था' शब्द को समाजशास्त्रियों ने Institution के रूप में रूपान्तरित किया है । वस्तुतः संस्था किसी भी समाज द्वारा सामाजिक या वैयक्तिक क्रियाओं को व्यक्त करने वाली कार्य प्रणाली के स्थापित स्वरूप या दशाओं को कहते हैं । सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री **'गिलिन और गिलिन '** का मत है कि- ' सामाजिक संस्था कुछ सांस्कृतिक विशेषताओं को प्रकट करने वाले वे नियम हैं जिनमें काफी स्थायित्व होता है और जिनका कार्य सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है । [1]

मैकाइवर एवं पेज ने भी इसे कार्य प्रणालियों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया है -----' We shall always mean by Institution the established forms or condition of procedure characteristic of group activity ""[2]

संस्थाएं सामूहिक क्रिया की विशेषता व्यक्त करने वाली कार्य प्रणाली के स्थापित स्वरूप अथवा अवस्था को कहते हैं ।

गिलिन और गिलिन तथा मैकाइवर आदि की धारणाओं को पढ़ने के बाद ज्ञात होता है कि संस्था सामाजिक नियमों एवं कार्य प्रणालियों की व्यवस्था का नाम है । समाज की तरह संस्था भी व्यक्तियों का समूह न होने के कारण अमूर्त होती है ।

कुछ अन्य समाज शास्त्रियों ने भी संस्था को परिभाषित किया है - **आगबर्न एवं निमकॉफके अनुसार** - ' कुछ आधार भूत मानवीय आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हेतु संगठित एवं स्थापित प्रणालियाँ सामाजिक संस्थायें है । [3]

बोगार्डस के अनुसार - " एक सामाजिक संस्था समाज की ऐसी संरचना है जिसे मुख्यतः सुस्थापित प्रणालियों के द्वारा लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये संगठित किया गया हो ।[4]"

---

1. Gillin and Gillin, cultural sociology, Page 35.
2. R.M. Maciver & C.H. Page: Sociology, Page-15
3. Ogburn ad NimKaff, Hand Book of sociology.
4. Bogardus, Sociology, Page-15,

रॉस के अनुसार - " सामाजिक संस्थाएं सर्वमान्य इच्छा द्वारा सुस्थापित या स्वीकृत संगठित मानव सम्बन्धों का समूह है ।[1]

अर्थात् मानव सम्बन्धों के समूह जिसे सर्वसम्मति से स्वीकृत किया गया हो, को ही संस्था कहते हैं ।

समनर (Sumner) ने अपनी पुस्तक Folkways में स्पष्ट किया है कि संस्था का विकास सर्वप्रथम एक विचार के रूप में होता है । जब व्यक्ति के लिये यह विचार उपयोगी सिद्ध होता है तो वह उसकी पुनरावृत्ति करता है । फलस्वरूप दूसरे स्तर में वह विचार उसकी आदत बन जाता है । उसकी उपयोगिता को देखकर अन्य व्यक्ति भी उस विचार को अपनाते हैं तो तीसरे स्तर पर वही विचार जनरीति या लोक रीति बन जाता है । जब इसमें लोगों के अतीत के अनुभवों का समावेश हो जाता है तो चौथे स्तर पर यही लोक रीति प्रथा बन जाती है । धीरे - धीरे जब इस प्रथा को समग्र समाज के लिये कल्याणकारी मानकर अनिवार्य समझा जाने लगता है तब इसका नाम लोकाचार हो जाता है और जब इसी लोकाचार को एक स्पष्ट सामाजिक ढॉचा प्रदान कर दियाजाता है जिसके अनुसार हर व्यक्ति आचरण करने के लिये बाध्य होता है तब हम उसे संस्था कहते हैं ।

इस प्रकार संस्था का जन्म विचार के क्रमिक विकास से होता है । इस विकास की प्रक्रिया में संस्था के स्वरूप में समयानुसार परिवर्तन भी होते रहते हैं । एक काल के विचार आदतें और प्रथाएं किसी अन्य काल के लिये कुविचार और कुप्रथा के रूप में जाने जाने लगते हैं जिनके उन्मूलन के लिये नये सिरे से नये विचार चिन्तन की प्रक्रिया में सम्मिलित होते हैं । ये विचार सम्पूर्ण विकास की प्रक्रिया पूर्ण करने के पश्चात् संस्था का रूप ग्रहण करते हैं ।

---

1. E.A. Ross. Priniciples of sociology Page-667.

समाज एक संस्था है -

समाज मानवीय सम्बन्धों का जाल है और संस्था मानवीय आचरणों के नियमों की व्यवस्था है ।दोनों ही अमूर्त हैं और दोनों ही मानवीय क्रिया - कलाप के नियामक हैं किन्तु संस्था अपनी नियामक शक्ति द्वारा समाज को स्थायित्व प्रदान करती है । जिस समाज की संस्थाए जितनी अधिक प्रभाव शाली होंगी वह समाज उतना ही संगठित होगा तथा विघटनकारी शक्तियों का प्रतिरोधक होगा । उस समाज में प्रतिष्ठाहेतुक प्रतिस्पर्धायें तो होंगी किन्तु संघर्ष नहीं । उस समाज की आदर्श उपलब्धि पारस्परिक सहयोग और समूह की भावना होगी । अतः समाज को स्वस्थ बनाने के लिये संस्थायें एक सुयोग्य चिकित्सक का कार्य करती हैं जो उसे यह करो यह न करो का परहेज बताती रहती हैं ।

प्रसिद्व दार्शनिक एवं सामाजिक चिन्तक अरस्तू के विचार से मनुष्य यदि सामाजिक नहीं है तो वह मात्र पशु ही है अर्थात् समाज ही व्यक्ति का समाजीकरण कर उसे पशु से मनस्वी मानव होने का गौरव प्रदान करता है । चूँकि यह मनुष्य के समाजीकरण की प्रक्रिया समाज के द्वारा ही पूर्ण होती है इसलिये सामान्य रूप से समाज को संस्था के रूप में मान लेना अनुचित न होगा । इसे हम अन्य प्रकर से भी समझ सकते हैं । जैसे - सरकार के किसी मन्त्री द्वारा किये गये कार्य का यश अथवा अपयश सरकार को मिलता है इसी प्रकार समाज के विभिन्न अंगो (संस्था, समिति, समुदाय, समूह) द्वारा किये गये कार्यों का श्रेय समाज के खाते में ही जमा होता है । इस प्रकार संस्था को उसके समग्र रूप समाज के नाम से अथवा समाज को उसके अंशरूप संस्था के नाम से परिभाषित या सम्बोधित करना सामान्य तौर पर अनुचित नहीं कहा जा सकता है । अतः समाज और संस्था परस्पर पूरक ही हैं ।

ख. सामाजिक परिस्थितियों, मन:स्थितियों, परम्पराओं एवं आस्थाओं का शिवानी पर प्रभाव

यह सर्वविदित शाश्वत् सत्य है कि मनुष्य परिस्थितियों का निर्माता ही नहीं दास भी है । वह जिन परिस्थितियों में जन्मता, विकसित होता है और जीता है उनका उसके व्यक्तित्व, कृतित्व एवं चिन्तन पर अमिट प्रभाव पड़ता है । व्यक्तित्व के आधार पर व्यक्ति के कृतित्व का मूल्यॉकन किया जा सकता है और कृतित्व को विश्लेषित कर उसके व्यक्तित्व का आंकलन तथा व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों के सापेक्ष अध्ययन द्वारा तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों, मन: स्थितियों, परम्पराओं एवं आस्थाओं का प्रामाणिक चित्रण । जैसा कि महादेवी वर्मा ने गुरूदेव कवीन्द्र रवीन्द्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में साम्य दर्शाते हुए लिखा है - " जहॉ व्यक्ति को देखकर लगता है मानों काव्य की व्यापकता ही सिमट कर मूर्त हो गयी है और काव्य से परिचित होकर जान पड़ता है मानो व्यक्ति ही तरल होकर फैल गया है "[1]। कैसा अद्भुत साम्य है व्यक्तित्व और कृतित्व में ।

वस्तुत: साहित्यकार समाज से समाज के लिये कुछ सार्थक भाव चुनता है और समाज को ही किसी न किसी रूप में समर्पित कर देता है । यह चयन और समर्पण सामाजिक परिस्थितियों एवं उत्कृष्ट परम्पराओं की स्वीकृति का द्योतक है । समाज में रहकर पारस्परिक सम्बन्धों, तात्कालिक अनुबन्धों एवं अवसरानुकूल प्रबन्धों में मानव का समवेत अस्तित्व ही मुखरित होता है । कभी कभी समाज में रहकर भी परिस्थितियों के अनुकूलन या प्रतिकूलन की चेष्टा में निमग्न मानव को संघर्षरत भी देखा जाता है । इन्हीं परिस्थितियों की सहज अनुकूल स्वीकृति परम्पराओं का निर्धारण करती हुई प्रतीत होती हैं और मनुष्य परम्पराओं और परिस्थितियों की स्वीकृति का अस्वीकृति के चक्रव्यूह में अपनी मन: स्थिति का उद्घाटन अनायास कर बैठता है । तत्पश्चात् मानव मन में परिस्थिति, परम्परा से अनुप्राणित समाज के प्रति अनुकूल होने पर जन्म पाती है आस्था और प्रतिकूल होने पर प्रकट हो जाती है अनास्था। मानव आस्था और अनास्था का साथ पकड़कर आरम्भ करता है अपनी जीवन यात्रा ।

1- प्रणाम, महादेवी वर्मा, गद्य गरिमा में संग्रहीत, पृष्ठ 162.

शिवानी ने अपने कथावृत्तान्तों के सन्दर्भ में सामाजिक परिस्थितियों एवं परम्पराओं की की सार्थकता या निरर्थकता में अपनी मनः स्थिति को उलझते हुए पाया है । कभी कुछ उन्हें अच्छा लगा तो मनः स्थिति प्रभावित हुई और जब कभी उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगा तो भी मनः स्थिति प्रभावित हुई । अच्छा या अनुकूल लगने की स्थिति में समाज के प्रति आस्था कोई चरित्र गढ़ने या शब्द रूप पाने के लिए विह्वल हुई, यही विह्वलता तो साहित्य की सर्जना का प्राण है ।

सामाजिक परिस्थितियों का शिवानी पर प्रभाव -

मनुष्य समाज की मौलिक एवं आधारभूत इकाई है । समाज शास्त्रियों की दृष्टि में वह समाज का निर्माता है । किन्तु उसे समाज निर्माण की जटिल एवं क्रमिक प्रक्रिया में से विभिन्न वैविध्यपूर्ण परिस्थितियों से गुजरना भी पड़ता है । ये परिस्थितियाँ भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक एवं अन्य प्रकार की भी हो सकती हैं । ये विविध परिस्थितियाँ और मनुष्य की व्यक्तिगत भिन्नतायें एक - दूसरे को निरन्तर प्रभावित करती रहती हैं । एक दूसरे को प्रभावित करने की इस प्रक्रिया में मनुष्य कभी तो अपने समाज के निर्माता के रूप में दिखाई देता है तो कभी वह परिस्थितियों का दास मात्र दिखता है । मनुष्य के व्यक्तित्व एवं व्यवहार के निर्धारण में उसकी परिस्थितियाँ काफी हद तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं । वह जिन परिस्थितियों में जन्म लेता और जीता है, तदनुरूप ही उसकी जीवन शैली संस्कारित होती है । लगभग सभी समाजशास्त्री एवं मनोवैज्ञानिक इस मत से सहमत हैं कि व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके जैविकीय एवं पर्यावरणीय विशेषताओं का ही फल होता है अर्थात् मनुष्य अपने पर्यावरण का एक उत्पाद है । अतः वह मनुष्य चाहे सामान्य सामाजिक प्राणी हो या विशिष्ट साहित्यिक रचनाकार, वह उन सामाजिक परिस्थितियों जिसे समाजशास्त्री पर्यावरण कहते हैं , के प्रभाव से कभी मुक्त या अछूता नहीं रह सकता है ।

डॉ0 कृष्ण नंद जोशी ने सामाजिक परिवेश को परिभाषित करते हुए लिखा है - ' मानव किसी प्रदेश में, किसी अंचल में रहे , मानव है । उसके सुख-दुःख , उल्लास - वेदना, उसकी भावनायें बहुत कुछ समान हैं । वह अपनी प्रसन्नता मुस्कान में विखेरता है और उसके दुख - दर्द की कहानी उसके आँसू ही कहते हैं । फिर भी जीवन बहुरंगी है । भौगोलिक परिस्थितियाँ, सामाजिक परम्परायें तथा रीति - रिवाज और समाज विशेष का आर्थिक गठन - यह सब मिलकर प्रत्येक अंचल के जन - जीवन को विशिष्ट स्वरूप देते हैं ।[1]"

साहित्यकार वस्तुतः जन - जीवन का प्रतिबिम्ब होता है, इसीलिये उसके साहित्य में उस अंचल विशेष की वे सभी सामाजिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिस्थितियाँ परलक्षित होती है । शिवानी भी विभिन्न सामाजिक परिवेश के प्रभाव से अछूती नहीं रहीं, उन्होंनें स्वयं सहज भाव से इसे स्वीकारा भी है - " शान्तिनिकेतन की आठ सुदीर्घ वर्षो की स्मृति, रामपुर, ओरछा का रियासती वैभव, सौराष्ट्र की रस धार और दक्षिण का सरल अभिनव सौन्दर्य, इनके साथ कुमाँऊ से बार - बार मिलने का आनंद और विछोह की व्यथा कैसा बहुरंगी मूलधन है । इन अनमोल मोतियों से छलकते कलश से कितने ही अछूते कथानक निकाल सकती हूँ । यह कभी रीता नहीं होगा ।"[2]

यदि कथाकार की मनः स्थिति कथा के कथानक की जननी है तो सामाजिक परिवेश उसका जनक। सामाजिक परिवेश को स्वीकार न करने की स्थिति में कथानक यथार्थ से अछूता रहकर नितान्त काल्पनिक बन जाता है । लेकिन शिवानी का रचना - विधान यथार्थ परक है । इसी यथार्थ बोध के कारण उन्हें स्वातन्त्र्योत्तर काल के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द जैसे ख्याति मिली है । यह यथार्थ- बोध उन्हें विभिन्न परिवेशों से ही प्राप्त हुआ है ।

1- कुमाँऊ का लोक साहित्य, परिचयात्मक संग्रह , डॉ 0 कृष्ण नन्द जोशी , पृष्ठ - 9

2- मेरी प्रिय कहानियाँ, शिवानी, पृष्ठ 17

सामाजिक वातावरण के महत्त्व को स्वीकार करते हुए बाबू गुलाबराय का कथन है -" व्यक्ति के निर्माण में वातावरण का बहुत कुछ हाथ होता है । जिस प्रकार बिना अंगूठी के नगीना शोभा नहीं देता उसी प्रकार बिना देश - काल के पात्रों का व्यक्तित्व भी स्पष्ट नहीं होता है और घटना - क्रम के समझने के लिये भी इसकी आवश्यकता होती है ।"[1]

बाबू गुलाबराय के अनुसार (सामाजिक) वातावरण मानसिक भी हो सकता है और प्राकृतिक भी क्योंकि, " प्रकृति और पात्रों की मानसिक स्थिति का सामंजस्य पाठक पर अच्छा प्रभाव डालता है । जैसे किसी के मरते समय दीपक का बुझ जाना, सूर्य का अस्त हो जाना अथवा घड़ी का बन्द हो जाना आदि वातावरण में अनुकूलता उत्पन्न कर शब्दों को एक विशेष शक्ति प्रदान कर देता है ।"[2]

यह ध्रुव सत्य है कि साहित्यकार जिन परिवेशों में अपना जीवन - यापन करता है उसके आस पास के प्राकृतिक वातावरण, रहन - सहन, रीति - रिवाजों की झलक उसकी कृतियों में कहीं न कहीं परिलक्षित हो ही जाती हैं । गुजरात में जन्मीं, पहाड़ी अंचल में पलीं, बंगाल में (शान्तिनिकेतन में) पढ़ी शिवानी ने अपने कृतित्व में पहाड़ी जीवन का चित्रण बड़े ही चित्रोपम ढंग से किया है । पिता एवं पति के साथ देश- विदेश के परिभ्रमण ने उन्हें बहुश्रुत, बहुज्ञ एवं बहुभाषाविज्ञ बनाया । तभी उनके साहित्य में कई भाषाओं के शब्दोंका भण्डार एवं सजीव तथा जीते - जागते इन्सानों के स्वाभाविक चरित्र - चित्रण का बाहुल्य है । उनके इसी शिल्प वैशिष्ट्य के कारण पाठक उन्हें यथार्थवादी लेखिका मानते हैं और पत्रों द्वारा शरविद्ध करते हैं । पाठकों के पत्रों से शरविद्ध होकर शिवानी ने अपनी कृति 'एक थी रामरती ' में स्पष्ट किया है कि लेखक उन्हीं पात्रों का सफल चरित्र - चित्रण कर सकता है, जिन्हें वह निजी अनुभव में जानता और पहचानता है ' मैने अपने अधिसंख्य चरित्र

1- काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय, पृष्ठ 175

2- काव्य के रूप, बाबू गुलाब राय , पृष्ठ 176

वास्तविक जीवन से ही लिये हैं । मैनें सुने - सुनाये चरित्रों पर कभी कलम नहीं चलाई । बिना यथार्थ के कोई भी रचना प्रभाव उत्पन्न करने वाली नहीं हो सकती है । वह युग चला गया जब केवल काल्पनिक सुख का दृश्य दिखाकर पाठक को आकृष्ट किया जाता रहा । आज यथार्थ इतना कठिन और संघर्षपूर्ण है कि यदि उसे कल्पना में चित्रित करने की कोशिश करेगें तो पाठक स्वीकार नहीं करेगा ।[1]" ठीक ऐसा ही मत प्रेम चन्द्र जी का भी था, उन्होनें भी स्वीकार किया है - " मेरे अधिकॉश पात्र यथार्थ जीवन से लिये गये हैं, जब किसी पात्र का यथार्थ में अस्तित्व ही नहीं होगा, तब यह छायामात्र अनिश्चित और अविश्वसनीय हो उठती है ।[2]"

वस्तुतः मानव चरित्र के निर्माण में उसकी परिस्थितियों का विशेष योगदान रहता है । शिवानी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का यथेष्ट योगदान रहा है । शिक्षित, सुसंस्कृत एवं आभिजात्य वर्गीय वातावरण में रहने के कारण इनकी नायिकाएँ भी प्रायः उच्च वर्गीय, संस्कारशील , पढ़ी - लिखी और सभ्य समाज की होती हैं । ' मायापुरी ' उपन्यास की नायिका ' शोभा ' सभ्य परिवार की सर्वगुण सम्पन्न है किन्तु अपनी विपन्न आर्थिक परिस्थितियों के कारण नायक सतीश के समक्ष वह अपनी महत्ता स्वीकार नहीं कर पाती । 'अतिथि ' की नायिका ' जया ' एक कुलीन परिवार की है, अपनी सुसंस्कृत शालीनता के कारण मंत्रीप्रवर माधव बाबू की स्नेहभाजन बन उनकी पुत्रवधू बनती है । किंतु पति की मक्कारियों से खिन्न होकर वह आई0ए0एस0 अधिकारी बनकर उससे अपने व्यक्तित्व का लोहा मनवाती है । ' स्वयंसिद्धा ' की नायिका ' माधवी ' भी मधुयामिनी के दिन किसी प्रतिवेशिनी के अप्रिय एवं क्रूर परिहास से क्षुब्ध होकर अपना घर छोड़ देती है । पिता एवं स्वजनों द्वारा अवमानना की शिकार होकर वह अकेले ही संघर्षरत् रहकर एक प्रशासनिक अधिकारी बनकर स्वयं को ' स्वयंसिद्धा ' साबित करती है । ये सब नायिकाएं शिवानी के स्वस्थ सामाजिक परिवेश की ही देन हैं ।

1- एक थी रामरती , शिवानी , पृष्ठ 10

2- प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व , हंसराज रहबर, पृष्ठ 219

शॉंतिनिकेतन के शांत वातावरण ने भी शिवानी को प्रभावित किया है । बाल्यकाल के संस्कार जीवन में उतने ही अमिट हो जाते हैं जितने कि कच्चे घड़े में उकेरी हुई रेखाएं उसे पकाने के बाद अमिट हो जाती हैं । गुरूदेव का व्यक्तित्व एवं कृतित्व शिवानी के जीवन में वरदान ही सिद्ध हुआ । गुरूदेव के सान्निध्य ने यदि शिवानी को सृजन शक्ति दी तो उनके दर्शन ने उन्हें सर्जनात्मक दृष्टि दी । साथ ही कथानक के रूप में मिला उन्हें शॉंतिनिकेतन का रम्य और रंजक परिवेश । शिवानी के समग्र साहित्य का अनुशीलन करने के पश्चात् यह तथ्य उभर कर सामने आता है कि यदि उसमें से शॉंतिनिकेतन को घटा दिया जाये तो शेषफल कुमाऊँ ही प्राप्त होगा । गुरू गरिमा से अभिभूत शिवानी ने अपने साहित्य में यत्र-तत्र गुरूदेव की पंक्तियों को ही सूक्तिवत् उद्धृत कर उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है । यथा - 'मायापुरी ' की नायिका शोभा के द्वारा मंजरी के आटोग्राफ में लिखी गुरूदेव की पंक्ति - ' जीवनेर सुख खूंजीबारे गिया, जीवनेर सुख नाशा ।[1] (जीवन के सुख संधान में तुम जीवन के सुख को ही समूल विनष्ट कर गयी हो)

' मेरा भाई ' में शिवानी ने स्वीकार किया है कि कविगुरू की पंक्ति मेरी लेखनी पकड़ साथ - साथ चल रही है - ' सेई सत्य जा रचिबे तुमि

रामेर जन्मस्थान अयोध्यार चेये सत्य जैनों ।[2]

विश्वकवि की कविता 'अशेष' जो शिवानी को अतिप्रिय है, को ज्यों का त्यों कालिंदी की भूमिका कथन में उद्धृत किया है - ' कवि तबे उठे ऐशो

यदि थाके प्राण

विश्वासेर छवि ।[3] आदि ।

शिवानी पर गुरूदेव का एवं शॉंतिनिकेतन का इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि उनकी लेखन प्रतिभा ठीक उसी प्रकार प्रस्फुटित हुई जिस प्रकार अनुकूल परिस्थितियॉं पाकर बीज धरती के अन्तस्थल को भेदकर विशाल वृक्ष का रूप लेने के लिये अंकुरित होता है ।

1- मायापुरी, शिवानी , पृष्ठ -99

2- मेरा भाई, शिवानी , पृष्ठ 104

3- कालिन्दी, शिवानी, पृष्ठ 11

शिवानी के द्वारा शांतिनिकेतन में की गयी आशुकवित्व की समस्यापूर्ति उनके लिये साहित्य सृजन का पासपोर्ट बन गयी - ' इफ आई विअर ए बॉय (समस्या)

व्हाट वुड बिकम ऑफ दा बॉय (पूर्ति)

आई लव ।[1]"   (पूर्ति)

शांतिनिकेतन के ही प्रभाव से प्रभावित होकर शिवानी ने अपने संस्मरणों, कहानियों एवं उपन्यासों में शांतिनिकेतन के गुरूओं एवं प्राक्तन छात्र - छात्राओं को अपने साहित्य का वर्ण्य - विषय बनाया है । उदाहरण के लिये -

1- विश्वविभूति गुरूदेव (आमादेर शांतिनिकेतन)

2- हजारी प्रसाद द्विवेदी (आमादेर शांतिनिकेतन)

3- इंदिरा गाँधी (आमादेर शांतिनिकेतन),

4- अमला दी (आमादेर शांतिनिकेतन)

5- नन्दिता कृपलानी (आमादेर शांतिनिकेतन),

6- अनुसूया कपाड़िया (रति विलाप),

7- कृष्णवेणी, भास्करन (कृष्णवेणी),

8- मैत्रेयी (एक थी रामरती),

9- पूषे, गिरधारी (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 29 सितम्बर 1991) पृष्ठ 52

10- अरूंधती (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 13 अक्टूबर 1991) पृष्ठ 52

11- सुशीला (साप्ताहिक हिन्दुस्तान 20 अक्टूबर 1991) पृष्ठ 52

आदि का सटीक चित्रण शिवानी ने यथास्थान किया है । गुरूदेव और शांतिनिकेतन के साथ - साथ बंगला भाषा, खान पान, रहन - सहन एवं बंगाली क्षेत्र का भी प्रभाव शिवानी के साहित्य में देखने को मिलता है । जैसे ' चौदह फेरे' एवं 'कृष्णकली' में कलकत्ता की भव्यता का भव्य चित्रण देखने को मिलता है ।

1- जालक, शिवानी, पृष्ठ 123.

शाँतिनिकेतन के अतिरिक्त जिस समाज एवं परिवेश ने शिवानी पर अपनी गहन छाप छोड़ी है वह है कुमॉयू का शाँत, सुरम्य और संस्कृति सम्पन्न सामाजिक एवं भौगोलिक पर्यावरण । शिवानी का कुमायूँ प्रेम केवल शिवानी को ही आत्म-विभोर नहीं करता है बल्कि साहित्य के माध्यम से पाठकों को भी भाव विभोर करता है । शिवानी ने अपने साहित्य में कुमायूँ को जो स्थान दिया है, वह यद्यपि कुछ पाठको की द्रृष्टि में आलोचना का भी विषय बना है । फिर भी शिवानी ने उनकी आलोचना का खण्डन करते हुए कुमाऊँ के प्रति अपनी जो प्रतिबद्धता दर्शायी है, वह निश्चित ही 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ' का जीवन्त उदाहरण है । शिवानी कुमायूँ के प्रति अपने अपनत्व को व्यक्त करते हुए लिखती हैं - ' कुमाउंनी होने पर भी, विधाता ने मुझे कुमायूँ में जन्म लेने के सौभाग्य से वंचित रखा । मेरा जन्म हुआ सौराष्ट्र में और उसी स्नेही मातृवत् धाय माँ की छात्रछाया मेरे शैशव पर बनी रही, किन्तु कैशोर्य में मुझे एक बार अपनी विछुड़ी जन्म भूमि मिल गई । यह प्रायः ही देखा गया है कि जननी की किसी आकस्मिक लंबी बीमारी के कारण , प्रसूतावस्था में उससे विलग किया गया शिशु, जब एक बार फिर उसकी गोद में लौटता हे, तो जननी एवं शिशु, दोनों का एक दूसरे के प्रति मोह द्विगुणित हो जाता है। सहमी जननी, अपनी एक बार की बिछुड़ी सन्तान को, किसी शंकालु शाखामृगी की ही भाँति दिन - रात छाती से चिपकाए फिरती है । उस भयत्रस्त जननी की श्वास - प्रश्वास छाती से चिपके शिशु की ही श्वास - प्रश्वास बन उठती है । ऐसा ही शायद मेरे साथ हुआ है और उसी से यदि मेरी कहानियों में , मेरे उपन्यासों में कुमायूँ के प्रति मेरे मोह का स्वर रह - रहकर मुखर हो उठता है, तो मुझे आश्चर्य नहीं होता । किन्तु, मेरे आलोचकों की द्रृष्टि में मेरा यही सबसे बड़ा दोष है । क्यों मेरी प्रत्येक रचना कुमॉयू के ही सूर्योदय एवं सूर्यास्त तक सीमित रहती है ? क्यों मेरी प्रत्येक नायिका अपरूप सुन्दरी होती है ? क्यों उसके उठे कपोलों पर पिघले सुवर्ण की पीताभा निरन्तर चमकती चली जाती है? क्या यह दुहराव नहीं है ? मैं नहीं कह सकती कि मेरे पाठकों को भी यह दुहराव लगता है या नहीं । मेरे लिये तो कुमायूँ के प्रत्येक सूर्योदय एवं सूर्यास्त की निजी मौलिकता है । जिस परिवेश में मैं रही हूँ, जहाँ मैने सिर पर घास के अशक्य बोझ की वहन करती सुन्दरी ग्राम्या के अलस - पद - विन्यास को दिन - रात देखा है, वहाँ क्या

मुझे एक बार भी बासीपन की गंध आई है ?[1]"

आखिर शिवानी को कुमायूँ के बार - बार चित्रण - प्रतिचित्रण से बासी गंध आती ही क्यों ? आज तक क्या शिशु ने अपनी वत्सला माँ को देखकर उदासीनता व्यक्त की है ? वह तो एक पल को भी उसे अपनी पलकों की ओट नहीं होने देना चाहता । वह तो प्रतिपल उसकी ही गोद में किलकारियाँ मारकर खेलना चाहता है । फिर शिवानी का क्या दोष? शिवानी स्वयं स्वीकार करती हैं - " त्रिपुरसुन्दरी के मंदिर शीर्ष को चूमती, उत्तराखंड की सूर्यरश्मि, यदि जाने - अनजाने मेरी लेखनी को भी चूमती चली आई है, तो दोष मेरा नहीं प्रकृति का है । कुमायूँ का प्रत्येक शिलाखंड, प्रत्येक द्रुम- विद्रुम , प्रत्येक गिरिश्रृंग, जिस अलौकिक आभा से आलिप्त है , उसमें कहीं भी मुझे कोई कदर्यता या ग्लानि नहीं दिखती जब कि कहानी लिखने बैठती हूँ, स्मृतियों के जल प्रपात पर यत्न से धरी गरीयसी शिला कोई अदृश्य शक्ति उठाकर दूर पटक देती है, और वह तीव्र फुहार मेरे कागज - पत्र, मेरी लेखनी और स्वयं मुझे आपादमस्तक सराबोर कर छोड़ जाती है । मेरी अधिकाँश कहानियों और उपन्यासों के पात्रों की सृष्टि इसी पावन जलधार से अभिषिक्त हुई है ।"[2]

सच ही है कि शिवानी ने अपने अधिकाँश पात्रों को कुमायूँ से ही चुना है । 'कृष्णकली' के पात्रों के सन्दर्भ में शिवानी लिखती है - " यही किशुनली मेरी कहानी 'आमीन' की नायिका है और उस अरण्य में मिली और उसी अरण्य में विछुड गयी । वह विशी डॉक्टरनी मेरी 'कृष्णकली' की डॉक्टर पैट्रिक है । "[3] कृष्णकली के विषय में शिवानी का कथन है कि - " कुछ वर्षों पश्चात् मुझे मिली थी मेरी नायिका । पठान जनक का ऊँचा कद , कुमाउनी जननी की अपूर्व देहकाँति एवं विदेशी उच्च समाज के सहवास ने उस खान के खरे हीरे को अब कितने केरट का बना दिया होगा, यह मैं अनुमान लगा सकती हूँ यही कोहनूर मेरी कृष्ण कली है । [4]"

1- मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका, शिवानी , पृष्ठ 5.

2- मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका , शिवानी, पृष्ठ 6

3- मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका, शिवानी , पृष्ठ - 8

4- मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका, शिवानी , पृष्ठ -8-9

'भैरवी ' की प्रेरणा भी शिवानी को कुमायूँ से ही मिली थी - " भैरवी" की प्रेरणा भी मुझे बहुत कुछ अंशों में कुमायूँ से ही मिली ।[1]"

अपनी सशक्त एवं प्रिय कहानी 'करिये छिमा ' के विषय में शिवानी ने लिखा है - ' मेरी आज तक प्रकाशित कहानियों में ' करिए छिमा' मेरी सबसे प्रिय कहानी है । आरम्भ से अन्त तक, उसकी एक - एक पंक्ति को मैने कुमायूँ कथांचल में जड़े सलमे-सितारे दुःसाहस से उखाड़- उखाड़कर संवारा था । मैं जानती थी कि उस आंचल की कारचोबी एकदम असली है, किन्तु इस फरेबी युग में क्या उनकी असलियत की पुष्ट दलील से मैं अपने पाठकों का विश्वास जीत पाऊँगी ? कहानी की नायिका पतिता है, किन्तु जैसे तीर्थ स्थान में किया गया पाप पाप नहीं होता, ऐसे कुमायूँ की पतिता में भी एक अनोखा तेज रहता है, ऐसा मेरा विश्वास है । वह पतिता होकर भी पतिता नहीं लगती । अपने प्रेमी को बचाने में, अपनी अवैध सन्तान को जल समाधि देने में वह तिलमात्र भी विचलित नहीं होती । उस पतिता को सतीरूप में प्रतिष्ठित करना मेरे लिये उस कहानी का सबसे बड़ा सिर - दर्द बन गया था ।[2]

इसके अतिरिक्त शिवानी ने ' मायापुरी' 'चौदह फेरे ' 'रथ्या' 'कैंजा' 'उपप्रेती' 'कृष्णकली" 'श्मशान चपा" 'पूतोंवाली' विवर्त्त" 'कालिन्दी आदि उपन्यासों एवं बहुत सी कहानियों के पात्र भी कुमायूँ अंचल से ही चुने हैं । इस प्रकार शिवानी ने अपने पात्रों एवं स्थलों के चयन मे कुमायूँ को वरीयता देकर उस विश्वास को और भी सुदृढ़ किया है जो उन्हें निरन्तर लिखने की प्रेरणा देता रहा है -- ' यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि कुमायूँ कथांचल के उदार अर्णव - से मासिपात्र मे लेखनी डुबों - डुबोकर निरन्तर लिखते रहने पर भी , ब्रम्हा के नाभिकुंड स्थित अमृत की भाँति , उसका अशेष कोष, कभी रिक्त नहीं हो सकता ।[3]' अतः यह कहना अनुचित न होगा कि जिस प्रकार प्रेम चन्द के साहित्य में बनारस के आस - पास का परिवेश झलकता है, वृन्दावन लाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यासों में बुन्देलखण्ड जीवन्त हो उठा है उसी प्रकार शिवानी की अधिकाँश कृतियाँ भी कुमायूँ अंचल की सुकुमारिता को अपने में समेटे हुए मूर्त्त हो उठी हैं ।

1- मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका, शिवानी, पृष्ठ 9

2- मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका , शिवानी, पृष्ठ - 9

3- मेरी प्रिय कहानियाँ, भूमिका, शिवानी, पृष्ठ 11

शिवानी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में उनके उभय कुलों का प्रभाव भी स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है । पितामह के सनातनी संस्कारों ने जहाँ शिवानी को भारतीय संस्कृति के प्रति आस्थावान बनाया है, वहीं उनके पति के उदारवादी दृष्टिकोण ने उन्हें वर्तमान समाज में समायोजन करने की अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है " जब तक मेरे पति जीवित रहे, उन्होनें मुझे लेखन के लिये बराबर प्रोत्साहित किया । उनको मेरे लेखन पर गर्व था । मैं तब कोई भी रचना किसी भी पत्र -पत्रिका अथवा प्रेस मे उनके पढ़े बिना नहीं भेजती थी । जब कभी मेरी किसी रचना में कोई व्यक्तित्व अथवा चरित्र उजागर होता तो कहते - ऐसा न करो । वे मेरे एकमात्र सच्चे आलोचक थे । उनकी हिन्दी भी बहुत अच्छी थी । कभी मैं अपनी रचना उन्हें पढ़कर सुना दिया करती थी और कभी वे स्वयं पढ़कर आवश्यक सुझाव दे दिया करते थे । "[1.]

विदुषी माँ एवं आधुनिक विचारों के पोषक विद्वान पिता तथा आशुकवि भाई के सान्निध्य ने उन्हें पठन और लेखन के लिये प्रेरणा दी है जिसे शिवानी ने अपने दिये-हुए साक्षात्कारों में अनेक बार स्वीकार किया है - ' हमारे परिवार का वातावरण मेरे लेखिका बनने के सर्वथा उपयुक्त था । फिर में नौ वर्ष शाँतिनिकेतन में गुरू देव के संरक्षण में रही उसका भी मुझ पर प्रभाव पड़ा । लिखने के प्रति मेरा रूझान बचपन से ही था । यों कह सकते हैं कि मेरे अन्दर लेखिका बनने का बीज मौजूद था, और उपयुक्त वातावरण मिलने पर मैं लेखिका बन गयी ।[2.]

शिवानी के पितामह बनारस हिन्दू विश्वविघालय में धर्मोपदेशक एवं कट्टर सनातनी थे । संभवत इसीलिये शिवानी के पात्र रीति-रिवाजों के मामले में कट्टर और शिक्षा तथा व्यवस्था आदि विषयों में उदार हो गये हैं । इस आधार पर यह कहना तर्क संगत ही होगा कि शिवानी पर भी उनकी परिस्थितियों का प्रभाव पड़ा है, जो समय - समय पर उनकी कृतियों में पात्रो द्वारा व्यक्त हुआ है ।

1- एक थी रामरती, शिवानी (दुर्गाप्रसाद नौटियाल से बातचीत) पृष्ठ -16

2- एक थी रामरती, शिवानी (दुर्गाप्रसाद नौटियाल से बातचीत) पृष्ठ18

अध्यययन की सुविधा के लिये परिस्थितियों को मुख्यतः दो वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है — भागोलिक परिस्थितियाँ एवं सामाजिक परिस्थितियाँ । सामाजिक परिस्थितियों का भी वर्गीकरण निम्न रूपों में संभव है -

1- उच्च या अभिजात्य वर्ग की सामाजिक परिस्थितियाँ

2- मध्यम वर्ग की सामाजिक परिस्थितियाँ

3- निम्न वर्ग की सामाजिक परिस्थितियाँ ।

उच्च वर्ग की सामाजिक परिस्थितियों में सर्वत्र सम्पन्नता झलकती है तथा निम्न वर्ग की सामाजिक परिस्थितियॉ विपन्नता की दयनीय स्थिति का हर क्षण आभास कराती रहती है । जबकि मध्यम वर्गीय सामाजिक परिस्थितियाँ इन दोनो से रहित किन्तु दोनों से सेतु की तरह सम्बन्धित होती हैं । इनका जीवन सम्पन्नता और विन्नता के बीच घड़ी के पेण्डुलम की तरह अस्थिर रहता है । वे सम्पन्नता से जीने के लिये प्रयासरत् दिखाई देते हैं किन्तु सामान्य प्रतिकूलता भी उन्हे विपन्नता से बचाने के लिये संघर्ष करने हेतु विवश कर देती है । समाज में इन्ही मध्यमवर्गीय परिवारों का बाहुल्य है । किन्तु शिवानी के साहित्य में उच्च वर्गीय सामाजिक परिवेश में पले एवं ढले पात्रों की बहुलता है । इसका एकमात्र कारण उनका अभिजातीय जीवन स्तर रहा है । शिवानी के अधिकाँश पात्र भव्य- भवनों के स्वामी, देशी - विदेशीय मोटर गाड़ियों के मालिक, उच्च प्रशासनिक अधिकारी एवं कुल में कुलीन तथा सौन्दर्य में अद्धितीय हैं, जो शिवानी के सामाजिक स्तर के परिचायक हैं ।

चूँकि उच्च वर्गीय परिवारों में भृत्यों की भरमार होती है और ये भृत्य निम्न वर्गो से आये स्त्री - पुरूष होते हैं । अतः इनका प्रभाव भी शिवानी के साथ- साथ उनके साहित्य मे प्रतिबिम्बित होता है । मध्यम वर्ग अधिसंख्यक होने के बावजूद भी शिवानी के साहित्य में अल्प प्रभावकारी है ।

इसके अतिरिक्त शिवानी ने जिन सामाजिक परिस्थितियों को जिया है या निकट से देखा है और जिनसे प्रभावित हुई हैं, उनका भी दिग्दर्शन निम्न " पात्र-तालिका' के आधार पर (सामाजिक वर्गीकरण के अनुसार) सरलातापूर्वक किया जा सकता है -

कृति का	अभिजात वर्ग		मध्यम वर्ग		निम्न वर्ग	
नाम	स्त्री पात्र	पुरूष पात्र	स्त्री पात्र	पुरूष पात्र	स्त्री पात्र	पुरूष पात्र
मायापुरी	सविता	तिवारी जी	गोदावरी,मंजरी	सतीश, जनार्दन, अविनाश	शोभा,दुर्गा	देवीदत्त, देवीलाल
चौदह फेरे	अहल्या,पेट्रेशिया	कर्नल पाण्डे, विल्सन सर्वेश्वर,शिरोमणि	ताई	राजेन्द्र (राजू)	मा ल्लका सरकार	भौनिया, रामनाथन अहमद
कृष्णकली	कृष्णकली, पन्ना, कुन्नी,	प्रवीर,विधुतरंजन पाण्डे जी, राजा गजेन्द्र वर्मन	डॉ0 पैट्रिक	बॉबी	पार्वती	असदुल्ला
भैरवी	सोनिया, चन्द्रिका, विष्णुप्रिया	विक्रम	चन्दन,राजेश्वरी	तिवारी जी	-	अघोरी अवधूत
श्मशान चंपा	कमलेश्वरी सेन, मयूरी	सेनगुप्त	चंपा,रूक्की,जया	मधुकर	खुदु	-
सुरंगमा	मिनी	दिनकर	राजलक्ष्मी,सुरंगमा,वैरोनिका	रॉबर्ट	-	गजानन
अतिथि	चंद्रा,लीना,सुधा	कार्तिकेय,माधव बाबू	जया, मायादेवी	श्यामाचरण	कुसुमा	मुन्ना लाल

कालिन्दी	डॉ0कालिन्दी, शीला	डॉ0 जोशी, देवेन्द्र	शारदा वर्मा	कुलभूषण वर्मा	-	-
कैंजा	नन्दी तिवारी	-	-	सुरेश कुमारभट्ट	कमला, मालदारिन	-
रति विलाप	अनुसूया	करसनदास कपाड़िया	रबिया बेन	हरसुख	हीरा	-
अभिनय	रजनी पटेल	राजा साहब,सत्येन्द्र शेखर	जीवन्ती, शाँता	-	-	-
स्वंयसिद्धा	माधवी,रेचल ऐंड्रूज	कौस्तुभ, शिवदत्त	-	-	-	ड्राइवर
रथ्या	बसन्ती	-	सुरसती,जीवन्ती	विमलानन्द	-	-
माणिक	नलिनी मिश्रा, रम्भा	राम सहाय, रमेन्द्र	-	-	दीना बाटली वाला लक्ष्मी	-
किशुनली	-	-	कारवी	शास्त्री जी	किशना (पगली)	-
गोण्डा	सुपर्णा दत्ता,राजमेहरा	रोहिताश्व, वेद मेहरा	-	-	-	मौलवी बाबा
कृष्णवेणी	कृष्णवेणी,लक्ष्मी	नटराजन	-	भास्करन, करूणाकरण	-	माधव
मोहब्बत	डॉ0वैदेही बर्वे दामिनी, फिलिस	डॉ0रॉबर्ट लीन, डॉ0 मनोहर बर्वे	मालिनी	इब्राहिम	नैनी,सिस्टर जोजेफ, सिस्टर रोजमेरी	अनवर,बीरसिंह, लक्ष्मण

विवर्त्त	फिलिस	सुधीर,मामाजी,डैडी,	ललिता,हीरा,कालिन्दी	पांडे जी, आर्थर	-	-
तीसरा वेटा	सावित्री, रंजनाकाक, सुनयना	अनिरूद्ध,अशोक अमल, विमल	-	दया राम	सुन्दरिया	-
पूतों वाली	स्मिता	अखिल,अमित,अजय अनिल,आदित्य,चंदर	पार्वती	शिवसागर मिश्रा, बदरी दुबे	-	-
बदला	रत्ना,रामेश्वरी मामी जी	त्रिभुवन नाथ, ब्रजकुमार मामाजी	-	अरूण	-	रामस्वामी
चलखुसरों घर अपने	मालती	राजाराजकमल सिंह, माथुर साहब	कुमुदजोशी,उमा गोदी	धरणीधर, लालू	काशी,रामपियारी	नूरबक्श
तिलपात्र	दिलराज कौर	अखिलेश्वर शर्मा	कुसुम	-	-	रघुनाथ
पाथेय	तिलोत्तमा ठाकुर,छंदा कमला सर्वे,बुआ जी,	प्रतुल,माधव बाबू निखिल	मारिया,	जॉन, डॉ0 खजानचन्द्र विनायक	आनन्दी, हरिबाला	-
कस्तूरीमृग	अम्माजी, राजेश्वरी, वृन्दा	नन्हें,पिता जी	भगौती,कनक,	अवध,जगतनारायण घोष बाबू	-	रामधनी, नरबहादुर
विषकन्या	दामिनी,कामिनी	डैडी,रोहित,सिन्हा,साहब, जज साहब	-	-	-	भवानी
उपप्रेती	नन्दी	उमेश	रमा	पाण्डेजी	-	-
दो सखियाँ	रुक्मिनी, राधा	रोहित,श्याम,अतुल,	गुरविन्दर कौर	हरदयाल बाबू	-	सरदार करतारसिंह

सामाजिक मनः स्थितियों का शिवानी पर प्रभाव -

मनः स्थिति का सामान्य अर्थ मन की स्थिति या मनोदशा है । न तो सभी मनुष्य एक जैसी मनः स्थिति के होते हैं और न ही कोई मनुष्य सदैव एक जैसी मनः स्थिति में रह पाता है । व्यक्ति से व्यक्ति की मनः स्थिति की भिन्नता के कारण ही कोई व्यक्ति सामान्य मनः स्थिति का होता है तो कोई असामान्य मनः स्थिति वाला । असामान्य मनः स्थिति वाले मनुष्य या तो मानसिक रूप से विकृत व्यक्ति होते हैं या असाधारण क्षमता या व्यक्तित्व के धनी । शिवानी ने अपने साहित्य में पात्रों के माध्यम से लगभग सभी मनः स्थितियों वालें व्यक्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण कर यह निष्कर्ष निकालने के लिये पाठकों को सूत्र थमाया है कि उनका साक्षात्कार इन सभी मनः स्थितियों वाले प्राणियों से हुआ ही नहीं बल्कि उन्होनें शिवानी को अन्तस्तल की गहराई तक प्रभावित भी किया है । तभी तो उनकी लेखनी इतना यथार्थ चित्रण करने में सफल हुई हैं ।

शिक्षित परिवार में जन्मीं तथा सुसंस्कृत परिवेश में पलीं, विवेक सम्पन्ना शिवानी सदैव आत्म निर्णय लेंने की स्थिति में रही हैं । चाहे शांति निकेतन में नई - नई शरारतों एवं शैतानियों से आश्रम के नियम भंगकर ' नियमभंगिनी' के रूप में अगुवाई करने का प्रश्न रहा हो और चाहे जीवन के अन्य क्षेत्रों में निर्णय लेने की समस्या रही हो, शिवानी ने कभी भी अपने को ऊहा - पोह के व्यामोह में नहीं उलझाया प्रत्युत् त्वरित निर्णय लेकर अपनी स्वस्थ मनः स्थिति का परिचय दिया है । यही त्वरित निर्णय लेने की क्षमता उनके पात्रों में विद्यमान है । उनके पात्रों के निर्णय उनके निर्णय होते हैं, दूसरों के सुझाव नहीं । भले ही उन निर्णयों के परिणाम सुखद हों या दुखद। 'अतिथि' की जया एक स्वाभिमानिनी पात्र हैं । पति से अपमानित होकर पति गृह का परित्याग कर वह आई0ए0एस0 बनने का आत्म निर्णय लेती है और सचमुच आई0ए0 एस0 बनकर वह निर्णय लेने की क्षमता के साथ - साथ अपनी स्वस्थ मनः स्थिति का परिचय भी प्रस्तुत करती है । किन्तु 'श्मशान चंपा ' की जूही की मनः स्थिति ठीक इसके विपरीत हैं । वह अपने राखीबंद भाई तनवीर से अचानक शादी करने का आत्मनिर्णय ले पतन के निकृष्टतम कगार तक पहुँचती है । जूही के इसी दुष्कृत्य के कारण ' मधुकर ' की मनः स्थिति भी प्रभावित होती है और वह उसकी बड़ी बहन चंपा से अपनी सगाई तोड़ लेता है ।

इसी प्रकार 'चीलगाड़ी'[1] कहानी की नायिका का एअर होस्टेस बनने का निर्णय, 'चांचरी'[2] कहानी की 'बिन्दी' का सिद्धिमाई बनने का संकल्प, 'अभिनय'[3] उपन्यास की जीवन्ती का अभिनेत्री बनने का विश्वास पूर्ण निर्णय, ' स्वयंसिद्धा '[4] की माधवी का घर छोड़ने के पश्चात् आई ०ए० एस० बन जाना आदि सभी नारी के त्वरित निर्णय लेने की सामर्थ्य को स्वयंसिद्ध करती हैं । अपने लक्ष्य के उत्कर्ष को प्राप्त करने वाले इन पात्रों की मनः स्थिति स्वयं शिवानी की मनः स्थिति ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

'शपथ'[5] कहानी की शुभ्रा का अप्रैल फूल बनाने के लिये शिवलिंग पर हाथ रखकर झूठी शपथ खाकर झूठ को सत्य सिद्ध करने का निर्णय असमान्य मनः स्थिति का द्योतक है । इसी प्रकार अर्द्धशतक वर्षों तक अविवाहित रहकर अविवाहित रहने का प्रण पूरा करने वाली ' चिरस्वयंवरा '[6] कहानी की 'रजनी दी' का अचानक विवाह करने का निर्णय उनकी असमान्य मनः स्थिति का ही परिचायक है ।

निर्णय लेने की क्षमता के अतिरिक्त शिवानी को हम उन मनः स्थितियों से भी प्रभावित पाते हैं , जहॉ उनका जीवन के कटु यथार्थ से साक्षात्कार हुआ है । कुष्ठ रोगियों की समस्या, अनाथालय में पलते अनाम शिशु , वेश्या होकर भी पाक- साफ जीवन जीने वाली 'श्मशान चंपा' की गुरू केनाराम की अधम दासी 'कमलेश्वरी सेन '[7] तथा कुलीन परिवार में जन्म लेकर कुल कंलक बनने वाली 'सुरंगमा ' की 'राजलक्ष्मी'[8] 'चौदह फेरे' की 'मल्लिका सरकार '[9] तथा पुनर्जन्म एवं प्रेत - प्रसंगों ने शिवानी के साथ उनके पात्रों की मनः स्थिति को भी प्रभावित किया है । यही कारण है कि इस प्रकार की घटनाओं का बाहुल्य शिवानी के कथानकों में पाया जाता है ।

1- मेरी प्रिय कहानियों में संकलित
2- एक थी रामरती में संकलित
3- रतिविलाप में संकलित
4- स्वयंसिद्धा में सकंलित
5- विषकन्या में संकलित
6- चिरस्वयंवरा
7- श्मशान चंपा , उपन्यास
8- सुरंगमा , उपन्यास
9- चौदह फेरे ' उपन्यास

सामाजिक परम्पराओं का शिवानी पर प्रभाव -

वे सामाजिक व्यवहार या रीति - रिवाज जो अपनी निरन्तरता बनाये रखते हैं, परम्पराओं की श्रेणी में आते हैं । परम्पराएं वे व्यवहारिक रीति - रिवाज हैं जिनके अनुसार चलकर व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनने की मंजिल तक सुगमतापूर्वक पहुँचता है । परम्पराओं का तोड़ना समाज और व्यक्ति दोनों के लिये हानिकारक होता हैं । परम्पराए हमारी जीवन पद्धति को सुगम एवं सहज बना देती हैं । ये परम्परायें प्रत्येक समाज, समुदाय, समूह, कुल, परिवार आदि के लिये भिन्न-भिन्न हो सकती हैं किन्तु सबका उद्देश्य केवल व्यक्ति को सामाजिक बनाना होता है । शिवानी के साहित्य में कुमायूँ क्षेत्र की परम्पराओं का पर्याप्त विवरण प्राप्त होता है । अतः यह निःसंकोच रूप से कहा जा सकता है कि शिवानी पर कुमायूँ समाज का व्यापक प्रभाव पड़ा है जिसने उनके साहित्य को सत्य के अत्यधिक निकट ला मौलिकता एवं यथार्थता प्रदान की है ।

शिवानी की नस-नस में कुमायूँ समाया होने के कारण वहाँ की समाजिक परम्पराओं का निर्वाह भी शिवानी के साहित्य में सामाजिक संस्कारों के समय देखने को मिलता है । 'चौदह फेरे ' में शिवानी ने कुमायूँ के समकालीन वातावरण का सशक्त चित्रण प्रस्तुत किया है । तत्कालीन कुमायूँ समाज की एक रूढ़िवादी परम्परा द्रष्टव्य हैं - ' कुमायूँ तब सनातनी संस्कारों की जटिल बेड़ियों में जकड़ा था । एक साहसी कुमाऊंनी तरूण जापान भाग गया था और उसकी विदेश - यात्रा से क्षुब्ध होकर, कुमायूँ के महापंडितों ने उसके पूरे परिवार को जाति - च्युत कर दिया था ------- पौत्र के अंग्रेजी स्कूल से लौटने पर, उस पर विधिवत् गोमूत्र का छिड़काव कर उसे पितामह की चरणधूलि मिलती ।[1]"

पुत्र - पुत्रियों के अत्यधिक शिक्षित हो जाने पर भी कुमायूँ समाज में अपने ही पहाड़ी समाज में विवाह करने की परम्परा थी । ' चौदह फेरे ' के अत्याधुनिक कर्नल पाण्डे अपनी अत्याधुनिक परिवेश में पली उच्च शिक्षिता पुत्री अहल्या की शादी अपने ही समाज में करना चाहते हैं --' फिर एक बात और है बेटी, मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा विवाह अपने ही समाज में हो और हमारे समाज में सर्वेश्वर ही सबसे जगमगाता रत्न हैं ।'[2]

1- चौदह फेरे , शिवानी , पृष्ठ - 7

2- चौदह फेरे , शिवानी , पृष्ठ , 159

उपन्यास में विवाह समस्या की रूढ़ प्रथा, सनातनी और आधुनिक संस्करों के संघर्ष की सफल अभिव्यक्ति कुई हैं । इसके अतिरिक्त पहाड़ में लड़की के द्वारा अपने से बड़ों के जैसे माता-पिता , चाचा-चाची आदि के पैर छूने की भी परम्परा है ' ' वह (अहल्या) दबे पैरों से आकर, चाचा के पैर छू सुभद्रा के पास ही बैठ गयी ।"[1]

इसी प्रकार 'श्मशान चंपा ' उपन्यास में भी अपने ही समाज में स्थित जाति और संस्कारों की रूढ़ परम्परा के कारण बेचारी चंपा का समूचा जीवन ही अभिशप्त हो जाता है --' यह तो तुम्हारा भाग्य अच्छा है बोज्यू, जो स्वयं भागकर तुम्हारी लड़की ले जाने को समधियाने वाले घुटने टेक रहे हैं । पहाड़ में क्या कभी ऐसा होता है । देख ही तो रही हो, हमारे पहाड़ के लड़कों को भी अब कैसे ' पर' लग गये हैं । जो विदेश गये तो वहीं के हो लिये । जो यहाँ अच्छी - अच्छी नौकरियों पर हैं, उन्हें जैसी उर्वशियों की चाह रहती है वैसी ढूढ़ने में सिर के आधे बाल पक जाते हैं ।'[2]

'भैरवी' उपन्यास की राजेश्वरी की भी मान्यता यही है कि विवाह अपने ही समाज में होना चाहिये । इसी लिये वह अपनी पुत्री चंदन को लेकर पहाड़ जाती है । और पहाड़ी युवक 'विक्रम ' से ही उसकी शादी करती है ।

यही समस्या 'कालिन्दी ' उपन्यास की भी है । अपने ही समाज में विवाह करने की सामाजिक मानसिकता के कारण नायिका डॉ0 कालिन्दी अविवाहित रहने को विवश होती है --- ' कब से दीया बालकर हमदोनों तेरे लिये लड़का ढूढ़ रहे थे, कहाँ मिला कोई - पहाड़ी लड़कों ने तो जैसे पहाड़ की लड़कियों से शादी न करने का ही संकल्प ले लिया हैं ।'[3]

अन्तर्जातीय विवाह शिवानी को मान्य नहीं हैं । शायद इसलिये जूही 'श्मशान चंपा) का तनवीर से स्वेच्छा से किया गया प्रेम- विवाह उसके जीवन को अभिशप्त करने के साथ-साथ उसके समूचे परिवार को भी अभिशप्त कर देता है ।

1- चौदह फेरे , शिवानी, पृष्ठ 57

2- श्मशान चंपा, शिवानी , पृष्ठ 30

3- कालिंदी, शिवानी , पृष्ठ 36

'कृष्णकली' में भी जातिगत धार्मिक मान्यताओं को प्रश्रय मिला है तभी तो पठान जनक और कुमाऊँनी माँ की पुत्री कृष्णकली यह सोचने के लिये विवश होती है - ' किसी क्षण भी आकर कुन्नी उसकी खोखली अनामा सील मुहर को व्यर्थ कर सकती हैं । कुन्नी का कुल हैं, गोत्र है ।, खानदान हैं, है पिता की प्रतिष्ठा । और कली का न कुल हैं, न गोत्र , न खानदान, न पिता की प्रतिष्ठा ही है । ।"

मुस्लिम पिता और हिन्दू माँ की सन्तान का धर्म क्या होगा ? वह अपने मिश्रित संस्कारों के लिये किसे दोष दें ? आदि प्रश्न ही सामाजिक परम्पराओं को कमजोर बनाने वाले हुआ करते हैं । 'कृष्णकली' अपने अनाम कुल, गोत्र के कारण चाहकर भी ' प्रवीर' से शादी नहीं कर पाती ।

'मायापुरी ' में पहाड़ के रीति- रिवाजों एवं परम्पराओं का यत्र-तत्र विस्तृत उल्लेख हुआ है । यथा ---

" पहाड़ के स्कूलों में नंगे सिर जाने का अर्थ ही होता अध्यापक द्वारा कठोर चेपटाघात और कर्णमर्दन ।[2]

"छिः-छिः- । जो जनेऊ के पहले बाल कटवाता है , वह अगले जनम में लड़की बनता है ।[3]

" उसके गाँव में पारिजात का एक पेड़ उसी के घर से सटकर लगा है। भोर होते ही गाँव की औरतें आँचलों में भर-भरकर 'लाख' चढ़ाने ले जाती है । कहते हैं कि एक लाख पारिजात पुष्प चढ़ाने से विष्णु प्रसन्न हो निः-सन्तान को सन्तान एवं कुमारियों को कार्तिकेय - सा सुन्दर वर देते हैं । [4] पुष्प अर्पित करने की इस रीति के साथ ग्राम्य बालाओं की ईश्वर के प्रति उत्कट श्रद्धा भी व्यक्त होती है । इसके अतिरिक्त पहाड़

1- कृष्णकली, शिवानी, पृष्ठ - 255

2- मायापुरी , शिवानी , पृष्ठ - 5

3- मायापुरी , शिवानी पृष्ठ - 9

4- मायापुरी, शिवानी, पृष्ठ - 22

में परदेश से किसी के गृह - आगमन पर शंख बजाकर खुशी जाहिर करने की भी परंपरा थी 'अम्मा, मैं आ गया । 'शोभा' - अम्मा वही से बोली - शंख बजा दें ।[1] चौदह फेरे ' में कर्नल पाण्डे एवं उसकी पुत्री अहल्या के पहाड़ आगमन पर भी शंख बजाकर उनका स्वागत किया जाता है -- ' अरी सुनती हो, अपना शिबिया आ गया है, अरे भई बहू, शंख तो बजाओं ।[2] शिवानी ने पहाड़ी परम्पराओं का प्रचुर मात्रा में उल्लेख किया है । इनका अर्थ यही है कि कुमाऊँ की परम्पराओं में शिवानी के प्राण बसे हैं । यथा - " पहाड़ में केवल सवा रूपया जामाता को थमाकर, कुश और हल्दी के बूते पर ही कन्यादान किया जाता था ।[3]
'कुमायूँ के विवाह में न कोर्टशिप के लिये स्थान है, न रोमाँस की अनुमति ।[4]"
'विवाह कर, कर्नल अकेले ही कलकत्ता लौट आया । बहू को साथ ले जाने की धृष्टता तब कुमायूँ का तरूण नहीं कर सकताथा ।। पुत्र बहू को सास- ससुर की सेवा के लिये ब्याह कर लाता था, प्रणय - निवेदन की सार्थकता के लिये नहीं ।[5]
"ग्राम की परम्परा के अनुसार, वहाँ पाली गयी गाय - भैसों का दुग्ध - विक्रय सर्वथा वर्जित था ।[6]"

भारतीय संस्कृति एवं भारतीय परम्पराओं के प्रति भी शिवानी की गहरी आस्था है । भारतीय जन्म दिन संस्कार का भी एक विशिष्ट व्याकरण है -- ' हमारे यहाँ तो जन्म दिन के दिन अखँड ज्योति जलाई जाती है , बुझाई नहीं जाती है ।ये तो मनहूस अंग्रेजों का रिवाज हैं , हमारा नहीं । हमारी संस्कृति ने हमें दीप के निर्वाण का सबक कभी नहीं सिखाया । तीव्र झंझाबात तूफान में भी हमारे दीप की शिखा सदा निष्कम्प रहे, यही हमें सिखाया जाता है ।[7]"

1- मायापुरी, शिवानी, पृष्ठ - 27
2- चौदह फेरे , शिवानी , पृष्ठ 56
3- चौदह फेरे, शिवानी, पृष्ठ - 9
4- चौदह फेरे पृष्ठ 75
5- चौदह फेरे , शिवानी, पृष्ठ - 10
6- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ 32
7- आकष शिवानी, पृष्ठ - 32

हमारे देश के तीज - त्योहर भी सात्विक भावनाओं के प्रतीक हैं । वस्तुतः भारत की संस्कृति अमर संस्कृति है और इस संस्कृति का शिवानी पर विशेष प्रभाव पड़ा है । भारतीय पर्वो की स्वस्थ परम्पराओं के सन्दर्भ में शिवानी ने लिखा है " हमारे सभी उत्सवों का आयोजन, सात्विक भावनाओं को पुष्ट करने की दृष्टि से ही किया जाता है, भले ही वह दशहरा हो या दीवाली, होली हो या ईद, ये सभी उत्सव पवित्रता के, भाईचारे के, सह अस्तित्व एवं सौजन्य के पोषक रहे हैं । यही कारण है कि भारत के तीज - त्योहार भले ही वे किन्हीं धर्मावलम्बियों के क्यों न हो, विधर्मियों द्वारा भी सराहे जाते हैं । "[1]

हमारे देश में विवाह को एक पवित्र सामाजिक संस्कार माना गया है , यह एक अनिवार्य परम्परा है और शिवानी इन परम्पराओं के प्रति इतनी अधिक आस्थावान हैं कि लंदन में सम्पन्न होने वाले अपने पुत्र के विवाह में उन सभी आवश्यक सामग्रियों का संग्रह अपने साथ ले गईं जिनकी भारतीय परम्परा के अनुसार जरूरत पड़ती हैं " मैं भी पूरी तैयारी करके ही घर से निकली थी । पूर्वांग के लिये मातामह, पितामह, प्रपितामह का पूरा वंश - वृक्ष, पाँचों पल्लव, लाल-पीला वस्त्र , अंचलग्रन्थि के लिये केसरिया वस्त्र रोली, चन्दन, कुश का ब्रम्ह , गंगाजल आदि ।[2]

अन्त में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है " कि एक ओर कूर्मांचल के सुकुमार परिवेश ने शिवानी को सर्वाधिक प्रभावित किया है, वहीं कूर्मांचल की ही परम्पराओं एवं रीति- रिवाजों ने भी शिवानी पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ा हैं । तभी तो शिवानी के समग्र साहित्य में कुमॉयू की कट्टर परम्पराओं की झलक अधिक मिलती है ।

1- आकष शिवानी, पृष्ठ 78

2- यात्रिक, शिवानी, पृष्ठ - 17

सामाजिक आस्थाओं का शिवानी पर प्रभाव -

आ उपसर्ग युक्त स्थ धातु से सम्पन्न आस्था शब्द वस्तुतः चित्त में भली भाँति प्रभावशाली धारणा का द्योतक हैं यही आस्था सामान्यतः लोगों -के--- विचार, मत, धर्म, सिद्धान्त आदि पर विश्वास करने से व्यक्त होती है। जब तक इन पर विश्वास रहता है, तब तक आस्था रहती है और जैसे ही विश्वास समाप्त होता है, आस्था भी समाप्त हो जाती हे । विश्वास के अर्थ में हम मान्यता शब्द का भी प्रयोग कर सकते हैं । जब कोई तथ्य हमें मान्य होगा तभी उस पर हमें विश्वास होगा और जब उस पर विश्वास हो जाता है तब मान्यता स्वयमेव आ जाती है । अतः मान्यता एवं विश्वास से युक्त भावनात्मक व्यवहार ही आस्था है । इन आस्थाओं पर शिवानी की मान्यता इतनी अधिक है कि उनका साहित्य आस्थाओं का कीर्तिकलश जैसा प्रतीत होता है ।

शिवानी की जिन विशेष बिन्दुओं पर आस्था रही है, वे इस प्रकार हैं --

1- सामाजिक धारणाओं एवं मान्यताओं पर आस्था ।

2- प्रेतात्माओं पर आस्था ।

3- ईश्वर पर आस्था ।

4- वैद्यिकी पर आस्था ।

5- झाँड़-फूँक, तंत्र-मन्त्र एवं जादू - टोने में आस्था ।

6- साधु-सन्यासियों पर आस्था ।

7- धर्म पर आस्था ।

8- पुनर्जन्म पर आस्था ।

9- ज्योतिष पर आस्था ।

10- भारतीय एवं पहाड़ी संस्कृति पर आस्था ।

सामाजिक धारणाओं एवं मान्यताओं पर आस्था -

शिवानी की साधारण सामाजिक धारणाओं एवं मान्यताओं पर भी विशेष आस्था रही है । उनकी हर सामाजिक कृत्यों पर आस्था रही है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी कृतियों में दृष्टव्य है । एक सामाजिक धारणा है कि जब किसी का स्नेहपूर्ण स्पर्श भी

किसी को विचलित कर दे तो उसकी मृत्यु सुनिश्चित हैं, यह समझ लेना चाहिये । जब नागर जी बीमार थे, शिवानी उन्हें देखने पहुँची । जैसे ही उन्होंने नागर जी का हाथ थामा तो वे पीड़ा से चिहुंक पड़े । घबराकर शिवानी ने हाथ हटा लिया और संशकित हो उठीं -- ' जब किसी का स्नेहस्पर्श भी विचलित करने लगे , तो मृत्यु सन्निकट हैं, ऐसा समझना चाहिये यही हमारे शास्त्रों ने कहा है ।[1] और कुछ दिनों बाद नागर जी का केवल यशः शरीर ही शेष रह गया और वे सचमुच ब्रम्हलीन हो गये । शिवानी की यह आस्था साकार होकर उन्हें झकझोर गयी ।

यदि कोई स्त्री अपने सुहाग के सामने मृत्यु का वरण करती है तो उससे बढ़कर कोई भाग्यशालिनी स्त्री नहीं हो सकती -- ' पूतोवाली काकी सुहागन चिता चढ़ रही है, अरी सब पैर छू लो । बड़ी - बुढ़ियॉं कह रही थीं । [2] शिवानी की इस सामाजिक धारणा पर गहरी आस्था है तभी तो -- ' खबर पाते ही पूरा गॉंव उमड़ पड़ा था - पैरों की धूल लेने गॉंव की बहू- बेटिया एक - दूसरी पर गिरी जा रही थी ' ।[3]

प्रसव के समय प्रसूता की चोटी इत्यादि खोल देने एवं सतिया धरा देने से उसे प्रसव दर्द झेलने में आसानी हो जाती हे, ऐसी मान्यता है - ' अरी , ले यह भभूत टेक दे छोकरी के माथे पर । सतिया धराया या नहीं मालदारिन ? सब बंधन खोल दे - चोटी, गले की माला , बटन ।[4]

पहाड़ी समाज को यह मान्यता है कि यदि नवजात शिशु की नाल कटते ही तुरन्त उसका ताजा रक्त उसके होंठों पर लगा दिया जाये तो उस नवजात शिशु के होंठ सूर्ख लाल हो जाते हैं ।लड़के की नाल कचहरी में गाड़ी जाती है, जिससे वह डिप्टी बने और लड़की की नाल चूल्हे की नीचे गाड़ी जाती हे, जिससे वह दक्षगृहिणी बनें - " कारवी ने हंसकर कहा था, ' मेरी मॉं कहा करती थी, जब मैं पैदा हुई, तो मेरी मॉं ने दो काम किये ।

1- एक थी रामरती, शिवानी पृष्ठ -86

2- पूतों वाली, शिवानी, पृष्ठ -46

3- यथोपरि , शिवानी, पृष्ठ 46

4- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ 38

एक तो चट से नाल कटते ही ताजा रक्त मेरे होठों पर लगा दिया, जिससे दाड़िम के फूल-से लाल - लाल बने रहें । और फिर मेरी कटी नाल को कस्तूरी के बीड़े में लपेट, चूल्हें के नीचे गाड़ दिया ।[1]

एक आम कहावत एवं धारणा है कि परसी थाली और लगी - लगायी नौकरी में कभी ठोकर नहीं मारनी चाहिये । शिवानी ने भी इस धारणा के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है - ' मैने भी यही सोचा था, पर बाबू जी कहते हैं जब तक जाने का कुछ निश्चित नहीं होता, नौकरी मत छोड़[2]| इसी प्रकार यदि सपने में कोई मृत व्यक्ति पुकारे और स्वप्नदृष्टा हॉ कर दे तो समझ लेना चाहिये कि उसकी मौत सन्निकट हैं - ' उसकी सास कहा करती थी कि कोई मृत व्यक्ति सपने में पुकारे और हॉ कर दी तो समझ लो, मौत ने कंधे पर हाथ घर दिया है ।[3] एवं मृत्यु से पहले मरीज का स्वस्थ हो जाना इस बात का प्रमाण है कि उसकी भी मृत्यु शीघ्र ही सुनिश्चित हैं - ' पर , बेचारा नहीं जानता था कि हर बुझने वाले दिये की लौ अवसन्न होने से पहले ठीक ऐसी ही दमकती हैं ।[4]

लोगों की मान्यता है कि पहने - ओढ़े स्त्री एवं लिपे - पुते घर में ही लक्ष्मी का वास होता है - ' मेरी सास कहा करती थी, लिपा-पुता घर और पहनी-ओढ़ी नार देख के ही लक्ष्मी वास करती है । "[5]

पहाड़ में एक कहावत है कि यदि किसी वेश्या के गले की माला का मूँगा कोई सुहागिन स्त्री धारण कर ले तो वह अपने सुहाग के सामने ही प्राण - विसर्जन करेगी, उसे विधवा होने का भय नहीं रहेगा -- ' पहाड़ में एक लोकोक्ति है कि वेश्या के गले का एक अप्राप्य मूँगा, यदि सुहागिनी पहन ले तो वह वेश्या का - सा ही अटल अहिवात पाती हैं अर्थात् अखण्ड सौभाग्य ।[6]

1- रविविलाप, शिवानी, पृष्ठ 44-45
2- विवत्त , शिवानी , पृष्ठ - 27
3- विवर्त्त, शिवानी, पृष्ठ 97
4- विवर्त्त ,शिवानी, पृष्ठ 103
5- मायापुरी, शिवानी, पृष्ठ 21
6- विषकन्या, शिवानी, पृष्ठ - 74

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि शिवानी की सामाजिक मान्यताओं एवं सामान्य धारणाओं पर भी अगाध आस्था रही है, जिनका प्रभाव उनकी कृतियों में परिलक्षित होता है ।

प्रेतात्माओं पर आस्था ।

जहाँ शिवानी की आम सामाजिक धारणाओं पर आस्था रही है वहीं वे आत्मा के अस्तित्व को भी मानती हैं । 'वातायन' में शिवानी ने आत्मा के अस्तित्व को स्पष्ट करते हुए लिखा है - ' मृत्यु ही जीवन की सीमा नहीं है, मृत्यु परिवर्तन लेकर अवश्य आती है किन्तु न तो वह आमूल परिवर्तन है,. न आमूल विनाश । मृत्यु के पश्चात् आत्मा का आकर्षण, पृथ्वी के प्रति लोह- चुम्बक का- सा आकर्षण, बना ही रहता है ------ मृत्यु सचमुच ही जीवन की सीमा नहीं हे, मृत्यु के पश्चात् भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है किन्तु उस अस्तित्व के रहस्य को क्या कभी मानव अपने जीवन काल में ही सुलझा पायेगा ?"[1]

शिवानी प्रेतात्माओं पर विश्वास ही नहीं करती अपितु उनका प्रेतात्माओं से कई बार साक्षात्कार भी हो चुका है - " तीन वर्ष पूर्व, बलरामपुर अस्पताल में एक ऐसे ही अनुभव ने शैशव की उस धड़कन को एक बार फिर तीव्र कर दिया था । रात को इमरजेन्सी वार्ड में फोन करने गयी थी और बुर्का डाले वह तन्वंगी निरन्तर गुनगुनाती साथ चल रही थी, किन्तु एक पल को ऊपर उठे बुर्के ने पट्टियों के जिरह-बख्तर में जकड़ी छाती के ऊपर , जिस अपूर्व तेजोदीप्त चेहरे की झलक दिखाई वह इस लोक की नहीं थी । कौतूहल, जिज्ञासा और एक भीरू विभ्रान्ति मुझे काठ बना गयी । ताम्बूल - रंजित ओठों पर मधुर हंसी का मुखर आह्वान उतर आया, ' चलो बहन, मेरे साथ ।' मैं हाथ छुड़ाकर गिरती - पड़ती भागी थी ' बहुत पछताओगी' उस रहस्यमयी के स्वर से आज भी स्मृति रोमांचित हो उठती है ।"[2]

1- वातायन, शिवानी , पृष्ठ 57-59

2- वातायन , शिवानी, पृष्ठ - 58-59

मृत्यु के पश्चात् आत्मा का अस्तित्व अपने पुष्ट प्रमाण से कभी - कभी मानव को निश्चय ही आश्चर्य चकित कर देता है । किसी प्रेतात्मा से शिवानी का दूसरा साक्षात्कार देखियें - ' मेरे पति की मृत्यु हो गयी, मैं यहाँ अकेली रहती हूँ "व्हाट ए पिटी', आओ चलों तुम्हें थोड़ा घुमा लाएं । हंसकर आनन्दी मेजर हाथ पकड़कर मुझे खींच ले गया । हम तीनों निःशब्द चलते रहे । पता नहीं कब तक चलते - चलते जब नैनीताल के कब्रिस्तान तक पहुँचे तब मैं चौंकी । ' फिर मिलेगें डार्लिंग , फिर कभी । और मैं मूर्ख - सी उस निर्जन कब्रिस्तान में अकेली खड़ी ठक-ठक काँप रही थी ।"

'कृष्णवेणी' उपन्यास में नायिका कृष्णवेणी की रूह शिवानी को समुद्र तट पर अपनी पूरी दास्तान सुनाती है और जब दूसरे दिन शिवानी उससे मिलने के लिये उसके घर पहुँचती है तो उन्हें पता चलता है कि वह तो एक माह पूर्व ही काल - कवलित हो चुकी है, यह सुनकर शिवानी थर - थर काँप उठती हैं-- ' आज पूरे पन्द्रह दिन हो गये हैं । जब कभी बाहर जाती हूँ, सशंकित दृष्टि से इधर - उधर देखती हूँ । पता नहीं, फिर उससे टकरा जाऊँ । यह कैसा अन्याय है विधाता का कि परलोक के साथी मुझसे ही मिलने क्यों आते हैं । न जाने कब वह फिर मिल जाये , उस मंदिर में या उस एकांत समुद्रतट पर और फिर ------- एक भयावह संभावना मुझे बार-बार सिहरा जाती हैं । [2]

कृष्णवेणी शिवानी की आश्रम की अंतरंग मित्र थी । वह मद्रास की थी और शिवानी उत्तर - प्रदेश की । चालीस वर्षो पश्चात् जब शिवानी मद्रास जाती हैं तो उन्हें पहले कपालेश्वर मंन्दिर में कृष्ण वेणी दिखती है, फिर समुद्रतट पर मिल ही जाती है पर वह कृष्णवेणी नहीं उसकी रूह होती है, उसका आभास शिवानी को बाद में होता है । पूरा उपन्यास रूह की दास्तान पर ही आधारित हैं । किसी रूह से इतनी लम्बी वार्ता, वह भी समुद्रतट के किसी एकान्त में, जहाँ शिवानी की आत्मा के अस्तित्व पर आस्था को दर्शाता है वहीं उनके साहस को भी । अन्यथा हम जैसे पाठक इन वृत्तान्तों को जब पढ़कर ही बदहवास हो जाते हैं तो साक्षात् सामने किसी आत्मा को देख कर क्या हालत होगी ।

1- वातायन, शिवानी , पृष्ठ 132

2- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ 47

इसी प्रकार शिवानी का आश्रम का निर्लज्ज प्रेमी राघवन, जिसके अनर्गल प्रणयालाप से क्रुद्ध होकर शिवानी के बड़े भाई ने उसका मार-मारकर एक दाँत ही तोड़ दिया था । उसकी रूह भी सोने मढ़ेदाँत सहित शिवानी को ट्रेन में मिलती है और शिवानी बचपन का बैर भूलकर उससे बात भी करती हैं और जब अन्य सहपाठियों के द्वारा उन्हें यह पता चलता है कि और कोई होगा, उसकी तो कई वर्षों पहले मृत्यु हो चुकी है, सुनकर शिवानी सन्न रह जाती हैं । प्रणय-दक्षिणा में मिले उसके टूटे हुए दाँत को सोने से मढ़ दिये जाने पर भी शिवानी भूली नहीं थी ।

ईश्वर पर आस्था -

भारतीय संस्कृति ने समाज को सदा ही आस्था वान् रहने के लिये समय - समय पर अनन्त ज्योतिर्मय ईश्वर के प्रति जागृत रहने के लिये आध्यात्मिक संदेश प्रसारित किये हैं। यह भी एक सांस्कृतिक देन हैं । अतः शिवानी का ईश्वर पर भी अनन्य अनुराग है, अनन्य आस्था है । उनकी ईश्वर के प्रति आस्था इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाती है - " मेरा यह दृढ़ विश्वास है मौसी, दंड हम नहीं, स्वयं विधाता देता है, एक -न-एक दिन इच्छाकृत अपराध का दंड अवश्य मिलता है "[1] एवं " हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम नाम [2]" अर्थात् मुसीबत के समय हिम्मत हारने से काम नहीं चलता राम का नाम ही मुसीबत से मुक्ति दिलाता है । एवं ' ईश्वर सब द्वार एक साथ बंद नहीं करता । यदि एक द्वार बंद भी करता है , तो दूसरा द्वार खोल देता है । [3] आदि ।

शिवानी आज भी पूरी श्रद्धा के साथ ईश्वर की प्रातः एवं सांध्यकालीन पूजा - अर्चना करती हैं, पूजा के पश्चात् वे शंख भी बजाती हैं ।

1- विवर्त्त, शिवानी, पृष्ठ - 56

2- यात्रिक, शिवानी, पृष्ठ 8-

3- जालक, शिवानी, पृष्ठ - 9

वैद्यिकी पर आस्था -

शिवानी की वैद्य एवं वैद्यिकी दवाओं पर भी आस्था है -- " डॉक्टर चक्रवर्ती, हमारे शास्त्र में कहा गया है कि आधान, जन्म, निधन, प्रखर तथा विपत पर नक्षत्र में जो व्याधि उत्पन्न होती है, वह कष्टकर या मृत्युकर होती है - एक तो रविवार उस पर मूल नक्षत्र ।------- हम चार्ट नहीं देखते डॉक्टर - हम केवल नाड़ी और नक्षत्र देखते हैं ।[1]

एक बार जूनागढ़ के नवाब की बेगम साहिबा बीमार पड़ीं । हकीम अजमल खाँ ने पर्दे के पीछे बैठी बेगम सहिबा की नाड़ी में बंधे पतले सूत के माध्यम से ही रोग को पकड़ लिया । उन्होंने दवा दी , पथ्य बतलाया और चले गये । आठवें दिन जब उन्हें पुनः बुलवाया गया तो पर्दे के पीछे बेगम नहीं बिल्ली के पंजे से सूत बाँधा गया उनकी वैद्यिकी की 'परीक्षा के लिये ' हकीम साहब बड़ी देर तक डोरा हाथ में लिये बैठे रहे फिर थामा, फिर आँखे बन्द की, फिर सुना और चेहरा अजीब हो गया ' क्या बात है, हकीम साहब चुप क्यों हो ? ' नवाब ने पूछा । ---- लगता है, सरकार गलती से चूहा खा गई हैं ।[2] ऐसे - ऐसे वैद्य हुआ करते थे पहले, जो बिना स्पर्श किये ही सूत के माध्यम से रोग के दस्यु को पकड़ लिया करते थे और आज जरा सी खाँसी आने पर डॉक्टर तुरन्त एक्सरे कराने का आर्डर दे दते हैं, भले ही वह खाँसी साधारण सर्दी - जुकाम के कारण आ रही हो ।

झाँड-फूँक, तंत्र-मन्त्र एवं जादू - टोने पर आस्था -

झाड़ - फूँक , तंत्र-मंत्र एवं जादू-टोने पर भी शिवानी की आस्था है । उनकी यह आस्था निम्न उद्धरणों से स्पष्ट हो जायेगी ---

'अरी कानबाई, कहाँ मर गई निगोड़ी । चून - मिर्च की नजर उतारकर चौबारे पर तो घर आ, उमर गुजर गई रजवाड़ों में , पर मुई किले की एक राह - रस्म नहीं सीख पाई ।[3]

1- चल खुसरो घर आपने, शिवानी, पृष्ठ 92-93

2- जालक, शिवानी, पृष्ठ 93

3- चिरस्वयंवरा, शिवानी , पृष्ठ 133

' उस इतवार को जब मेरे कमरे में कुछ शालीन अतिथि बैठे थे, 'ए दीदी, सुनों तनी', कह उसने मुझे इशारे से बुलाया । देखती क्या हूँ कि एक हाथ में लोहे के कलछुल में दहकते अंगारे लिये , दूसरी मुट्ठी में मिर्च, चून, भूसी बाँध रामरती खड़ी है , 'बोल्यो नांही, हम नजर उतारब ।' उसने सात बार मेरे घायल हाथ की परिक्रमा कर मुट्ठी में बंधी मिर्चे अंगारों में झोंक दी ।[1]

' मैं दाँतकी पीड़ा से बिलबिला रही थी कि उस विलक्षण चिकित्सक ने कहा, ' इधर आ लड़की , बैंठ' और मैं बैठ गयी । सहसा उन्होनें आँखे बंद कीं, ओठों ही ओठों में जाने कौन सा मंत्र बुदबुदाया और मेरी पीठ में वो धौल जमाया कि लगा, आंते ही निकल आई हैं । फिर कान में एक मंत्रपूत काला डोरा बाँधा, और हाथ से ही इशारा किया कि भाग जा । उनकी क्रुद्ध मुद्रा देखकर लगा कि वह धौल मुझे नहीं मेरे दाँत के दर्द को लगा है और वह सिट्टी - पिट्टी भूल , मुझसे भी पहले बगटुट भागा जा रहा है।"[2]

' तभी एक ने कहा, जाको नशा कौन चढ़ौ है? सज-धज के नौनी दुल्हैया बनी रहीं । बिन्नू ने घूँघट उलट दओ, सोई पीपर तले की चुड़ैल चिपटी आय ।[3]

' न जाने वह कौन सा मन्त्र पढ़कर फूँकता और मुर्दा बन गयी देह पर फेंकता -- आधा घंटे में सचमुच ही देह स्पंदित हुई और ओंठ बुदबुदाने लगें - ' तेरे परिवार के मुखिया ने कभी मेरी नागिन के प्राण ले मेरा बंश निर्मूल किया था, आज मेरा बदला पूरा हुआ अब कल मैं स्वयं यहाँ ये चला जाऊँगा । कल सुबह साढ़े छः बजे तुम मुझे तुरई की उस झील पर देखोगें, फिर हम कभी नहीं दिखेगें ।[4]

"दादा जी संस्कृत के प्रकांड पंडित तो थे ही साथ ही तंत्र साधना पर भी उनका असाधारण अधिकार था । [5]"

1- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ - 50

2- वातायन, शिवानी, पृष्ठ -113-14

3- दरीचा, शिवानी, पृष्ठ 29

4- दरीचा, शिवानी, पृष्ठ 47

5- एक थी रामरती, शिवानी , पृष्ठ 11

सुशिक्षित होने पर भी शिवानी ने झाड़-फूँक, तंत्र-मंत्र एवं जादू टोने पर अपनी आस्था दर्शायी है । उपर्युक्त उद्धरण शिवानी की इस आस्था के पुष्ट प्रमाण हैं ।

साधु- सन्यासियों एवं बाबाओं पर आस्था -

शिवानी की एक ओर सच्चे साधु-सन्यासियों एवं बाबाओं पर असीम श्रद्धा रही है तो दूसरी ओर उन्होनें पाखण्डी साधु-सन्यासियों का पर्दाफाश भी किया है । तपोनिष्ठ साधु-संतों पर अपनी आस्था व्यक्त करते हुए शिवानी ने लिखा हैं -- ' साधु- संतों में मेरी बचपन से ही रूचि रही । मैं मानती हूँ कि विश्व में कोई ऐसी दैवी शक्ति है जिसकी विज्ञान कभी व्यवस्था नहीं कर सकता । दादा जी की मित्र मंडली में नीलकंठ बाबा और गणेशपुत्री के सुप्रसिद्ध संत नित्यानंद जैसे अनेक तपोनिष्ठ सिद्ध थे । और नित्यानंद जी तो ऐसे संत थे जिन्होनें कभी भी हमारी घर की देहरी नहीं लाँघी - घर के अंदर नहीं आये । इनके अतिरिक्त आनन्दमयी माँ को भी मैने अपने परिवार में निकट से देखा है । वे मेरे चाचा जी देवीदत्त पांडे, जो जीवन पर्यन्त अविवाहित रहे, को अपना पुत्र मानती थीं । ऐसे संतो को मैनें निकट से देखा और सुना है । ' भैरवी ' में मैंने अघोरी साधु का सच्चा वर्णन किया है । [1]

'अतिथि' में घर- परिवार एवं राजनीति से अशाँत माधव बाबू जब गुरू की शरण में जाते हैं तो देखते हैं कि ---' बाबा ध्यानस्थ अडिग बैठे थे । सिर पर उलझी जटाओं का धूमिल जूड़ा, उस पर लिपटी रूद्राक्ष की मालाएं , स्थूलकाय, प्रसन्नवदन, विराट् पुरूष । कौन कह सकता था, वे क्रोधी हैं । --- बहुत अशांत हो ना ? कहो, सब कह डालों । मुझे दीक्षा दीजिये महाराज ।---- दीक्षा मैं अभी इसी क्षण दे सकता हूँ । पर तुम अभी लेने की स्थिति में नहीं हो । पहले अपने चित्त को शुद्ध करों । मोह, माया, क्रोध, काम से मुक्त होकर हृदयासन बिछाओं । पहले सत्यज्ञान, उसके बाद परम सत्य विज्ञान, निर्विकल्प समाधि योग और फिर ऊर्ध्व आम्नाय, जाओं फिर आना ।[2] इन्ही विलक्षण गुरू की कृपा सें माधव बाबू का अशाँत चित्त फूल सा हल्का हो गया और वे अपने कर्मपथ पर फिर निकल पड़ें ।

1- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ ।।

2- अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 97-98

इसी प्रकार ' दरीचा' में शिवानी ने कमरू बाबा की विलक्षण दिव्यता के सन्दर्भ में स्वानुभूत चित्रण किया है ---- ' बड़ी देर तक पायताने खड़ी मैं उस अलौकिक तेजोदीप्त चेहरे को देखते रही । जब उनकी आँखे खुलीं, तो वह सरल स्निग्ध दृष्टि जैसे हृदय को बेध गयी । इष्ट और साधक के तादात्म्य प्राप्त होकर तत्वतः एक हो जाने की जो बात सुनी थी, वह जैसे आँखों के सामने साकार हो गयी । कहा जाता है कि साधारण लोगों की एक दृष्टि रहती है, किन्तु साधक की दो दृष्टियाँ होती है । -- एक बाहर और एक भीतर । ज्ञान दृष्टि और व्यवहार दृष्टि । इन दोनों दृष्टियों से सम्पन्न साधक की पलकेंनहीं गिरती । -------- मैं कुछ कहती, इससे पूर्व उन्होनें मेरे दोनों हाथ थाम लिये और क्षीण कंठ ने मेरे कानों में जैसे अमृत वृष्टि की - ' लिखती जा, लिखती जा, लिखती जा । " उस भीड़ में जहाँ न किसी ने उन्हें मेरा परिचय दिया था, न मुझे कभी देखा था, उन्होंनें मुझे कैसे यह आशीर्वाद दे दिया । उस विलक्षण महात्मा के दर्शन को मैं भगवत कृपा ही मानती हूँ । [1]"

इस प्रकार शिवानी स्वतः इन विलक्षण महात्माओं के महात्म्य को स्वीकार करती हैं और उन पर अपनी आस्था व्यक्त करती हैं ।

धर्म पर आस्था -

'घृ' धारणे धातु से धर्म शब्द बना है । धर्म का अर्थ कर्त्तव्य अथवा धारणा से हैं । सद्वृत्ति की ओर धारणा प्रवृत्त करना ही धर्म है - ' जिस वृत्ति से कल्याण का अभ्युदय हो, वह धर्म है । [2]

शिवानी की धर्म पर भी निष्ठा रही है - ' हमारे धार्मिक जीवन में, तीर्थानुगमन का विशेष महत्व है। निश्चय ही तीर्थ धर्म भाव शुद्धि और ब्रह्मध्यान से संबंधित हैं, किन्तु साथ ही यह भी सत्य है कि भेद - रहित विवेक से , सबको ब्रम्हमय तीर्थ जानने वाला ही सच्चा तीर्थिक कहा गया है । पतित - पावनी गंगा हो, या पुण्य सलिला त्रिवेणी की जलधार, जब तक हम राग-द्वेष अंहकार, अभिमान रहित डुबकी न लगाये - क्या हमारे पाप सचमुच ही धुल सकते हैं । [3]"

1- दरीचा, शिवानी, पृष्ठ 45-46
2- 'यतोऽभ्युदय निः श्रेयसे सिद्धिः स धर्मः -" वैशेषिक सूत्र 1/1/2
3- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 74

सत्कर्म करना ही हमारा धर्म है । अतः धर्म की महिमा का स्मरण करते हुए शिवानी ने पाप- पुण्य पर भी अपनी आस्था दर्शायी है - " हमारे शास्त्रों ने ठीक कहा है कि पूर्वजन्म के पाप, हमें इस जन्म में ठीक वैसे ही ढूढ़ लेते हैं, जैसे क्षुधातुर बछिया माँ के स्तन को ढूढ़ लेती हैं । [1]"

माता - पिता एवं पति के प्रति निष्ठापूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह करना भी मानव धर्म है और इस धर्म के प्रति भी शिवानी की अपार आस्था है ।

पुनर्जन्म पर आस्था -

रिइनकारनेशन अर्थात् पुनर्जन्म पर भी शिवानी की आस्था है । उनका 'जुनूं तो थयूं' घटनापरक निबन्ध ही पुनर्जन्म पर आधारित है । निबन्ध की भूमिका में ही शिवानी ने लिखा है -- ' जब कोई पुनर्जन्म की कोई घटना सुनती या पढ़ती हूँ तो मेरा चित्त कभी संशयग्रस्त नहीं होता । अनायास वर्षों पूर्व हमारे ही घर में घटी एक घटना का स्मरण हो आता है और फिर ऐसी कहानियाँ मुझे अविश्वसनीय नहीं लगती ।[2] शिवानी का लघु उपन्यास 'पाथेय' भी पुनर्जन्म में आस्था को दर्शाता है ।

ज्योतिष पर आस्था -

पुनर्जन्म की तरह शिवानी की ज्योतिष पर भी आस्था है । ' ज्योतिष नहीं ज्योतिषियों से बचिए ' नामक निबन्ध में शिवानी ने ज्योतिष शास्त्र पर आस्था व्यक्त करते हुए लिखा है ---" इसमें कोई संदेह नहीं कि फलित ज्योतिष एक वैज्ञानिक कला है, इसमें ग्रहों के आधार पर भूत-भविष्य की घोषणा की जाती है । आचार्य बराहमिहिर ने सुयोग्य दैवज्ञों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जिस प्रकार नेत्र वाला व्यक्ति भी अंधेरे में अंधे के सदृश भ्रमण करता हे, उसी प्रकार राजा भी योग्य दैवज्ञ के बिना भ्रमित रहता है । [3]"

1- अतिथि, शिवानी, पृष्ठ -30

2- आकब, शिवानी, पृष्ठ 36

3- उपप्रेती , शिवानी, पृष्ठ 89

'अतिथि' में श्यामाचरण ज्योतिष विद्या पर अपना विश्वास दर्शाते हुए माधव बाबू से कहते हैं - "' मुझे क्षमा करें । मैं अभी भी फलित ज्योतिष को मानता हूँ , आप मुझे कुंडली दे दें । मैं एक - दो दिन में मिलान कर देख लूँगा ।[1]

भारतीय एवं पहाड़ी संस्कृति पर आस्था -

शिवानी का भारतीय संस्कृति से विशेष मोह है । उन्होनें अपने विदेश परिभ्रमण के पश्चात् यही अनुभव किया कि भारत की संस्कृति सर्वोपरि हैं , सर्वश्रेष्ठ है । शोधकर्त्ताओं ने भी यही निष्कर्ष निकाला है कि भारतीय संस्कृति ही मूल संस्कृति हैं । --- " हमारी संस्कृति ने सदा संस्कारों को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है । व्यक्ति हो या समाज, उसे श्रेष्ठ बनाने में संस्कारों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, यह हम सदा मानकर चलते हैं । आज अनेक पाश्चात्य विद्वान 'यूजेनिक्स' के शोधकार्य में संलग्न है । ' यूजेनिक्स' अर्थात् सुसंतान शास्त्र । इसमें विवाह, परिवार , परम्परा आदि पर शोधकार्य पर विद्धान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि केवल भारतीय संस्कृति में ही उन सभी तथ्यों का समावेश है जो व्यक्ति एवं समाज को एक परिष्कृत रूप देते हैं ।"[2]

शिवानी के लंदन प्रवास में एक विदेशिनी महिला भारतीय संस्कृति से अभिभूत होकर बातचीत के दौरान शिवानी से कहती है ---- ' कितने भाग्यवान हैं आप सब । वह देश कैसा होगा जहाँ का खाना इतना अद्भुत है, जहाँ की परिवेशना में ऐसी आत्मीयता है । मैने आपके विवाह- मंत्रों का पूरा अनुवाद पढ़ डाला है । एक कापी साथ लेती जा रही हूँ अब समझ में आया कि आपके यहाँ तलाक क्यों नहीं होते । जिस इमारत की नींव ही इतनी मजबूती से जमाई गयी हो, उसके अकस्मात् भरभराकर गिरने का भय ही कहाँ रह जाता है ।"[3]

1- अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 26

2- यात्रिक, शिवानी, पृष्ठ 53

3- यात्रिक, शिवानी, पृष्ठ 19

भारतीय संस्कृति के साथ - साथ शिवानी को पहाड़ी संस्कृति से भी विशेष लगाव रहा है । किन्तु आज वहाँ की विनष्ट हो रही संस्कृति को देखकर शिवानी क्षुब्ध होकर लिखती है -- ' आज वर्षों पश्चात् उसी अल्मोड़े के नक्शे को स्वयं कुमाऊँवासियों ने ही जिस हृदय हीनता से ' औरे - और कर दिया है, उसे देखकर लगा, जैसे यहाँ की प्रत्येक कन्दरा, प्रत्येक शिखर, प्रत्येक शिला धीरे - धीरे अपनी पावन मौलिकता को खोती चली जा रही है । सात-आठ वर्षों में ही किसी शहर के भूगोल को ऐसी तीव्र गति से बदलते मैंने नहीं देखा । खान-पान, रहन-सहन, बेशभूषा सभी कुछ बदल गया ।[1]

वास्तव में शिवानी और शिवानी का साहित्य सामाजिक परिस्थितियों, सामाजिक मनः स्थितियों, सामाजिक परम्पराओं एवं सामाजिक आस्थाओं का द्योतक हैं । शिवानी ने जो कुछ लिखा है वह अपने समाज में उन्हें मिला है । विषम परिस्थितियों में जितना अधिक कोई नारी जीती है, उतना पुरूष नहीं । विषम परिस्थितियों में पुरूष या तो पलायनवादी हो जाता है या परिस्थितिभंजक । किन्तु नारी परिस्थितियों के अनुकूलन की चेष्टा और प्रतीक्षा की मनः स्थिति में जीती रहती है । तभी तो नारी परम्पराओं में जीती हुई आस्थाओं को जन्म देती है । शिवानी की प्रायः समस्त नायिकाएं सामाजिक धरातल पर इसी आशय से प्रभाव छोड़ती हुई प्रतीत होती हैं क्योंकि सबके साथ शिवानी का तादात्म्य है ।

1- दरीचा, शिवानी, पृष्ठ - 63

ग. शिवानी का साहित्य एवं समाज सापेक्ष चिन्तन

वस्तुतः साहित्य का आधार जीवन है । इसी आधार पर साहित्य के लघु कुटीर से लेकर गगनचुम्बी प्रासाद तक खड़े हैं । कथाकार प्रेमचन्द के अनुसार मनुष्य जीवन पर्यन्त आनन्द ही की खोज में लगा रहता है । किसी को वह रत्न द्रव्य में मिलता है, किसी को भरे - पूरे परिवार में , किसी को लम्बे-चौड़े भवन में, किसी को ऐश्वर्य में, लेकिन साहित्य का आनन्द इस आनन्द से ऊँचा है । इससे पवित्र है, उसका आधार सुन्दर और सत्य है । वास्तव में सच्चा आनन्द सुन्दर और सत्य से मिलता है । उसी आनन्द को दर्शाना, वही आनन्द उत्पन्न करना साहित्य का उद्देश्य है ।[1]"

वास्तव में जहाँ मनुष्य अपने मौलिक यथार्थ एवं आकृत्रिम रूप में हैं, वहीं आनन्द है । आनन्द कृत्रिमता और आडम्बर से कोसों दूर भागता है । शिवानी ने अपने साहित्य में अकृत्रिम भाव से मौलिक रूप में इसी आनन्द को समाविष्ट करने की अनवरत् चेष्टा की है । इसलिये उन्होंने जीवन के वैविध्यपूर्ण अनुभवों को, उनसे निःसृत सन्देश और दर्शन को अपने साहित्य के माध्यम से पाठकों तक पहुँचाने और उसी के माध्यम से उन्हें आनन्दित करने का कार्य किया है । समाज के प्रति शिवानी की यह प्रतिबद्धता प्रकारान्तर से साहित्यिक प्रतिबद्धता की उद्घोषणा है । श्री कृष्ण कुमार श्रीवास्तव जी के प्रश्न --'क्या आप मानती हैं कि रचनाकर को अपने साहित्य या समाज के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिये ? के उत्तर में शिवानी ने स्वयं स्वीकार किया है --- ' जब तक साहित्यकार में पूरी तरह प्रतिबद्धता नहीं रहती तब तक उसके लिखने में संयम नहीं रहता। ऐसा मेरा विश्वास है कि साहित्यकार समाज से , अपने परिवेश से इतना जुड़ा रहता है कि प्रतिबद्धता स्वयमेव आ जाती है । उसका निर्वाह साहित्यकार किस हद तक करता है, यह उसकी साहित्यिक उपलब्धि, साहित्यिक क्षमता से स्पष्ट पता लगता है । अगर उस प्रतिबद्धता का वह समुचित निर्वाह नहीं करता तो उसे न पाठकों का स्नेह मिलता है, और न उसको स्वयं ही संतोष होता है ।[2]

1- कुछ विचार (निबन्ध) प्रेमचन्द, पृष्ठ 94

2- आकाश शिवानी, पृष्ठ 16

समाज में रहकर कभी-कभी संस्कारों के निर्वाह या निर्वाह न कर पाने की विवशता का साक्षात्कार सभी को हो जाता है किन्तु शिवानी संस्कारों के निर्वाह के महत्त्व को स्वीकारती हैं--- " संस्कारों का निर्वाह इस युग में कठिन भले ही हो किन्तु यह कहना कि इनका अब कोई महत्त्व नहीं है, उचित नहीं है । हमें स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक सामाजिक विषय में गुण और दोष दोनों रहते हैं। उनकी कुछ भी उपादेयता अब नहीं रही , ऐसा हम नहीं कह सकते ।[1]"

सामाजिक चिन्तन-

यहीं से शुरू होती है शिवानी की समाज सापेक्ष चिन्तन की साहित्यिक यात्रा । आज के प्रदर्शन परस्त समाज पर शिवानी की टिप्पणी अक्षरशः सत्य है --" आज हमारे जनजीवन के बहिरंग में जितना ठाट - बाट पूर्ण आतिशय्य है अन्तर के ऐश्वर्य का कोष उतना ही रिक्त "[2] इस ठाट-बाट पूर्ण आतिशय्य को हस्तगत करने के लिये व्यक्ति कितना भ्रष्ट होता जा रहा है, इस पर चिन्ता व्यक्त करते हुए शिवानी एक जिलाधीश की पत्नी की मनः स्थिति का वर्णनकरते हुए लिखती हैं --- " किन्तु कैसा निरंकुश सम्राट था उसका पति सुबह से ही डालियाँ आने लगतीं है तो खाली करते - करते हाथ दुखने लगते । चमकती चपरास में नम्रता से दुहरे हुए , बीसियों ताबेदार, हाथ बाँधे ' हुजुर' 'गरीबपरवर' जैसे कर्ण प्रिय सम्बोधनों से कोठी गुंजाते मिट्टी के खिलौनों से अडिग खड़े रहते । मजाल है कोई बिना ' सरकार' के ओठ तो हिला ले । कहीं जलसा होता तो हाथो - ही - हाथो में उछलती वह न जाने कब किसी आलमगीर शामियाने की केन्द्र - बिन्दु बनी इनाम बाँटने लगती । कभी कुछ लेने बाजार की ओर उसकी मोटर मुड़ती, तो ऐसी भगदड़ मच जाती जैसे अवध की कोई बेगम आ गयी हो ! जिले में सिनेमा लगा हो या सर्कस, नुमाइश हो कोई उत्सव जब तक कलक्टर साहब पत्नी सहित न पहुँचते, मजाल थी जो सर्कस का शेर दहाड़ तो लें ।[3] समाज के इन कर्णधार मानवों के हृदय मानवता से कितने रिक्त होते हैं, इसका सफल चित्रण किया है शिवानी ने स्वयं जिलाधीश की पत्नी के माध्यम से ।

1- झाकप, शिवानी, पृष्ठ 34
2- जालक, शिवानी, पृष्ठ 31
3- रति विलाप, शिवानी, पृष्ठ 74

समाज के एक अमानवीय दुष्कृत्य से क्षुब्ध हो शिवानी की लेखनी चीत्कार सी कर उठती है ---' भाड़ में जायं तुम्हारे यजमान और तुम्हारा समाज । कारखी चिल्ला चिल्ला-चिल्ला कर कहतीं , क्या अपनी इस अवस्था के लिये अकेली किसना ही अपराधिनी है ? जिस हरामजादे - कमीने ने इस नाबालिक, असहाया, उन्मादग्रस्त छोकरी का सर्वनाश किया है, उसे ढूँढकर पकड़ लाए तुम्हारा समाज, तब मैं जानूँ । दोष किसी का और दंड कोई और भोगे, यह कहाँ का न्याय है जी ? किशुनली कहीं नहीं जायेगी । मैं पालूँगी उसकी सन्तान कों , भले ही तुम्हारी बिरादरी हमारा हुक्का - पानी बंद कर दें । [1]"

शिवानी का यह मुखर समाज - सापेक्ष चिन्तन एवं 'किशुनली उपन्यास' की कारखी का यह दुस्साहस पुरूष प्रधान समाज के लिये एक तमाचा है, एक चुनौती है । कारखी समाज की क्रूरता को धिक्कारते हुए कहती है --- ' कितना क्रूर है हमारा समाज इसी अभागे नवजात शिशु का गला घोंट, यदि कपड़े में लपेट, किसी घूरे में फेंक दिया जाता तो शायद समाज को आपत्ति न होती, किन्तु किसी दयालु, सहृदया संतानहीना गृहिणी ने उसे अपनी रीती गोद में समेट लिया, तो समाज ने बन्दूक तान ली ।[2] " कारखी के इस कथन का आशय यह नहीं कि नाजायज सन्तानों को जायज होने का लाइसेन्स देकर समाज को इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि की प्रेरणा दी जाये, बल्कि इसका आशय केवल यह है कि लड़कियों को इतनी छूट न दी जाये कि वे नाजायज सन्तानों के कलंक से कलुषित होकर किसी को मुँह दिखाने लायक न रह सके । नारी और पुरूष का सामीप्य एक - दूसरे के लिये आकर्षण, आमन्त्रण एवं तत्पश्चात् दुराचरण का कारण बनता है । यद्यपि दोनों एक दूसरे के पूरक हैं फिर भी यह पूर्ति समाज के मान्य मूल्यों पर आधारित होनी चाहिये न कि ' मोहब्बत ' उपन्यास की डॉ0 वैदेही और रॉबर्ट की भाँति मूल्यहीन एवं महत्त्वहीन-' और फिर उसी क्षण उस उन्मत्त प्रणयी ने उसे बाँहों में भर लिया था । कैसा आश्चर्य था, कि उस दिन एक भी दर्शनार्थी वहाँ नहीं आया, कहाँ गया पुजारी ? क्यों किसी भक्त ने उस भीमघण्टे को घनन-घनन कर दोनों को नहीं चौंका दिया ? क्या उस कुटिल एकान्त में स्वयं नियति का षडयन्त्र निहित था [3]"और जब दोनों सामाजिक रूप से पति - पत्नी नहीं बन सके तथा रॉबर्ट उसे

1- रतिविलाप, शिवानी, पृष्ठ - 56

2- रति विलाप, शिवानी, पृष्ठ 56

3- आकष शिवानी पृष्ठ 122-23

छलकर विदेश चला गया तो वेदेही की नाजायज सन्तान को अनाथालय की शरण लेने को विवश होना पड़ा । डॉ0 वैदेही बर्वे का अनुताप उस समय और भी पराकाष्ठा पर पहुँचता है, जब उसकी सन्तान न उस पर गई होती है, न अपने पिता पर अर्थात् न तो वह नर होता है न ही नारी, बल्कि इन दोनों के बीच की श्रेणी का प्रतिनिधि बन वह अपनी माँ वैदेही को आजीवन परितापित होने के लिये अपनी झलक दिखा जाता है । आश्चर्य तो इस बात का है कि इतने सुशिक्षित एवं सुसंस्कृत परिवारों की सन्ताने भी ऐसी भूले कर अपने जीवन को अभिशापित कर बैठती हैं । अतः आवश्यक है कि माता-पिता को लड़के या लड़कियों को इस तरह की पूर्ण स्वच्छन्दता नहीं देनी चाहिये । उनके मन में अनुशासन के अंकुश का भय बनाये रखना चाहिये ।

अनुशासन के सन्दर्भ में 'तीसरा वेटा ' उपन्यास में शिवानी ने भी अपना मत प्रस्तुत किया है -- ' लगाम जितनी ही खींची जाये, घोड़ा उतना ही तेज भागता है - पर वही लगाम, जो हमेशा बड़ी कड़ी खीची गयी हो, सहसा ढीली पड़ती है तो घोड़ा ठोकर खाकर गिर भी जाता है । [1]" अनुशासन की यह लगाम कितनी खींची जाये या ढीली रखी जाये यह व्यक्ति के विवेक और परिस्थिति पर निर्भर करता है ।

सास - बहू के आपसी सम्बन्ध मधुर कैसे हों, वर्तमान समाज की इस ज्वलंत समस्या पर भी शिवानी ने अपना द्रुष्टिकोण स्पष्ट किया है । " तीसरा बेटा " उपन्यास में सावित्री की बहन रूक्को अपनी सरला बहन को एक सफल सास के कुछ गुर बताती है ताकि वह अपनी फिरंगी बहुओं से अपमानित होने से बच सकें - " एक सबसे पहले बात उससे कभी दुराव - छिपाव मत करना, बड़ी की प्रशंसा छोटे के सामने नहीं, छोटी की बड़ी के सामने नहीं । जो कुछ तुम्हारे पास है - यूनिट, सेविंग सर्टिफिकेट, एफ0डी0आर0 पास बुक - सब बहुओं को दिखा देना । जैसे पहले नई बहू को सास भण्डार दिखाती थी, अब यह दिखाना पड़ता है । जो गहना है सब दोनों को बराबर - बराबर बाँट देना, समझीं।[2]"

1- विवर्त्त, शिवानी, पृष्ठ 71

2- विवर्त्त, शिवानी, पृष्ठ 74

जहाँ शिवानी ने सासों को सहिष्णु बना बहुओं के अनुकूल चलने की वकालत की है, वहीं उन्होनें बहुओं द्वारा पति को वशीभूत कर सास-ससुर की अवहेलना किये जाने की तीव्र भर्त्सना भी की है । 'पूतोंवाली' नामक उपन्यास के प्रमुख पात्र शिवसागर अपनी बीमार पत्नी पार्वती को लेकर अपने पुत्र के पास जाते हैं, वहाँ उनकी पुत्र एवं पुत्रवधू द्वारा जो अवमानाना हुई वह हृदय बेधी हैं -- " रात - रात जागकर नाश्ता तैयार किया और कनस्तरी में भरा था बेचारी पार्वती ने, आज वही रत्नगर्भा कनस्तरी, अनछुई कोने में धरी थी । बहू का उस सुदामा की तंदुल-भरी पोटली की ओर भर्त्सनापूर्ण दृष्टिपात शिवसागर ने देख लिया था । पार्वती कितनी ही भोली क्यों न हो, पुत्र के व्यवहार से वह जान गयी थी कि उसके आकस्मिक आगमन ने बहू-बेटे को पुलकित नहीं किया है । एक बार परदे की आड़ से ही छुटका (पुत्र) कह गया , ' मैने अपने पी0ए0 से कह दिया है । वह ग्यारह बजे तक आप लोगों को लेने आयेगा, वही अम्मा को सब टेस्ट्स करवा देगा । अम्मा आप सुबह कुछ खाइयेगा नहीं, सब जाँच खाली पेट ही होगी । ' शिवसागर सन्न रह गये थे, मृत्यु द्वार पर खड़ी जननी को स्वयं दिखाने का भी समय नहीं हैं पुत्रकों ?" [1]

बेचारी पार्वती पाँच - पाँच ठसकेदार अधिकारी पुत्रों के होते हुए भी पुत्रवधुओं की अवहेलना के कारण स्वयं को निपूती मानने पर विवश होती है -- ' अब यहाँ से सीधे घाट ही जायेगें बिरादर, समझे ? हमारे लिये चंदर मर गया, मर गया उसका बेटा और उसकी बहू । निपूते हो गये हैं हम और आज पूतोंवाली पार्वती भी उनकी बिरादरी में आ गयी ।[2]" कितना करारा प्रहार है, शिवानी का, आज के कर्त्तव्यच्युत पुत्रों एवं पुत्र वधुओं पर ।

ऐसे ही बम्बई वासी पुत्र के यहाँ खाना खाते समय पिता ने सहज भाव से केवल इतना कह दिया था -- ' भई तुम्हारी बम्बई की सब्जियों में स्वाद नहीं हैं "-- [3] सुनकर बहू ने श्वसुर पर जिन अश्राव्य शब्दों का प्रहार किया -- 'स्वाद होता तो पता नहीं कितना भकोसते [4]" कम से कम एक पढ़ी-लिखी संस्कार शीला पुत्रवधू के लिये तो शोभा

1- पूतों वाली, शिवानी, पृष्ठ 39

2- पूतोंवाली, शिवानी पृष्ठ 45

3- पूतों वाली, शिवानी, पृष्ठ 44,

4- यथोपरि ।

नहीं देता। यदि श्वसुर की जगह पुत्रवधू के पिता ने यही बात कही होती तो क्या वह अपने पिता के लिए इन शब्दों का प्रयोग कर सकती थी ? फिर श्वसुर ने तो यही कहा था कि उनके गाँव की अपेक्षा बम्बई की सब्जियों में स्वाद नहीं है, न कि उन्होंने यह कहा था कि 'बहू तुम्हारी बनाई सब्जियों में स्वाद नहीं है । फिर यह वितृष्णा क्यों ? जिस पिता ने पाल-पोस कर एवँ पढ़ा -लिखाकर पुत्र को इस लायक बनाया, उसी पिता की पुत्रवधू द्वारा थाली की रोटियाँ गिनना, यह वर्तमान समाज की दुरवस्था नहीं तो और क्या है ?

शिवानी ने समाज को सापेक्ष रखकर वेश्या जीवन के उस पहलू पर अपनी चिन्ता अभिव्यक्त की है, जो लड़कियाँ अनुशासनहीनता, अत्यधिक छूट एवँ देखभाल के अभाव में पथभ्रष्ट हो वेश्या जीवन जीने को बाध्य होती है । जैसे श्मशान चंपा' की जूही,' चौदह फेरे की मल्लिका सरकार, रथ्या की बसंती, 'सुरंगमा' की राजलक्ष्मी आदि घरवालों की खुली छूट एवँ देखरेख के अभाव के कारण ही पथभ्रष्ट हो अपने जीवन का सर्वनाश कर वेश्या जीवन जीने को विवश होती हैं । यदि इन्हें अंकुश में रखा गया होता, इतनी खुली छूट न मिली होती तो संभवतः ये नारी पात्र-(लड़कियाँ) अपना इतना बड़ा सर्वनाश न करतीं ।

शिवानी ने इन पाक-नापाक रिश्तों का बहुआयामी चित्रण कर इनके दुष्परिणामों का ब्यौरा हमारे सामने प्रस्तुत किया है ताकि समय रहते हम चेत सकें, हमारा समाज चेत सके ।

राजनीतिक चिन्तन-

देश की वर्तमान दुदर्शा से भी शिवानी अनभिज्ञ नहीं हैं । अब देश के राजनीतिक शब्दकोश में केवल दो ही महत्त्वपूर्ण शब्द ही रह गए है, आक्रमणकारी और आक्राँत । आज दलों के निजी स्वार्थ ने जनसाधारण के दुख-दर्द की ओर से आँखे मूँद ली है । देश की दुर्गति देखकर शिवानी का हृदय धिक्कार उठता है-"छिः-छिः, क्या हो रहा था यह गाँधी जी के देश में? यह कैसी अराजकता फैल गई थी पूरे देश में । वर्ग-वर्ग की शक्ति को, श्रेणी-श्रेणी की शक्ति को विनष्ट करने में संलग्न थी,मनुष्य का जीवन टके के मोल बिक रहा था, नैतिकता भी हीन होकर दर-दर भीख माँगने लगी थी, बस बंद, बाजार बंद, रेल बंद, पथ बंद। इस चक्रव्यूह से वीर से वीर निडर अभिमन्यु भी कैसे निकल पाएगा?"[1] इतना ही नहीं हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदाय की पारस्परिक मैत्री की भावनाओं से खिलवाड़ करने वाले

नीतिपटु राजनेताओं की धज्जी उड़ाते हुए शिवानी ने लिखा है -- " आज समस्त पृथ्वी हिंसा से उन्मत्त हैं, जाति वाद रक्त बीज दैत्य के रक्त की बूँदों की भाँति नित्य शत - सहस्त्र दानवों की सृष्टि कर रहा है, आज राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद जैसे व्यर्थ के प्रसंगों ने विभिन्न धर्मावलम्बियों के हृदय संदेह के आरे से चीर दिये हैं " वस्तुतः आदर्श का ढिंढोरा पीटने वाले हमारे राजनेताओं ने ही अपनी स्वार्थसिद्धि के लिये हमारे बीच जातिवाद के वैमनस्य का विषबीज बो दिया है ।

सांस्कृतिक चिन्तन-टूट रहे देश की दयनीयता पर उस देशवासी का दुःखी होना स्वाभाविक ही है, जिसे अपने देश से असीम प्रेम हो और जिसे दूसरी पत्तल का भात पसन्द न हो । शिवानी भी उसमें से एक हैं जिन्होनें अपने विदेश भ्रमण के पश्चात् व्यक्त उद्‌गारों के द्वारा अपनी देशभक्ति की ही पुष्टि नहीं की वरन् समृद्ध भारतीय संस्कृति की गरिमा को भी प्रतिष्ठापित किया है -- ' सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि पाश्चात्य जीवन की जिस चकाचौंध से हमारी आँखें वहाँ जाकर चौंधिया जाती हैं, गहराई में जाकर देखें तो उसका व्यर्थ मायाजाल स्वयं ऊपर तिरने लगेगा । उनकी विलासिता, उनका वैभव प्राचुर्य, भोग - लोलुपता, शाश्वत, मूल्यों की उपेक्षा स्वयं उन्हें बुरी तरह उबाने लगी है । उनके समृद्ध तथाकथित सुखी जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है, उनके सामाजिक जीवन में असुरक्षा का भय । माता - पिता हैं तो उन्हें बालिग हो रही पुत्री की चिंता है या उद्दंड पुत्र की । पति - पत्नी हैं तो उन्हें सम्भावित तलाक का भय है । वृद्ध माता-पिता हैं तो उन्हें सन्तानों द्वारा पिंजरापोल में निष्कासित किये जाने की चिंता खाये जाती है । भौतिकता पर आधारित उनकी आधुनिक सभ्यता नितान्त स्वार्थमूलक एवं प्रतिस्पर्धा परक मात्र है । वहाँ वह प्रेम, वह वात्सल्य या आत्म-बलिदान करने को सदैव तत्पर मानवता का वह रूप मुझे कहीं नहीं दिखा जो मानव को ऊँचा बनाता है । कैसे अधिक से अधिक अर्थ - संचय किया जाये या कैसे भौतिक साधनों से जीवन को अधिक - से - अधिक सुखी बनाया जाये, यह प्रवृत्ति ही मुझे वहाँ अधिक दिखी । '[1] निः संदेह शिवानी की निष्ठा अपनी भारतीय संस्कृति पर ही अधिक है । xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx उनकी यह निष्ठा उनके देश

1- यात्रिक, शिवानी , पृष्ठ 23

प्रेम को दर्शाती है और शिवानी का यह देश - प्रेम उनके हिन्दी - प्रेम के मिस भी देखा जा सकता है -- ' हिन्दी की जिस स्वतन्त्र सत्ता का स्वप्न भारतेन्दु ने देखा था वह भंग होताजा रहा है , तो हमें उसे भारतेन्दु कालीन जन्मघुट्टी एक बार फिर पिलानी होगी । उस काल में हिन्दी भाषा का जो स्वरूप था, उसे ध्यान में रखकर हममें से प्रत्येक हिन्दी प्रेमी को भाषा - संस्कार में निष्ठा पूर्वक जुटना होगा [1]"।

भाषा ज्ञान -

हिन्दी ही नहीं क्षेत्रीय भाषाओं का ज्ञान भी व्यक्ति के लिये कभी-कभी कितना सहायक सिद्ध होता है।इस तथ्य को शिवानी ने अपनी बोलपुर यात्रा के पश्चात् निःसंकोच भाव से स्वीकार किया है - " जीवन में पहली बार लगा विधाता के बाद यदि कोई सशक्त रहबर है तो वह है भाषा।-"[2]

प्रशासनिक चिन्तन -

इसी यात्रा में शिवानी ने भारतीय रेल में बिहार - वासियों की जो अभद्रता देखी वह भी दर्शनीय है -- " सहसा किसी स्टेशन पर गाड़ी रूकी और एक जत्थे का जत्था हमरे कमरे के बाहर दस्तक देने लगा - 'खोलिये - खोलिये ' । सबको जैसे साँप सूंघ गया , हम समझ गये कि बिहार आ गया है ।दरवाजे पर ऐसी भड़भड़ाहट आरम्भ हुई कि लगा कि द्वार ही टूट जायेगा । ' देखिये दरवाजा नहीं खुलेगा, सब सीटें आरक्षित हैं । [3] उत्तर में भयानक गालियों की बौछार ने शिवानी को स्तब्ध कर दिया - ' भाड़ में जाये आपका आरक्षण/ और शिवानी भारतीय रेल की दुरवस्था से क्षुब्ध हो उठीं/और सोचने के लिये विवश हो गयीं -- यह उस भारतीय रेल का प्रथम श्रेणी का आरक्षित कक्ष था जिसके लिये हमने पूरे साढ़े तीन सौ रूपये चुकाये थे।जब प्रथम श्रेणी की यह दुरवस्था तो द्वितीय श्रेणी का कुम्भी पाक कैसा ? यात्रा, यद्यपि आज मनुष्य की विवशता बन गयी है, तफरी के लिये कोई यात्रा नहीं करता , फिर भी कभी - कभार तो रेल यात्रा करनी ही पड़ती है । दिन रात किराया बढ़ाने पर भी यात्रियों को, सरकार समान्य सुविधा भी क्यों नहीं दे पाती ?[4]

1- आकष, शिवानी, पृष्ठ 70-71
2- एक थी रामरती, शिवानी , पृष्ठ 136
3- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ - 134
4- यथोपरि

प्रशासन की ढील और लापरवाही का ही परिणाम बिहार की उपरोक्त दशा को माना जा सकता है क्योंकि - " प्रशासन जितना ही निर्वीर्य होगा, अराजकता उतनी ही बढ़ेगी - इसी बढ़ती अराजकता के साये में, समाज-विरोधी तत्त्व, कब घातक सर्पों की भाँति किन - ओने- कोनों में दुबककर बैठ गये हैं, हम जान भी नही पायेगें, जानेगें तब, जब अर्थनैतिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक अराजकता के गहन अन्धकार के बीच भटकते हम स्वयं उनके क्रुद्ध उद्धत फनों से टकरा जायेगें । यही बिहार में हो रहा है । आज जो असहाय ,असुरक्षा की भावना, बिहार के सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त है, वही कल हमारे लिये भी सांघातिक सिद्ध हो सकती है ।"[1]

वस्तुतः प्रशासन और बिहार वासियों की उक्त अस्वाभाविक गतिविधियों का प्रमुख कारण उनमें व्याप्त अनिश्चितता और असुरक्षा की भावना ही है ।

आर्थिक चिन्तन -

पूँजीपतियों की अर्थलोलुपता एवं सामान्य जनता का अर्थनैतिक संकट भी आज मानवता के संहार का एक सशक्त साधन बन गया है । कुछ लोगों की स्वार्थमरता एवं मुनाफाखोरी का दुष्परिणाम ही आज की गरीब जनता भोग रही है । गरीब और गरीब होता जा रहा है और समृद्ध अधिक समृद्ध -- " अर्थनैतिक संकट से त्रस्त मानव आज नाना कुंठाओं से जकड़ स्वयं मानवता के ही संहार में जुट गया है । फलतः लूटमार, नृशंस हत्याएं तोड़फोड़ और 'उदर निमित्त बुद्धकृत वेश ' कोई पहुँचा सिद्ध बनकर, विदेश में भारतीय दर्शन की व्याख्या करने निकल पड़ता है । कोई तांत्रिक बनता है, कोई. भृगुसंहिता खोल भयत्रस्त मानव को उसके उज्ज्वल भविष्य के सपने दिखा अपनी जेब गरम करता है ।[2]

शिवानी की दृष्टि में समाज में व्याप्त इस अनैतिकता को दूर करने के लिये आवश्यक है कि अपराधी को दण्डित किया जाये - " समाज पर नियन्त्रण रखने के लिये, सुरक्षा की भावना बनाये रखने के लिये अपराधी को दण्ड देना नितांत अनिवार्य एवं नैतिक है।

1- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 42

2- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 50.

जब तक अन्यायी और अपराधी को दण्ड देने की सुव्यवस्था संचालित नहीं होती तब तक मानव अपनी स्वतन्त्रता एवं मौलिक अधिकारों से वंचित ही रहेगा ।[1]" किन्तु अपराधियों को दण्डित करने वाले अधिकारी ही जब अपराधियों को प्रश्रय दे उनको उद्यत करते रहेगें और स्वयं को स्वयंभू मान अहंकारपूर्ण आचरण करते रहेगें तब तक न तो जनता के मन से असुरक्षा का भाव ही मिटेगा और न ही उसे अपने अधिकारों के उपयोग का अवसर ही प्राप्त होगा । बल्कि इसके विपरीत लाल फीता शाही का जन्म होगा । शिवानी अपने पति की पेंशन प्राप्त करने के समय स्वयं इसी लाल फीताशाही की शिकार हुई हैं जबकि उनके पति एक प्रतिष्ठित उच्च अधिकारी थे और स्वयं शिवानी का नाम किसी के लिये अपरिचित नहीं था -- " महीनों से सरकारी लाल फीते का विष मेरी नस-नस में लहरें लेता मुझे लगभग निष्प्राण कर चुका था ।[2]

धार्मिक चिन्तन -

भारत में शासन पर केवल लाल फीताशाही ही नहीं हावी है बल्कि गेरूआ वस्त्रशाही भी सरल भारतीय जनमानस पर प्रभावी है । गैरिक परिधानों से अपनी काया को आवेष्टित किये हुए व्यक्ति आज श्रद्धा के नहीं खतरे के लाल निशान बन गये हैं । काषायवस्त्रधारी इन पाखण्डियों की काली करतूतों पर भी शिवानी की लेखनी ने अपना निशाना साधा है - " उपासना सभा का सभापत्तिव ग्रहण करता , गैरिक वसन धारी सौम्याकृति का पाखण्डी स्वामी आत्मानन्द । उनके गौर लालट पर गोरोचन का टीका रोली से संवरा रहता, दोनों बड़ी - बड़ी ऑखों की रेशमी पलकों का सौन्दर्य , किसी भी सुन्दरी की पलको से होड़ ले सकता था । निकट से देखने पर भी उसकी वयस की मरीचिका, चतुर से चतुर व्यक्ति को भी भटका सकती थी । वह निर्लज्ज मुझसे कहता था ' राधे मेरे पैर दाब दें । उस धूर्त स्वामी की मैं नस नस पहचानती थी । ' देख क्या रही है बहू, दाब दे न पैर । बड़ी अम्मा का आदेश मैं कैसे टाल सकती थी ? सिर झुकाये उसके चरण दाबने लगती, तो मुझे लगता असंख्य घिनौने कीड़े मेरी हथेलियों में कुलबुलाने लगें हैं । कभी - कभी सबकी दृष्टि

1- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 66

2- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 121

बचाकर, वह मेरी हथेली पैरों के बीच दबा लेता, उसकी भूखी आँखों की दुनाली से गोलियाँ दनदनानें लगतीं, दूसरे ही क्षण मेरी कठोर मुखमुद्रा देख, वह नट की फुर्ती से अपने को संयम की रस्सी पर साध लेता और ऊँचे स्वर में गीता के श्लोकों की आवृत्ति करने लगता । मेरे जी में आता, उसकी स्वर्ण मंडित पादुका उसके सिर पर दे मारूँ, पर लोगों की दृष्टि में उस परमहंस बाबा की महिमा अपार थी, उसका चरणोदक शीशियों में भरकर विदेश तक भेजा जाताथा । मैं कुछ कहती , तो वह लंपट मुझे ही लपेट लेता ।"[1]

साधुओं के इस खतरनाक समाज में केवल पुरूष ही नहीं स्त्रियाँ भी शामिल हैं --' बहुमूल्य शॉट सिल्क की गेरूआ लुँगी , वैसा ही ढीला कुरता, बंकिम जटाजूट पर बंधा रेशमी फीता, गौर वर्णी ग्रीवा पर विद्युत - वह्नि सी चमकती सोनी की चेन, कलाई पर बंधी घड़ी और उंगली पर अंगूठी । उस गैरिकवसना संसारत्यागिनी की श्रृंगार - साधना में मुझे वैराग्य दर्शन नहीं हुआ । [2] उनकी भाव-भंगिमा एवं क्रिया - कलापों में प्रदर्शन अवश्य था । आश्रम के गैरिक वातावरण में बंधी श्वेत वर्णी गायें भी उनके वाह्य आडम्बर का प्रतीक थीं । इस वैराग्य प्रदर्शन से कहीं अच्छा है गृहस्थी की गरिमा में ही डूबे रहना । शिवानी ने संकेत किया है कि इन काषायवस्त्र धारी विषधरों से समाज को सावधान व दूर रहना चाहिये ।

मदिरा एवं मद्यपान के प्रतिचिन्तन -

साधुओं के अलावा शिवानी ने शराबियों और शराब विक्रेताओं की अनैतिकताका भी चित्रण कर नशा जैसी दुष्प्रवृत्ति को समाप्त करने की भी समाज से अपील की है । क्योंकि -' आज मिलावट के विषमिश्रित मदिरापान के स्वरूप लम्बी कतार में पड़ी लाशों के चित्र प्रायः समाचार पत्रों में देखने को मिल जाते हैं ' मंहगाई के इस युग में मद्यपान करने वाला स्वयं तो मिटता ही है, अपने माता - माता को तो उनके जीवन - काल में ही नरक में घसीट ले जाता है । महाभारत, मत्स्यपुराण मनुस्मृति प्रत्येक धर्मग्रन्थ ने , मदिरापान की निन्दा की है जबकि उन दिनों मदिरा की सृष्टि भी बड़ी ईमानदारी और निष्कपट निष्ठा से की जाती थी । आज सुरानिर्माताओं ने सुरा में मिलावट करके मनुष्य के जीवन के अस्तित्व को ही समाप्त कर दिया है ।

1- मेरी प्रिय कहानियाँ, शिवानी, पृष्ठ 76-77

2- वातायन, शिवानी पृ.ष्ठ,78।

दहेज एक दावानल-

मदिरा की तरह ही न जाने कितने परिवारों को भग्न करने का श्रेय दहेज प्रथा को भी है । लड़की की शादी करते समय जो पिता केवल कुश-कन्या कहकर अपनी दयनीयता दर्शाता है । वही लड़के की शादी करते समय कुबेर का प्रतिरूप बन महाजन की तरह लड़की वालों से एक - एक पाई का ब्यौरा माँगता है । इसके विरोध में भी शिवानी का स्वर मुखर हुआ है - ' पता नहीं, इस दासत्व की घिनौनी प्रवृत्ति से हम कब मुक्त हो पायेगें । जब तक हम में यह भावना प्रधान रहेगी तब तक दहेज प्रथा का वर्जन समितियों का गठन करना व्यर्थ ही प्रतीत होता है । इसी से इक्के - दुक्के समाचार पत्रों में किसी दहेज याचक बेटे के ग्रामीण पिता को, या साइकिल के लिये मचलने वाले नौशे को जेल में बन्द किये जाने का समाचार पढ़कर हमें संतोष नही होता । क्योंकि इतना हम भली भाँति समझने लगे हैं कि वास्तविक अपराधी अधिकतर कानून को भी अंगूठा दिखा कर मुक्त हो विचरता है । गोस्वामी जी की उक्ति ' समरथ को नहिं दोष गुसाईं' ऐसे ही कन्या - वर पक्षों पर चरितार्थ होती है जो गहरी सूझ - बूझ से बैंक ड्राफ्ट सहित पूरा दहेज परोक्ष रूप से अदृश्य किस्त में अदा कर निराभरण कन्या को पतिगृह के लिये ऐसे विदा करते हैं जैसे केवल पुष्पाभूषणों से सज्जिता कण्वाश्रम से विदा हो रही वल्कलधारिणी शंकुतला हों । [2]

वर्तमान समाज के सामने इतने अधिक चिन्तनीय विषय हैं कि केवल साहित्यकार अकेले चने की तरह भाड़ फोड़ने में कहाँ तक समर्थ होगा । फिर भी शिवानी ने समाज के सन्दर्भ में अपनी जो चिन्ता व्यक्त की है, वह उनके सामाजिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के साथ ही साथ उन्हें यथार्थवादी सामाजिक साहित्यकार की श्रेणी में खड़ा कर देती है ।

1- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 85

2- वातायन, शिवानी, पृष्ठ - 143

घ. शिवानी के साहित्य में अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता

संघर्ष जीवन का पर्याय ही नहीं सूत्र भी है और यह जीवन संघर्ष प्रतिकूलता को अनुकूल बनाने का सतत् प्रयास होता है । प्रतिकूल परिस्थितियों में ही व्यक्ति सघन अंधकार में भीषण झंझावातों से अपने अस्तित्व की रक्षा करता हुआ दीपक की भाँति अपनी मंद किन्तु अपराजित ज्योति के कारण दीप्तोन्नत शीर्ष उठा गर्व से पथिकों का विहंसते हुए मार्ग प्रशस्त करता है । जबकि सूर्य के तीव्र प्रकाश के समक्ष बड़े-बड़े तारे प्रकाश के अनुकूल परिस्थिति के होने पर भी दिन में प्राणों की भीख माँगते एवं दम तोड़ते नजर आते हैं । प्रतिकूल परिस्थितियों में ही व्यक्ति की प्रतिभा, क्षमता एवं उसकी विशिष्टतायें अपनी प्रखरता के चरम बिन्दु का स्पर्श करती हैं । प्रतिकूल परिस्थितियों में ही उसके स्थैर्य एवं धैर्य की परीक्षा होती है । व्यक्ति प्रतिकूल प्ररिस्थितियों में ही शक्ति सम्पन्न बनता है ।

अनुकूल परिस्थितियों में जीना जितना सहज है, प्रतिकूल परिस्थितियों में उतना ही कठिन । किन्तु जिस प्रकार तृषित अधरों को ही जल की शीतलता का आनन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना जीने वाले व्यक्तियों का जीवन सुखद और आनन्दमय होता है । नदी की अनुकूल धारा में बहकर नाव बिना नाविक के भी आगे बढ़ सकती है । किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियों में नाव खेने का संघर्ष ही व्यक्ति को माझी जैसा आत्मविश्वास प्रदान करता है । जब तक व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना नहीं करता है तब तक उसे अपनी शक्ति, साहस, धैर्य, कुशलता एवं बुद्धि का परिचय नहीं मिलता है । विश्व के ख्याति प्राप्त उँगलियों में गिने जाने वाले अधिकाँश नाम उन व्यक्तियों के हैं जिन्होनें प्रतिकूल परिस्थितियों में ही उपलब्धियाँअर्जित की है । कंचन अग्नि में तपकर ही खरा होता है । प्रतिकूलता से अनुकूलता की ओर संघर्षरत जीवन ही सफल जीवन की परिभाषा बनती है । प्रतिकूलता के अभाव में जीवन एकाँगी और एकरस हो जाता है । अतः जीवन में प्रतिकूलता का होना उतना ही आवश्यक है जितना कि श्वेत वस्त्रों को और अधिक उज्ज्वल करने के लिये नील का होना ।

प्रतिकूलता अर्थात् प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी दो प्रकार की हो सकती हैं । एक तो मानव जन्य और दूसरी प्रकृति या दैवदत्त । दोनों प्रतिकुलतायें अलग - अलग भी हो सकती हैं और दोनों एक साथ मिलकर भी व्यक्ति को परखने के लिये उत्पन्न हो सकती हैं ।

व्यक्ति इन प्रतिकूलताओं के प्रति किस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करे, यह उसकी वैयक्तिक बुद्धि एवं क्षमताओं पर निर्भर करता है । यदि वह घुट-घुटकर निरन्तर क्षरित ही होता रहा तो कभी भी सफल नहीं हो सकता । किन्तु यदि वह प्रतिकूलता को अनुकूल बनाने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहता है तो वह अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होता है । प्रतिकूल परिस्थितियों में व्यक्ति का क्षरण एक प्रकार से व्यक्ति की मृत्यु का ही परिचायक है , जबकि संघर्षरत् रहना जीवन्तता का प्रतीक है ।

शिवानी के जीवन में भी अनेक उतार-चढ़ाव आये हैं और दूसरों के जीवन के उतार - चढ़ाव उन्होनें देखे भी हैं । शिवानी के साहित्य में अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता उनके उपन्यासों, कहानियों एवं संस्मरणों के पात्रों के माध्यम से देखी जा सकती है ।

अनुकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता

जीवन को बनाने - बिगाड़ने में सदैव प्रतिकूल परिस्थितियों का ही हाथ नहीं रहता बल्कि अनुकूल परिस्थितियाँ भी जीवन को बनाने एवं बिगाड़ने दोनों ही में अपनी भूमिका निभाती हैं । अनुकूल परिस्थितियाँ सदैव व्यक्ति को सफलता के शिखर पर ही नहीं पहुँचाती हैं बल्कि कभी - कभी इन परिस्थितियों में रहकर व्यक्ति आलसी, निर्भय, लापरवाह और गैरजिम्मेदार होकर आचरण हीन, पथभ्रष्ट एवं अनैतिक भी हो जाता है ।

'अतिथि' उपन्यास की स्वाभिमानी नायिका 'जया' अपनी प्रकृति की अनुकूलता के कारण जीवन की हर सफलता का स्पर्श करती है और उसकी नियति की यह अनुकूलता ही उसे मंत्री माधव बाबू की पुत्रवधू भी बना देती है । यही नहीं माधव बाबू उसे अपनी पुत्रवधू बनाने के लिये उससे याचना तक करते हैं - "' तुम्हें मेरे इस गृह की लक्ष्मी बनकर आना ही होगा जया, कहीं इस भिक्षुक को खाली हाथ मत लौटा देना ।[1]" यदि जया के

1- अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 85

जीवन में आंशिक प्रतिकूलता आती भी है तो वह उसके स्वाभिमान के कारण न कि प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण । अपनी इस आंशिक प्रतिकूलता में भी वह आई0ए0एस0 की परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर नियति को अपने अनुकूल बना लेती है । यह उसकी अनुकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता ही तो हैं ।

'चौदह फेरे ' उपन्यास के नायक कर्नल पाण्डे के उच्च व्यवसायी एवं समस्त आधुनिक साधन सम्पन्न होने का रहस्य उसकी अनुकूल परिस्थितियाँ ही हैं । उसकी नियति की अनुकूलता ने स्वयं उसे व्यवसायी बना दिया - ' एक दिन कमिश्नर साहब ने तरूण शिवदत्त (कर्नल) को देखा और जज साहब से कहा ' पाण्डे, क्यों वकालत पढ़ाकर बेटे का जीवन बिगाड़ रहे हो? देखते नहीं, लड़का व्यवसाय में लगाने से चमक उठेगा । कलकत्ते का विल्सन मेरा मित्र हैं, तुम्हारे लड़के को बना देगा, चिट्टी लिख देता हूँ ।"[1] और सचमुच मानव हृदय के जौहरी विल्सन ने उस सजग चाणक्य कर्नल पाण्डे को अपने व्यवसाय में लगा उसके जीवन में रंगीनियाँ ही रंगीनियाँ भर दीं । कर्नल जितना बड़ा व्यवसायी था , उतना ही बड़ा अवढदानी भी था -- ' कर्नल कुमाऊँ का आगा खान था, दरिद्र विधवाओं का कल्पतरू । कर्नल के नाम के पीछे किसी फौजी ओहदे का वैभव नहीं था । जूट के व्यवसायी कर्नल का नाम केवल उसकी छह फुटी विराट देह के बूते पर ही पड़ गया था । कोई ऐसा व्यवसाय नहीं था, जिसकी डोर कर्नल के हाथ में नहीं थी ।"[2] इस प्रकार अपनी अनुकूल परिस्थितियों के बलबूते पर एवं अपनी तीक्ष्ण बौद्धिक दृष्टि से कर्नल एक कुशल व्यवसायी बन अपने दामन में खुशियाँ ही खुशियाँ भर अनुकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता का प्रतीक बनता है ।

'कृष्णकली' उपन्यास की 'कृष्णकली' यद्यपि कोढ़ी माँ - बाप की अवैध सन्तान होती है किन्तु उसका भाग्य इतना प्रखर होता है कि वह अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक राजरानी सा जीवन जीती है । जन्म लेते ही डॉ0 पैट्रिक उसकी नन्हीं जान की रक्षा करती हैं एवं उसें पन्ना की गोद में डाल देती हैं । पन्ना उसका मातृवत् पालन-पोषण करती है ।

1- चौदह फेरे, शिवानी, पृष्ठ 7

2- चौदह फेरे, शिवानी, पृष्ठ 6

उच्च शिक्षा - संस्थानों में उसे पढ़ाती हैं । एक दिन अचानक अपने माँ-बाप के रहस्य को जानकर वह घर छोड़कर निकल जाती है फिर भी उसे दर-ब-दर भटकना नहीं पड़ता । अपने अनिंद्य सौन्दर्य एवं तीक्ष्ण बुद्धि के कारण वह कई तरह की सर्विस करती है और शान - ए- शौकत से रहती है और जीवन के अंतिम क्षणों में अपने गंभीर प्रकृति के प्रणयी प्रवीर का स्नेह-स्पर्श एवं सान्निध्य भी प्राप्त करती है -- ' मैं तुम्हें देखने फिर आऊँगा कली । प्रवीर ने उसके नुकीले कन्धे पर हाथ रख दिया । "[1] कहने का तात्पर्य यह कि हमारे हिन्दू समाज में अवैध सन्तान की जो दुर्गति होती है, वह अन्यत्र कहीं नहीं । अवैध होने पर भी कृष्णकली के जीवन को सुख एवं समृद्धि से भरने वाली उसकी अनुकूल परिस्थितियाँ ही तो हैं अतः यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि मानव - जीवन के निर्माण में उसकी अनुकूल नियति का भी हाथ रहता है ।

इसी प्रकार ' तीसरा बेटा ' उपन्यास की 'सावित्री' 'श्मशान चंपा ' के 'सेनगुप्त एवं कमलेश्वरी सेन' ' माणिक' उपन्यास की 'रम्भा ' , 'तिलपात्र' उपन्यास की 'दिलराज कौर 'मित्र' कहानी का ' कामेश्वर', 'भैरवी' उपन्यास का 'विक्रम', 'कोयलिया मत कर पुकार ' संस्मरणात्मक कहानी की 'अख्तरी बेगम" 'चांचरी' कहानी का 'श्रीनाथ', 'चौदह फेरे ' की 'अहल्या' आदि सभी पात्र अनुकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता के ज्वलन्त उदाहरण हैं, जिनकी अनुकूल नियति ने उनके जीवन को सफल बनाकर उन्हें सफलता के सर्वोच्च सोपान तक पहुँचाया ।

1- कृष्ण कली, शिवानी, पृष्ठ 290

प्रतिकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता

संस्मरण संकलन 'जालक' की नारी पात्र डॉ0 चन्द्रा शरीर के निचले धड़ के निष्प्राण होने के बावजूद भी मेडिकल सांइस में पीएच0डी0 की डिग्री प्राप्त कर प्रतिकूल परिस्थितियों के लिये स्वयं चुनौती बनती है । शिवानी ही नहीं अन्य व्यक्ति भी उसके साहस और धैर्य की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते । प्रेरणा एवं साहस की साक्षात् मूर्ति डॉ0 चन्द्रा के सम्बन्ध में शिवानी लिखती हैं - " नियति के प्रत्येक कठोर आघात को अमानवीय धैर्य एवं साहस से झेलती वह बित्ते भर की लड़की मुझे किसी देवांगना से कम नहीं लगी । ------ जिसका निचला धड़ हैं निष्प्राण माँस - पिंडमात्र, सदा उत्फुल्ल हैं; चेहरे पर विषाद की एक भी रेखा नहीं, बुद्धि - दीप्त आँखों में अदम्य उत्साह, प्रतिपल-प्रतिक्षण भरपूर जीने की उत्कट जिजीविषा, और फिर कैसी - कैसी महत्वकॉंक्षायें । ------ सम्प्रति वह आई0आई0टी0, मद्रास में काम कर रही है । जन्म के 18 वें महीने बाद ही जिसकी गरदन के नीचे का पूरा शरीर पोलियों ने निर्जीव कर दिया हो, उसने किस अद्भुत साहस से नियति को अँगूठा दिखा, अपनी थीसिस पर डॉक्टरेट ली होगी ।[1]"

डॉ0 चन्द्रा की इस वर्तमान उपलब्धि का राज है स्वयं उनकी सुदीर्घ कठिन अभ्यास की यातनाप्रद भूमिका । डॉ चन्द्रा के साहस एवं धैर्य की दाद देते हुए स्वयं उनके प्रोफेसर ने कहा है -- ' अपंग स्त्री - पुरूषों में 'माइक्रोबायोलॉजी' विषय में डाक्टरेट पाने वाली डॉक्टर चन्द्रा प्रथम भारतीय हैं । ------ मुझे यह कहने में रंचमात्र भी हिचकिचाहट नहीं होती कि डॉ0 चन्द्रा ने विज्ञान की प्रगति में महत् योगदान दिया है । चिकित्सा ने जो खोया है, वह विज्ञान ने पाया ।[2]

यही नहीं गर्ल गाइड में राष्ट्रपति का गोल्ड कौर्ड पाने वाली वह प्रथम अपंग बालिका भी चन्द्रा ही थी । 'ईश्वर सब द्वार एक साथ बंद नहीं करता । यदि वह एक द्वार बन्द करता भी है , तो दूसरा द्वार खोल ही देता है । इस आस्था के सहारे डॉ0 चन्द्रा ने अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों पर जो विजय प्राप्त की, वह हम सबके लिये एक प्रेरक एवं उद्धरणीय प्रसंग है ।

1- जालक, शिवानी, पृष्ठ 6-7

2- जालक, शिवानी, पृष्ठ 7-8-9

'श्मशान चंपा ' उपन्यास की चंपा एवं उसकी माँ भगवती के जीवन में भी अनायास ही प्रतिकूल परिस्थितियों का तुषारापात हो जाता है । चंपा के पिता का रिश्वत लेने के कारण अचानक सस्पेंड हो जाना एवं छोटी बहन जूही का मुस्लिम युवक के साथ भाग जाना आदि मानव जन्य परिस्थितियों ने चंपा एवं उसकी माँ को झकझोर कर रख दिया । समाज की जो उपेक्षा मिली वह अलग । यही नहीं चंपा की सगाई टूट जाने की वजह भी यही थी । वे दोनों इन मुसीबतों से उबर भी न पाई थी कि चंपा के पिता धरणीधर की मृत्यु भी हो गयी । प्रकृति ने भी उन्हें नहीं बख्शा -----" पति की मृत्यु ने भगवती को कुछ ही दिनों में बूढ़ी बना दिया था । जीवन का एक महत्वपूर्ण अध्याय, अकस्मात् उसकी आँखों के सामने ही समाप्त हो गया था । जीवन का एक क्षण भी जिसके बिना सार्थक नहीं था, सुबह से शाम तक जिसके साथ सुख - दुःख बाँटती - बाँटती, वह स्वयं अपना अस्तित्व एक प्रकार से भूल जाती थी, वही आज उसे हृदयहीन निर्ममता से, बिना कुछ कहे ही जीवन के शून्याकाश में एकाकिनी तारिका-सी ही टिमटिमाती छोड़ गया था ।[1]" पति का कर्ज चुकाने में कोठी भी नीलाम हो गयी । अब उस विगत वैभव की स्मृति ही शेष रह गई । फिर भी माँ- बेटी दोनों संघर्षो से जूझती रहीं, एक - दूसरे के लिये जीती रहीं । चंपा जीविकोपार्जन एवं हृदय हीन समाज से माँ को दूर रखने के लिये बर्दवान के पास वीरभूम के सीमान्त के जमींदार सेनगुप्त की डिस्पेंसरी में डॉक्टर का कार्यभार संभाल लेती है और अपनी कार्यकुशलता से प्रतिकूल परिस्थितियों को पराजित कर सेनगुप्त की पत्नी कमलेश्वरी सेन की विपुल सम्पत्ति की स्वामिनी बनती है । यह उसकी प्रतिकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता ही है, जो अनेक संघर्षो से जूझकर भी 'गुरू केनाराम की अधम दासी ' के रूप में शान्ति का वरण करती हैं ।

इसी प्रकार 'आकाश' निबन्ध संग्रह में संकलित संस्मरण रत्न 'पं0 कृपालदत्त त्रिपाठी', ' मेराभाई' कहानी संग्रह के 'हामिद भाई' , 'मायापुरी' उपन्यास की नायिका शोभा, 'सुरंगमा' उपन्यास की ' राजलक्ष्मी' , ' जा रे एकाकी' कहानी की नायिका चुनली, 'चांचरी' कहानी की नायिका ' बिन्दी ' जो अपनी नियति के प्रतिकूल होने पर सामाजिक जीवन में

1- श्मशान चंपा, शिवानी , पृष्ठ -25

उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर पाती किन्तु आध्यात्मिक जीवन में चरमोत्कर्ष को प्राप्त करती है, 'चीलगाड़ी' कहानी की नायिका, 'रथ्या' उपन्यास की 'बसन्ती', 'अभिनय' उपन्यास की नायिका जीवन्ती, संस्मरण संकलन ' जालक' की प्रथम भारतीय महिला डॉक्टर आनंदी, ' मेरा भाई' कहानी संकलन के डॉ खजान चंन्द्र 'चौदह फेरे ' उपन्यास की 'नन्दी', 'रतिविलाप' उपन्यास की 'अनुसूया', 'कैंजा' उपन्यास की 'नंदी तिवारी', 'चल खुसरो घर अपने ' उपन्यास की 'कुमुद जोशी'लाल हवेली ' कहानी की 'सुधा' ,'नथ' कहानी की 'पुट्टी', 'माणिक' उपन्यास की 'नलिनी मिश्रा', 'स्वयंसिद्धा' उपन्यास की ' स्वयंसिद्धा माधवी', 'उपप्रेती' उपन्यास की 'रमा', ' दो सखियाँ' उपन्यास की ' आनन्दी और सुखुबाई', 'कस्तूरीमृग' उपन्यास का ' नन्हें', 'विवर्त्त' उपन्यास की 'ललिता' 'कालिन्दी' उपन्यास की ' अन्नापूर्णा एवं कालिन्दी ' , 'करिए छिमा' कहानी की 'हीरावती', भैरवी' उपन्यास की ' चन्दन ' , 'कृष्णकली ' उपन्यास की 'पन्ना' आदि सभी पात्र प्रतिकूल परिस्थिति सापेक्ष जीवन्तता के प्रतीक हैं , जिन्होनें जीवन पर्यन्त संघर्षो का सामना किया, फिर भी टूटे नहीं, हारे नहीं ।

****

तृतीय अध्याय

शिवानी के उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद
एवं नैतिकता

शिवानी के उपन्यास साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिकता :

साहित्य में आदर्श एवं नैतिकता का उतना ही महत्त्व है जितना प्राणी के लिये भोजन और वायु का, सुमन के लिए रंग और सुगंध का, नदी के लिए नीर और तीर का । यदि इनमें से एक का भी अभाव हो तो दूसरा स्वयं महत्वहीन होकर सम्पूर्ण संरचना को निरर्थक एवं निष्प्राण बना देता है । संभवतः इसलिए फिल्म लोक के चर्चित गीतकार और कथाकार साहित्यकारों की श्रेणी में कभी नहीं आ पाये। मनोरंजनार्थ लिखे गये उपन्यास यात्रियों की यात्रा को सरस, मनोरंजक बनाने में भले ही सहायक सिद्ध हुए हों किन्तु वे भी साहित्यिक भवन के द्वार पर भिक्षु ही रहे है ।

कोई कृति तभी साहित्यिक मानी जा सकती है जब वह आदर्श और नैतिकता से आपूर्ण हो । शिवानी ने भी अपने उपन्यासों में आदर्श और नैतिकता का प्रतिपादन जगह-जगह पर किया है । ऐसा नहीं है कि उन्होंने उपन्यास केवल पाठकों के मनोरंजनार्थ लिखे हों एवं आदर्श और नैतिकता के तत्त्व उसमें अनजाने में आ गये हों । वस्तुतः शिवानी के उपन्यासों को पढ़ने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि शिवानी ने आदर्श और नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना के लिए ही तदनुरूप पात्रों को चयन किया हैं और उन्हीं के माध्यम से अपने अभीष्ट की प्राप्ति भी दर्शायी है । इस प्रकार शिवानी का लक्ष्य मात्र मनोरंजन नही, अपितु ध्वस्त हो रहे सामाजिक, सांस्कृतिक, मूल्यों का संरक्षण ही है । हाँ, गंभीर से गंभीर विषय प्रवाह में भी बीच-बीच में पाठक को अनायास हंसा देना शिवानी की शैली का गुण विशेष है ।

उपन्यास और मनोरंजन के संदर्भ में अंग्रेजी विद्वान हेनरी हडसन ने कहा है - ' जीवन में मनोरंजन है, उससे मनोरंजन होता भी है, किन्तु जीवन का आग्रह मनोरंजकता में ही नही होता, उसी प्रकार उपन्यासों में भी मनोरंजन होता है । वे मनोरंजक होते भी हैं, किन्तु न तो मनोरंजकता ही उनका चरम रूप होता है और न मनोरंजन ही उसकी परमोपलब्धि । '[1]

यही बात उपन्यासकार मुंशी प्रेम चन्द्र ने भी कही है-' साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है । यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है ।

---

1. ऐन इण्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ लिटरेचर:विलियम हेनरी हडसन, पृष्ठ -74

साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है ।'[1] आदर्श और नैतिकता विहीन उपन्यासों के सम्बन्ध में वे पुनः लिखते हैं -' वही उपन्यास उच्च कोटि के समझे जाते हैं, जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो । आदर्श को सजीव बनाने के लिए ही यथार्थ का उपयोग होना चाहिये और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है । उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है, जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें । जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नहीं है, वह दो कौड़ी का है ।'[2] उपन्यास के मूल तत्व को भी स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द जी लिखते हैं -

'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ । मानवचरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तन्त्व है ।'[3]

शिवानी के उपन्यासों में आदर्शवाद एवं नैतिकता का जो प्राचुर्य है, वह उनकी शैलीगत विशेषता है, उनके जन्मगत संस्कार हैं एवं स्वयं उनका विरल व्यक्तित्व है । उनके उपन्यासों की स्वाभाविकता ही उनका आदर्श है और वास्तविकता उनका साध्य ।

आदर्श

आ उपसर्ग युक्त दृश धातु दर्शन कराने, दिखाने और प्रतिबिम्ब झलकने के अर्थ में, दर्पण के अर्थ में (आ+दृश+घञ्) प्रयुक्त है । आदर्श का तात्पर्य है स्वयं के रूप, कार्य, आचरण और व्यवहार को देखने का आधार, स्वयं के दर्प को देखकर आचरणपूर्ण या मर्यादापूर्ण दर्पहीनता की स्वीकृति, त्याग और तप से परिपूर्ण आचरण की महत्ता जो लोक हित में अनुकरणीय हो वही आदर्श है । अंग्रेजी का आईडिअल इसी आदर्श का बोधक है ।

आदर्श वस्तुतः परम्परागत उत्कृष्ट आचरण की मूलभूत पाण्डुलिपि है जिसकी प्रतिकृति अनुकरण के माध्यम से स्वयं के आचरण में की जाती है ।

---

1. कुछ विचार, प्रेम चन्द्र, पृष्ठ 53.
2. कुछ विचार , प्रेमचन्द्र, पृष्ठ 52-53.
3. कुछ विचार, प्रेमचन्द्र, 49.

व्युत्पत्ति की दृष्टि से आदर्श (आ+दृश+घञ्) दर्पण बोधक हैं [1] और दर्पण (दृप+णिच्+लिट्) दृष्टि का बोध कराता है [2] किन्तु 'लोचन विहीन व्यक्ति दर्पण का कर ही क्या सकता है' [3] जिसे अपने विषय में दूसरों के दृष्टिकोण की समझ है अथवा जो दूसरों की दृष्टि में स्वयं के लिए कोई स्थान समझता है वही आदर्श का आकांक्षी है और वही दूसरे के दृष्टिकोणों में दर्पण की झलक एवं समझ रखता है और स्वयं के समग्र व्यक्तित्व को दूसरों से विशिष्ट बनाने के लिए सचेष्ट होता है । अन्य की दृष्टि में विशिष्ट हो जाना आदर्श की पंक्ति में आबद्ध होना है । समाज में यह वैशिष्ट्य दो रूपों में दृष्टव्य है - 1. लोकाचार जनित 2. शास्त्राचार जनित आदर्श । लोकाचार और शास्त्राचार द्वारा आदर्श की परिकल्पना वस्तुतः आचरण पर आधारित है अर्थात् सदाचार का निष्ठापूर्वक पालन करना ही आदर्श है ।

डा0 प्रेमनारायण शुक्ल ने आदर्श के सम्बन्ध में कहा है - " जहाँ हमारे जीवन का सत् जाग्रत होकर हमारी चेतना को गति प्रदान करता है वहीं आदर्श की अवतारणा होती है क्योंकि मानव का मूल उसके आचरण, उसकी सभ्यता और उसकी संस्कृति में निहित है । मनुष्य का यथार्थ जीवन सुख - दुख का मिश्रण है । इसमें अनेक विषमतायें भी हैं । विषमता की इस परीक्षा में जो व्यक्ति जितना ही अधिक सफल होता है वह उतने ही अधिक उच्चतम आदर्शों का निर्माण कर पाता है । इस प्रकार हमारा आचरण जन - जीवन के आचरण से भिन्न होता है ।' [4] वस्तुतः यही आदर्श हमारे जीवन को देवतुल्य बनाता है ।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने आदर्श की परिकल्पना इन शब्दों में की है - ' आदर्श की रेखायें कल्पना के सुनहले रंगों से तब तक नहीं भरी जा सकतीं जब तक उन्हें जीवन के स्पन्दन से न भर दिया जाये और दूसरी ओर यथार्थ की तीव्र धारा को दिशा देने के पहले उसे आदर्श

---

1. संस्कृत हिन्दी कोश,वामन शिवराम आपटे, पृष्ठ 146.
2. -तदैव- पृष्ठ 450.
3. लोचनाभ्याम् विहीनस्य दर्पणः किम् करिष्यति । छन्दोमञ्जरी ,श्लोक 109.
   रघुवंश /10/10 वें सर्ग का दसवां श्लोक
4. हिन्दी साहित्य में विविधवाद ,डा0 प्रेमनारायण शुक्ल संस्करण 1970, पृष्ठ 189-190.

के मूलों का सहारा देना आवश्यक है । आदर्श जीवन के निरपेक्ष सत्य का बालक है और यथार्थ जीवन की सापेक्ष सीमा का जनक ।"[1.]

आदर्श राष्ट्र के सन्दर्भ में श्री जीवन प्रकाश जोशी का विचार है कि 'जो है विह सब सत्य है और , उसके दो रूप हैं - व्यक्त और अव्यक्त । जो व्यक्त है, वह प्रकृति है, परिवर्तनशील है और जो अव्यक्त है, पह नित्य है किन्तु अदृश्य है ।' [2.]

इसी अव्यक्त किन्तु नित्य को अंग्रेजी में आइडिया कहते हैं । आइडिया यानी भावानात्मक विचार । आदर्श का सम्बन्ध विचारों से भी जोड़ा जाता है और समयुगीन सद्विचार ही युगादर्श के रूप में प्रतिष्ठित एवं अनुकरणीय हुआ करते हैं । इसीलिए प्रत्येक युग के आदर्श दूसरे युग से भिन्न और कभी-कभी दूसरे युग के लिए अनावशक एवं प्रतिकूल सिद्व हो जाते हैं । काल-क्रमानुसार आदर्शों के स्वरूप में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है । प्रसिद्ध विद्वान (टेनीसन) ने कहा भी है-
Lest one good custom should corrupt the world ."[1]

वस्तुतः विचार जब आचार के रूप में परिवर्तित हो मनसा - वाचा - कर्मणा के समन्वित स्वरूप में प्रतिष्ठित हो श्रेष्ठता को प्राप्त करते हैं तो वे समाज में आदर पाते हैं और आदर्श का स्वरूप धारण करते हैं । अति संक्षेप में आदृत आचरण ही आदर्श है ।

जब हम आदर्शों की बात करते हैं तो समाज में श्रेष्ठतम् की परिकल्पना करते हैं । यही मत विद्वान लेबनीज् का भी है -"*All is for the best in best of all possible worlds.* .

यह श्रेष्ठतम का चुनाव व्यक्ति, समाज एवं युग के अनुसार भिन्न-भिन्न हुआ करता है और यह विभिन्नता ही कभी-कभी आदर्श के वर्गीकरण का आधार बनती है । आदर्श का आधार भूत वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है - 1. वैयक्तिक आदर्श 2. सामाजिक आदर्श 3. युगीन आदर्श 4. सार्वभौमिक आदर्श ।

---

1. महादेवी वर्मा , 2. साहित्य में आदर्श और यथार्थ, जीवन प्रकाश जोशी ।

वैयक्तिक आदर्श

आदर्श नितान्त वैयक्तिक होता है और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में जब वैयक्तिकता भी व्यक्तिगत नहीं रह पाती तब वह सामाजिक आदर्श या लोक आदर्श के रूप में स्वीकृति होती है । समाज में शिक्षित और अशिक्षित दो तरह के व्यक्ति पाये जाते हैं और दोनों के आदर्श एक दूसरे से भिन्न होते हैं ।

शिक्षितों का आदर्श वस्तुतः परम्परागत उत्कृष्ट आचरणों की शास्त्रसम्मत या इतिहास सम्मत स्वीकृति और तदनुरूप आचरण ही शिक्षित आदर्श है । मृच्छकटिक के अनुसार शिक्षित जनों के आदर्श का तात्पर्य है कि केवल अनुकरण के माध्यम से शिक्षित समाज में प्रचलित या मान्य आदर्श का जो मूलरूप विद्वानों द्वारा शास्त्रों में उल्लिखित है, उस मूलभूत आदर्श के सम्यक् अध्ययन के पश्चात् तदनुरूप समुचित आचरण शिक्षितों का आदर्श हैं। 'आदर्शःशिक्षितानाम्' [1].

जहाँ शिक्षितों के आदर्श शास्त्रोक्त विधि सम्मत एवं तर्कसम्मत होते हैं वही अशिक्षितों के आदर्श अन्ध अनुकरणीय होते हैं । यही कारण है कि एक ही आदर्श शिक्षित और अशिक्षित दोनों को अलग-अलग ढ़ंग से प्रभावित एवं प्रेरित करता है । राम का आदर्श शिक्षितों के लिए इसलिए अनुकरणीय है क्योंकि वह उनके लिए एक मर्यादित (मर्यादा पुरूषोत्तम) व्यक्ति का आचरण होता है जबकि अशिक्षितों के लिए वह इसलिए आंख मूंदकर अनुकरणीय होता है क्योंकि वह उनके भगवान का आचरण होता है ।

जाति प्रथा शिक्षितों को इसलिए स्वीकार्य थी क्योंकि वह कर्माधारित एक उत्तम सामाजिक व्यवस्था थी । किन्तु अशिक्षितों को वह इसलिए मान्य थी क्योंकि वह धर्मसम्मत ईश्वरीय व्यवस्था थी । आज शिक्षितों के लिए वही व्यवस्था अपना आदर्श खो चुकी है जबकि अशिक्षित उसे आज भी अपना आदर्श माने हुए हैं। यही बात सती प्रथा के सन्दर्भ में भी देखी जा सकती है । प्रारम्भिक चरणों में सती प्रथा को अपनाने का कारण विधवा समस्या एक सफल निदान था जबकि अशिक्षितों ने उसे स्वर्ग प्राप्ति का सरल सोपान मानकर अपनाया । चूँकि व्यक्ति मनोवृत्तियों का

---

1. मृच्छकटिक , अध्याय 1, श्लोक 48.

एक पुन्ज है इसलिए उसकी रूचियां दूसरों से भिन्न होती हैं। अपनी अभिरूचियों के अनुसार भी वह समाज के अनेकानेक स्थापित आदर्शों में से कोई आदर्श अपने लिए चुन लेता है और तदनुसार आचरण कर तदनुरूप बनने का प्रयास करता है ।

सामाजिक आदर्श

दुर्खीम के मतानुसार समाजशास्त्र सामूहिक प्रतिनिधानों का विज्ञान है [1]. अर्थात प्रत्येक समाज के अपने कुछ विचार और मूल्य होते हैं जिनको स्थायी रूप देने के लिए समाज सदैव प्रयत्नशील रहता है। इसी प्रयत्न के कारण लोगों के व्यवहार में काफी हद तक समानता देखने को मिलती है । यह समानता उस समाज विशेष की विशेषता बन जाती है । इसी विशेषता को दुर्खीम सामूहिक प्रतिनिधान मानते हैं और हम इसे आदर्श ।

प्रत्येक समाज के व्यक्ति अपने को एक आदर्श रूप में स्थापित करने की कल्पना करते हैं और उसको साकार रूप देने के लिए कुछ व्यवहारिक प्रतिमान और चारित्रिक मानदण्ड निर्धारित करते हैं और आशा रखते हैं कि उसके समाज का प्रत्येक सदस्य उन निर्धारित मानदण्डों पर खरा उतरे । इस आशा को व्यवहारिक रूप देने के लिए वह सामाजिक नियन्त्रण के अनेक अभिकरणों का सहारा भी लेता है । अपेक्षा के विपरीत आचरण करने वालों को वह दण्ड देने से भी नहीं चूकता है । कानून इस नियन्त्रण का विधि - सम्मत स्वरूप है जबकि प्रथाएं लोक सम्मत साधन । प्रायः समाज द्वारा स्थापित ये आदर्श इतने उच्च होते हैं कि कभी-कभी काल्पनिक, चमत्कारिक या दैवीय प्रतीत होते हैं। लाखों लोगों में से एकाध व्यक्ति ही इन आदर्शों की कसौटी पर खरे उतरते हैं । इसीलिए नित्यप्रति इस धारणा पर बुद्ध और गाँधी अवतरित नहीं होते और जब अवतरित होते हैं तो अपने आदर्शमय व्यक्तित्व एवं चरित्र के कारण अपने जीवन काल में आदृत एवं मृत्यु के पश्चात् देवतुल्य पूज्य एवं अलौकिक प्रतीत होते हैं ।

इसी आदर्श के सन्दर्भ में सरदार पूर्ण सिंह की उक्ति है -

---

1. *Les regles de la methode socialogique, Emile Durkheim, The Rules of Sociological method, Translated by Sarah A solovay and Himuller and edited by George*

'आचरण भी हिमालय की तरह एक ऊंचे कलशवाला मंदिर है। यह वह आम का पेड़ नहीं जिसको मदारी एक छड़ में तुम्हारी आँख में मिट्टी डालकर, अपने हथेली पर जमा दे । इसके बनने में अनन्त काल लगा है । पृथ्वी बन गई, सूर्य बन गया, तारागण आकाश में दौड़ने लगे परन्तु अभी तक आचरण के सुन्दर रूप के पूर्ण दर्शन नहीं हुए । कहीं-कहीं उसकी अत्यल्प छटा अवश्य दिखाई देती है।' व्यक्ति गांधी भले ही न बन पाये किन्तु गांधी वादी अवश्य बन जाता है अर्थात् उस उच्चतम, सामाजिक आदर्श को व्यक्ति भले ही प्राप्त न कर सके किन्तु जो उसके जितना ही निकट होता है वह उतना ही आदर्शमय बन जाता है । वह अपने व्यक्तित्व और व्यवहार में अधिकाधिक आदर्श गुणों को आत्मसात करने के लिये सचेष्ट रहता है।

संभवतः इसलिए स्वर्ग और स्वर्ग के निवासी देवताओं का स्थान मनुष्य की पहुंच से परे आकाश में कहीं सुदूर माना गया है । आदर्श को इतना उच्च मानने के पीछे शायद यह विचार रहा होगा कि वहाँ तक प्रत्येक व्यक्ति पहुंच न सके । वह अपने को अपूर्ण समझ पूर्णता के लिए प्रयत्नशील रहे । यदि आदर्श सबके लिये सहज, सरल, सुलभ और सुगम्य हो जाये तो उसका आदर्शत्व ही समाप्त हो जायेगा और वह आदर्श से सामान्य बन जायेगा ।

प्रत्येक समाज अपने आदर्शों के लिये जीता है, वहीं उसकी संस्कृति होती है और वही उसकी उन्नति के मौलिक तत्व । साहित्यकार समय-समय पर अपने साहित्य में पात्रों द्वारा अपने सामाजिक आदर्शों की अभिव्यक्ति, प्रतिस्थापना एवं संरक्षा करता है ।

---

1. आचरण की सभ्यता (गद्य गरिमा में संकलित), सरदार पूर्ण सिंह पृष्ठ 70

युगीन आदर्शः

समय कभी स्थिर नहीं रहता । कालचक्र की निरन्तर गति नये-नये युगों का सृजन करती है । गति की यह निरन्तरता चिरन्तन परिवर्तन के रूप में समाज को नित नवीनता प्रदान करती है । ऐसे सतत् परिवर्तनशील परिवेश में पुराने आदर्श कालातीत और कालकवलित होते जाते है तथा उनका स्थान नये आदर्श ले लेते हैं । यही कथन टेनीसन (Tennyson) का भी है *The old order Changeth yielding place to new.'* युग परिवर्तन और आदर्श परिवर्तन सदैव समान्तरगामी होते हैं और जब इनमें गति भिन्नता का दोष आ जाता है तो वह युग विद्रोही युग बन उस गति को समान्तर लाने का संघर्षमय प्रयास करता है ।

युग और युग आदर्श जब एक दिशागामी होते हैं तो वह शीघ्र अपने विकास के गन्तव्य को प्राप्त कर लेते हैं किन्तु विपरीत दिशानुगामी होने पर एक-दूसरे से इतना पिछड़ जाते हैं कि वह पिछड़ेपन की श्रेणी में आ जाते है युग के अनुसार समग्र हिन्दी साहित्य (गद्य एवं पद्य) को विभिन्न युगों में वर्गीगृत करने का जो कार्य हुआ है वह युग के आदर्शों को ही आधार मान कर हुआ है । राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द और राजा लक्ष्मण प्रसाद का हिन्दी के स्वरूप संबंधी मतभेद दो हिन्दी प्रेमी राजाओं का आपसी मतभेद नहीं था । यह हिन्दी के आदर्श स्वरूप से संबंधित मतभेद था, जिस पर वे दोनों कभी एकमत नहीं हुये । बाद में इस दूरी को दूर करने का श्रेय भारतेन्दु जी को मिला और वह युग भारतेन्दु युग के नाम से हिन्दी साहित्य में विख्यात हुआ ।

वीरगाथाकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल के साहित्यिक आदर्श युग के अनुसार एक-दूसरे से भिन्न रहे हैं । जैसा युग रहा वैसे ही आदर्श भी । जब नई कविता का युग आया तो छायावादी कविताओं के आदर्शो की छाया तक दुलर्भ हो गई ।

प्रत्येक युग अपनी आवश्यकतओं की पूर्ति अपने युगीन आदर्शों के माध्यम से करता है । किसी भी युग के समाज और साहित्य में तत्कालीन आदर्शों का प्रतिबिम्ब देखने को

मिलता है । इसीलिये साहित्य को युग या समाज का दर्पण कहते हैं । प्रबुद्ध समीक्षक या समालोचक साहित्य की समीक्षा समकालीन युगादर्शों के परिप्रेक्ष्य में ही करते हैं ।

किसी युग का आदर्श था कि द्वार आये भिक्षुक को कभी खाली हाथ नहीं लौटाया जाता था, उसे आदर सहित भिक्षा दी जाती थी । यहाँ तक की साधू के भेष में आये रावण जैसे भिक्षुक का अनादर न हो, सीता जी लक्ष्मण -रेखा तक लांघ गई थीं और समाज शास्त्रियों का आदर्श हमें सिखाता है- ' भिक्षा देकर देश को भिखारी मत बनाओं।'

वास्तव में मनुष्य की सोच परिस्थितियों की परिधि में आधार ढूंढते हुये कोई न कोई न कोई आधार लेती है । जब कोई आधार परिस्थितिजन्य निदान के रूप में सही सोच को प्रमाणित करता है तभी वह सोच आदर्श से जुड़ जाती है । प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में, प्रत्येक देश में , प्रत्येक काल में मानवीय सोच निदान मूलक रही है । हम तो सुखी हों किन्तु हमारे कारण कोई दूसरा दुखी न हो । हो सके तो हम दूसरें के दुख के सहभागी हो जाएं । यह सोच मानवीयता की सोच है । जहाँ मानवीयता है आदर्श वहीं जन्म लेते हैं । सुख और शांति के पुष्प आदर्श की वाटिका में ही खिल सकते हैं ।

युग और युग आदर्शों के संबंध में डा० प्रेम नरायण शुक्ल का कथन द्रृष्टव्य है - 'देश ,काल एवं भौगोलिक परिस्थितियों की भिन्नता के कारण सर्वत्र एक ही प्रकार का आदर्श पाया जाना दुस्साध्य है । काल - क्रमानुसार आदर्शों के स्वरूप में परिवर्तन होना स्वभाविक ही है । किन्तु प्रत्येक युग में , प्रत्येक देश में आदर्शों के मूल में इस बात की समता अवश्य रही है कि हमारा आदर्श जीवन को विकसित करने वाला हो, उससे दुख और शांति की सृष्टि हो ।'[1]

---

1. हिन्दी साहित्य में विविधि वाद, डॉ प्रेम नरायण शुक्ल, पृष्ठ 190

सार्वभौमिक आदर्श:

यद्यपि व्यक्ति, समाज और युग के अनुसार आदर्शों की विवेचना ऊपर की जा चुकी है जिसके अनुसार आदर्शभिन्नता एवं परिवर्तनशीलता देखने को मिलती है किन्तु इसके साथ ही कुछ ऐसे आदर्श रहे हैं और रहेंगे जो देश और काल की सीमा से परे होते हैं। इन्ही आदर्शों को हम सार्वभौमिक मानते हैं। ये आदर्श शाश्वत होते हैं। इनकी उपयोगिता सदैव सबके द्वारा सम्पूर्ण विश्व में स्वीकृत है इन्हें, समाज के साथ ही धर्म ने भी स्वीकारा है, क्यों कि ये आदर्श प्रत्येक धर्म के प्राण हैं। इसाईयों के यीशु, मुस्लिमों के पैगम्बर, हिन्दुओं के राम और कृष्ण, जैनियों के स्वामी महावीर, बौद्धों के बुद्ध इन्हीं शाश्वत सार्वभौमिक आदर्शों की प्रतिमूर्ति रहे हैं इसी कारण इनको पूजा जाताहै। इन्ही आदर्शों के आधार पर यह कहा जाता है कि 'ईश्वर एक है किन्तु उसकी आराधना के मार्ग अलग-अलग हैं।' और वह एकमात्र ईश्वर हमारा शाश्वत् सार्वभौमिक आदर्श है, सत्य है।

जैसे एक क्षण एक सत्य अपनी सार्वजनीनता, सार्वभौमिकता और सार्वकालिकता में सत्य ही रहता है। उसमें न्यूनाधिक्य की सम्भावना नहीं होती। उसी प्रकार शिवत्व और सौन्दर्य एक देशीय और वैयक्तिव नहीं रह सकते। साहित्य में इसीलिए सत्यं, शिवं सुन्दरम् की अवधारणा को सार्वभौमिक आदर्श का मानदण्ड माना गया है। आत्मीयता, मानवता तथा विश्वात्मा के धरातल पर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की सोच नितान्त ऐकान्तिक नहीं है, अपितु इसमें जीवन और जीव की अभेदता का सार्वभौमिक आदर्श मुखर होता हुआ प्रतीत होता हे।

आदर्शवाद :

आदर्शवाद का अंग्रेजी रूपान्तर *Idealism (Idea +Ism)* है। इस दृष्टि से आदर्शवाद का दूसरा नाम विचारवाद भी है। दार्शनिकों ने इनमें उन विचारों एवं मूल्यों को ही मान्यता दी है जो शाश्वत् सत्य एवं सर्वव्यापी हैं। आदर्शवाद भौतिक एवं आध्यात्मिक दो प्रकार के परिवेशों की अवधारणा को मान्यता देता है। इसके अनुसार केवल

आध्यात्मिक परिवेश ही मनुष्य को आदर्श व्यक्तित्व के रूप में संवारने का कार्य करता है ।

प्रख्यात दार्शनिक हार्न (Horne) का अभिमत है - ' आध्यत्मिक परिवेश के तीन अवयव हैं - बौद्धिक (जो जाना जाता है), भावात्मक (जो अनुभव किया जाता है , और ऐच्छिक (इच्छाशक्ति संबंधी , जिसकी इच्छा की जाती है)। इन मानसिक क्रियाओं को ध्यान में रखते हुए मस्तिष्क सत्य को मानने और असत्य से बचने का प्रयास करता है , सौन्दर्य की अनूभूति करना और असौन्दर्य से बचना चाहता है तथा कल्याणकारी शिव की कामना करते हुए अशिव से बचता है । इस प्रकार सत्य, सौन्दर्य औरशिव आध्यात्मिक आदर्शो के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं, जिनका विकास करना शिक्षा और समाज का दायित्व और कार्य होता है ।'[1]

---

1. *"The three elements of spritual environment are the intellectual, what is known; the emotional, that is felt; and the volitional, What is willed. Considering the objects of these mental activities, the mind knows truth and avoids error, it feels as its highest object, beauty and avoids ugliness, and it will in momewntous issues goodness and avoids evil truth, beauty and goodsness are, then race's spritual ideals and adjustment of the child to these essential realties that the history of the race has discovered is the tast of Supreme moment that is set for education."*

(H.H. Horne: Philosophy of Eduction. Page 93-94.)

आदर्शवाद के संबंध में विभिन्न दार्शनिकों, विद्वानों ने अपने बहुमूल्य विचार व्यक्त किये हैं । जिनमें से विषय को स्पष्ट करने के दृष्टिकोण से कुछ का उल्लेख करना आवश्यक होगा ।

प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डी.एम.दत्ता ने आदर्शवाद के संबंध में अपने विचार इस प्रकार अभिव्यक्त किये है - ' जो विचार धारा मानसिक तत्वों, विचारों, सत्यं,शिवं,सुन्दरं आदि शाश्वत् मूल्यों को संसार में सर्वोच्च स्थान देती है उस विचार धारा को आदर्शवाद कहते हैं ।'[1]

गुडे महोदय के अनुसार- ' आदर्शवाद वह विचारधारा है जिसमें यह माना जाता है कि सार्वलौकिक सार्वभौम तत्वों, आकारों या विचारों में वास्तविकताएं निहित हैं और वे ही सत्यज्ञान की वस्तुएं है जब कि वे बाह्य रूप में मानव के विचारों तथा इन्द्रिय अनुभवों में निहित होती हैं जो विचारों की प्रतिच्छाया या अनुरूप सदृश होती है ।'[2]

पाश्चात्य विद्वान हेंडरसन के अनुसार-' आदर्शवाद मनुष्य के आध्यात्मिक पक्ष पर बल देता है , क्यों कि आदर्शवादियों के अनुसार आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य के और जीवन के सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलू हैं । एक तत्वज्ञानी आदर्शवादी यह विश्वास करता है कि मनुष्य का सीमित मन उस असीमित मनसे निकलता है , व्यक्ति और वह संसार दोनों बुद्धि विचार की अभिव्यक्ति है और संसार की व्याख्या मानसिक संसार के आधार पर ही की जा सकती है ।'[3]

---

1. डी.एम. दत्ता
2. गुडे महोदय
3. पाश्चात्य विद्वान हेंडरसन

वस्तुतः साहित्य हर युग में जीवन के लिये अनेकानेक आदर्श का पक्षधर रहा है । अनुभव जन्य सोच उत्तरोत्तर आदर्शानुगमन के पथ को प्रशस्त करती रही है । इसीलिये आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने आदर्शवाद के संबंध में लिखा है - 'संक्षेप में आदर्शवाद अनेकता में एकता देखने का प्रयत्न करता है, वह विश्रृंखला में श्रृंखला, निराशा में आशा, दुख में सुख समाधान की प्रतिष्ठा करने का उद्देश्य रखता है ।'[1]

प्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसाद ने 'अभावों की पूर्ति को ही आदर्शवाद कहा है'।[2]

शिवधान सिंह ' पलयानवाद को ही आदर्शवाद मानते हैं '।[3]

डा0 भागीरथ मिश्र के अनुसार - ' वह धारणा जिससे प्रेरित होकर साहित्य का ऐसे चरित्र अथवा ऐसी परिस्थितियों का चित्रण करता है ।, जो मानव समाज के लिए अनुकरणीय है । (यह आवश्यक नही हैं कि वैसे चरित्र और परिस्थितियाँ सम्पूर्ण रूप में लोक में देखी और सुनी जाएं) साहित्य में आदर्शवाद कहलाती हैं '।[4]

आदर्शवाद के सम्बन्ध में बाबू गुलाब राय का कथन है- ' आदर्शवादी स्वप्नद्रष्टा होता है । संसार में ईश्वरीय न्याय एवं सत्य की विजय देखना चाहता है । वह संघर्ष में भी साम्य देखने के लिये उत्सुक रहता है। ------ यदि वर्तमान दुखमय है तो वह उज्ज्वल भविष्य की सुन्दर झांकी देखने में मग्न रहता है । वह आशावादी होता है और आशा के एक बिन्दु से सुख के सागर की सृष्टि कर लेता है ।

पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदर्शवाद के संबंध में लिखते हैं कि आदर्शवादी ' आदर्शपात्रों का शील और स्वरूप अभिव्यक्त करने के लिए आदर्शोन्मुख रचनाओं में स्पष्ट ही दो पक्ष रखते हैं । एक होता है सत्पक्ष और दूसरा असत्पक्ष । उसी असत्पक्ष का विस्तार के साथ ऐसा वर्णन किया जाता है जिससे उसके प्रति घृणा या विरक्ति उत्पन्न हो जाये ।

---

1. आधुनिक साहित्य, नन्ददुलारे बाजपेयी, पृष्ठ 393.
2. जयशंकर प्रसाद
3. शिवधान सिंह
4. डा0 भागीरथ मिश्र
5. काव्य के रूप बाबू गुलाबराय

विरक्ति जगाने का प्रयोजन होता है कि सत्पक्षके प्रति उद्‌बुद्ध श्रद्धा को अधिकाधिक परिपुष्ट करना । अन्त में इन काव्यों का लक्ष्य यही निकलता है कि 'सज्जनवत आचरण करना चाहिये , दुर्जनवत नहीं । '[1]

आदर्शवाद पारलौकिक वस्तु नहीं, लौकिक भी है-
इसकी पुष्टि करते हुए मिश्र जी पुनः लिखते हैं- ' आदर्श वस्तुतः कोई हवाई या अलौकिक वस्तु नहीं है । वह इसी जीवन में उदात्त वृत्ति वाले महापुरूषों में दिखाई देता है । इसी से भारतीय काव्यों में उदात्त चरित्र महापुरूषों का ही वृत्त गृहीत होता है । पुराण(प्राचीन इतिवृत्त) या इतिहास (नवीन इतिवृत्त) से उसका संकलन किया जाता है ।'[2]

कवियों एवं लेखकों ने भी अपने पात्रों को आदर्श की मर्यादा से परिवेशित कर हिन्दी साहित्य को निरन्तर महिमा मंडित बनायाहै । जैसे तुलसीदासकृत धर्मग्रन्थ 'रामचरित्र मानस' अनेकानेक आदर्शों की सुललित मंजूषा है । तुलसी का 'मानस' ही नहीं, अपितु हमारा समग्र भारतीय साहित्य लोक कल्याण की भावना से ओत-प्रोत रहा है । इस संदर्भ में आचार्य श्री नन्द दुलारे बाजपेयी की भी मान्यता है कि -' मनुष्य में सत् के प्रति जो पक्षपात रहता है , वह जब उसकी साहित्य रचना का नियन्त्रण करने लगता है , तब साहित्य में आदर्शवाद का युग आता है । इसकी कोई निश्चित प्रणाली नहीं है , तथापि आशामय वातावरण का आलोक उत्साह भरे उदात्त कार्य, आदर्शवादी कृतियों में देखे-पहचाने जा सकते हैं । वह आदर्श धन्य है, जो हमारी व्यापक भावना का कपाट खोलकर सरस शीतल समीर का संचार करता है और हमारे मस्तिष्क की सत्यान्वेषिणी शक्ति का समाधान कर आत्म तृप्ति की व्यवस्था करता है ।'[3]

---

1. वाङ्मय-विमर्श, पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
2. वही - वही
3. आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी

निष्कर्षतः आदर्शवाद आदर्शोन्मुखी विचारों की अभिव्यक्ति एवं प्रतिस्थापना है जिसके लिए साहित्य कार समाज के ऐसे पात्रों का चयन करता है जो उसके आदर्श के अनुकूल हो । इन पात्रों का चरित्र इतना उदात्त, सत्यनिष्ठ, कर्तव्यपरायण, आशावादी और अपराजेय होता है कि वे युग विशेष के लिए अनुकरणीय वनकर समाज को आदर्श मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं । जैसे - महात्मागांधी, महर्षिदयानन्द, स्वामीविवेकानन्द आदि इसी श्रेणी के आदर्शपात्र हैं । जब कभी साहित्य में शाश्वत् आदर्श मुखर हो उठते हैं तो वे सार्वकालिक बनकर युगों-युगों तक आचरण संहिता के माप दण्ड बन जाते हैं। भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध आदि ऐसे ही आदर्श पात्र हैं । इन्हीं आदर्श पात्रो की वाणी को सूक्ति के रूप में सदैव उद्धृत किया जाता है । शिक्षित - अशिक्षित सभी के लिए यह आदर्श मार्ग दर्शक का कार्य करते हैं ।

उपर्युक्त परिभाषाओं, उद्धरणों एवं विवेचनाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आदर्शवाद प्रचलित एवं शाश्वत आदर्शो से सम्बन्धित एवं उन पर आधारित वाद या सिद्धान्त ही है ।

ख. साहित्य में आदर्श की अभिव्यक्ति का आधार चरित्र

आदर्श हो या नैतिकता, उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए कोई न कोई माध्यम अवश्य होता हैं । अभिव्यक्ति का यह माध्यम या तो रचनाकार स्वयं हो सकता है अथवा उसके द्वारा सृजित पात्र । यदि रचनाकार स्वयं ही अभिव्यक्ति का माध्यम बनता है तो उसके द्वारा अभिव्यक्ति आदर्श ' पर उपदेश कुशल बहुतेरे ' जैसे मात्र कोरे उपदेश ही सिद्ध होते हैं । वह रचनाकार साहित्य कार कम उपदेशक अधिक हो जाता हैं । उसके उपदेश न तो साहित्यिक जगत में मान्य होते हैं और न ही लोक जीवन में स्वीकार्य । इसलिए रचनाकार स्वयं कुछ न कह कर अपने सृजित पात्रों के माध्यम से वह सब कुछ कहलाता हैं जिसे वह स्वयं कहना चाहता हैं । पात्रों के माध्यम से एक ही रचनाकार एक ही रचना में भिन्न-भिन्न पात्रों के माध्यम से भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत कर सकता है । कभी-कभी वह परस्पर विरोधी विचारों को तार्किक ढ़ंग से प्रस्तुत करके अपने समाज सापेक्ष चिन्तन को व्यक्त करता हैं। जबकि यदि वह स्वयं अपने विचारों को सीधे और स्पष्ट ढ़ंग से व्यक्त करना चाहे तो सम्भवतः उसे विह अभिव्यक्ति नहीं मिल पायेगी जो पात्रों के माध्यम से मिल जाती है ।

जिस प्रकार दूध या जल के लिए पात्र का होना आवश्यक है उसी प्रकार आदर्श की अभिव्यक्ति के लिए भी पात्र आवश्यक है । प्रत्येक पात्र का अपना एक विशिष्ट धारक गुण होता है । पात्र के उस गुण को ध्यान में रखकर उसमें वस्तु का संचय किया जाता है जैसे पीतल के पात्र में दही या मट्ठे का संचय उसे कसैला बना देता है । ठीक उसी प्रकार उपन्यास के पात्र अपने गुण विशेष के कारण भिन्न-भिन्न प्रकार के विचारों एवं सिद्धान्तों को अभिव्यक्त करने के लिए उपयुक्त माने जाते हैं। जिस पात्र का जो गुण होता है, उस गुण को ही हम साहित्यिक क्षेत्र में चरित्र की संज्ञा देते हैं । यदि पात्र उत्तम गुणों से युक्त है तो वह आदर्श चरित्र का प्रतिनिधित्व करता है । इसके विपरीत निकृष्ट दुर्गुणों से युक्त पात्र चरित्रहीनता का प्रतीक बनता है । उपन्यासकार अपने उपन्यासो में आदर्श की अभिव्यक्ति के लिए उत्तम गुणों से युक्त पात्रों का सृजन कर उनके सच्चारित्रिक क्रिया - कलापों, जीवनशैली एवं विचारों के माध्यम से अपने आदर्शो की प्रतिमा में प्राण प्रतिष्ठा करता है और अपेक्षा करता है कि वर्तमान से लेकर भावी समाज उन आदर्शो से अनुप्राणित होकर अपने जीवन को

सार्थक बनाने का उपक्रम करते रहें । इस सन्दर्भ में मुंशीप्रेमचन्द्र का मत है - 'उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि है, जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें । जिस उपन्यास के चरित्रों में यह गुण नहीं है, वह दो कौड़ी का है'[1] ।

आदर्श चरित्र के लिए आवश्यक नहीं की वह पूर्णतः दोष रहित हों । पूर्णतया निर्दोष और निष्कलुष चरित्र का एक तो समाज में पाया जाना हीदुर्लभ है और यदि उसकी कल्पना रचनाकार कर बैठते तो वह मनुष्य न होकर देवतुल्य हो जाता है । समाज उसे अलौकिक मान उसके प्रभाव से अपने को दूर कर लेता है । इस प्रकार वह समाज को इतना कुछ नहीं दे पाता, जिसके लिए उसकी कल्पना की जाती है । किंतु जब चरित्र हमारे ही बीच का कोई ऐसा व्यक्ति होता है, जो अपने सुकृत्यों के कारण समाज को अपनी ओर आकर्षित करता है और अपने छोटे-मोटे दोषों के बाद भी समाज को नई दिशा देने में सक्षम होता है । तब आदर्श पात्र का निर्दोष होना आदर्श अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य धर्म नहीं रह जाता है । दूसरों को रोशनी देने वाले किस दीपक के नीचे अंधेरा नही होता ? प्रेमचन्द्र के शब्दों में हम इसी तथ्य का समर्थन देखते हैं - ' चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनानें के लिए यह जरूरी नहीं, कि वह निर्दोष हो ' महान्-से-महान् पुरूषों में भी कुछ न कुछ कमजोरियाँ होती हैं - चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्ददर्शन कराने में कोई हानि नहीं होती, बल्कि यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं। निर्दोष चरित्र तो देवता हो जायेगा और हम उसे समझ ही न सकेंगे । ऐसे चरित्र का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता ।'[2]

---

1. कुछ विचार, प्रेमचन्द्र, पृष्ठ 53.
2. -तदैव-

हमारे प्राचीन साहित्य पर आदर्श की छाप लगी हुई हें । वह केवल मनोरंजन के लिए न था । उसका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन के साथ आत्म परिष्कार भी था । साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नही हैं । साहित्यकार हमारा पथ प्रदर्शक होता हैं, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है। प्रेम चन्द्र के अनुसार इस मनोरथ सिद्ध करने के लिए जरूरत है कि उसके चरित्र पाजिटिव हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकायें, बल्कि उनको परास्त करें, जो वासनाओं के पंजे में न फँसे, बल्कि उनका दमन करें, जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके विजयनाद करते हुए निकलें । ऐसे ही चरित्रों का हमारे ऊपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है ।' [1] शिवानी के कुछ चरित्र इसी प्रभावान्विति से ओत-प्रोत हैं जैसे - कृष्णकली ।

रचनाकार रचना के विषय में पाठकों की रूचि उत्पन्न करने के साथ अपने आदर्श चरित्र के द्वारा ऐसे उत्कृष्ट कार्य करवाता है कि पाठक मुक्त कंठ से उस चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं अघाता है । चरित्र को आदर्श के उच्च शिखर पर प्रतिष्ठित कराने के लिए और अपनी आदर्श प्रतिस्थापना को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए कभी-कभी उसे खलनायकों की भी सृष्टि करनी पड़ती है । अधेंरे में दीपक की दीप्त लौ भी सूर्य से कम प्रकाशवान नहीं होती है । जो अंधेरे में दिशा दें, वे सूर्य से कम नहीं । खलनायकों की खलनायकी में फंसा नायक जब उन्हें परास्त कर विजयी होता है या मृत्यु का आलिंगन कर वीरगति को प्राप्त होता है तो वह या तो भगवान राम की भाँति विश्वविजेता बन सर्वत्र पूज्य हो जाता है या अभिमन्यु की तरह वीरगति को प्राप्त कर अमरत्व प्राप्त करता है ।

---

1. कुछ विचार, मुंशी प्रेमचन्द्र, पृष्ठ 53.

तात्पर्य यह है कि विपरीत परिस्थितियों में नायक का नायकत्व अपने आदर्श के उत्कृष्ट को प्राप्त करता हैं। इस प्रकार के चरित्र प्रधान उपन्यास आदर्श की प्रतिस्थापना के साथ ही पाठकों का पर्याप्त मनोरंजन भी करते हैं । कुछ उपन्यास सात्विक चरित्र प्रधान पात्रों को भी लेकर लिखे जाते हैं, जिनमें वैद्यश्री की परहेजी चेतावनी के अतिरिक्त कोई भी मसाला पाठकों के मनोरंजनार्थ नहीं होता । इस तरह के उपन्यास शीतल मलयानिल की भाँति तापत्रय से तप्त एवं तृषित हृदयों के लिए शान्ति प्रदायी होते हैं। इनमें सरसता होती है, किन्तु रोचकता होना आवश्यक नहीं है।

ऋषियों, मनीषियों और गांधी जी जैसे व्यक्तित्वों को चरित्र मानकर लिखे गये उपन्यास इसी प्रकार की कोटि में रखे जा सकते हैं । इन्हें हम आदर्शवादी उपन्यास भी मान सकते हैं । आदर्शवादी उपन्यास के सम्बन्ध में प्रेमचन्द्र का विचार है - ' अँधेरी गर्म कोठरी में का म करते-करते जब हम थक जाते हैं तो इच्छा होती है किसी बाग में निकलकर निर्मल स्वच्छ वायु का आनन्द उठायें । इसी कमी को आदर्शवाद पूरा करता है । वह हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है , जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं । यद्यपि ऐसे चरित्र व्यवहार - कुशल नहीं होते, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती हैं, लेकिन कांइयापन से ऊबे हुये प्राणियों को ऐसे सरल, ऐसे व्यावहारिक ज्ञान विहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनन्द होता है ।'[1]

विविध चरित्रों का पाठकों से साक्षात्कार, परिचय एवं दर्शन कराकर चरित्र और पाठक के बीच की दूरी को मिटाकर उनमें तादात्म्य स्थापित कराना ही उपन्यासकार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य और उपन्यास का महत्वपूर्ण पक्ष है । इस सम्बन्ध में बाबू गुलाबराम का मत अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है- 'यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र-चित्रण

---

1. कुछ विचार, प्रेमचन्द्र , पृष्ठ 52

उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, क्यों कि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है । चरित्र के ही कारण हम मनुष्य को एक दूसरे से पृथक करते हैं । चरित्र द्वारा ही हम मनुष्य के आपे ('पर्सोनालिटी') को प्रकाश में लाते है । चरित्र में मनुष्य का बाहरी आपा और भीतरी आपा-दोनों ही आ जाते है । बाहरी आपे में मनुष्य का आकार - प्रकार,वेश-भूषा, आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल बातचीत के विशेष ढंग (तकिया कलाम और सम्बोधनआदि) और कार्य-कलाप भी आ जाते हैं । भीतरी आपा इन सब बातों से अनुमेय रहता है । पात्र के भीतरी आपे का चित्रण बाहरी आपे के चित्रण से कहीं अधिक कठिन होता है ।' 1.

पात्र के अन्तर्व्यक्तित्व का चित्रण बाह्य व्यक्तित्व के चित्रण से अधिक कठिन होता है । चरित्र के आन्तरिक पक्ष का चित्रण रचनाकार के लिए जितना कठिन होता है, उतना ही प्रभावशाली भी होता है । अन्तर्मन के चित्रण में रचनाकार पूरी तरह मनोविश्लेषणवादी हो जाता है । इसीलिए वह मन की उलझी हुई गुत्थियों, कुंठित भावनाओं एवं भग्नाशाओं का चित्रण कर अपनी आदर्शमयी नीतियों के निरूपणकी सुन्दर पृष्ठभूमि निर्मित करने में सक्षम एवं सफल होता है ।

कुशल चरित्रांकन के विषय में डा0 श्याम सुन्दर दास का निर्देश- 'उपन्यासों में चरित्र-चित्रण के संबंध में एक और बात ध्यान देने योग्य है । उपन्यासकार को अपने पात्रों के विषय में सब कुछ एक ही समय में नहीं कह देना चाहिए । उसे यथास्थान पहले अपने पात्र के चरित्र के विषय में मुख्य मुख्यबातें कह देनी चाहिए और तब उसे छोड़ देना चाहिए जिसमें वह दूसरे पात्रों के प्रभाव अपनी स्थिति और अपने अनुभव के अनुसार अपने चरित्र को क्रमशः प्रस्फुटित करता जाए । चरित्र-चित्रण के कार्य में संसार के अनुभव और मानव-प्रकृति के विश्लेषण की बहुत आवश्यकता होती है इन दोनों के अभाव में चरित्र चित्रण अधूरा, असंगत और अस्वाभाविक हो सकता है ।' 2.

---

1. काव्य के रूप में बाबू गुलाब राय पृष्ठ 169
2. साहित्यलोचन: आचार्य श्यामसुन्दरदास पष्ठ 166

डा0 श्याम सुन्दर दास ने चरित्रांकन के विषय में जो बात कहीं है, वह अक्षरशः सत्य है । वस्तुतः चरित्र की सजीवता ही पात्रलेखन की प्रमुख विशेषता है । पद्धति के अनुसार प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार की चरित्रांकन विधियों के माध्यम से उपन्यासकार अपने पात्रों के चरित्र का उद्घाटन कर सकता है । डॉ0 दशरथ ओझा के अनुसार- ' अच्छे उपन्यासकार दोनों ही विधियों का अपनी - अपनी रूचि के अनुसार प्रयोग करके अपने चरित्रांकन को प्रभावपूर्ण बनाते हैं ।'[1]

चरित्र चित्रण की दृष्टि से शिवानी की सफलता का बहुत कुछ श्रेय उनकी नारी की आन्तरिक अवस्था का मार्मिक , सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण है । शिवानी के औपन्यासिक चरित्र उनके आदर्श की अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम एवं आधार हैं । शिवानी ने अपने उपन्यासों में आदर्श की अभिव्यक्ति के लिये जहाँ एक ओर पात्रों के सत् सचित्र एवं सत्कार्यों का सहारा लिया है वहीं उन्होंने असत् पात्रों की बुराइयों का चित्रण और उन पात्रों को अपनी बुराईयों के लिये ग्लानि और पश्चाताप व्यक्त करते हुये दिखा कर भी आदर्श स्थापना का मार्ग अपनायाहै । अभिव्यक्ति के इस रूप में वे बाबू गुलाबराय के मत से सहमत दिखाई देती हैं - ' चरित्र चित्रण की अच्छाई और बुराई चरित्र को जीता-जागता, उसे विशिष्टता और व्यक्तित्व प्रदान करने तथा उसका उत्थान-पतन दिखाने में उतनी-नैतिक अच्छाई बुराई दिखाने या विवेचन करने में नहीं है । बुरे पात्र के चरित्र-चित्रण की अच्छाई उसकी बुराई के सफल उद्घाटन में है ।'[2]।

तात्पर्य यह है कि पुण्य कर्म यदि आदर्श कर्म हैं तो पापकर्म की सार्वजनिक स्वीकारोक्ति एवं प्रायश्चित भी आदर्शों की श्रेणी में गिने जाते हैं । यदि ऐसा न होता तो गणिका और अजामिल जैसे पापकर्म में लीन व्यक्ति प्रभु के प्रिय पात्र न बन पाते ।

---

1. 'समीक्षाशास्त्रः डॉ0 दशरथ औझा, पृष्ठ 135
2. 'काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय, पृष्ठ 169

ग- शिवानी के उपन्यासों में आदर्श पात्र :

चारित्रिक आदर्श व्यक्तित्व का ऐसा दर्पण है, जिसमें चरित्र का सर्वस्व चमक उठता है । नाम,गुण, कर्म, परिचय सबके सब आदर्श के पीछे हो जाते हैं । एक क्षण का यह आदर्श स्वयं में भले ही क्षणिक हो, किन्तु अपनी प्रभावात्मकता में वह सार्वकालिक, सार्वजनीन एवं सार्वभौमिक हो जाता है । वास्तविक आदर्श वैयक्तिक नहीं होता, एक देशीय भी नहीं होता, इसके साथ ही आदर्श की कोई जाति भी नहीं होती । आदर्श तो प्रभु की प्रभुता की तरह कहीं भी, किसी भी रूप में और किसी भी स्थिति में प्रत्यक्षीभूत हो सकता है । पात्रों में आदर्श की अवधारणा निश्चय ही मनः स्थिति मूलक होती है । सामान्यतया सात्विक वृन्ति के लोग आदर्श से ओत-प्रोत होते हैं, किन्तु यह कोई निश्चित मानदण्ड नहीं है । राजसी और तामसी मनोवृत्ति के लोग भी कभी कभी आदर्श का मानदण्ड स्थापित करते हुए परिलक्षित होते हैं । वीरों में प्राणोत्सर्ग की अवधारणा आदर्श हेतुक ही मानी जाती है । राजसी जनों में दान की मनोवृत्ति आदर्शमूलक ही है ।

उपन्यास या कहानी विधा में पात्रों की बहुलता के मध्य आदर्श पात्र का चयन उसी प्रकार कार्य है- जैसे किसी उपवन में विभिन्न पुष्पों के मध्य किसी सुगंधित और सुन्दर पुष्प का चयन । जैसे नीरवता में रात की रानी की गमक अपनी मोहकता विकीर्ण करती है, ठीक उसी प्रकार पात्रों की आदर्शप्रियता उनके आचरणों में अनायास उद्घाटित हो जाती है ।

शिवानी के उपन्यासों में पात्रों की जीवन्तता आदर्शों के परिप्रेक्ष्य में ही दर्शनीय है । बेदम पात्र अधिक समय तक टिक भी नहीं सकते । दुमदार पशु या दमदार व्यक्ति, दोनों में ही आचरण की महत्ता जब भी उद्घाटित होती है, तभी आदर्श की परिधि बनने लगती है। शिवानी आदर्श को पात्रों के रक्त में समाहित करने में पूणतया सफल हुई हैं । गुरूदेव रवीन्द्रनाथ की 'अवशेष' कविता इसी आदर्श को व्यक्त करती हुई प्रतीत है-'कवि, बैठे क्यों हो, उठो, तुम्हारे पास कुछ नहीं हैं प्राण ? प्राण तो हैं इतना ही साथ ले, लो- आज , जरा अपने प्राणों का दान दे कर देखो, वहां बड़ा दुख है, व्यथा है, देखों, अपने सामने इस दुख के संसार को, बड़ा ही दरिद्र है, शून्य है, क्षुद्र है, अंधकारहै । उसे अन्न चाहिए,प्राण चाहिए, आलोक,

खुली हवा चाहिए और चाहिए बल परमायु, स्वास्थ्य, दृढ़ हृदय चाहिए साहस, सुविस्तृत वक्ष पटल, इस दीनता के भीतर कवि, एक बार बस, एक बार स्वर्ग से विश्वास की छवि उतार लाओं । उठो, कवि उठो चलो।'[1]

शिवानी के उपन्यासों की पात्र सृष्टि व्यापक है । शिवानी के उपन्यासों में अभिव्यक्त आदर्शों को समझने के लिए उचित होगा कि उनके एक-एक उपन्यास का क्रमवार अध्ययन किया जाए तथा उनके पात्रों ने अपने सद्विचारों एवं कार्यों द्वारा जिन आदर्शों की प्रतिस्थापना हेतु संघर्ष किया है, उनका विवरण भी प्रस्तुत किया जाए । इस क्रम में सबसे पहले हम 'मायापुरी' उपन्यास का अध्ययनएवं विवेचन अभिव्यक्त आदर्शों के आधार पर करेंगे ।

मायापुरी:[2]

अभिजात्य जीवन जीने वाली शिवानी ने अपने पहले उपन्यास में ही भौतिक आकर्षणों में लिप्त पूंजीपतियों एवं सामन्तवादी लागों की जीवन शैली और आचरण की जैसी बखिया उधेड़ी हैं, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि भौतिक युग में अर्थ की प्रधानता सर्वोपरि है, अर्थ ही प्रत्येक वस्तु एवं क्रिया को सार्थक बनाता है । तथापि शिवानी का यह आक्रमण यह प्रतिपादित करता हैकि अर्थ अति समर्थ होने पर भी मानसिक शांति के लिए व्यर्थ की वस्तु है । मायापुरी की नायिका शोभा का प्रेमी सतीश जो प्रणय निवेदन तो निर्धन

---

1. 'कवि तबे उठे ऐशो/ यदि थाके प्राण/ तबे ताई लहो साथे / तबे ताई करो दान/ बड़ दुख, बड़ व्यथा सम्मुखे/ कष्टेर संसार / बड़ाई दरिद्र शून्य/बड़ क्षुद्र बद्ध अंधकार/ अन्न चाई, प्राण चाई आलो चाई/ चाई मुक्त वायु/ चाई बल, चाई स्वास्थ्य / आनंद उज्ज्वल परमायु/ साहस विस्तृत वक्षपट/ ए दैन्य मांझारे कवि/ एक बार नियै ऐशो स्वर्गहते/ विश्वासेर छवि-'

- रवीन्द्र नाथ टैगोर की कविता 'अशेष', कालिन्दी, शिवानी (भूमिका पृ० 11)

2. सन् 1957 में प्रकाशित

परिवार की सौम्य शोभा से करता है परन्तु पारिवारिक दबाव के कारण सप्तदी के फेरे राजदूत की लड़की सविता के साथ फिरता है । पत्नी की उच्छश्रृंखलता से क्षुब्ध सतीश जब काबुल के लिए प्रस्थान करता है, अकस्मात् उसका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है और जब वह अपनी अंतिम सांसें गिन रहा होता है, तब उन सांसों को सुनने वाली होती है शोभा! न कि उसकी पत्नी । इसे मात्र औपन्यासिक संयोग मानकर कु0 शशिबाला पंजाबी ने लिखा है - 'मायापुरी के अंतिम हिस्से पर भी आकस्मिकता थोपी हुई लगती है । हत्या, मृत्यु वगैरह का सहारा लेकर और संयोगों के करिश्में दिखा कर कथाकार केवल अपनी असमर्थ रचना का प्रमाण ही देता है ।[1]

'मायापुरी' शिवानी का पहला उपन्यास है । यह शिवानी के बड़े उपन्यासों में से एक है । इसमें सभी प्रकार के पात्रों का समावेश हुआ है । -

पुरूष पात्र :

1. सतीश (नायक)
2. जनार्दन (सतीश के पिता)
3. देवीदत्त (शोभा के पिता)
4. अविनाश (सतीश का मित्र)
5. देवीलाल (देवीदत्त के मित्र)
6. तिवारी जी (सविता के पिता)

स्त्री पात्र :

1. शोभा (नायिका)
2. गोदावरी (सतीश की माँ)
3. दुर्गा (शोभा की माँ)
4. मंजरी (सतीश की बहन)
5. सविता (सतीश की पत्नी)
6. मिस यंग (सविता की आया)

---

1. शिवानी के उपन्यासों का रचना विधान, कु0 शशिबाला पंजाबी, पृष्ठ 13-14.

इनमें से शिवानी ने जिन पात्रों को अपने आदर्श की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है वे प्रमुखतः हैं - शोभा, सतीश, अविनाश, गोदावरी, जनार्दन ।

शोभाः

शोभा इस उपन्यास की प्रमुख नारी पात्र है । हमारे भारतीय साहित्य का आदर्श उसका त्याग और उत्सर्ग है । मायापुरी की नायिका शोभा भी अपने प्रणय का उत्सर्ग करके भारतीय साहित्य की मर्यादा को अक्षुण्ण रखती है । वह एक गरीब घर की लड़की है । पिता की मृत्यु के पश्चात् गोदावरी (शोभा की मां की अभिन्न सहेली) के आग्रह पर पढ़ने के लिए लखनऊ आ जाती है । उसकी प्रखर बुद्धि और सरल-निर्दोष सौन्दर्य को देखकर सतीश उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है । जब कि उसकी सगाई राजदूत की पुत्री सविता से हो चुकी होती है । सतीश दीन विगलित स्वर में शोभा से अपना प्रणय निवेदन करता है - 'मैं आज एक बात स्पष्ट रूप से कहने आया हूँ शोभा! मैं तिवारी जी का सम्बन्ध तोड़ने का संकल्प कर चुका हूँ । पिता जी के सम्मुख तुम्हें रखकर कहूँगा कि --------- बीच ही में रोककर शोभा उठ गई -------- नहीं ।' उसके इस ('नहीं) की दृढ़ता में उसका आदर्श झंकृत हो उठा ।

शोभा अपने नैतिक विचारों और कर्तव्यनिष्ठ व्यवहार के कारण आदर्श पात्र के रूप में अवतरित होकर पाठकों के मानस पर अपना अमिट प्रभाव अंकित करती है । सत्य और कर्तव्यपरायणता ही उसका सद्धर्म है । वह नहीं चाहती जिस घर में उसे आश्रय मिला, उस घर की कलह का कारण वह बने । सतीश की मां गोदावरी उससे दीन याचना करती है -' शोभा, तू अपने बंधन से उसे मुक्त कर दे बेटी । तू अविलम्ब घर चली जा ।'[2]------ 'मौसी मैं आपको वचन देती हूँ, परीक्षा समाप्त होते ही मैं चली जाऊंगी ।'[3] उसके स्वर में कहीं भी आवेश, दुःख या दौर्बल्य नहीं था । परीक्षा समाप्त होते ही, अचानक सतीश के वापस आ जाने पर भी वह बिना किसी को कुछ बताये चुपचाप अपने प्रणय का उत्सर्ग कर चली जाती है ।

---

1. मायापुरी, शिवानी, पृष्ठ 74
2. वही, वही, पृष्ठ 87
3. यथोपरि

नैनीताल में अकस्मात् शोभा को मंजरी मिलती है, वह उपालम्भ देती है, तब शोभाके उसके शब्द उसके व्यक्तित्व को महिमामय बना देते हैं- 'मंजी, यदि अपने मोह के दुर्बल क्षणों पर मैं विजय न पाती तो परिस्थितियां मुझे आज तुम्हारी दृष्टि से भी गिरा देतीं ।'[1] कितना सत्य था उसका कथन । यदि वह उस दिन रूक जाती तो क्या सतीश की मां जीवित रह पाती। देश के भावी राजदूत क्या उस परिवार के चिर शत्रु न बन जाते और फिर यदि सतीश को अच्छी नौकरी न मिल पाती तो उसका जीवन चिर दारिद्रय, लांछन और अपमान से बोझिल न हो उठता । आज सतीश को सुखी-सम्पन्न देखकर उसे संतोष तो है । शोभा एक उच्च आदर्श चरित्र है जिसे निस्संदेह आत्म विश्वास एवं कर्त्तव्यपरायणता का प्रतीक कहा जा सकता है ।

सतीशः

शिवानी के कुछ पात्र ऐसी भी हैं जो आदर्शवाद की भूमिका में जीना चाहते हैं, किंतु उनकी विवशताएं उनके आत्म-संकल्प को विखण्डित कर देती हैं । 'मायापुरी' उपन्यास का नायक सतीश एक ऐसा ही पात्र है । वह अनुक्त वेदना से युक्त शोभा से विवाह करने का संकल्प तो ले लेता है किंतु मां की कठोरता एवं वचनबद्धता के आगे उसे विवश होना पड़ता है और वह स्थूलकाय, बेडौल सविता से विवाह कर लेता है । स्वेच्छाचारिणी सविता उसे आड़ मात्र समझती है । खिन्न होकर वह काबुल जाना चाहता है कि उसे शोभा मिल जाती है । वह उसे ऐसी श्रद्धेय दृष्टि से देखता है, जैसे भक्त अपने देवता की मूर्ति को देखता है । वह शोभा से कहता है - ' तुम्हें पता है, मैं कल जा रहा हूँ मार्बल । इसके बाद तुम्हें कभी देख भी सकूंगा, सन्देह है । केवल तुम्हारी मंजुल मूर्ति को हृदय में लिए जा रहा हूँ शोभा! यही मेरा पाथेय होगी ।[2] ' विदा के अंतिम क्षण में शोभा के दिव्य चक्षुओं से प्रेरणा प्राप्त कर वह अपने को गौरवान्वित महसूस करता है और शोभा के अश्रुसिक्त मुख की स्मृति हृदय में धारण कर वह चला जाता है ।

---

1. मायपुरी, शिवानी, पृष्ठ 145
2. मायापुरी शिवानी पृष्ठ 170

वायुयान दुर्घटना में वह बुरी तरह घायल होता है , तब शोभा ही वहां पहुंचती है, वह शोभा के स्निग्ध स्नेह की छांव में ही अपने प्राण विसर्जित करताहै ।

यद्यपि सतीश गरीब किन्तु अनुपम रत्न शोभा से ही विवाह करने का संकल्प ले चुका था फिर भी मां की कठोरता ने उसके संकल्प को धाराशायी कर दिया । इस प्रकार सतीश आदर्शवाद में जीना चाहकर भी परिस्थितियोंवश बिखर कर ही रह गया । उसका प्राण-विसर्जन उसके आदर्श प्रणय कीपराकाष्ठा है ।

अविनाश:

अविनाश सतीश का मित्र है । जब सतीश सरल-निर्दोष शोभा की ओर आकृष्ट होता है तो वह उसे समझाता है- ' एक अबोध- अनाथ सरला को क्यों व्यर्थ में स्वर्ग का द्वार दिखाते हो - जब उसके लिए प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है । तुम तो राजदूत महोदय के जामाता बनकर खिसक जाओगे स्विटजरलैंड और वह आकाश के तारे गिनेगी । देखते नहीं उसकी निर्दोष आँखे ? उसके हृदय में अभी तक तुम्हारे लिए कोई विकार नहीं है, वह जानती है कि सविता तुम्हारी वाक्दत्ता है, उसी से तुम्हारा विवाह होगा । यदि कभी उसे तुम्हारी उसके प्रति आकर्षण का आभास भी मिल जायेगा तो अनर्थ हो जाएगा, सतीश । '[1] अविनाश मित्रता के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व है । अपने आप में वह पूर्णतया सशक्त है । आत्मबल और आत्म संकल्प उसकी जीवन शक्तियां हैं । वह जानता है कि सतीश का विवाह राजदूत की पुत्री के साथ तय हो चुका है । अतः सतीश का शोभा की ओर आकृष्ट होना उचित नहीं है, क्यों कि मां के कठोर अनुशासन के कारण उसमें आत्मबल नहीं के बराबर था । किन्तु जब सतीश ने अपना संकल्प दोहराया कि वह शोभा से ही विवाह करेगा, सविता से नहीं तभी वह इसके लिए शोभा एवं सतीश की मदद करता है । इस प्रकार मित्र-धर्म के कर्त्तव्य को सर्वोपरि मानने वाला अविनाश एक आदर्श व्यक्तित्व ही है ।

---

1. मायापुरी शिवानी, पृष्ठ 38-39

जनार्दनः

जनार्दन सतीश के पिता हैं । संस्कृत के प्रकांड विद्वान एवं एक ईमानदार इंजीनियर-' गोदावरी के पति इंजीनियर थे, पर ईमान के पक्के । कभी हराम का पैसा नहीं छुआ । उनके नीचे के ओवरसियर कार में घूमते, वे अपनी बग्घी में ही सन्तुष्ट थे । सीधा-सादा वेश, कभी जूते में फीता है, कभी नहीं , घंटो सन्ध्या-पूजन में डूबे रहते । ,।

उनकी ईमानदारी, उनकी सादगी उनके आदर्श व्यक्तित्व को उजागर करती है ।

गोदावरीः

गोदावरी सतीश की मां हैं । यद्यपि सविता की बेडौल मूर्ति से क्षुब्ध वे भी हैं, किन्तु उन्होंने राजदूत को वचन दिया था कि वे उन्हीं की पुत्री से अपने पुत्र की शादी करेंगी । जब सतीश डरते-डरते मां से कहता है - ' अम्मा, यदि यह विवाह न करूं तो ? ' ---------- ' मैं इसी पलंग पर प्राण त्याग दूंगी । कु हम गर्गगोत्री ब्राह्मण हैं - यह क्या तू भूल गया है? हमारे वचन का मूल्य हमारे प्राणों से भी अधिक है ।[2] मां के इस कठोर चाबुक के बाद सतीश कुछ नहीं बोल पाता । इस प्रकार गोदावरी अपने पुत्र के सुखों की आहुति देकर अपने वचन का मूल्य चुकाती है एवं वचनबद्धता के आदर्श का निर्वाह करती है ।

चौदह फेरे[3]

दुग्धफेन की सी ताजगी लिए हुए **'चौदह फेरे'** बदली हुई सामाजिक परिस्थितियों में पहाड़ी और नगरीय संस्कृति का एक अन्तर दर्शाने वाला शब्द चित्र है ।

---

1. मायापुरी, शिवानी पृष्ठ 7-8
2. वही,वही, पृष्ठ 4।
3. सन 1960 में प्रकाशित

उपन्यास के प्रमुख पात्रों में कर्नल, अहिल्या, मल्लिका सरकार, पहाड़ी ताई और नन्दी है । इन चरित्रों के माध्यम से विवाह की मूल भावना और उससे जुड़े हुए सामाजिक संस्कारों और नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना शिवानी ने अपने इस उपन्यास में कर यह सिद्ध कर दिया है कि संस्कृति विहीन व्यक्ति-व्यक्ति नहीं रह जाता है । अतः ' चौदह फेरे' संस्कृति के प्रति आग्रहमूलक उपन्यास कहा जा सकता है वस्तुतः चौदह फेरे भारतीय परिवेश में सांस्कृतिक निष्ठा का औपचारिक दस्तावेज है ।

उपन्यास में जिन पात्रों की भूमिका उल्लेखनीय है , वे इस प्रकार हैं :-

पुरूष पात्र :

1. शिव दत्त - (कर्नल पाण्डे, नायक)
2. विल्सन- (विदेशी व्यवसायी)
3. रेवतीरमण- (नन्दी के भाई)
4. धरणीधर- (बसंती के पति)
5. राजेन्द्र- (राजू, बसंती का ममेरा भाई)
6. शिरोमणि- (कर्नल के पहाड़ी मित्र)
7. सर्वेश्वर- (शिरोमणि का पुत्र)
8. गौर मोहन- (कर्नल के मित्र)

नारी पात्रः

1. नन्दी- (कर्नल की पत्नी)
2. पेट्रिशिया - (विल्सन की पुत्री)
3. अहल्या- (कर्नल की पुत्री)
4. शान्ति- (नन्दी की प्रतिवेशिनी)
5. मल्लिका सरकार- (कर्नल की प्रेयसी)
6. बसंती- (अहल्या की चचेरी बहन)
7. ताई- (बसंती की मां, अहल्या की ताई)
8. मदर रेवरेण्ड- (अहल्या की बोर्डिंग की प्रिंसिपल)

आदर्शपात्र : कर्नल पाण्डे एवं नन्दी ।

कर्नल पाण्डेः

शिवानी के आदर्श पात्र न तो संत है और न ही फरिश्ते । बल्कि वर्तमान समाज के संघर्षरत ऐसे योद्धा हैं जिन्हें सदैव विजयश्री ही नहीं प्राप्त होती, पराजय के साथ कभी मृत्यु का आलिंगन भी उन्हें करना पड़ता है । यही कारण है कि शिवानी के सभी उपन्यास सुखान्त नहीं हो पाए हैं । शिवानी ने सुखद अन्त के लिए ही अपने चरित्रों का चयन नहीं किया है । उन्होंने चरित्रों के माध्यम से समाज की विसंगतियों, रूढ़ियों और उन दुर्बल मूल्यों का प्रतिचित्रण किया है जो वर्तमान समाज के लिए यदि कलंक नहीं कहे जा सकते तो पारिवारिक विघटन के लिए उत्तरदायी अवश्य माने जा सकते हैं ।

'चौदह फेरे' उपन्यास का नायक कर्नल पाण्डे एक संस्कारशील, सुशिक्षित एवं सुदर्शन युवा है। विदेशिनी पेट्रिशिया विल्सन के लाख चाहने पर भी भारत के इस मर्यादित युवाका आदर्श विचलित नहीं हुआ - ' कुल की मर्यादा और समाज का अंकुश उसे सर्वदा जागरूक रखता । जब कभी चित्त का विदोही घोड़ा इधर-उधर मुंह मारता, वह विवेक की लगाम खींच कर सह_ पर ले आता ।'[1] यही कर्नल विवाह के पश्चात् अपनी नव-विवाहिता पत्नी को चाहकर भी अपने साथ नहीं ले जा सका क्यों कि समाज की रूढ़ियाँ माता-पिता के कठोर अनुशासन के रूप में उसके आड़े आ गए-'बहू को साथ ले जाने की धृष्टता तब कुमायूं का तरूण नहीं कर सकता था । पुत्र बहू को सास औरससुर की सेवा के लिए ब्याह कर लाता था, प्रणय- निवेदन की सार्थकता के लिए नही ।'[2] ऐसे अनुशासित और उद्यमी पाण्डे का चरित्र निःसंदेह एक आदर्श व्यक्ति के रूप में हमारे सामने उभरता है । किन्तु सम्पूर्ण वैभव के पश्चात् भी उसका दाम्पत्य जीवन सूना रहता है । इन परिस्थितियों में यदि मल्लिका सरकार उसके जीवन में कुछ रस घोल देती है तो इसे न तो पाण्डे की चरित्र हीनता कही जा सकता है और न ही पत्नी के प्रति उनकी निष्ठा

---

1. चौदह फेरे, शिवानी पृष्ठ 9
2. वही, वही, पृष्ठ 10

शून्यता । वह अपने विशाल 'प्रासाद' का नामकरण अपनी पत्नी के ही नाम पर कर अपनी पत्नी निष्ठा का परिचय भी देता है । अतः उसके चरित्र में यदि कहीं कुछ मलिनता आई तो वह धूल धूसरित हीरे की भाँति परिस्थितिजन्य है ।

नन्दी -

नन्दी पतिपरायण, सेवानिष्ठ एक सामान्य नारी है । अपनी सेवा-सुश्रूसा एवं गृहकार्यों से वह सास-ससुर को इस सीमा तक प्रभावित कर लेती है कि वह सीमा ही उसके लिए दुर्लंघ्य बन जाती है । उसके सास-ससुर कहते हैं - ' नहान की बहू, ऐसा दिया थी जिसकी जगमगाती जोत से घर-भर में उजाला था, अगर अंधेरा था, तो केवल उसी दिए तले ।' [1] सास-ससुर की सेवा में उसकी तल्लीनता को देखकर कर्नल क्षुब्ध हो उठता है - 'हद है, लगता है तुम्हें घर के खूसट बूढ़े और बूढ़ियों से ही मुहब्बत है, रात भी वहीं बिता आतीं ।' [2] अपनी पत्नी को गृहकार्यो में ही पूरी तरह लिप्त देख और अपने प्रति विशेष औत्सुक्य न देख वह उसकी ओर से विमुख होता गया । स्वार्थी सास-ससुर भी इसे अनदेखा कर गए ।

सास-ससुर की मृत्यु के पश्चात् जब नन्दी अपने पति के पास कलकत्ता पहुँचती है तो अपने स्थान पर मल्लिका सरकार को देखकर पति से बिना किसी उपालम्भ के स्वयं वीतराग का वरण कर लेती है -' जिस निर्विकार भाव से नन्दी ने आप ही अपने दुर्भाग्य का वरण कर लिया, वह वास्तव में स्तुत्य था ।[3]

नन्दी ने जिस प्रकार सास-ससुर की सेवा एवं पति के सुख के लिए अपने जीवन का दान कर दिया, वह उसे आदर्श पात्र की गरिमा प्रदान करने में पूर्णतया सक्षम है ।

---

1. चौदह फेरे, शिवानी , पृष्ठ 10.
2. यथोपरि -तदैव-
3. चौदह फेरे, शिवसनी, पृष्ठ 19.

' कृष्णकली '

बहुचर्चित उपन्यास 'कृष्णकली' शिवानी का प्रिय उपन्यास है । वेश्या जीवन और कुष्ठ रोग जैसी समस्याओं को आधार बनाकर कहानी का सर्जन तो सम्भव हो सकता है किन्तु उसे उपन्यास सा विस्तार देना साहसपूर्ण कार्य ही है क्योंकि ऐसे परित्यक्त, अस्पृश्य एवं घृण्य पात्रों के प्रति समाज की उपेक्षा ही देखने को सर्वत्र मिलती है, सहानुभूति नहीं । फिर इन पात्रों पर आधारित उपन्यास के कितने अधिक पाठक हो सकते हैं, यह विचार ही उपन्यासकारों को हतोत्साहित कर देता है, किन्तु शिवानी ने इस विषय पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर लेखनी चलायी है और यह प्रमाणित करने का सफल प्रयास भी किया है कि सहानुभूति यदि उत्पन्न होती है तो उत्पन्न भी की जा सकती है । आवश्यकता केवल मानव हृदय को संवेदना के उस स्तर तक उद्वेलित करने की होती है और मानव मन के उद्वेलन का यह कार्य 'कृष्णकली' बखूबी करती है ।

' कृष्णकली ' सहज से असहज कैसे हो गई ? उसे नशे की लत कैसे पड़ गई ? श्मशानों में क्यों भटकने लगी ? इन प्रश्नों का उत्तर शिवानी ने बड़े ही विश्लेषणात्मक ढंग से दिया है । जब बाल्यकाल माता - पिता की स्नेहसिक्त गोद में न बीतकर घृणा और उपेक्षा की रेत में झुलसता रहा हो, तब व्यक्ति की यही परिणति होती है ।

इस प्रकार कृष्णकली उपन्यास में आधुनिक जीवन की कुंठाओं, वर्जनाओं, सांस्कृतिक , समाजिक मूल्यों का द्वन्द्व, राजनीतिक प्रपंच, युवा पीढ़ी का उच्छश्रृंखल व्यवहार आदि ज्वलन्त समस्याओं का चित्रण करके शिवानी ने वस्तुतः समस्त युगमानस को ही मूर्त कर हमारे सम्मुख रख दिया है उपन्यास में एक नवीन मानवीय मूल्य को स्थापित किया गया है, संस्कृति के नवरूप की कल्पना की गई है । यद्यपि धर्म, कुल, गोत्र का आग्रह मनुष्य को उपेक्षणीय बना देता है ,

---

लेकिन शिवानी इसके लिए कदापि तत्पर नहीं हैं । कृष्णकली के चरित्र के माध्यम से उन्होंने इसी नव - आदर्श की प्रतिस्थापना की है । तभी तो - 'कृष्णकली' उपन्यास की कृष्णकली शिवानी के लिए कामधेनु बन गई ।' 1.

उपन्यास के पात्र इस प्रकार हैं -

पुरूष पात्र :-

1.	प्रवीर	(नायक)
2.	असदुल्ला	(कृष्णकली का पिता,एक कुष्ठरोगी)
3.	विद्युतरंजन	(पन्ना का प्रणयी,मंत्री)
4.	रेवती शरण तिवारी	(प्रवीर के पिता)
5.	पाण्डे जी	(प्रवीर केश्वसुर)
6.	राजा गजेन्द्र बर्मन	(मंत्री,पाण्डे जी के मित्र)
7.	दामोदर	(प्रवीर के बड़े बहनोई)
8.	नवीन	(प्रवीर के छोटे बहनोई)
9.	बॉबी	(विवियन का भाई)

स्त्रीपात्र :-

1	कृष्णकली	(नायिका)
2.	पार्वती	(कृष्णकली की मां,एक कुष्ठरोगी)
3.	डॉ पैट्रिक	(कुष्ठाश्रम की डाक्टर)
4.	पन्ना	(कृष्णकली की पोषिका)
5.	मुनीरजान	(पन्ना की मां)
6.	माणिक -हीरा	(पन्ना कीबड़ी बहनें)

---

1. धर्मयुग, 16 मार्च 1992, पृष्ठ 18.

7.	वाणी सेन, मैगी	(पीली कोठी की वेश्याएं)
8.	अम्मा जी	(प्रवीर की मां)
9.	जया, माया	(प्रवीर की बहनें)
10.	कुन्नी	(प्रवीर की पत्नी)
11.	विवियन	(कृष्णकली की सखी)
12.	आण्टी	(विवियन की मां)

इनमें से आदर्श पात्र की श्रेणी में आते हैं -

कृष्णकली, प्रवीर, डॉ पैद्रिक और पन्ना ।

कृष्ण कली :

कृष्णकली को पूर्ण आदर्शवादी नहीं कहा जा सकता है, किन्तु वह आदर्श शून्य भी नहीं है । विवशताओं ने उसे विद्रोहिणी एवंपलायनवादी बना दिया है । बोर्डिंग से वापस आने के पश्चात् जब वह अपनी पोषिका मां पन्ना से यह पूछती है कि उसका पिता कौन है, मां के टाल जाने पर वह विद्रोहिणी बन जाती है । एक दिन अनायास उसके अनजान पिता की गुत्थी स्वयं सुलझ जाती है - वह मां के द्वारा सुन लेती है कि उसके मां - बाप कोढ़ी हैं । वह चुपचाप धर से पलायन कर यहाँ-वहाँ नौकरी के साथ स्मगलिंग , चोरी जैसे अनैतिक कार्य करने से भी नहीं हिचकती । किन्तु मानव चरित्र के निर्माण में उसकी परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है । वह भटकते - भटकते कलकत्ता पहुँचती है और अम्मा जी की कोठी में एक कमरा लेकर रहती है। अम्मा जी का परिवार एक सम्भ्रान्त एवं मर्यादित परिवार था । अम्मा जी के स्नेह एवं उस परिवार की मर्यादा का प्रभाव उस पर भी पड़ता है ।

अम्मा जी के पुत्र प्रवीर के संयमी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर वह उसे अपना आराध्य मान लेती है और अनायास ही उसका चरित्र परिवर्तन चरम सीमा को भी लांघ जाता है और वह धर्म, संस्कार, गोत्र आदि सबसे ऊपर उठकर पाठकों की सहानुभूति की पात्र ही नहीं बनती,

अपितु एक आदर्श पात्र भी बन जाती है । वह प्रवीर से कहती है - 'जिस दिन दुरूह व्यक्तित्व - दुर्ग की चारूता, सयंम और दर्प की दीवारो कों अपने सौन्दर्य डाइनामाइट से उड़ाकर इस सिद्धि - सोपान पर बैठ पाऊंगी, उस दिन मेरे हृदय में जन्म से सुलग रही विद्राहाग्नि स्वयं ही ठण्डी हो जायेगी । कभी-कभी इस अग्नि से भीतर-ही-भीतर ऐसे दहकने लगती हूँ कि जी में आता है, पूरे संसार को फूंक दूँ । जब वही तीव्र दाह असह्य हो उठता है - तभी मैं मसान साधती हूँ, तभी गाँजे-चरस की दम लगाती हूँ । जब लोगों की दृष्टि में मैं कभी अच्छी बन ही नहीं सकती, तब अच्छी बनने की व्यर्थ चेष्टा ही क्यों करूँ ? '[1]

यहीं पर पाठकों की सम्वेदना उससे जुड़ जाती है । यही साहित्य का सर्वोपरि गुण है । मैक्सिम गोर्की ने भी कहा है - 'मानव चेतना के विकास तथा मानव की सहानुभूति के विस्तार को ही साहित्य का सर्वोपरि गुण मानना चाहिये ।'[2]

सौन्दर्य और कौमार्य की अग्निशिखा से मंडित शिवानी की मानस सन्तान कृष्णकली यदि चाहती तो प्रवीर को अपने रूपजाल में उलझा सकती थी । लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। जिस दिन प्रवीर और कुन्नी की सगाई होनी थी, उसने भी अपना जश्न मनाया था । वह प्रवीर से कहती है - 'तुम्हारी कुन्नी की - सी साड़ी पहनकर मैं मन-ही-मन तुम्हारी वाग्दत्ता बनकर इठलाने लगी थी । मेरे अतिथि थे अर्थी में बंधकर आए मुरदे जिस दिन तुम्हारी बरात आयेगी, उस दिन एक बार फिर वह साड़ी पहनकर दुल्हन बनूंगी ।'[3]

वह अपने प्रणय का उत्सर्ग कर सीलोन जाने को तत्पर हो जातीहै कि अचानक उसे मीजल्स निकल आती हैं । प्रवीर उसे देखने आता है और जाने के एक दिन पहले वह उसे

---

1. कृष्णकली ,शिवानी, पृष्ठ 245
2. 'लिटरेचर एण्ड लाइफ': मैक्सिम गोर्की, पृष्ठ 91.
3. कृष्णकली , शिवानी, पृष्ठ 250.

आश्वासन देता है, ' मै तुम्हें देखने जल्दी ही आऊँगा कली ', तब वह कहती है - ' मत आना, मुझे तुम्हारी मिस्ट्रेस नहीं बनना है ।' [1]. उसी रात को स्पीलिंग पल्स खाकर वह चिरनिंद्रा में विलीन हो जाती है ताकि वह अपने प्रणयी के हाथों अर्घ्य पा सके । अन्ततः तमाम चारित्रिक दुर्बलताओं के बावजूद कृष्णकली का निस्वार्थ प्रेम ही उसके चरित्र को अमरत्व प्रदान कर सका है एवं उसे आदर्शवान बना सका है ।

वस्तुतः कृष्णकली शिवानी के पात्र सृष्टि की कीर्ति पताका है ।

प्रवीर :

प्रवीर अपने ज्ञान-गौरव व गरिमामय व्यक्तित्व से अनुप्राणित है । वह निर्मल चरित्र का स्वामी एवं शान्ति प्रिय है । उसके सहज शौर्य एवं पौरूष से अभिभूत होकर ही कली जैसी दुस्साहसी लड़की उसे अपना हृदय समर्पित कर बैठती है अन्यथा उसके जीवन में क्या लड़कों की कमी थी ? नितान्त गंभीर व्यक्तित्व होने पर प्रवीर भी मानवीय चारित्रिक दुर्बलताओं से मुक्त नहीं है । जब कृष्णकली उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख देती है तब उसकी निष्कलुषता से वह द्रवित होता है एवं उससे घर चलने का आग्रह करता है । अचानक उसके चले जाने से वह सब कुछ भूल जाता है, किन्तु जब उसे सूचना मिलती है कि कली बीमार है, वह उससे मिलने को विकल हो उठता है - ' कल तक जिसके स्पर्श की कल्पना से वह सिहर उठता था, आज उसी के पीछे भागकर वह उसे बाहो में भर लेने को व्याकुल हो उठा था । ' [2]. इस सन्दर्भ में नेमीचन्द्र जैन का कथन सर्वथा उपयुक्त है - ' साहित्य की महानता आज केवल महापुरूषों और महान आत्माओं के चित्रण तक ही सीमित नही है ।---------- न केवल

---

1. कृष्णकली , शिवानी , पृष्ठ 291.

हम मर्यादा पुरूषोत्तम अथवा धीरोदत्त नायक से आगे बढ़ पाये हैं, बल्कि एक प्रकार से ' होरी' और ' शेखर ' के युग से भी आगे बढ़ गये है ।'[1]

अपनी इस मानवीय चारित्रिक दुर्बलता के बावजूद भी प्रवीर एक आदर्श पात्र के रूप में अवतरित हुआ है जिसका चित्रण शिवानी ने बड़े मनोयोग से किया है । कली से उसका सम्पर्क क्षणिक किन्तु आत्मिक था । उसकी मृत्यु पर उसने उसे मुक्त दायी अर्घ्य देकर अपने नैतिक दायित्व का निर्वाह किया - "जिसने उसके चदरे से अपनी चुनरी की गाँठ बांधकर श्मशान में महोत्सव मनाया था, क्या वह उसकी आत्मा की शान्ति के लिए एक बूंद पानी भी नहीं देगा ? ------------ दक्षिणाभिमुख हो उसने एक अञ्जलि भरकर मुक्तिदायी पावन अमृत उठा लिया । विवशता से फैली हथेली में मुदां झरझराकर फिर संगम के नीलाभ जल में एकाकार हो गया ।[2]

डॉक्टर पैद्रिक :

डॉ0 पैद्रिक अल्मोड़ा कुष्ठाश्रम में डॉक्टर हैं । वह बड़े मनोयोग से रोगियों की सेवा करती हैं । पार्वती और असदुल्ला की अवैध सन्तान को उसकी शिशुहन्ता मां से बचाकर वह पन्ना की गोद में डाल देती है और कहती है ' पन्ना, सच्चा आनन्द तो सेवाव्रत में है, इस सेवाव्रत से बढ़कर तुम्हारे कठिन असाध्य मानसिक रोग की और कोई औषधि नहीं हो सकती ।[3] वह सिर्फ नवजात शिशु को ही जीवनदान नहीं देतीं, बल्कि उसके उज्ज्वल भविष्य की चिन्ता भी उन्हें हैं । वे चिन्तित होकर कहती हैं - 'पन्ना मिशन में रहने पर यह एक-न-एक दिन अपने जन्म के इतिहास को जान लेगी और वह दिन इसके लिए बहुत सुख का नहीं होगा ।

---

1. बदलते परिप्रेक्ष्य, नेमीचन्द्र जैन, पृष्ठ 16.
2. कृष्णकली, शिवानी, पृष्ठ 294-95.
3. कृष्णकली, शिवानी, पृष्ठ 68.

तुम्हारे पास रहने पर यह तुम्हारी ही पुत्री के रूप में पलेगी ।'[1] डा0 पैद्रिक का यह मानवतावादी दृष्टिकोण उनके आदर्शवाद का प्रतीक है ।

पन्ना:

'कृष्ण कली' की पन्ना एक प्रसिद्ध नर्तकी होने परभी अपने सतीत्व की रक्षा करती है जब कि उसकी मां मुनीरजान एवं बड़ी बहन मणिक पीली कोठी की प्रसिद्ध वेश्याएं हैं । वह केवल विद्युतरंजन से निस्वार्थ प्रेम करती हैं और अन्त तक अपने सतीत्व एवं शील को अक्षुण्ण बनाए रखती है । इसके लिए वह अपनी बड़ी बहन एवं उसके ऐश्वर्य से भी नाता तोड़ लेती है । तभी अकस्मात् उसकी गोद में नवजात शिशु ' कली' आ जाती है । वह उसका मातृवत् पालन करती है । जब कली बीमार पड़ती है तो उसकी यह पोषिका मां उसकी बड़े ममत्व से सेवा करती है । नर्तकी वेश्या होने पर भी पन्ना का सतीत्व एवं एक परायी सन्तान का पुत्रीवत् पालन करना उसके आदर्शवादी होने के परिचायक हैं ।

भैरवी[2]

भैरवी की नायिका सुकुमार चन्दन को अघोर भैरवी के रूप में प्रस्तुत करने का लोभ संवरण शायद शिवानी इसलिए नहीं कर सकीं क्यों कि इससे जहाँ एक ओर उन्हें अघोर पंथी सिद्ध साधकों, (जो श्मशान में रहकर शव साधना में लीन रहने का प्रपञ्च रचते हैं किन्तु सामान्य सी नारी का सान्निध्य पाकर अपनी शव साधना को शव रूप में बदल देते हैं) की साधना का चीरहरण करने का शुभ अवसर मिलता है , वहीं दूसरी ओर सामाजिक कटाक्षों से घायल नारी की अन्तर्दशा का हृदयस्पर्शी चित्र खींचने का मौका ।

चन्दन राजेश्वरी की विवाह योग्य कन्या है जिसे वह अपनी बिरादरी में विवाह करने के उद्देश्य से पहाड़ पर ले जाती है । लेकिन उसके हाथ असफलता ही लगती

---

1. कृष्णकली, शिवानी, पृष्ठ 23
2. सन् 1969 में प्रकाशित

है । तभी संयोगवश पर्वतारोहियों के एक दल से उसकी भेंट हो जाती है और उस दल की एक सदस्या सोनिया के भाई विक्रम से चन्दन की शादी हो जाती है । यही चन्दन शादी के पश्चात जब विक्रम के साथ रेलगाड़ी से यात्रा कर रही होती है तभी गुण्डों द्वारा घिर जाने पर वह चलती गाड़ी से कूद पड़ती है और फिरशुरू होता है उसका भैरवी स्वरूप । उसे उठाकर ले जाने वाले अघोरी गुरू उसपर आसक्त हो जाते हैं । किसी प्रकार वह अपनी अस्मिता बचाकर भाग निकलने में सफल हो जाती है , किन्तु जब वह अपने पति के द्वारे पहुंचती है तो उसे ज्ञात होता है कि आज विक्रम की दूसरी नवविवाहित पत्नी ने नवजात शिशु को जन्म दिया है । शिशु-जन्म - सूचना की सांकल द्वारा पति के घर का द्वार उसके लिए सदा-सदा के लिये बंद हो जाता है ।

इस प्रकार एक बार पुनः शिवानी ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि मानव और मानव में भी नारी विशेष रूप से संयोग और नियति के हाथों की कठपुतली मात्र है । भैरवी के साधक अघोर के हाथों नारी स्वयं भैरवी बनने के लिए विवश हो गयी ।

'भैरवी' उपन्यास के पात्रों का विवरण इस प्रकार हैः-

पुरूष पात्रः

1. विक्रम (नायक)
2. तिवारी जी (चन्दन के पिता)
3. अघोरी अवधूत (अघोरी बाबा)

स्त्री पात्रः

1. चन्दन (नायिका)
2. राजेश्वरी (चन्दन की मां)
3. सोनिया (विक्रम की बहन)
4. शारदा खन्ना (राजेश्वरी की प्रतिवेशिनी)
5. माया दीदी -----
6. विष्णु प्रिया
7. चंद्रिका (अघोरी अवधूत की शिष्याएं)
8. चरन ---------

आदर्श पात्र की दृष्टि से 'भैरवी' में किसी भी चरित्र को आदर्श की परिधि में नहीं रखा जा सकता । चन्दन जो विधि के हाथों का खिलौना मात्र है, निरपराध होने पर भी सामाजिक लाञ्छनों की शिकार बनी । अपनी अस्मिता को बचाने के लिए, उसे बचा सकने में असमर्थ पति के सामने ही वह चलती ट्रेन से कूद जाती है । बेहोशी की हालत में उसे एक अघोरी उठा ले जाता है । वह वहाँ से भाग निकलने को छटपटाती है औरएक दिन मौका मिलने पर वह भाग निकलती है और अपने पति के घर पहुंचती है । पति पागलों की भांति उसे चूमता तो है किंतु उसे स्वीकार करने का साहस उसमें नहीं होता । यहीं पाठकों की सम्पूर्ण सहानुभूति चन्दन से जुड़ जाती है । वह अपनी मां के पास भी वापस नहीं जाती । कहीं उन्होंने उस पर अविश्वास किया तो ? तो क्या वह आत्मग्लानि से मर नहीं जाएगी ? गुण्डों से अपनी अस्मिता बचाने के लिए जान की परवाह किए बिना चलती ट्रेन से कूद जाना एवं पाखण्डी बाबाओं से बचकर पति के पास पहुंचना यही उसके चरित्र के उज्ज्वल पक्ष हैं । यही उसे पाठकों की सहानुभूति से जोड़ते हैं ।

श्मशानचंपा[1]

भैरवी की भांति श्मशान चंपा भी एक ऐसी सुघड़, शालीन एवं शिष्ट युवती चंपा की आत्मकथा है जो आजीवन अपने कर्यों का फल भोगने के बजाय उन परिस्थितियों का संत्रास सहती है जिनके लिए न तो वह तत्पर है और न ही उत्तरदायी । वह परिस्थितियों के हाथों की पतंग बनकर सौभाग्य के आकाश में अपना गन्तव्य खोजती तो है लेकिन उसका दुर्भाग्य उसे सदैव अपने अभीष्ट से दूर ही रखता है ।

पिता के कलंक और सगाई टूट जाने पर वह कटी पतंग की तरह उद्योगस्थल में जा गिरती है, जहां उसे लूटने वाले तो बहुतेरे मिलते हैं लेकिन वह वहां इस प्रकार फंस जाती है कि भागना चाहती है, पर भाग नहीं पाती । उबरना चाहती है पर और उलझ जाती है । यद्यपि किसी प्रकार उसे सेन गुप्त की प्रचुर संपत्ति प्राप्त हो जाती है फिरभी वह गुरू

---

1. सन् 1972 में प्रकाशित

केनाराम की अधम दासी मात्र बनकर रह जाती है । उसके लिए शिवानी ने चंपा को नहीं बल्कि उस समाज को दोषी ठहराया है जो आधुनिक और परम्परागत दो पाटों के बीच में निरंतर चंपा को पीसता रहता है। संभवतः इसीलिए चंपा के साथ हर पाठक की सहानुभूति जुड़ जाती है । इस प्रकार श्मशान चंपा दो समाजों, पीढ़ियों एवं परिवेशों के अन्तः संघर्ष की सजीव गाथा है ।

उपन्यास के सम्पूर्ण पात्र इस प्रकार हैं -

पुरूष पात्र :

1. मधुकर (नायक)
2. सेनगुप्त (कमलेश्वरी के पति, जमींदार)
3. रामदत्त(मधुकर के पिता)
4. धरणीधर (चंपा के पिता)

स्त्रीपात्रः

1. चंपा (नायिका)
2. जूही (चंपा की छोटी बहन)
3. भगवती (चंपा की मां)
4. रूक्की (चंपा की बुआ)
5. जया (रूक्की की बेटी)
6. मिसेज कमलेश्वरी सेन (सेनगुप्त की पत्नी)
7. मयूरी (सेनगुप्त की पुत्री)
8. खुदु(सेनगुप्त की नौकरानी)

आदर्श पात्रः चंपा, कमलेश्वरी सेन ।

चंपाः

चंपा एक आत्मरूद्ध, सरल, संवेदनशील कर्त्तव्यपरायण लड़की है । चंपा का चरित्र उज्ज्वल है । फिर भी वह नियतिग्रस्ता है । उसका जीवन बड़ी त्रासदी और करूणा से

भरा हुआ है । वह अपनी छोटी बहनके उज्ज्वल भविष्यके लिए सर्विस करती है । किन्तु वह तनवीर खान के साथ भाग जाती है और बाद में ठोकर खाकर कैबरे डान्सर मात्र बनकर रह जाती है । चंपा के पिता के सस्पेण्ड हो जाने पर केस के दौरान कोठी भी नीलाम हो जाती है । पिता की मृत्यु और बहन के कलंक के कारण उसकी मधुकर से सगाई टूट जाती है मां की बीमारी के बीच वह संघर्षरत् रहती है ।

'चौदह फेरे' की तरह 'श्मशान चंपा' भी पर्वतीय प्रदेश के उच्चकुलीन समाज के विघटन की कहानी है । लड़कियाँ उच्च शिक्षा ग्रहण तो करती हैं किंतु पर्वतीय समाज अपने ही समाज में शादी करने जैसी दकियानूस रूढ़ियों के कारण अभिशप्त होता जा रहा है । यह समस्या पहाड़ से दूर जिन्दगी बिताने वाले पर्वतीयों के लिए कितनी विकट हो गई है । इसी रूढ़िवादिता के कारण पर्वतीय समाज में उच्च शिक्षाप्राप्त लड़कियों के लिए सुयोग्य पात्र मुश्किल से जुट पाते हैं। चंपा के माध्यम से शिवानी ने इस समस्या को उजागर किया है । चंपा की मधुकर से सगाई छूट जाने के बाद मधुकर की सगाई चंपा की बुआ की लड़की जया से हो जाती है । किन्तु ट्रेन में यात्रा करती हुई चंपा को अचानक मधुकर मिल जाता है । वह टिटनेस से ऐंठ रही होती है , मधुकर उसकी सेवा करता है और उससे पुनः शादी करने का प्रस्ताव रखताहै । किन्तु चंपा आत्मत्यागी थी । अपनी फुफेरी बहन जया के लिए उसने अपने प्रेमी का ही दान कर दिया । वह स्वार्थमयी वृत्तियों से परिवेष्टित नहीं थी । वह अपने सुख के लिए किसी के त्याग की कामना नही करती अपितु बहनके निमित्त अपने सुख व स्वार्थ का परित्याग करने में पीछे नहीं हटती । यदि वह चाहती तो मधुकर के साथ अपनी भावनओं को सुख-सौरभ से स्पन्दित कर सकती थी । किन्तु उसने नैतिकता का निर्वाह कर अपने आत्मिक प्रणय का उत्सर्ग करना अधिक श्रेयस्कर समझा । त्याग और उत्सर्ग ही तो हमारे साहत्य के शाश्वत् आदर्श हैं । चंपा का यह उत्सर्गमय व्यक्तित्व पाठकों की संवेदना को जगाकर उन्हें करूणाप्लावित करने में पूर्णतया सक्षम है ।

मिसेज कमलेश्वरी सेन:

चंपा की मकान मालकिन एवं चंपा की पेशेण्ट मिसेज कमलेश्वरी सेन एक सहृदय

महिला हैं । वह भी नियतिग्रस्ता हैं । एनेमिक से त्रस्त । उन्हें भयंकर दौरे पड़ते हैं । चंपा उनकी निःस्वार्थ सेवा - सुश्रूसा करती है । वह चंपा को पुत्रीवत् स्नेह करती हैं । उनकी लड़की मयूरी किसी के साथ भाग जाती है । अतः उनका सारा स्नेह चंपा पर ही केन्द्रित रहता है । अंत में वह अपनी पूरी सम्पत्ति का वारिस चंपा को ही बना जाती हैं । उनकी यह सहृदयता भी पावन आदर्श है ।

' सुरंगमा ' 1.

अवैध सन्तान को वैधता प्रदान करने के लिए जब लड़की का वैध पिता ही लोक-लाज के भय से उसे अपना कहने से मुकर जाता है तो समाज का अन्य कोई पुरूष कैसे उसे अपना सकता है ? हिन्दू समाज की यह अच्छाई या बुराई हर किसी को कबीरदार जैसा संत नहीं बना सकती । वहीं अवैध सन्तान सुरंगमा बनकर समाज की यातनाएं, कलंक और आक्षेप सहने के लिए घुट-घुट कर जीती रहती है और चाहकर भी उस नारकीय दलदल से नहीं निकल पाती है जिसमें रहकर जीना उसके लिए दूभर होता है ।

'सुरंगमा' एक ऐसी मां की अवैध सन्तान है जो अपने शिक्षक से गन्धर्व विवाह कर स्वर्णहिरण के पीछे घर छोड़कर भाग जाती है, वही स्वर्ण हिरण जब उसके लिए एक छलावा बन जाता है तो वह अपने गंधर्वपति गजानन की अवैध संतान को वैध बनाने के लिए एक ईसाई युवक रॉबर्ट से पुनर्विवाह करती है । वही वैधावैध सुरंगमा अपनी माँ लक्ष्मी की मृत्यु के पश्चात् यद्यपि आजन्म अविवाहित रहने का दृढ़ संकल्प लेती है किन्तु मंत्री जी की पुत्री की ट्युटर बनते ही वह भी मंत्राणी बनने का दिवास्वप्न देखने लगती है जिसे मंत्री जी की पत्नी अपनी धौंस भरी धमकियों से उसके सपनों का शीशमहल ढहाकर रख देती हैं ।

---

1. सन् 1979 में प्रकाशित

'सुरंगमा' का पात्र विवरण इस प्रकार है:-

पुरूष पात्र -

1. गजानन जोशी (राजलक्ष्मी का प्रेमी)
2. दिनकर (मंत्री
3. रॉबर्ट (एक ईसाई युवक)

स्त्री पात्र -

1. राजलक्ष्मी (गजानन की प्रेयसी)
2. सुरंगमा (राजलक्ष्मी की पुत्री)
3. वैरोनिका (रॉबर्ट की बहन)
4. मिनी (मंत्री की पुत्री)
5. मीरा (सुरंगमा की सहायिका)
6. मंत्री पत्नी

'सुरंगमा' का आदर्श पात्र 'रॉबर्ट म्यूरी' है तथा सामान्य आदर्श पात्र हैं - वैरोनिका, मी रा एवं उसके मामा ।

रॉबर्ट म्यूरी :

जहाँ हमारा हिन्दू समाज भ्रूण हत्या करने में जरा भी नहीं हिचकिचाता, किन्तु अवैध: सन्तान स्वीकार करने में उसे आपत्ति है वहीं ईसाई समाज भ्रूण हत्या को निन्दनीय कृत्य मानता है और अवैध सन्तान को सहर्ष स्वीकार कर लेता है। इन अवैध सन्तानों के लिए उन्होंनें जगह-जगह 'मिशन' खोल रखे हैं ।

'राबर्ट क्यूरी' एक क्रिस्चियन युवक है । गजानन के अत्याचारों से त्रस्त होकर जब राजलक्ष्मी ट्रेन के नीचे आकर अपना जीवन समाप्त कर लेना चाहती है । तब यही रॉबर्ट उसे बचाकर अपनी बहन के यहाँ आश्रय देता है । उसकी बहन जान जाती है कि वह मां बनने वाली है । उसकी सन्तान अवैध न हो, इस लान्छन से उसे बचाने के लिए वह अपने भाई रॉबर्ट म्यूरी से लक्ष्मी की शादी कर देती है । वह अपने भाई रॉबर्ट से कहती है - 'रॉबर्ट, मैं जानती हूँ, तुमने आज मेरे लिए कितना बड़ा त्याग किया है । मुझे पूरा विश्वास है कि तुम इस त्याग की पावनता को सदा अक्षुण्ण रखोगे ।'[1] और सचमुच रॉबर्ट अपनी इस महानता, त्याग और समर्पण के कारण पाठकों की दृष्टि में एक अविस्मरणीय पात्र बन जाता है । रॉबर्ट का प्रेम निस्वार्थ है । उसके स्नेह में कहीं भी वासना की ललक नहीं है । वह एक मूक एवं आदर्श प्रणयी है । जो प्रणय वासना से परे हो, सच्चे अर्थों में वही सच्चा प्रणय है । गजानन जब लक्ष्मी को ढूंढता - ढूंढता वहां आ पहुंचता है और वह लक्ष्मी को साथ में ले भी जाता है, तब भी वह कुछ नहीं बोलता । उसकी यही खामोशी उसका सबसे बड़ा त्याग है । और यही त्याग उसके उज्ज्वल आदर्श का प्रतीक है ।

सामान्य आदर्श पात्र :

सामान्य आदर्श पात्रों में वैरोनिका, मीरा एवं उसके मामा का चित्रण किया गया है । वैरोनिका लक्ष्मी को मदद करती है, अपने घर में आश्रय देती है एवं अपने भाई रॉबर्ट से उसकी शादी कराकर उसे सामाजिक लान्छन से बचाती है ।

मीरा एवं उसके मामा लक्ष्मी की पुत्री सुरंगमा की आजीवन मदद करते हैं । अत: सामान्य पात्र होने के बावजूद भी ये पात्र अपने सुकृत्यों से आदर्शपात्र की तरह महिमामंडित हो जाते हैं ।

'अतिथि'[1]

'अतिथि' शिवानी काएक अत्यन्त मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी उपन्यास है जो नि:संदेह पाठकों के मन को अन्तस्तल की गहराई तक उद्वेलित करने में पूर्णतया सक्षम है ।

---

1. सुरंगमा, शिवानी, पृष्ठ - 42

जिसकी कहानी एक ऐसी सबला एवं रूपवती स्त्री के स्वाभिमान और संकल्प की रक्षा की वकालत करती है, न कि सड़ी-गली मानसिकता, लिजलिजी भावुकता और परम्परागत चरणदासी का जीवन जीने वाली अबला नारी की । 'जया' मक्कार पति के लिए एक चुनौती है। वह सुदृढ़ संकल्पों वाली एक ऐसी नारी का प्रतीक है जो घुट-घुट कर जी रही स्त्रियों को सिर ऊंचा करके ससम्मान जीने के लिए प्रेरणा भरा पैगाम है । वह आई.ए.एस. अधिकारी बनकर यह सिद्ध कर देती है कि यदि नारी अपनी शक्ति को पहचान ले तो वह क्या नहीं कर सकती ? आज की नारी पुरूष से पीछे नहीं, आगे भी है ।

और इसी के साथ शिवानी ने एक मंत्री की आदर्श और नैतिकता के मानदण्डों की स्थापना करते हुए अपने अबाध्य पुत्र और पुत्री से अधिक लगाव नैसर्गिक सौन्दर्यराशि रूपा एवं शालीन पुत्रवधू के प्रति दर्शाया है । यह शिवानी की आदर्शों के प्रति समर्पित निष्ठा ही है ।

'अतिथि' के पात्रों का विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र:

1.	कार्तिकिय	(नायक)
2.	माधव बाबू	(कार्तिकिय के पिता, मंत्री)
3.	श्यामाचरण	(जया के पिता, माधव बाबू के मित्र)
4.	बंटी	(जया का भाई)

स्त्री पात्र :

1.	जया	(नायिका)
2.	मायादेवी	(जया की मां)
3.	ताई	जया की ताई)
4.	चंद्रा	(माधव बाबू की पत्नी)
5.	लीना	(माधव बाबू की पुत्री)
6.	सुधा	(लीना की सहेली)
7.	मालती	(कार्तिकिय की भाभी)

आदर्श पात्रः

माधव बाबू, जया ।

माधव बाबूः

पात्र तो सभी श्रेष्ठ हो सकते हैं किन्तु आदर्श पात्र से तात्पर्य यह है कि यथार्थ में विसंगतिपूर्ण यायावरी. जीवन को जीते हुए भी त्याग एवं कर्तव्य भावना के प्रति ईमानदार रहते हुए सद् के प्रति प्रवृत्त रहे । माधव बाबू एक ऐसे ही आदर्श पात्र हैं । उनका व्यक्तित्व निष्ठावान एवं श्रद्धाशील है । वे मानवतावादी सिद्धान्तों के परिपोषक एवं चिन्तन शील व्यक्ति हैं। उनके जीवन में आदर्शमयी आस्थाएं और नैष्ठिक कर्मठता के प्रति कर्त्तव्यभावनाएं हैं वे एक ईमानदार मंत्री ही नहीं एक कर्त्तव्यनिष्ठ पति एवं पिता भी थे । किन्तु पत्नी, पुत्र, पुत्री सभी को उनके अवज्ञा करने में ही आनन्द आता था । घर में हो रहे अनाचार को देखकर कभी-कभी वे सोचने परविवश हो जाते हैं कि -'पत्नी होने पर भी वे विधुर हैं और इतने बड़े संसार में वे एकदम अकेले है, निःसंग असहाय।'[1]

देश की अनेकानेक जटिल समस्याओं का चुटकियों में समाधान करने में समर्थ इस चाणक्य को गृह कलह की अशान्ति ने एकदम निष्प्राण सा कर दिया था -' जीवन-भर वे अपनी ईमानदारी को, दांतों के बीच जीभ-सा ही सेंतते चले थे आए । किन्तु अब उनके सत् एवं नैतिक जीवनयापन के लिए आदर्श और वास्तविक अभिज्ञता का वैमनस्य ऐसा तीव्र बनता जा रहा था कि उन्हें स्वयं भय होने लगा था । मानव-समाज के इसी शांति-विधान में दिन-रात जुटे रहने पर भी वे इप्सित साफल्य प्राप्त नहीं कर पा रहे थे ।[2]

इस देवता को न तो उनका परिवार ही कभी समझ सका और न ही देश । उन्हें एक ओर घर की अशांति व्यथित किए थी तो दूसरी ओर देश की चिंता खाए जा रही थी । कितने विवश थे वे । उनकी व्यथा को कोई समझ ही नहीं रहा था - 'उनके जीवन-भर का त्याग, देशसेवा, न उनके देशवासियों को नीरक्षीर विवेकी बना पा रही थी, न पुत्र को । जो प्रचण्ड

---

1. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 99
2. वही, वही, पृष्ठ 148

दावाग्नि उनके हृदय के भीतर धधक रही थी उसे वह किसे दिखा सकते थे ?'[1]

जब भी वे गृह, परित्याग एवं राजनीति से सन्यास लेने का संकल्प करते, उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा आड़े आ जाती है । वे सोचने लगते कहीं स्वयं वही तो नहीं अपने कर्त्तव्य से विमुख होना चाहते हैं - 'जब भी वे मन-ही-मन अपना दृढ़ संकल्प दुहराते, त्यागपत्र लेकर जाने की सोचते उतनी ही बार लगता कि आखिर उनका भी तो कुछ कर्त्तव्य था, घर के बड़े-बूढ़े लाख बातों से अपमानित हों । क्या अपनी संतान को जीवन के जटिल चौराहे पर अकेले छोड़ गृहत्याग वानप्रस्थ लेना उन्हें शोभा देता है ।'[2] वे मन की शांति के लिए पहले गुरूदेव के पास जाते है और एक ऊंचे तबके के मंत्री होने पर भी वे अपने पुत्र के लिए अपने निर्धन मित्र श्यामाचरण की सुयोग्य पुत्री को पुत्रवधू के रूप में पाने की याचना करने में जरा भी नही हिचकिचाते- ' जया , आज गुरूदेव के सामने तुमसे एक भीख मांग रहा हूँ बेटी- दोगी ? दीन-हीन याचक बनकर मांग रहा हूँ । बेटी, तुम्हें मेरे इस गृह की लक्ष्मी बनकर आना ही होगा जया, कहीं इस भिक्षुक को खाली हाथ मत लौटादेना ।'[3]

आज के इस युग में ऐसा कौन पिता होगा जो अपने पुत्र के लिए कन्या के पितासे इस तरह दीन याचना करे औरसचमुच वे पुत्र सहित केवल पाँच मित्रों के साथ पुत्र को ब्याह लाए । दहेज के नाम परएक तिनका भी उन्हें स्वीकार नही था - ' केवल कुश औरकन्या ही ग्रहण करने आया हूँ श्यामा, तुमने कुछ दियाभी तो मैं यहीं छोड़ जाऊँगा । '[4]

पुत्र ने तो उस हीरे जैसी जया को सहर्ष स्वीकार कर लिया किन्तु पत्नी और पुत्री अपने तबके से उसे ओछा ही समझती रहीं। मृ पत्नी-पुत्री द्वारा उस हीरे की अवमानना न हो इसके लिए वे छाया की तरह उसका सम्बल बने रहे ।

---

1. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 232
2. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 211-5
3. वही,वही, पृष्ठ 85
4. वही, वही, पृष्ठ 121

माधव बाबू की पत्नी नही चाहती थीं कि उनके पुत्र की शादी दो कौड़ी के मास्टर की लड़की से हो । अतः उन्होंने माधव बाबू पर कटाक्ष किया कि यदि मुन्ना ने पत्नी को ठोकर मार दी तब ?......... उन्होंने जो आदर्श प्रस्तुत किया वह उनके स्वार्थी परिवार के लिए एक करारा तमाचा था - 'तब क्या, जिस क्षण वह लक्ष्मी मेरे घर की देहरी लांघेगी, वह मेरी बहू ही नहीं, बेटी भी बन जाएगी चन्द्रा। और मैं उसका स्नेही संरक्षक, उसका पिता, यदि मुन्ना उस हीरे की कद्र नहीं कर पाया, तो मैं उसे कान पकड़ घर से बाहर कर दूंगा । मेरी पुत्रवधू ही बनेगी मेरी सम्पत्ति की अधिकारिणी ।'[1]

वह अपनी पुत्री से अधिक पुत्रवधू पर जान छिड़कते थे । वे जानते थे, उनकी पुत्री अबाध्य है, दुराचारिणी है । जब लीना (पुत्री) के श्वसुर ने माधव बाबू से गलत काम करने को कहा-' देखिए समधी साहब, आपको मेरा यह काम करना ही होगा ' तब माधव बाबू ने दृढ़ स्वर में कहा था -'सुनिए, मैंने ऐसा काम न कभी किया है, न करूँगा, मुझे क्षमा करें ।'[2]
उनकी इस ईमानदारी के इनाम में उनकी पुत्री परित्यक्त होकर जीवनभर के लिए मायके वापस भेज दी गई फिर भी उन्होंने समधी के अनैतिक कार्य नही किए । चुपचाप सामाजिक टीका-टिप्पणियों को झेलते रहे । यही मूर्ख लीना जब जया से गहने मांगने की धृष्टता कर बैठी तब तो माधव बाबू के क्रोध की गर्जना से पूरी कोठी ही कांप कर रह गई थी - ' जैसी खुद है वैसा ही सबको समझती है, जया के पैर के धोवन के बराबर नहीं है तुम्हारी बेटी, समझीं ?'[3]

पुत्री की इस धृष्टता के लिए उन्होंने पुत्रवधू से क्षमा मांगने में जरा भी विलम्ब नहीं किया जब कि आज के युग में पुत्रवधुएं कितनी ही कुशल-योग्य क्यों न हों, उन्हें पुत्रियों से हेय ही समझा जाता है ।

इस प्रकार माधव बाबू एक महान आदर्श पात्र के रूप में उभर कर सामने आते हैं । गुरूदेव की शरण में जाकर जीवन के रहस्य को जान लेने के पश्चात् उनका व्यक्तित्व तटस्थ हो जाता है । उनके मन में न तो हर्ष के प्रति अतिरेक रह जाता है और न विषाद की व्यञ्जना । अंत में वे वैयक्तिक धरातल से ऊंचे उठकर देश के लिए, मानवता के लिए चिन्तनशील

---

1. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 31
2. वही,वही, पृष्ठ 103
3. वही, वही, पृष्ठ 182

बन जाते हैं । कर्त्तव्यभावना से प्रेरित होकर ही वे अपने अबाध्य पुत्र को सही दिशादेने में सफल भी होते हैं । निःसंदेह माधव बाबू का आदर्शमय जीवन वर्तमान समाज के राजनीतिज्ञों के लिए एक पावन प्रेरणास्त्रोत है ।

जयाः

'अतिथि' में जया का चरित्र भी अपना अस्तित्व रखता है । वह अपने दृढ़ संकल्प एवं अपरिमित धैर्य के साथ पाठकों के समक्ष आती है । वह अपने तेजोमय स्वाभिमान, असीम धैर्य एवं अपूर्व साहस से अपने व्यक्तित्व को गरिमामय बनाती है । मंत्री की पुत्रवधू बनकर उसे क्या मिला? पति ने उसकी सुकुमार भावनओं का अपमान किया, सास-नन्द ने उसकी उपेक्षा की । फिरभी सास-नन्द के प्रति उसमें द्रोह की भावनानहीं है।किन्तु उसका स्वाभिमान उनकी उपेक्षा बर्दाश्त करने के लिये भी प्रस्तुत नही है। ससुर के स्निग्ध स्नेह के छांव-तले पूरा जीवन तो व्यतीत नहीं किया जा सकता । यद्यपि उसके चरणों में विपुल वैभव समर्पित था ।-किन्तु स्वाभिमानी जया ने उस वैभव को ठुकरा दिया और अपने पैरों पर खड़ी होकर दिखाने का दृढ़ संकल्प ले लिया- पति के द्वारा पिता को अपशब्द कहे जाने पर वह सिंहनी सी बिफर उठती है और अपने देवतुल्य ससुर से कहती है - ' इन्होंने कहा कि सुधा होती तो वह स्वयं भी पीती और इन्हें भी पिलाती । मैं जारही हूँ, आप शौक से उसी सुधा को ले आइए । मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ । मैं कभी कोई आपत्ति नहीं करूंगी । मैं अनाथ नहीं हूँ । मेरे भी मां-बाप हैं, घरहै, अपने पैरों पर खड़ी हो सकूंगी , ऐसा दृढ़ विश्वास भी है मुझे ।'[1]

जया के इस स्वाभिमान भरे दृढ़ संकल्प में भी उसका आदर्श परिलक्षित होता है । पति दूसरी शादी भी कर ले तब भी उसे आपत्ति नहीं होगी । वह पूरे आभूषण अपने ससुर को थमा देती है ससुराल की एक साड़ी भी नहीं रखती । यहाँ तक की मायके के गहने भी उन्हीं गहनों में रख देती है । वह ससुर से कहतीहै -' मैंने मायके से मिले सब गहने भी इसी में रख दिए हैं । '[2] माधव बाबू उसके इस तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने निर्वाक् रह जाते हैं । उनमें इतना भी साहस नही होता कि वह उससे यह कह सकें कि -' इन्हे ले जाओं जया,

---

1. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 166.
2. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 166

इन पर अब तुम्हारा ही अधिकार है, तुम्हारी सास का नहीं ।'[1] जाते-जाते वह अपने ससुर से विनती भी करती है - ' आप देश के सर्वशक्तिमान मंत्री हैं, मेरी इस अशिष्ट मुखरता के लिए कभी मेरे निरीह पिता को दण्डित न करें ।'[2]

वह आई0ए0एस0 की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपने संकल्प को पूरा भी करती है । वह यह दिखा देती है कि यह युग पति के चरणों की दासी बनने का नहीं है बल्कि उसके कदमों के साथ कदम मिलाकर चलने का है । वास्तव में जया के स्वाभिमान एवं दृढ़ संकल्प ने एक ऐसा आदर्श स्थापित किया है, जो आज की समस्त स्त्री जाति के लिए एक प्रेरणाभरा पैगाम है, एक गौरव है ।

कार्तिकेय

'अतिथि' के नायक को आदर्श पात्र नहीं कहा जा सकता । किन्तु जया के अपमान के पश्चात् उसके चरित्र में परिवर्तन होता है । प्रायश्चित की अग्नि में झुलसने के पश्चात् वह शुद्ध खरे सोने सा दमकने लगता है । उसकी भाभी मालती जया को आगाह करती हैं - ' मुन्ना आजकल यहाँ अपने काम से आया हैं, मेरे ही पास रूका है । मैंने उसे बहुत परखा है जया, वह उतना बुरा नहीं है, जितना उसे तुम समझती हो ! उसे सब पता है । तुम कहां हो,क्या कर रही हो । पर उसकी शराफत देखो, कभी भी तुम्हें परेशान करने नहीं पहुँचा । बहुत झटक गया है, लगता है मन ही मन पश्चाताप में घुल रहा है बेचारा ।'[3]

---

1. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 169
2. -तदैव- 167
3. -तदैव- 238

मालती भाभी ही उसे अतिथि के रूप में जया के पास भेजती हैं । चारित्रिक दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त कर लेना भी एक आदर्श है जिसकी प्रतिस्थापना में शिवानी सिद्धहस्त हैं ।

कालिन्दी [1]

निरीह जननी अन्नपूर्णा और दुर्व्यसनी जनक कमलावल्लभ की इकलौती सन्तान थी कालिन्दी । मझले मामा देवेन्द्र की सहृदयता ने उसे पढ़ा- लिखा कर डॉक्टर बना दिया । कुशाग्र एवं व्यक्तित्व संपन्ना डॉ0 कालिदी की बरात आई विदेश से । ससुर द्वारचार पर ही दहेज की शेष रकम मांगने की घृष्टता कर बैठे । फिर जो हुआ उसके लिए कोई भी प्रस्तुत नहीं था। साक्षात् अष्टभुजी दुर्गा के रूप में कालिन्दी ने सभी के सामने ससुर को बेइज्जत कर दिया । अपमानित होकर बारात वापस चली गई । यहीं से उसके जीवन की यायावरी विसंगतियों का प्रारम्भ होता है और अंत में रह जाता है एक निरभ्र शून्य आकाश ।

उपन्यास के सम्पूर्ण पात्रों का विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र

1.	डा0 जोशी	(नायक)
2.	महेन्द्र	(कालिन्दी के बड़े मामा)
3.	देवेन्द्र	(कालिन्दी के मझले मामा)
4.	नरेन्द्र	(कालिन्दी के छोटे मामा)
5.	कमलावल्लभ	(कालिन्दी के पिता)
6.	रूद्रदत्त	(कालिन्दी के नाना)
7.	अखिलेश	(माधवी का पति)

---

1. सन 1991 में प्रकाशित

8. ऐल्फी
9. बसंत (देवेन्द्र के मित्र)

10. कुलभूषण वर्मा (कालिन्दी के मकान मालिक)

स्त्री पात्र

1. डॉ0कालिन्दी (नायिका)
2. अन्नपूर्णा (कालिन्दी की मां)
3. शीला (देवेन्द्र की पत्नी)
4. माधवी कालिन्दी की सहेलियां)
5. सरोज (कालिन्दी की सहेलियां)
6. नेहा (महेन्द्र की लड़कियां)
7. बेबी (महेन्द्र की लड़किया)
8. शारदा देवी (कुलभूषण वर्मा की पत्नी)

आदर्श पात्र डॉ0 कालिन्दी, डॉ0 जोशी.

कालिन्दी -

कालिन्दी एक स्वाभिमानी नारी पात्र हैं । उसमें अन्याय के प्रति व्यापार करने की प्रवृन्ति नहीं है प्रत्युत् अन्याय के साथ संघर्ष करने की प्रवृन्ति है । वह रूढ़िगत परम्पराओं की अंधी गुहाओं को तोड़कर परिवर्तनशील अभिनव आदर्श स्थापित करने के दुस्साहस में प्रवृत्त है । वह बिना दहेज की शादी करना चाहती थी । किन्तु जब उसके मामा को बिना लेन-देन के कोई लड़का नहीं मिला तो उन्होंने भी यही सोचकर कि आजकल यही तो सब जगह हो रहा है,कहां तक आदर्श को छाती से लगाकर रह पाऊंगा - गुप्त रूप से लेन देन की बात करके एक लड़का तलाश लिया । किन्तु कालिन्दी के ससुर शायद विदेशी आसव की पूरी बोतल ही चढ़ाकर आए थे । उनकी लेनदेन की प्रायवेसी को बोतल ने उगल दिया । द्वारचार में ही वे **शेष रकम** की मांग कर बैठे । मामा ने फुसफुसाकर कहा भी कि - 'पूरी रकम का बैंक ड्राफ्ट

सेफ मे धरा. है । यहाँ रखता तो आपकी ही बदनामी होती ।' परन्तु श्वसुर जी की सुरा को धैर्य नहीं--- ' क्यों जी सेफ में क्यों धरा है, आपने तो कहा था धूलिअर्घ्य की थाल में रखेंगे ।' [1] खीजकर मामा ने कहा, ठीक है, मैं अभी लेकर आता हूँ। उसी समय साक्षात् चंडी रूप में अवतरित उग्रतेजी कालिंदी, उनका मार्ग अवरूद्ध कर खड़ी हो गयी - ' नहीं मामा, अब आपको नहीं जाना होगा - आपने तो कहा था कि एक सम्भ्रान्त कुल के ब्राह्मण स्वयं हाथ फैलाकर मुझे मांगने इतनी दूर से चले आए हैं । आपने यह नहीं बताया कि एक दरिद्र, शराबी, भिखारी अपना बेटा बेचने आ रहा है ।[2] फिर वह आगे बढ़कर उस चकित स्तब्ध खड़े मदालस व्यक्ति (ससुर) के सम्मुख तनकर खड़ी हो गई -' श्रीमान् आपका बेटा हमें नहीं खरीदना है, जाइये इसी क्षण अपनी बारात लौटा ले जाइए --और जहाँ अपने पुत्र का मुंहमांगा दाम मिले, वहीं बेच आइए।

------------- तिर्यक व्यंग्य से उसने पुनः कहा - बड़ा आश्चर्य है कि इतने समृद्ध व्यापारी होने पर भी आपको अपना बेटा बेचना पड़ा वह भी कुल अस्सी हजार में ।' [3] फिर वह मामा की ओर अभिमुख होकर बोली - ' छिः छिः मामा, आपसे मुझे ऐसी उम्मीद नहीं थी, आप ही ने तो मुझे सिखाया है कि न कभी अन्याय करना न अन्याय सहना । फिर ऐसा अन्याय क्यों किया आपने, वह भी मुझसे बिना पूछे ? [4] कालिन्दी के इस दुस्साहस की भूरि - भूरि प्रशंसा हर समाचार पत्र ने मुक्त कंठ से की - ' पुलिस के वरिष्ठ अधिकारी श्री देवेन्द्र भट्ट के द्वार पर आई बारात, दहेज के कारण लौटी - डॉक्टरनी वधू का अपूर्व साहस - दहेज की ऊँची रकम अदा करने का तीव्र विरोध । बाद में टिप्पणी में कालिंदी के साहस की भूरि - भूरि प्रशंसा करने में क्या हिन्दी और क्या अंग्रेजी दोनों समाचार पत्रों ने कही भी कृपणता नहीं दिखाई थी । हमारे समाज में ऐसी दो - चार साहसी लड़कियाँ हों तो दहेज की मारक व्याधि स्वयं ही विलुप्त हो जायेगी ।[5]

---

1. कालिन्दी, शिवानी, पृष्ठ 37.
2. यथोपरि पृष्ठ 38.
3. यथोपरि
4. कालिन्दी शिवानी पृष्ठ 35
5. यथोपरि पृष्ठ 3[illegible]

निस्संदेह कालिन्दी का व्यक्तित्व एक अपूर्वसाहसी एवं स्वाभिमानी नारी के रूप में पाठकों के समक्ष उभरता है । उसके स्वाभिमान में उसका आदर्शमय व्यक्तित्व निखर उठा है ।

डॉ0 जोशी -

डॉ0 जोशी भी एक स्वाभिमानी एवं आदर्श- वादी पात्र है । उसकी स्निग्ध शालीनता ने उसके स्वाभिमान को और निखार दिया था । डॉ0 जोशी के पिता कालिन्दी के मामा से दहेज की मांग करते हैं । डॉ0 जोशी इससे अनभिज्ञ रहते हैं फिर भी कालिन्दी आवेश में डॉ0 जोशी का भी अपमान कर बैठती है - "आज तक इनके डैडी थे इसी से आने की हिम्मत नहीं हुयी, अब नहीं रहे तो शायद देहज की रकम में, दयावश कुछ कटौती कर, हम पर कृपा करने पधारे हैं ।"[1] इस वार के लिए वह प्रस्तुत नहीं था । वह तिलमिलाकर खड़ा हो गया, उसका गोरा रंग क्रोध से तमतमाकर रक्तवर्णी हो उठा - "जी नहीं, मैं कोई प्रस्ताव लेकर नहीं आया हूँ । मै डैडी की आपसे वसूली गई यह रकम लौटाने ही यहां आया था, व्यर्थ की बकवास सुन, अपमानित होने नहीं । सोचा था उनकी बरसी से पहले, उनके एक कर्ज को चुका कर ही लौटूंगा , जिससे उनकी आत्मा को शांति मिले- सोचा था कि यही पितृऋण चुकाकर आप सबसे उस अपराध के लिए क्षमा मांग लूंगा , जो मैनें कभी किया ही नहीं था । डैडी के वार्षिक श्राद्ध से पहले आपका यह कर्ज नहीं चुकाता तो मै शांति से उन्हें पिन्ड नहीं दे पाता । "यकीन मानिये, मुझे कुछ भी पता नहीं था- कि डैडी ने आपसे कोई ऐसी बेहूदी मांग भी की है ।"[2]

---

1. कालिन्दी,शिवानी, पृष्ठ 168
2. यथोपरि 169.

विदेश में रहकर भी वह पितृऋण की, पिता के श्राद्ध की महिमा को नहीं भूला, यही क्या कम आदर्श है एक प्रवासी पुत्र के लिए । उसकी शुद्ध भारतीय भावनाएं कालिंदी को लिखे गए अंतिम पत्र में पारदर्शी दर्पण की तरह झलक उठती हैं - ' डॉ पंत क्षमा करें ....आशा है कि इसे आप बिना पढ़े नहीं फाड़ेंगी । मैं आपसे अपने मृत पिता की शपथ ले कर कहता हूँ, डैडी के व्यवहार ने उस दिन, मुझे आपसे भी अधिक आहत किया था । मुझे कुछ भी पता नहीं था । मैंने चापलूसी न कभी की, न कर रहा हूँ । आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि मुझसे घृणा न करें, मैंने कभी किसी के साथ अन्याय नहीं किया है ।' [1]

प्रवासी होकर भारतीय भावनाओं की कद्र करना अभी भी उसके संस्कारों में है । अंत में यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि शिवानी का यह पुरूष पात्र उनके नारी पात्र कालिन्दी से भी अधिक सशक्त पात्र है जिसे दिव्य आदर्श कहा जा सकता है ।

' कैंजा ' [2]

'कैंजा' कुमांऊनी भाषा का शब्द है । व्युत्पत्ति के आधार पर इजा (मां) से विमाता कैंजा शब्द बना है [3] शिवानी ने कैंजा को विमाता के रूप में चित्रित किया है । शिवानी की कैंजा एक ऐसी कुमांउनी युवती नंदी की असफल प्रेमगाथा है जिसे उसके पिता जो एक प्रसिद्ध ज्योतिषी भी थे,विधवा होने के भय से उच्च मेडिकल शिक्षा दिलाकर आत्मनिर्भर तो बना देते हैं किन्तु प्रणयी सुरेश भट्ट से विवाह नहीं करने देते हैं । फलतः जहां एक ओर नंदी नीर हीन नदी की भाँति रेतीला जीवन जीने को विवश है, वहीं सुरेश भट्ट सेक्समैनियक (काम लोलुप) बनकर दुष्कृत्यों में लिप्त हो जाता है और एक पागल लड़की को गर्भवती करके उड़नछू

---

1. कालिन्दी, शिवादी, पृष्ठ 171
2. सन् 1975 में प्रकाशित
3. कुमांउनी भाषा में कैंजा का प्रचलित अर्थ मौसी या मौसी अर्थात मां जैसी या विमाता है ।

हो जाता है । नंदी उस पगली के पुत्र को अपने प्रणयी का स्मृति चिन्ह समझकर उसका पालन - पोषण करती है और अंततः अपने अतृप्त प्रणय को परिणय का रूप देकर वह कैंजा बन जाती है।

कैंजा के पात्रों का विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र

1.	सुरेश कुमार भट्ट	(नायक)
2.	राघव भटट	(सुरेश कुमार के पिता)
3	गंगाधर भटट	(सुरेश के चाचा)
4.	हेमचन्द्र तिवारी	(नन्दी के पिता)
5.	रोहित	(पगली कमला का बेटा)

स्त्री पात्र

1.	नंदी तिवारी	(नायिका)
2.	कमला	(पगली)
3.	मालदारिन	(पगली की मां)

नन्दी तिवारी

नन्दी तिवारी का चरित्र भारतीय संस्कृति का आदर्शमय प्रतीक एवं त्याग का उदान्त परिचायक है । उसके चरित्र का मूल्यांकन करने पर हम सहज रूप से कह बैठेंगे कि वह चरित्र की धनी, कर्तव्य परायणा, महान तेजस्विनी, अनुपम त्यागमूर्ति एवं मूक प्रणय का उत्सर्ग करने वाली आदर्श पात्र है । नन्दी का चरित्र आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी चरित्र है, जो नियति के कारण अपने पति को प्राप्त नहीं कर पाती ।

आरम्भ में उसका प्रेमी एक सच्चा प्रेमी होता है जो जान लेने के पश्चात् भी कि नंदी के नक्षत्रों में घोर वैधव्य लिखा है फिर भी वह उससे शादी करने को तैयार हो जाता है किन्तु नन्दी के पिता के इन्कार कर देने पर वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है एवं एक जघन्य अपराधी बन जाता है। मालदारिन की पगली पुत्री कमला का वह सर्वनाश करके वह गायब हो जाता है ।

एक कुशल डाक्टर हो सुरेश जैसे जघन्य अपराधी की अवैध सन्तान को सहज रूप से स्वीकार कर लेना क्या हर नारी के वश की बात है? जब सुरेश के चाचा ने ही कहा कि मैं इसे मिशन में छोड़ दूँगा तब नन्दी ने दृढ़ स्वर में कहा - ' नहीं, मैं इसे पालूंगी कक्का' और बिना किसी समर्थन के बच्चे को छाती से लगाकर, भीड़ का घेरा चीरती चली गयी थी ।'[1] इसी अवैध पुत्र को वैधता प्रदान करने के लिए वह जर्जर हो गये सुरेश से विवाह भी करती है । वह उसी रात को विधवा भी हो जाती है । वह अचेत सुरेश से कहती है - ' मैने जीवन में तुम्हीं से प्यार किया था सुरेश ।'[2]

---

1. कैंजा ,शिवानी, पृष्ठ 40
2. वही, वही, वही, 55

शियानी ने नंदी के चरित्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति की भी रक्षा की है । भारतीय नारी एक बार जिस पुरूष को अपने हृदयासन पर बैठा लेती है, फिर भूल कर किसी दूसरे पुरूष की कल्पना स्वप्न में भी नहीं करती । इसमें कोई सन्देह नहीं कि नन्दी के सफल चरित्र-चित्रण एवं उसके मनोगत भावों की अभिव्यक्ति के कारण ही हिन्दी साहित्य जगत ने शिवानी की कला का लोहा माना है ।

' रति विलाप '

' रतिविलाप' शिवानी की अंतरंग अनुसूया का वैधव्य विलाप है । अनुसूया का विवाह एक पागल व्यक्ति विक्रम से परिस्थितियों वश हो जाता है जो एक दिन अनुसूया को गोद में उठाकर छत से कूद जाना चाहता है । विक्रम तो गिरकर मर जाता है किन्तु दर्भाग्य वश श्वसुर के द्वारा अनुसूइया बचा ली जाती है । अनुसूया के श्वसुर अपनी चल-अचल सम्पत्ति बेचकर अनसूया के साथ बम्बई आ जाते हैं और वहीं अपना व्यापार शुरू कर देते हैं। वहीं उनके घर में एक ऐसी नौकरानी की नियुक्ति होती है जिसे पति की हत्या के आरोप में जेल हो चुकी थी और वह वहीं से छूट कर आयी थी। व्यापार के सम्बन्ध में अनुसूया का बाहर आना-जाना होता रहता था । एक दिन जबवह बाहर लौटकर आती है तो उसे यह सूचना मिलती है कि उसके श्वसुर नौकरानी को लेकर नौ-दो-ग्यारह हो गये हैं । इसी बीच उसे अपने श्वसुर की हत्या की भी सूचना प्राप्त होती है। फिर एक दिन अनुसूया को वही नौकरानी किसी अन्य पुरूष और एक बच्चे के साथ दिख जाती है बच्चे की शक्ल को अपने श्वसुर की शक्ल से मेल खाता देखकर वह नौकरानी से कुछ नहीं कह पाती किन्तु शिवानी के समक्ष वह अपने हृदय का व्यथाघट उलट देती है । ' रतिविलाप ' शिवानी का सत्य कथानक पर आधारित संस्मरणात्मक उपन्यास है ।

' रतिविलाप ' उपन्यास के सम्पूर्ण पात्र इस प्रकार हैं -

पुरूष पात्र

1.	विक्रम	(नायक)
2.	करसनदास भोगीदास कपाड़िया	(विक्रम के पिता)
3.	हरसुख	(अनुसूया के मामा)

स्त्री पात्र

1.	अनुसूया	(नायिका)
2.	हीरा	(अनुसूया की नौकरानी)
3.	रबिया बेन	(अनुसूया की प्रतिवेशिनी)
4.	शिवानी	(स्वयं लेखिका)

आदर्श पात्र **अनुसूया**

अनुसूया

अनुसूया चारित्रिक दृष्टि से नैतिकता का मूक पालन करने वाली एक संघर्षशीला एवं आदर्श निष्ठ पात्रा है । पतिविहीन नीरस जीवन में वह अपने सीमित साधनों से सुलभ सुखों में ही सन्तुष्ट है । अनुसूया अपरूप सुन्दरी, साहसी, प्रतिभावान, धैर्यवान व्यवहार कुशल एवं व्यापार-कुशल होने के साथ-साथ एक उदार महिला भी है । ससुर के लाख मना करने के बावजूद भी वह अपनी उदारता का उल्लंघन कर जाती है और पतिहंता हीरा को अपने यहाँ काम के लिए नियुक्त कर लेती है । वह अपने तर्क से ससुर को पराजित भी करती है - ' आपका दृष्टिकोण, मेरे लिए हमेशा उदार रहा, पिताजी, एक बार का अपराधी जीवन - भर अपराधी बना रहा है,

यह मैं नहीं मानती । हीरा ने जो कुछ भी किया, हृदय की कुटिलता से प्रेरित होकर नहीं किया, परिस्थितियाँ ही उसे अपराधिनी बना गईं । आप कहते हैं न, कि अनु, तू मेरे पूर्वजन्म की बेटी है ? तो समझ लीजिए, आपके पूर्वजन्म की एक नहीं दो बेटियाँ है - अनु और हीरा ।'[1]

यही हत्यारित हीरा उसके पितृतुल्य स्नेह का दान करने वाले श्वसुर को न जाने कैसे रूपजाल में फंसा उन्हें लेकर उड़नछू हो जाती है और उनकी भी हत्या कर देती है । एक दिन वही हत्यारिन हीरा उसे एक अन्य पुरूष व बच्चे के साथ एक होटल में दिख जाती है। बच्चे में अपने ससुर अनुकृति देख लेने के कारण वह उसे पकड़वाना भी नहीं चाहती । वह शिवानी से कहती है - ' उसे पकड़वाती कैसे पगली । क्षणभर पहले मेरा नन्हा देवर मुझसे अपनी उन परिचित आँखो के भिक्षापात्र में दया की भीख जो मांग गया था ।'[2]

अनुसूया का यह नैतिक आचरण महज आदर्शो की परिधि को भी लांघ जाता है । वह अपूर्ण आत्मशक्ति सम्पन्न नारी है - जिसमें अमानवीय वृन्त्तियों के प्रति संघर्ष की प्रबल भावना निहित हैं ।

किशुनली [3]

' किशुनली' एक ऐसी धर्मभीरू, पति परायण पत्नी काकी की सहिषणुता एवं निश्छल उदरता की गाथा है जो एक पगली लड़की किशना के प्रति भी अनन्य अनुराग रखती हैं । पागलपन की स्थिति में उसके बार-बार निर्वसना हो जाने पर भी वह उसे वस्त्र देने में किंचित

---

1. रतिवालाप,शिवानी,पृष्ठ 27
2. वही, वही, वही, 36
3. सन् 1975 में प्रकाशित एवं रतिविलाप में संकलित

मोह नहीं करती । यहाँ तक कि उसकी अवैध संतान को पुत्रवत् स्नेह-पूर्वक पालती हैं । इसके लिएउन्हें समाज का कोपभज्ञजन भी बनना पड़ता है । किन्तु वह समाज को दृढ़ता के साथ मुंहतोड़ उत्तर देती हैं । यद्यपि यह पुत्र उसके पति शास्त्रीजी की ही देन होती है जिसका ज्ञान काकी को नहीं हो पाता । लेकिन शास्त्री जी स्वयं अपनी आत्म ग्लानि से क्षुब्ध होकर घरसे पलायन कर जाते हैं और अपने इस कायर दुष्कर्म का परिचय पत्र द्वारा पाठकों को देते हैं ।

किशुनली में पात्रों की संख्या सीमित है -

पुरूष पात्र :

1.	कक्का	(शास्त्री जी)

स्त्री पात्र:

1.	कारवी	(शास्त्री जी की पत्नी)
2.	किशुनली	(एक पागल लड़की)
3.	शिवानी	(स्वयं लेखिका)

कारवी-

किशुनली भी शिवानी का सत्य कथानक पर आधारित एक संस्मरणात्मक.. उपन्यास है । जिसमें एक पगली के प्रति कारवी के वात्सल्य का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है शिवानी ने। इसके साथ ही कारवी की पतिपरायणता भी अपना आदर्श स्थापित करने में पूर्णतया सक्षम है । भारतीय नारी का सर्वस्व उसका पति ही है । उसकी सेवा करना एवं उसके प्रत्येक आदेश का पालन करना ही वह अपना परम कर्त्तव्य व धर्म समझती है । शिवानी की कारवी पूरे शहर में अपने उदार-स्नेही स्वभाव एवं पतिपरायणता के लिए विख्यात थीं । उनके औदार्य के कारण ही कारवी से कभी किसी को ईर्ष्या नहीं हुई ।

अकस्मात् एक दिन एक पगली लड़की उनके आंगन में आकर लेट जाती है तो करवी उसे दुरदुराती नहीं,बल्कि बड़े स्नेह से उसे नहला-धुलाकर नये कपड़े पहनाती हैं । जब शिवानी

ने उनसे पूछा- 'हाय कारवी, क्या तू इसे अब हमेशा यहीं रखेगी ? छलछलाती आँखों से कारवी ने उत्तर दियाथा - ' और क्या; क्या इसका सर्वनाश कराने, राह के चौराहे पर छोड़ दूंगी ? खुद ही जब आकर मेरे आँगन में पसर गई है, तो साफ जाहिर है भगवान ने ही इसे यहाँ भेज दिया है । आज तक जिसने संतान - सुख नहीं दिया, उसने आज स्वयं ही मेरी रीती कोख भर दी । '1

एक अनजान पगली लड़की के प्रति इतना स्निग्ध स्नेह बरसा पाना केवल आदर्शमयी कारवी के ही वश में था । कितना पावन आदर्श था यह कारवी का ।

पगली की अवैध सन्तान को जब कारवी सहर्ष स्वीकार कर लेती हैं तो उनकी बिरादरी उनका हुक्का- पानी ही बंद कर देती है । तब यही अनपढ़ कारवी समाज को लताड़ती हैं -'भाड़ में जाएं तुम्हारे यजमान और तुम्हारा समाज। '2 वह पगली किसना एवं उसकी अवैध सन्तान के लिए समाज से ही बैर मोल नहीं लेती, कक्का भी उनके बैरी बन जाते हैं । पर वह अपने निश्चय पर अडिग रहती हैं । यद्यपि वे पतिपरायणा हैं पर किसना की देखभाल करना भी वे अपना नैतिक कर्त्तव्य समझती हैं ।

कारवी के इन सद्‌विचारों एवं सत्कार्यों के कारण उनका व्यक्तित्व पाठकों के मानस पटल पर अपनी एक गहरी छाप छोड़ता है । आधुनिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में कारवी की समाज के प्रति की गई भर्त्सना एक दिशाबोधक है । यदि समाज चाहे तो कारवी के इस आदर्श को स्वीकार कर अपने नैतिक मूल्यों की संवृद्धि कर सकता है । मातृवत्सला एवं उदार कारवी का यह उज्ज्वल चरित्र निस्संदेह अनुकरणीय है ।

अभिनय [3]

विधवा शांता के जुड़वां पुत्र होते हैं । पति की मृत्यु के पश्चात् उसे गाँव के राजा अपने यहाँ प्रश्रय देते हैं । बच्चों को पढ़ाते-लिखाते हैं/शान्ता का बड़ा बेटा जब डॉक्टर बन जाता है तो वह उसी के साथ शहर आ जाती है । वह बेटे से शादी करने को कहती है तो वह रजनी नाम

---

1. किशुनली रतिविलाप में संकलित शिवानी, पृष्ठ 47
2. वही रतिविलाप में संकलित, शिवानी, पृष्ठ 56
3. सन् 1975 में प्रकाशित एवं रतिविलाप में संकलित

की डॉक्टर लड़की से शादी कर लेता है । कार एक्सीडेंट में बड़े बेटे की मृत्यु हो जाती है । रजनी छोटे बेटे शेखरके करीब आ जाती है । माँ को यह अच्छा नहीं लगता। वह अपनी बहन कांता की सहायता से शेखरकी शादी सोलह वर्ष की जीवन्ती से कर देती है लेकिन वह अपनी नवविवाहिता पत्नी का घूंघट भी नहीं उलट पाता कि रजनी सबके सामने अपने व शेखरके सम्बन्धों को उजागर करदेती है । जीवन्ती उसे छोड़कर चली जाती है । रजनी भी कुछ दिन बाद विदेश चली जाती है, वहीं किसी से शादी कर लेती है शेखर अय्याश तो था ही । अपने अर्दली की पत्नी के साथ जबर्दस्ती करता है अतः उसे सर्विस से भी हाथ धोना पड़ता है । वह कहीं दूर एकान्त में चला जाता है लेकिन रंगीन तबीयत के व्यक्ति को एकान्त रास नहीं आया वह पुनः सर्विस के लिए प्रयास करता है। रिश्वत खोर उससे तीस हजार रूपये मांगते हैं। अन्ततः वह जीवन्ती के पास जाता है । जीवन्ती हीरोइन बन चुकी होती है । वह समझ जाती है । तुरंत तीस हजार का चेक काट देती है। उस दिन के उसके अभिनय में नाम मात्र की भी कृत्रिमता नहीं होती । इस लघु उपन्यास में भी पुरूष के अपौरूष को उजागर करने में शिवानी की लेखनी जरा भी नहीं हिचकिचाई ।

अभिनय' के प्रमुख पात्र इस प्रकार हैं :-

पुरूष पात्र

1.	सत्येन्द्र	(शान्ता का बड़ा पुत्र)
2.	शेखर	(शान्ता का छोटा पुत्र)
3.	राजा साहब	(शान्ता के आश्रयदाता)

स्त्रीपात्र

1.	**शांता**	**(सत्येन्द्र एवं शेखर की मां)**
2.	रजनी पटेल	(सत्येन्द्र की पत्नी)
3.	जीवन्ती	(शेखर की पत्नी)
4.	कान्ता	(शान्ता की छोटी बहन)

आदर्शपात्र- जीवन्ती

जीवन्ती

सौन्दर्य राशि रूपा जीवन्ती शेखर की पति परायण पत्नी है । किन्तु शेखर आकर्षक व्यक्तित्व एवं रंगीन तबीयत का होते हुए भी प्रकृति से दुर्बल है । जैसे ही जीवन्ती को यह पता

चलता है कि शेखर के अवैध सम्बन्ध उसकी भाभी से हैं । वह तड़प-तड़प कर अपनी सास से मायके जाने को कहती है ताकि वे दोनों स्वच्छन्द जीवन जी सकें ।

शेखर की स्वेच्छाचरिता उसकी सर्विस को भी ले डूबती है । विपत्ति के क्षणों में जीवन्ती ही उसकी मदद करती है न कि रजनी पटेल । वह तो उसे अंगूठा दिखा कर विदेश चली जाती है ।

पति से तिरस्कृत होने पर भी बिना किसी अपेक्षा के जीवन्ती ने अपने पति को तीस हजार रूपये देकर भारतीय पत्नी का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, वह स्तुत्य ही है ।

"स्वयंसिद्धा"[1]

जटिल से जटिल समस्याओं का चुटकी में हल निकालने वाली स्वयंसिद्धा परिहासरसिका राधिका के परिहास अभिनय को न समझ सकी । आवेश वश मधु यामिनी में ही पति का गृह त्याग वापस आ गई । फिर पिता, मौसी एवं समाज से तिरस्कृत स्वयं सिद्धा को मद्रास में उसकी सहपाठिनी रेचल ऐंड्रज के यहां ही शरण मिली । यहाँ रहकर ही वह माधवी से स्वयंसिद्धा बनी । एक बार ट्रेन के सफर में उसे अपना धीर-गंभीर पति कौस्तुभ मिला, साथ में ढीलमढाल सौत भी । तब कहीं वह राधिका के परिहास को समझ सकी । चौथ का चंद्रमा जो देख लिया था उसने । फिर प्रायश्चित की आग में झुलसती स्वयंसिद्धा पति की मृत्यु पर उसके द्वार तक गई भी ।

शिवानी ने एक कर्त्तव्यनिष्ठ पिता का भी चित्रण किया है इस लघु उपन्यास में जो अपनी पुत्री के अविवेकी निर्णय पर जीवन भर उसे क्षमा नहीं कर सका ।

उपन्यास के सीमित पात्र इस प्रकार हैं :-

पुरूष पात्र

1. कौस्तुभ (नायक)
2. शिवदत्त (माधवी के पिता)

---

1. 1976 में प्रकाशित ।

स्त्री पात्र

1.	माधवी	(नायिका)
2.	रेचल ऐंड्रूज	(माधवी की सहेली)
3.	मौसी	(माधवी की मौसी)

आदर्श पात्र - शिवदत्त, माधवी ।

शिवदत्तः

शिवदत्त एक कर्त्तव्यनिष्ठ आदर्श पात्र है । वे अपनी पुत्री माधवी की शादी कौस्तुभ नामक सुयोग्य पात्र से करते हैं किंतु दुर्भाग्यवश राधिका नाम की परिहास रसिका मधुयामिनी में ही उन दोनों के बीच आ धमकती है और अपने को कौस्तुभ की प्रेयसी साबितकरती है । माधवी आवेश में रात में ही वहां से भागकर पिता की शरण में आती है । किन्तु शिवदत्त उसकी इस जल्दबाज़ी को अनैतिक मानते हैं एवं घर का दरवाजा उसके लिए सदैव के लिए बंद कर देते हैं । कौस्तुभ जब मृत्यु शय्या पर होता है तभी वे पुत्री माधवी को बिना किसी कुशल-क्षेम के उसके कर्त्तव्य के प्रति एक बार पुनः आगाह कराते हैं -' माधवी, तुमसे कुछ कहने का अब अधिकार नहीं रहा । फिरभी, कर्त्तव्यवश, आज तुम्हें लिखना जरूरी हो गया । मैंने तुम्हारा कन्यादान किया था । तुम्हारे उस श्लोक की आवृत्ति का साक्षी मैं भी हूँ, 'आर्ते आर्ता भविष्यामि सुखदुःखानुगामिनी।' आज कौस्तुभ मृत्युशय्या पर है । इसी से तुम्हारे कर्तव्य से, तुम्हें अवगत कराना अपना ही कर्तव्य समझता हूँ । '[1]

क्षणिक आवेश में पति गृह परित्याग करना भारतीय नारी के संस्कारों में नही है। अतः अंत तक शिवदत्त अपनी एकमात्र लाड़ली को क्षमा नहीं कर पाते । इस प्रकार समाज के सामने वे एक कर्त्तव्यनिष्ठ पिता का आदर्श प्रस्तुत करते हैं ।

माधवीः

उपन्यास की नायिका माधवी को जब यहपता चलता है कि राधिका उसकी सौत नहीं थी, वह वास्तव में परिहास मात्र कर रही थी । वरिष्ठ अफसर बनकर भी माधवी अपने जीवन की

---

1. स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 10

शून्यता को नहीं भर पाती, प्रायश्चित की अग्नि में तपती रहती है और जब उसके पिता का पत्रउसे मिलता है तो वह अविलम्ब पति को देखने जाती है, किन्तु तब तक सब निःशेष हो चुका होता है वह पिता को पत्र लिखती है -

'पिता जी,

आपके आदेश का पालन कर, सप्तपदी के उस पावन श्लोक की महिमा अक्षुण्ण रखकर जा रही हूँ। जानती हूँ मेरा अपराध आपकी दृष्टि में ही नहीं, स्वयं मेरी अपनी दृष्टि में भी अक्षम्य था, किंतु क्या मेरा यह पश्चाताप उस कलुष को स्वयं प्रक्षालित नहीं कर देगा? वहां जाकर कम से कम उस अदालत में तो सिर उठाकर कह ही सकूंगी - अति आर्ता भविष्यामि सुखदुःखानुगामिनी।'[1] इसके बाद माधवी पूरे एक सप्ताह के नींद के इंजेक्शन एक साथ अपने शरीर में प्रविष्ट कर आवेश में हुए अपने उस कलुषित कृत्य का प्रायश्चित कर जाती है ।

यद्यपि माधवी केवल मन से ही पति का वरण कर पाती है । दुर्भाग्य से उसे पति का क्षणिक साहचर्य भी नहीं मिल पाता । फिर भी अपना अक्षत कौमार्य लिए हुए वह सात फेरों की महिमा को अक्षुण्ण कर जाती है । यही भारतीय नारी का आदर्श है । उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् भी भारतीय नारी भारतीय संस्कारों से जुड़ी रहती है , यही संस्कार उनके व्यक्तित्व को महिमामय बनाते हैं ।

2

विषकन्या [2]

अपने इस लघु उपन्यास विषकन्या में शिवानी ने दो जुड़वां बहनोंके, रूप साम्य का ऐसा वर्णन किया है कि कहानी स्वयंमेव रोचक हो जाती है । कामिनी और दामिनी दोनों सुन्दर हैं । कामिनी की एकरूपता दामिनी के लिए इतनी घातक सिद्ध होती है कि वह अपनी बहन के सौभाग्य को भी दुर्भाग्य में बदलने से नहीं चूकती । कामिनी सचमुच विषकन्या ही है । जिसे भी उसका समीप्य मिलता है वही उसके विश्वास के विष में डूब भस्मीभूत हो जाता है ।

---

1. स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 32-33.
2. सन् 1977 में प्रकाशित

पात्र विवरण इस प्रकार है ।

पुरूष पात्र

1. डैडी (दामिनी-कामिनी के डैडी)
2. रोहित (दामिनी के पति)
3. सिन्हा साहब (रोहित के मित्र)
4. जजसाहब
5. जॉन डिसूजा (विमान चालक)
6. भवानी (रोहित का नौकर)

स्त्री पात्रः

1. दामिनी (नायिका)
2. कामिनी (दामिनी की जुड़वां बहन)
3. ऊषा ओबेराय (प्रतिवेशिनी)

आदर्श पात्र- दामिनी

दामिनीः

शिवानी ने दामिनी एवं कामिनी जुड़वा बहनों की शकल में इतना अधिक साम्य दर्शाया है कि उनके मां-बाप ही अपनी लड़कियों को नहीं पहचान पाते कि कौन दामिनी है और कौन कामिनी । दामिनी गऊ सी सीधी एवं बेहद शान्त थी और कामिनी अत्यन्त चुलबुली, शैतान । दामिनी की आड़ में कामिनी खूब शैतानियाँ करती और दामिनी हमेशा उसके अपराध को ओढ़ लेती ।

अपने रूपसाम्य के कारण कामिनी अपनी सगी जुड़वा बहन दामिनी के पति पर भी अपना पासा फेंकने से नहीं चूकती । यहां भी दामिनी उसके अपराध को बड़ी सहजता से स्वीकार कर लेती है । वह कामिनी से कहती है - ' मैं अभी जा रही हूँ । रोहित एक बजे घर आएगा । तब तक मैं मायके पहुंच कर अपने को एडजस्ट कर लूंगी, तुम ससुराल में पैर फैला लेना ।'[1] और वह सचमुच कामिनी को अपने पति का दान कर स्वयं शहीद होने के लिए मायके चली जाती है ।

---

1. विषकन्या, शिवानी, पृष्ठ 43

'रथ्या'[1]

भाषारथी शिवानी का उपन्यास रथ्या ' एक प्रणय पिपासु प्रेयसी के असफल प्रणय की कसक एवं टीस भरी आख्या है जिसे उसकेप्रणयी द्वारा ही वेश्या के घर तक जाने वाली गली का नाम ' रथ्या ' दिया जाता है । अल्हड़ ग्राम्य बाला बसंती रतिमूर्ति मेनका की तरह न जाने कितने विश्वामित्रों का मन अपने कुशल नृत्य और रूप माधुर्य पे विचलित कर बैठती है क्यों कि उसका विवाह उसके मनचाहे मीत छोटे वैद्य विमलानन्द से कुंडली न मिल पाने के कारण नही हो सका था। जब बसंती पर उसके धन और यौवन दोनों का वैभव बसंत अपने शिखर पर होता है , उसी समय वही विमलानन्द फिर उससे आ टकराता है ।

विवाहित विमलानन्द बसन्ती के अर्थ प्राचुर्य और कामवाणों से इतना आबद्ध हो जाता है कि वह अपनी पत्नी और पुत्र को भी त्यागने के लिए तत्पर हो जाता है । किन्तु जब उसे बसन्ती के आकस्मिक विपुल वैभव की उपलब्धि का रहस्य ज्ञात होताहै तो उसे एक क्षण पूर्ण की पूज्या (प्रेयसी) रथ्या नजर आती है । और वह उसे रौंदते हुए अपनी पूज्या (पत्नी) की ओर चल पड़ता है । बेचारी मासूम बसंती का मासूम प्रणय रीता का रीतारह जाता है ।

'रथ्या' का पात्र-विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र

1.	विमलानन्द	छोटे वैद्य(नायक)
2.	परमानन्द	(विमलानन्द के पिता)
3.	विष्णुगुप्ता	(बसंती के पिता)
4.	मुत्यूस्वामी	(सरकस का मैनेजर)

स्त्रीपात्रः

1.	बसन्ती	(नायिका)
2.	जीवन्ती	(बसन्ती की बुआ)
3.	सुरसती	(विमलानन्द की पत्नी)
4.	कृष्णम्मा	(सर्कस के मैनेजर की पत्नी)

आदर्श पात्र : बसन्ती

---

1. सन् 1977 में प्रकाशित

बसन्तीः

शिवानी ने उच्च वर्ग अथवा मध्यम वर्ग के पात्रों को ही आदर्शनिष्ठ बनाने की कोशिश नहीं की, अपितु समाज जिसे हेय व घृणित दृष्टि से देखता है- उस पात्र को भी जीवन्त शक्ति प्रदान कर संघर्ष की भूमिका के लिए प्रस्तुत किया है । वेश्या का जीवनसर्वथा हेय रहा है - जो अपनी भ्रू-भंगिमा पर वैभव का आनन्द लूटना ही व्यसन समझती है-जिसका नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं, जो किसी एक की होकर नहीं रह सकती - वह वेश्या भी किसी की पत्नी बनने की आकांक्षा को लेकर अपना आदर्श प्रतिष्ठापित करने में समर्थ सिद्ध हुई है । बसंती छोटे वैद्य को मन की गहराई से चाहती थी, किन्तु परिस्थितियों ने उसे नर्तकी बना दिया । अपने विपुल वैभव के बीच रहकर भी वह अदने से मास्टर छोटे वैद्य को नहीं भूल पाती । विमलानन्द उसके अभूत-पूर्व परिवर्तन के कारण उसे पहचान नहीं पता-'क्षमा कीजिएगा, मैं मकान भूलकर इधर भटक गया हूँ । इसी बीच एकटक देख रही बसन्ती उसे पहचान चुकी थी । थैले सहित उस भोले परमहंस अतिथि को दोनों हाथों से भीतर खींचकर बसंती ने उसे गुदगुदे गद्दे पर बिठा दिया, फिर उसके दोनों घुटने थाम वह उसके पैरों के पास बैठ गई ।'[1]

पैरों के पास बैठकर ही उसने अपनी पूरी दास्तानसुना दी । एक विदेशी शेख ने उसे अपनी रहम में आने के लिए कहा तो उसने कहा- 'माफ करो, हमारे देश की औरतें आटे-चून की सौत को भी नहीं सह सकतीं । ऐसी ही सौतनबिठानी होती, तो अपने छोटे वैद के रहम में नही चली जाती ।'[2] इतना अनन्य अनुराग था उसे अपने छोटे वैद से । वह अपने छोटे वैद को हृदय से निकालकर हीरे से मढ़ देने वाले शेख के पास नहीं जाना चाहती, उसे तो सिर्फ अपने दीन-हीनछोटे वैद से ही प्यार है ।

नृत्य के पेशे से वह तो लाञ्छित हो ही चुकी है, परवह अपने छोटे वैदको लाञ्छित होते नहीं देख सकती । जब विमलानन्द उससे कहता है- ' तू चल तो सही बसन्ती, गायत्री

---

1. रथ्या, शिवानी, पृष्ठ 25-26
2. रथ्या, शिवानी, पृष्ठ 37

की सौं, मैने तेरा अंगूठा पकड़ तुझे जिन्दगी-भर न खिलायातो मुझे दस जूते मारना।' इस पर वह तनककर कहती है -'छिपकर जूठन खाना सहज है छोटे वैद, भाई-बिरादरी के सामने जूठी पत्तल में खा पाओगे ?------- तुम्हें मेरा अंगूठा पकड़ने की बात बड़ी देर में सूझी छोटे वैद । अब तुम्हारा- हमारा रास्ता अलग-अलग है ।''

उसके इस कथन में उसका आदर्श परिलक्षित होता है कि तुम भले ही मुझे स्वीकार कर लो, मुझे स्वीकार करने पर क्या यह जालिम समाज तुम्हें जीने देगा । वह अपने प्रणयी के सुखमय जीवन की कामना करती है, न कि अपने भविष्य की । वेश्या होकर भी वह एक आदर्श पात्र के रूप में अवतरित होती है ।

'माणिक'[1]

माणिक की नायिका नालिनी मिश्रा औदार्यकी सजीव प्रतिभा जो रत्नाकर की तरह गुणों की खान है । अपने पिता की वसीयत में निहित इच्छा और अपनी उच्छश्रृंखल अनुजा रंभा के सुखद भविष्य हेतु वह आजीवन अविवाहित रहने का दृढ़ संकल्प ले अपने ही हाथों अपनी कोमल भावनओं की भ्रूण हत्या कर पिता की अमूल्य निधि माणिक को सयत्न संजोये हुए सेवानिवृत्ति के पश्चात् शहर. से दूर अपने शांत और एकांत भवन वाटिका ' में अपनी मातृतुल्य हितैषिणी नौकरानी लक्ष्मी के साथ ऐकान्तिक एवं शून्य जीवन जी रही होती है । तभी दीना बाटली वाला समुद्री ज्वार की तरह उसके जीवन में आती है और अपनी वाक् सम्मोहिनी से उसकी इतनी अंतरंग बन बैठती है कि नलिनी का कुछ भी गोपनीय नहीं रह जाता। जहाँ उसके सगे-संबंधियों का प्रवेश तक वर्जित था, दीना बाटली वाला का वहां एकछत्र अधिकार था ।

यही मृदुभाषिणी, भुवनविमोहिनी दीना "विषकुम्भं पयोमुखम्" की भाँति सरल हृदया नलिनी मिश्रा की सारी सम्पत्ति डिग्री कॉलेज बनवाने की प्रवंचना से ऐंठ लेती है और रंभा के पुत्र के लिए संचित बहुमूल्य माणिक के साथ नलिनी मिश्रा के प्राणों का माणिक भी हर लेती है ।

---

1. सन् 1978 में प्रकाशित

जहाँ माणिक गुरू-गाम्भीर्य नलिनी मिश्रा के त्याग और औदार्य की कहानी है, वहीं दीना बाटली वाला जैसी प्रवंचक महिला की अपराध पिटारी भी है । शिवानी ने महिलाओं की अन्तवृर्त्तियों का बहुत ही सूक्ष्म उद्घाटन इस लघु उपन्यास में किया है ।

माणिक के पात्र इस प्रकार हैं:-

पुरूष पात्र

1.	रामसहाय	(नलिनी के पिता के मित्र)
2.	रमेन्द्र	(रम्भा के पति)
3.	बिन्नू	(रम्भा का पुत्र)
4.	मामा जी	(नलिनी के मामा)
5.	राजेश्वर	(रमेन्द्र के पिता)

स्त्री पात्र:

1.	नलिनी मिश्रा	(रम्भा की बड़ी बहन)
2.	रम्भा	(नलिनी की छोटी बहन)
3.	दीना बाटली वाला	(प्रवंचक महिला)
4.	लक्ष्मी	(नलिनी की नौकरानी)

आदर्श पात्र: नलिनी मिश्रा एवं लक्ष्मी

नलिनी मिश्रा-

मानवता की गरिमा को अनुभूत कराने वाली त्यागमयी पात्रा नलिनी मिश्रा ने न केवल अपनी उद्दण्ड छोटी बहन को पथभ्रष्ट होने से बचाया बल्कि उसे जीवन का अस्तित्व भी समझाया और एक सुयोग्य इंजीनियर से उसकी शादी करके अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति भी उसके सुखमय जीवन के लिए समर्पित करने का संकल्प लेती है -' वह एक भी गहना नहीं लेगी,

एक - एक गहना रंभा को पहनाकर विदा करेंगी, जिससे सोने से लदी सोने की उस प्रतिमा को उसका दूल्हा जीवन भर पूजता रहे ।"[1]

नलिनी स्वयं भी सुन्दर थी, स्कूल की इंस्पेक्ट्रेस थी , कई अच्छे रिश्ते भी आये, किन्तु यह सोचकर शादी नहीं की कि मेरे जाने के बाद रंभा का क्या होगा ? उद्दण्ड छोटी बहन के सुखमय भविष्य के लिए वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है एवं अपने सत्य संकल्प से कभी विचलित नहीं होती । निरन्तर कर्त्तव्य की धुरी पर घूमने वाली नलिनी को अन्त में एक महिला प्रवचंक पूरी सम्पत्ति हड़पकर हत्या कर देती है । जिसे अपने जीवन का व्यामोह न छल सका, उसे एक नारी छल ले गई । मानवीय गुणो सें आप्लावित नलिनी का कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व हमारे समक्ष एक आदर्श पात्र के रूप में अवतरित होता है ।

लक्ष्मी -

लक्ष्मी नलिनी मिश्रा की सेवानिष्ठ नौकरानी है । घर में प्रवंचक दीना बाटलीवाला के डेरा डाल लेने पर उसका भतीजा कई बार उसे लिवाने आया - " बुआ, घर चलो, मालकिन की बहुत सेवा कर चुकी हो, अब तुम्हारी बहू तुम्हारी सेवा करेगी । "[2] पर वह अपनी मालकिन को छोड़कर नहीं जाती है । उसे दीना बाटलीवाला पर संदेह हो जाता है - " बेचारी संकोची लक्ष्मी यह जानकर भी कि वह अनोखा मेहमान कभी टलने वाला नही हैं, चुपकर बैठ जाती। करती भी क्या ? नलिनी के एहसानों से वह क्या कभी मुक्त हो सकती थी ? भतीजे को हाई स्कूल पास करवा, नौकरी में लगवाया; शादी की, फिर गौने का पूरा खर्चा उठाया, पक्का मकान बनवा दिया ।"[3] ऐसी उदारमयी स्वामिनी को अपनी अंतिम सांस तक वह छोड़ना नहीं चाहती

---

1. माणिक, शिवानी, पृष्ठ 28.
2. वही, वही,वही, 20.
3. यथोपरि

थी और एक दिन सचमुच उस ठगिनी ने स्वामिनी और सेविका दोनों की ही इहलीला समाप्त कर दी ।

खतरे को सामने देखकर भी लक्ष्मी अपनी सेवाधर्मिता से विचलित नहीं हुई थी । एक सामान्य पात्र होने पर भी उसकी कर्त्तव्यनिष्ठ सेवाधर्मिता उसे गौरवमय बना देती है ।

'गैंडा'[1]

एक खूबसूरत पत्नी (राज) द्वारा अपने बदसूरत पति (बेद) को दिया गया उपनाम है 'गैंडा'। राज सचदेवा जनरल रोहिताश्व की पत्नी सुपर्णा की सहेली है । वह अतीवरूप यौवना है और एक होटलमें रिसेप्शनिस्ट है । जब सुपर्णा और राज वर्षों बाद एक दूसरे से मिलती हैं तो पहले से भी अधिक अंतरंग हो जाती हैं । अंतरंगता इस हद तक बढ़ जाती है कि राज राज न रखकर सुपर्णा के पति की अंकशायिनी बन जाती है । सपुर्णा को जब कालोनी के लोगों से इसका पता चलता है तो वह राज सेनाराज हो जाती है । अपने सम्मोहित रोहित को उसके सम्मोहनपाश से बचाने के लिए तंत्र-मंत्र जैसे सभी प्रयास करती है । तंत्र-मंत्र के प्रभाव से रोहित का लगाव राज से छूट जाता है किन्तु सुपर्णा से भी उसका मन क्षुब्ध हो जाता है ।

इस प्रकार शिवानी ने गैंडा में 'सौत भली नहिं चून की' कहावत को अपने उपन्यास का कथानक बना नारी की एक सार्वकालिक समस्या का नया संस्करण प्रस्तुत किया है ।

गैंडा उपन्यास में भी सीमित पात्र हैं --

पुरूष पात्र

1. रोहिताश्व (मेजर जनरल, सुपर्णा के पति)
2. वेद मेहरा (राज मेहरा के पति)

---

1. सन् 1978 में प्रकाशित

स्त्री पात्र

1.	सुपर्णा दत्ता	(रोहिताश्व की पत्नी)
2.	राजमेहरा	(विद मेहरा की पत्नी, सुपर्णा की सहेली)
	आदर्श पात्र	सुपर्णा

सुपर्णा

सुपर्णा दत्ता एक पतिपरायण पत्नी है एवं समाजपरक मूल्यों के सन्दर्भ में अपना विशिष्ट महत्व रखती हैं । वह प्रतिद्वन्द्विनी सहपाठिनी राज मेहरा को भी अपने यहाँ आश्रय देना अपना नैतिक कर्तव्य समझती हैं । वह कर्तव्यपरायण होकर भी अपने अधिकार सुख के लिए मौन है । विवशता से नहीं अपितु विवाद अथवा स्वार्थपरता के परित्याग के कारण । पति के राज मेहरा पर आसक्त हो जाने पर वह मानसिक - अग्नि में जलती रहती है किन्तु अपनी कुलीन मार्यादाओं को विखण्डित करने का साहस नहीं जुटा पाती ।

वह विनम्र बनकर राजमेहरा का पथ प्रशस्त करना चाहती है जब राज मेहरा अपने कदर्य - कुत्सित पति को गैंडा कहती है तब सुपर्णा उसके इस ओछेपन को लताड़ती है - "छि; शर्म नहीं आती अपने पति को गैंडा कहते ।"[1] पति कैसा भी हो, उसका मान रखना प्रत्येक पत्नी का नैतिक धर्म है । राज सुपर्णा से सर्विस करने के लिए कहती है तो सुपर्णा उसे आगाह कराती है कि रिसेप्शनिस्ट जैसी सर्विस करना कुलीन नारियों की मर्यादा भंग करना है -" माफ कर । मुझे ये रिसेप्शनिस्ट वैसी ही लगती हैं, जैसे कभी फौजी वेषाई हुआ करती थी।[2]

---

1. गैंडा, शिवानी, पृष्ठ 18
2. वही, वही, वही 20.

सुपर्णा की दृष्टि में पत्नी को पति के अंकुश में ही रहना चाहिये । वेद दुर्बल प्रकृति का व्यक्ति है, पत्नी के द्वारा स्वयं को गैंडा कहे जाने पर भी उसे कोई आपत्ति नहीं होती, बल्कि वह उसे बेहद प्यार करता है । पत्नी के कहने पर ही वह उसे स्वछंद छोड़कर अफ्रीका जाना चाहता है तो सुपर्णा उसे पत्नी को भी साथ ले जाने का परामर्श देती है - " उसे साथ ले जाओ वेद । नारी कभी कायर का प्रेम स्वीकार नहीं करती । उसके जीवन में पति के लाड़ - दुलार का जितना महत्त्व है, उसके पैर की ठोकर का भी उतना ही महत्त्व है बेद ।[1]

सुपर्णा पति परायण पत्नी है । पति की सुखदुःखानुगामिनी बनना पत्नी का नैतिक धर्म है । कुलीन परिवार की लड़कियों का रिसेप्शनिस्ट जैसी सर्विस करना उसका समाज एवं नीति परक चिन्तन है । उसके यही मौलिक गुण उसे महिमामय बनाते हैं ।

' कृष्णवेणी [2]

' कृष्णवेणी ' की नायिका वेणी जिसे भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पूर्वाभास हो जाता है और अपनी इस अलौकिक दृष्टि के द्वारा वह आठ वर्ष की अल्प वय में ही अपने मामा की मृत्यु के विषय में जो भविष्यवाणी करती है वह सत्य सिद्ध होती है। फिर तो उसके पिता नटराजन घोड़े की हर रेस पर दांव लगाने के पूर्व वेणी से पूछते हैं और सदैव जीतते हैं। यही कृष्णवेणी जो दूसरों के जीवन में अपने दिव्यदृष्टि दीप द्वारा प्रकाश फैलाती है, उनका मार्ग दर्शन करती है लेकिन स्वयं अपने दीप के नीचे का अंधेरा नहीं दूर कर पाती है। उसके जीवन में अंधेरा ही अंधेरा होता है और यह इतना घना होता है कि शिवानी वेणी को 'कृष्णवेणी' कहकर चित्रांकित करती हैं ।

---

1. गैंडा,शिवानी, पृष्ठ 27.
2. [illegible] 1981

'कृष्णवेणी' के प्रमुख पात्र इस प्रकार हैं :-

पुरूष पात्र

1.	भास्करन	(नायक)
2.	करूणाकरन	(भास्करन के पिता)
3.	नटराजन	(कृष्णवेणी के पिता)
4.	मामा जी	(कृष्णवेणी के मामा)
5.	माधव	(कृष्णवेणी के घर का नौकर)

स्त्री पात्र

1.	कृष्णवेणी	(नायिका)
2.	लक्ष्मी	(कृष्णवेणी की मां)
3.	शिवानी	(स्वयं लेखिका)

आदर्श पात्र **कृष्णवेणी**

कृष्णवेणी

' कृष्णवेणी ' भी शिवानी का सत्यकथानक पर आधारित एक संस्मरणात्मक उपन्यास है, इसकी नायिका कृष्णवेणी शिवानी की अंतरंग है । शिवानी के नारी पात्रों की एक मूलभूत विशेषता यह है कि उनके नारीपात्र जिसे हृदय से चाहते हैं, चाहे वे चहेते कुष्ठ रोगी हों, उन्मादी हों, टी0बी0 के मरीज हों, निर्धन हों अथवा वे भले ही उनके प्रवंचक पति ही क्यों न हों, वे उन्हीं के साथ या उन्हीं की स्मृति में अपना पूरा जीवन काट देती हैं । कृष्णवेणी भी एक ऐसी ही पात्र है, जिसके अपूर्व व्यक्तित्व से आश्रम के सभी छात्र-छात्राएं थर्राते थे । वह आश्रम के ही एक निर्धन छात्र भास्करन जो एक प्रसिद्ध चित्रकार है, को अपना हृदय दे बैठती

है। कालांतर में उसका प्रणयी कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो जाता है फिरभी कृष्णवेणी उसे ही अपना सर्वस्व मानती है । वैभवसम्पन्न होने पर भी वह किसी दूसरे से विवाह नहीं करती बल्कि उसी भास्करन की स्मृति में अपना शेष जीवन निःशेष कर देती है ।

मोहब्बत[1]

'विवर्त्त' की भाँति 'मोहब्बत' भी शिवानी का दुखान्त लघु उपन्यास है । इसमें भी एक विदेशी प्रवंचक रॉबर्ट- डा0 वैदेही बर्वे को अपने छल का शिकार बनाता है । माँ दामिनी के लाख समझाने पर भी डा0 वैदेही अपने गर्भस्थ शिशु को नष्ट नहीं करना चाहती । अन्ततः 29 अगस्त की रात्रि को डॉ0 गोखले की सहायता से नायिका वैदेही एक शिशु को जन्म देती है जिसकी शक्ल अपने पिता से साम्य रखती है। अतः समाज के भय से उसे नौकर अनवर के साथ कहीं दूर भेज दिया जाता है । वैदेही अपने पुत्र के लिए छटपटाती है। वह दूसरी शादी भी नहीं करती । मूर्ति संग्रह का उसे शौक होता है । एक दिन वह मूर्ति विक्रेता इब्राहिम के घर से एक दुर्लभ मूर्ति खरीदकर वापस लौट रही होती है तो देखती है कि चार-पाँच मर्दाना औरतें उसकी कारका दरवाजा रोके खड़ी हैं । वे सब नेग मांगती है कि अचानक उनमें से किसी एक को देखकर उसे भ्रम हो जाता है कि यह तो उसका प्रणयी है । वह समझ जाती है कि यही उसका अदृष्ट पुत्र है । जिसका नाम उसकी बिरादरी ने रखा था 'मोहब्बत' । उसे यह मूर्ति अब तक खरीदी गई सभी मूर्तियों से दिव्य नजर आती है । वह चाहकर भी उसे घर नहीं ले जा सकी क्यों कि उसका 'मोहब्बत' इंपोटेंस्न जो था ।

उपन्यास के पात्र इस प्रकार हैं -

पुरूष पात्र-

1.	डॉ0 राबर्ट लीन	(नायक)
2.	डॉ0 मनोहर बर्वे	(वैदेही के पिता)
3.	अनवर	(वैदेही के घर के नौकर)
4.	वीरसिंह	
5.	इब्राहिम	(मूर्तिविक्रेता)
6.	लक्ष्मण	(रॉबर्ट का बैरा)
7.	टिकी	(राबर्ट का पुत्र)

---

1. सन 1984 में प्रकाशित 'आकाश' में संकलित

स्त्रीपात्र-

1.	डॉ0 वैदेही बर्वे	(नायिका)
2.	दामिनी	(वैदेही कीमां, प्रसिद्ध मंच नर्तकी)
3.	कालिन्दी	(वैदेही की बचपन की मित्र)
4.	मालिनी मौसी	(दामिनी की सहेली)
5.	फिलिस	(रॉबर्ट की पत्नी)
6.	नैनी	(वैदेही की पोषिका धाय)
7.	सिस्टर जोजेफ	(दामिनी की परिचारिकाएं)
8.	सिस्टर रोजमेरी	

आदर्श पात्र- डॉ0 वैदेही बर्वे एवं अनवर

डॉ0 वैदेही बर्वे-

शिवानी के स्त्री पात्रों की नियति है निस्वार्थ प्रणय का बलिदान । कोमलता और दृढ़ता का सुन्दर सामञ्जस्य शिवानी के स्त्री पात्रों में सहजता से देखने को मिल जाता है। ऐसे ही पात्रों की परम्परा में डॉ0 वैदेही बर्वे का स्थान है । डॉ0 वैदेही बर्वे भौतिक सुखों को क्षणभंगुर मानकर स्वाभिमान और आत्मगौरव को ही सर्वोपरि मानती हैं । यदि स्वाभिमान नष्ट हो जाए तो जीवन की उपादेयता ही व्यर्थ है ।

नारी हृदय कितना भावनाशील होता है । जिस पुरूष के प्रति वह सहज रूप से समर्पित हुई - उसी ने उसके हृदय दर्पण को विखण्डित कर दिया, फिर भी भावनाशील वैदेही उस प्रवंचक रॉबर्ट के क्षमा मांगने पर उसे बड़ी सहृदयता से क्षमा-दान कर देती है और उसकी पत्नी फिलिस के लिए अपने प्रणय का मूक बलिदान कर देती है। यदि वह चाहती तो उसके पापा उस निर्लज्ज अपराधी को खींचकर उसके चरणों में डाल सकते थे, किन्तु इस निदारूण लज्जा के लिए वह प्रस्तुत नहीं थी । निश्चय ही डॉ0 वैदेही बर्वे का चरित्र आदर्शमय कहाजाएगा । अपराधी को दण्ड देने की पूर्ण सामर्थ्य होने पर भी उसे इतनी सहजता से क्षमादान करना क्या भारतीय संस्कृति के आदर्श का पोषक नहीं है ?

अनवर-

अनवर एक सच्चा, ईमानदार एवं स्वामिभक्त सेवक है, जो सहज में ही पाठकों की असीम

श्रद्धा प्राप्त करता हुआ आदर्श-पात्र बन गया । उसकी स्वामिभक्ति का एक उदाहरण प्रस्तुत है - ' वह अनवर, जिस पर उन्हें अगाध विश्वास था, अनारकली की ही भांति, यदि जिन्दा किसी दीवार में चिन भी दिया गया, तब भी उसके मुंह से, इस परिवार की दारूण लज्जा का एक शब्द भी बाहर नहीं फूटेगा।' एक सामान्य सा पात्र होने पर भी अपनी सच्ची सेवकाई से वह पाठकों की निगाह में अनायास महिमामय हो उठा है ।

विवर्त्त[1]

दुबली, पतली एवं नाजुक हीरा क्षय रोग से ग्रस्त होने पर भी पुत्र मोह में सात-सात बेटियाँ जन बैठती है । सबसे छोटी पुत्री ललिता विवर्त्त उपन्यास की नायिका है । उसकी सभी बड़ी बहनें तो शादी कर लेती हैं लेकिन ललिता शादी के लिए तत्पर नहीं होती । उसकी कुशाग्रता एवं अनिंद्य सौन्दर्य को देखकर शादी के लिए बहुत से रिश्ते स्वयं आते हैं पर वह शादी नहीं करती । कहती है जब मन संतुष्ट होगा तभी करूंगी ।

संयोग से ललिता की बुआ के यहाँ सुधीर (नायक) उसे देखता है, वह उस पर मुग्ध हो जाता है । वह ललिता के सामने शादी का प्रस्ताव रखता है, वह उससे कुछ ऐसा प्रभावित होती है कि न चाहते हुए भी हाँ कर देती है । चट मंगनी पर ब्याह हो जाता है । सुधीर चार-छह दिन ललिता के साथ रहकर उसे शीघ्र ले जाने का वायदा करके लंदन चला जाता है । कुछ दिन तक उपहार पत्र आते हैं, फिर यह सब बंद हो जाते हैं ।

ललिता उससे मिलने लंदन पहुंचती है । दरवाजा उसकी श्वेतवसना पत्नी फिलिस ही खोलती है । वह अपनी पत्नी से ललिता का परिचय देता है- 'यह मेरी सगी चचेरी बहन है, अपमानित होकर ललिता लंदन का वैभव बिना देखे ही वापस आ जाती है और अपने विवर्त्त के अंधेरे साये में डूब जाती है ।

---

1. सन् 1985 में प्रकाशित

विवर्न्त के पात्रों का विवरण इस प्रकार है :-

पुरूष पात्रः

1.	सुधीर	(नायक)
2.	पंडि जी	(ललिता के पिता)
3.	मामा जी	(ललिता के मामा)
4.	आर्थर	(एक नीग्रो हब्शी)
5.	डैडी	(फिलिस के डैडी)

स्त्री पात्रः

1.	ललिता	(नायिका)
2.	हीरा	(ललिता की मां,शिवानी की ममेरी बहन)
3.	कालिंदी	(ललिता की बुआ)
4.	फिलिस	(सुधीर की पत्नी)

आदर्श पात्र- ललिता

ललिताः

नारी की नियति शिवानी की लेखनी की शाश्वत् अभिव्यक्ति है । शिवानी के नारी पात्र उच्च शिक्षा प्राप्त दृढ़संकल्पी एंवं आत्माभिमानी होने पर भी न जाने क्यों पुरूष की प्रवंचना की शिकारहो जाती हैं । भारतीय संस्कृति के शाश्वत् आदर्श, क्षमाशीलता का परिचय देकर वे पाठकों की दृष्टि में स्वतः महिमा मण्डित हो उठती हैं । विवर्न्त उपन्यास की नायिका ललिता भी क्षमाशीलता की प्रतिमूर्ति है । पति द्वारा छली जाने पर जब शिवानी उसे पूछती हैं कि ऐसे बेहया, अन्यायी को तुमने बिना दण्ड दिए ही छोड़ दिया, यह अपराध क्या उसके अपराध से कुछ कम है ? ललिता ने जो उत्तर दिया, वह शिवानी को भी निरूत्तर कर गया -' क्या करती मौसी? उस अनजान बस्ती (लंदन) में कौन विश्वास करता मेरी बातों का? और फिर मान लीजिए, मैं चीख-चिल्लाकर प्रमाण जुटा, कानूनी बैसाखियाँ टेक अपने पति को पा भी लेती तो वह क्षण, मेरी विजय का मेरे सुख का क्षण होता ?'[1] दण्ड विधान के लिए वह दृढ़ विश्वास के साथ कहती है-' मेरा यह दृढ़ विश्वास है मौसी, दंड हम नहीं, स्वयं विधातादेता है, एक-न-एक दिन इच्छाकृत अपराध का दंड अवश्य मिलता है ।'[2] स्पष्ट है कि ललिता ने उस

---

1. विवर्न्त, शिवानी, पृष्ठ 55

विदेशी प्रवंचक को मुक्तभाव से क्षमा कर दिया था । क्षमाशील के साथ वह संस्कारशीला भी है वह अपने आपको पुनः किसी दूसरे के हाथो में नही अर्पित करना चाहती । जब आर्थर की मां उससे कहती है- बेबी, अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है, अच्छा लड़का देखकर फिर से घर बसा लो ।' इसका उत्तर वह आर्थर की माँ को नहीं देती शिवानी को देती है -' मैं उससे कैसे कहती कि हमारे देश में अब भी ब्राह्मण-दुहिता का अंगूठा, एक ही बार थामा जाता है, उसके संस्कार स्वयं ही उसे दूसरा अंगूठा थामने की अनुमति नहीं देते हैं ।[1]

पीड़ा की प्रतिमूर्ति बेबी ललिता अपनी संस्कारशीलता एवं क्षमाशीलता के कारण पाठकों के समक्ष एक जीवन्त आदर्श के रूप में अवतरित होती है ।

"तीसरा बेटा"[2]

तीसरा बेटा गंगाधर जिसकी अपनी कोई मां नही होती है, उसके लिए हर माँ-माँ होती है । सावित्री ऐसे ही तीसरे बेटे की मां है जिसके अपने दोनों बेटे विदेश में रहते है । माँ उनके लिए जन्म देने वाली जननी से अधिक कुछ नहीं होती है। वे माँ के प्रति अपने उत्तरदायित्वों से विमुख केवल जन्म देने के कारण उसकी सकल सम्पत्ति पर अपना अधिकार चाहते हैं । जब कि तीसरा बेटा (रेलगाड़ी की बर्थ पर मिला हुआ) जिससे तन का नहीं मन का सम्बन्ध होता है, वह मां के अभाव की पूर्ति सावित्री जैसी ममतामयी मूर्ति में पाता है और बिना कुछ चाह के पुत्रवत् मां की सेवा - सुश्रुषा एवं अंतिम संस्कार तक करता है तभी तो शिवानी इस तीसरे बेटे से इतनी प्रभावित होती है कि वे संसार के सभी तीसरे बेटों के लिए एक सामाजिक क्रान्ति का आह्वान अपने इस लघु उपन्यास के माध्यम से कर बैठती हैं ।

उपन्यास के सभी पात्र इस प्रकार हैं -

पुरूष पात्र:

1.	अनिरूद्ध	(सावित्री का बड़ा पुत्र)
2.	अशोक	(सावित्री का छोटा पुत्र)

----

1. वही, वही, पृष्ठ 62
2. सन् 1985 में प्रकाशित एवं 'विवर्न्त' में संकलित

3. गंगाधर (सावित्री का पाया हुआ तीसरा बेटा)
4. अमल (अनिरूद्ध के बेटे)
5. विमल -तदैव
6. दयाराम (सावित्री के पुरोहित)
7. जस्टिस शुक्ला (सावित्री के पति के मित्र)

स्त्री पात्र

1. सावित्री (गंगाधर की पोषिका मां)
2. रंजना काक (सावित्री की बड़ी बहू)
3. सुंदरिया (सावित्री की नौकरानी)
4. सुनयना (अनिरूद्ध की पुत्री)

आदर्श पात्र **सावित्री एवं गंगाधर**

सावित्री

सावित्री में आत्मविश्वास, सहयोग एवं वात्सल्य का समन्वय है । मानवता की गरिमा को अनुभूत करने वाली सावित्री ट्रेन में पड़े असहाय नवजात शिशु को हृदय से लगाने में जरा भी नहीं हिचकती । तिरूपति से लौट रही सावित्री उस शरणागत शिशु को विधाता का प्रसाद मानती है और उसे घर से ले आती है । अपने सगे पुत्रों के आपत्ति करने पर भी कि ' हम तुम्हें किसी हराम की औलाद की मां नहीं बनने देंगे', वह अपना दृढ़ संकल्प दोहराती है - " तुम मुझे जानती हो , मैं जो निश्चय एक बार ले लेती हूँ, उससे पीछे नहीं हटती ।'[1] उसके इस दृढ़ निश्चय से उसके बेटे ही उसके बैरी बन जाते है और दस साल तक प्रवास से आते ही नहीं ।

---

1. तीसरा बेटा (विवर्त में संकलित) ,शिवानी, पृष्ठ 77.

सावित्री ही उनकी मानमनुहारी करके उन्हें बुलाती है फिर भी वे कटाक्ष करने से नहीं चूकते । पता नहीं किसका कलक है ये । अनाथालय में क्यों नही दे देती हो मां। सावित्री भड़क उठतमी है -'वह कलंक नही है,स्वयं तिरूपति ने मुझे उसे पालने का आदेश दिया था, मैं यदि उसे छोड़ आती तो देवी के आदेश की अवहेलना करने के महापाप की भागी होती । मैं उसे पाल रही हूँ, पढ़ा रही हूँ । तुमसे तो उसके लालन-पालन या शिक्षा के लिए कुछ नहीं मांगती । मैं गंगा को वैसे. ही पाल रही हूँ जैसे अपने बेटों को पाला है, उस लालन-पालन में अभाव भी रहता है, अनुशासन भी । विश्वास रखो बेटा, मैंने न तुमसे कभी कुछ मांगा है न मांगूंगी ।'[1] स्वार्थी बेटों ने स्वयं ही कैफियत दे दी -'वहां की जिन्दगी फूलों की सेज नहीं है । तुम्हें नियमित रूप से कुछ भेज पाना न मेरे लिए संभव है, न अशोक के लिए ।'[2] उस परित्यक्त अनाथ के लिए सावित्री की आंखे छलछला आईं । अपने बच्चों को तो उसने कठोर अनुशासन में रखा था किन्तु उस अभागे को उसने फूल की छड़ी से भी कभी नहीं छुआ । उसके प्रति अपने बहू-बेटों की कलुषित भावना को देखकर उसने वसीयत में पूरा मकान और सम्पत्ति का आधा भाग गंगाधर के नाम कर दिया । जस्टिस शुक्ला ने टोका भी कि पहले आप अच्छी तरह सोच लें । सावित्री ने कहा - 'मुझे कुछ नहीं सोचना है । मैं जानती हूँ, मेरे दोनों बेटे अब यहाँ कभी नहीं लौटेंगे । उन्होने वहीं की सिटिजनशिप ले ली है, मकान बनवा लिए हैं, गाड़ियाँ खरीद ली हैं । इसका कौन है ? यह मेरा न्याय है या अन्याय, इसका फैसला मेरे मरने के बाद जो ऊपर की अदालत करेगी, वह कभी मेरी मुश्कें नही बांधेगी ।[3]

अपने सगे बेटों की स्वार्थलिप्सा देखकर वह अपने तीसरे बेटे के लिए वेंकटेश्वर से दुआ मांगती है-'हे वेंकटेश्वर, मेरे इस तीसरे बेटे को सदा अहंकार, लोभ, मोह से मुक्त रखना, वह सच्चा बने, ईमानदार रहे, पैसे को ठीकरा समझे ।-[4] एक दत्तक पुत्र के प्रति सावित्री का वात्सल्य, उसकी कर्त्तव्यपरायणता उसे आदर्शनिष्ठ बनाती है ।

---

1. तीसरा बेटा, शिवानी पृष्ठ 83
2. यथोपरि
3. तीसरा बेटा (विवर्न्त में संकलित), शिवानी, पृष्ठ 97-98
4. वही, वही, पृष्ठ 101

गंगाधरः

सावित्री का तीसरा बेटा (दत्तक पुत्र) गंगाधर विनयशील व्यक्तित्व रहा है। वह बाल्यकाल से ही निर्भीक, चतुर एवं आत्मसंकल्पशील था । सच्चे अर्थो में वही तो सावित्री का श्रवण जैसा सपूत था । जब वह छोटाही था, सावित्री ने एक दिन उससे कहा, तुझे पढ़-लिखकर अपने भाइयों सा बनना है -'नहीं बनना है मुझे उन -सा, उन सा बनूंगातो मैं भी तुम्हे एक दिन वैसे ही छोंड़कर दूर चला जाऊंगा ।'[1] उस नादान बाल हृदय की भावना देखकर सावित्री को यह दत्तक पुत्र अपने सगे बेटो से भी सगा लगा था ।

एक बार एक सब्जी वाले ने उसकी सत्यनिष्ठ एवं सरला मां को कुछ अपशब्द कह दिए । सुनकर गंगा के हाड़ भस्म हो गए और सब्जी वाले की मौत आ गई -' कान खोलकर सुन ले, इस मोहल्ले की हर औरत मेरी मां है।'[2] माँ के लिए वह बुढ़िया जैसा शब्द नहीं सुन-सकता । उसकी इस शेरदिली पर सावित्री ही नहीं पूरे मोहल्ले के लोग उस पर गर्वित हो उठे थे ।

जब सावित्री बीमार पड़ी, उसके बेटों ने आने में असमर्थता व्यक्त करदी किन्तु गंगाधर अपनी सेवा-सुश्रूषा से मां को मौत को मुंह से निकाल लाया था । अपने प्रति उसकी असीम श्रद्धा देखकर सावित्री को भय होने लगा 'चलती बिरिया जो यह पराई सन्तान का अपूर्व सर्वस्वत्यागी प्रेम उसे मिला है, उसे किसी की नजर लन लग जाए । ऐसा न हो भगवान कि उसके बुढ़ापे का यह अविश्वसनीय अवलंब भी कोई उससे छीन ले । '[3]

सावित्री की मृत्यु के पश्चात् जब क्रिया-कर्म का प्रश्न उठताहै तब जस्टिस शुक्ला कहते है, 'गंगा करेगा क्रिया-कर्म, वह सावित्री का दत्तक पुत्र है । फिर गंगा ने वह किया जो शायद सावित्री के सगे बेटे भी न करे पाते ।

सावित्री के बहू-बेंटे जो उसकी घातक बीमारी की सूचना पाकरभी आने में असमर्थ हो गए थे, मृत्यु तो का समाचार पाते ही दसवें दिन हाजिर हो गए । बहुओं ने तो रास्ते में ही गहनों

---

1. वही, वही, पृष्ठ 87.
2. वही , वही, पृष्ठ 94.
3. तीसरा बेटा (विवर्न्त में संकलित),शिवानी पृष्ठ 101

का बंटवारा कर लिया । गंगा के नाम वसीयत देखकर वे एकदम भड़क उठीं- 'अब समझ में आया क्यों उसने अम्मा की ऐसी सेवा की, हम भी अदालत से फैसला कराके रहेंगे ।' सुनकर गंगाधर अभिमन्यु की तरह उस चक्रव्यूह में तनकर खड़ा हो गया -' आप लोगों को अदालत नहीं जाना होगा, मैने पैसे के लिए अम्मा की सेवा नहीं की,, सेवा इसलिए की कि वह मेरी मां थीं और हमेशा रहेंगी । लानत है, तुम्हारी नीयत पर और थू है तुम्हारे टुच्चेपन पर ।'[1] कहकर वह तेजी से तीर-सा बाहर निकल गया । सावित्री का यह तीसरा बेटा जैसे अचानक आया था, वैसे ही चला भी गया । आत्मसंकल्पशील गंगाधर मां के प्रति अपनी श्रद्धा व सेवानिष्ठा के कारण स्वयंमेव आदर्श हो गया ।

'पूतोंवाली'[2]

पार्वती-बेचारी कुत्सित कुरूप होने के कारण पति शिवसागर के स्नेह का स्पर्श तक नहीं पाती, लेकिन पाँच-पाँच बच्चों की मां अवश्य बन जाती है । पति की उपेक्षा सहते-सहते अचानक एक दिन वह मृतप्राय सी हो जाती है । उसका पति घबरा जाता है । वह प्रायश्चित करता है कि उसने अपनी पत्नी के साथ बहुत अन्याय किए । वह उसके हाथ-पैर मलता है । उसके स्नेह का स्पर्श पा सहसा पार्वती के प्राण वापस आ जाते हैं । और इसके बाद दोनों के बीच एक प्रगाढ़ता सी आ जाती है ।

उसके पांचों बेटे पढ़ने-लिखने में होनहार निकले । सब एक से एक बड़े अफसर बने, पर मां की किसी को चिन्ता नहीं होती । सभी अपनी-अपनी जिंदगी की रंगीनियों और समृद्धि में डूब जाते हैं । मां की आँखों की रोशनी चली जाती है फिर भी कोई बेटा मां का इलाज नहीं कराना चाहता । अंततः पार्वती पाँच-पाँच बेटो की मां होकर भी निपूती की निपूती रह जाती है ।

यह सिर्फ पार्वती की ही नहीं, आज की सभी पूतोंवालियों की यह अनवरत समस्या है । जिसका उद्घाटन करना ही इस लघु उपन्यास का लक्ष्य है ।

---

1. तीसरा बेटा, शिवानी , पृष्ठ 109

पात्र विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र-

1.	शिवसागर मिश्र	(पार्वती के पति)
2.	बदरी दुबे	(शिवसागर के मित्र)
3.	चंदर	(बदरी का बेटा)
4.	अरिवल -	
5.	अमित -	(पार्वती के बेटे)
6.	अजय -	
7.	अनिल -	
8.	आदित्य -	
9.	आनन्द	(आदित्य का पुत्र)

स्त्रीपात्र-

1.	पार्वती	(शिवसागर की पत्नी)
2.	स्मिता	(आदित्य की पुत्री)

आदर्श पात्र - पार्वती

पार्वती:-

पार्वती शिवानी के स्त्री पात्रों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है । शिवानी के स्त्री पात्र स्वतः ही आदर्शनिष्ठ,त्यागपरक विचारों से युक्त होते हैं । सर्वस्वत्यागिनी पार्वती बचपनमें विमाता के अत्याचार सहती औरपिता के हाथों निर्ममता से पिटती रही, फिर भी उसने उफ् नहीं की । विवाह के पश्चात् अभागिनी पति का तिरस्कार सहती रही । बिना किसी उपालम्भ के पति द्वारा उपेक्षा को भी उसने स्वीकार कर लिया-' विवाह के बाद दस वर्ष तक उसका पति उससे नहीं बोला फिरभी उस विलक्षण नारी ने अपनी वेदना का पात्र किसी के सामने रिक्त नहीं किया । भले ही न बोले, उसे पांच दर्शनीय पुत्रों की जननी तो बना दिया था उसके उदार जीवन सहचर ने ।'[1] वह कभी मायके जाने का नाम नहीं लेती थी, पति के सीधे मुंह बात न करने पर भी, निरंतर उसके पीछे पीछे छाया सी डोलती रहती थी ।

---

1. पूतोवाली शिवानी, पृष्ठ 14

उसके पाँचों बेटे भी पढ़-लिखकर अच्छे-अच्छे ओहदे पर पहुंच गए, शादी के बाद सभी अपनी रंगीनियों में डूब गए, बिसर गए उस अभागिनी मां को - ' जिसने पूरा यौवन ही इनी-गिनी साड़ियों और मारकीनीं पैटीकोटों में काट दिया और निरन्तर मुस्कुराती अपने पति और पाँच कपूतों के जीवन में आनन्द वृष्टि करती रही, उसका क्या प्रतिदान मिला उसे । '[1] फिर भी धरती सी सहिष्णु पार्वती की भावनाओं में किसी प्रकार का विकार नहीं आने पाया। अनपढ़ पार्वती की दार्शनिकता अपने पति से भी कहीं अधिक गहरी थी ।

पार्वती के इस आदर्शमय बलिदान से भारतीय नारी का मस्तक सदैव उन्नत रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं ।

'बदला'[2]

शिवानी का 'बदला' उपन्यास आधुनिक सामाजिक वर्जनाओं एवं युवा पीढ़ी की उच्छश्रृंखलताओं को लेकर सामाजिक मूल्यों के प्रति एक द्वन्द दर्शाता है । यह आधुनिक युग की विडम्बना ही है कि आज के फैशनपरस्त माँ-बाप भी अपनी सन्तान से पुरानी परम्पराओं और आचार-विचारों को पालने की आशा रखते हैं । आज के युग में सन्तानों से इस आज्ञाकारिता की अपेक्षा रखना कहां की समझदारी है ।

आज का युवा वर्ग अपनी पसन्द का जीवन सहचर चाहता है, भले ही वह अन्तरजातीय हो, आर्थिक स्तर में भी ताल-मेल न हो, पर उनकी मानसिकता में तालमेल अवश्य होता है। म् उपन्यास में रत्ना की पसंद सुदर्शन अरूण को उसके पिता नहीं स्वीकार कर पाते हैं और पुलिस आफीसरहोने के कारण उसकी ईहलीला ही समाप्त कर देते हैं । रत्ना प्रतिशोध की भावना से भड़क उठती है । उसके पिता एक काले, कुरूप, भीमकाय व्यक्ति ब्रज से अपनी अपरूप सुन्दरी रत्ना का विवाह कर देते है । वह भीमकाय व्यक्ति केवल सूरत से ही कुरूप नहीं होता, सीरत से भी होता है । शराबी, जुआरी, दुराचारी पति को रत्ना स्वीकार नहीं कर पाती और वह उसकी

---

1. पूतों वाली शिवानी पृष्ठ 10
2. वही, वही, पृष्ठ 10 सन 1986 में प्रकाशित
3. सन् 1986 में प्रकाशित (पूतों वाली में संकलित)

हत्या करके अपने पिता से 'बदला' ले लेती है । यदि उसके पिता सामाजिक वर्जना की इस रूढ़िवादिता को न स्वीकार करते और चरित्रवान, सुदर्शन अरूण से रत्ना की शादी कर देते तो शायद यह वीभत्स काण्ड न हो पाता ।

उपन्यास के मुख्य पात्र इस प्रकार हैं-

पुरूष पात्र-

1.	त्रिभुवननाथ	(पुलिस आफीसर, रत्ना के पिता)
2.	अरूण	(रत्ना का प्रणयी)
3.	ब्रज कुमार	(रत्ना का पति)
4.	रामस्वामी	(ब्रजकुमार का नौकर)
5.	माधो	(ब्रजकुमार का मित्र)
6.	मामाजी	(ब्रजकुमार के मामा जी)

स्त्री पात्र -

1.	रत्ना	(त्रिभुवन नाथ की पुत्री)
2.	रामेश्वरी	(रत्ना की मां)
3.	मामी जी	(ब्रजकुमार की मामी)

आदर्श पात्र - रामेश्वरी

रामेश्वरी :-

रत्ना की मां रामेश्वरी भी पति की उपेक्षा की शिकार है फिर भी वह पतिपरायणता से कभी विचलित नहीं होती- ' उसको (रामेश्वरी को) कभी किसी ने जोर से बोलते भी नहीं सुना । बेचारी जीवन-भर दबती रही, पहले सास से, फिर पति से । पति के अन्याय को, अपनी नियति की देन मानकर चलने वाली रामेश्वरी ने दुःख सुख में निरन्तर उनकी छायानुगामी बन पूरे तीस वर्ष गुजार दिए थे । न कोई उपालम्भ, न कभी कोई याचना । पति के उस अविवेकी आचरण को उसने माफ कर दिया था,सास की कैसी सेवा करती रही थी वह ।'[1]

---

1. बदला(पूतों वाली में संकलित), शिवानी, पृष्ठ 55

रामेश्वरी विदा में मिली अपनी मां की सीख को आजीवन गांठ बांधकर चलती रही -' इकलौती बहू होना कोई हंसी-खेल नहीं होता बेटी, समझ-बूझकर सब सहती रहना, यही समझ लेना कि बुढ़ापे तक तू सास के लिए डोली से उतरी नवेली ही बनी रहेगी ।'[1] और जीवन सन्ध्या के प्रौढ़ हो जाने पर भी रामेश्वरी नई-नवेली-बहू ही बनी रह गई थी । उसके अपने अस्तित्व का कभी कोई अर्थ ही नहीं रहा । सेवा भावना में निश्चय ही भारतीय संस्कृति की प्रतिमूर्ति थी रामेश्वरी ।

'चल खुसरो घर आपने '[2]

' चल खुसरो घर आपने' की नायिका कुमुद जोशी पिता की मृत्यु के बाद अपने उद्दण्ड भाई लालू, चरित्रहीना अनुजा उमा का पालन-पोषण करती है । एक दिन बहन उमा के वेश्यालय में पकड़े जाने के पश्चात् वह लखनऊ शहर छोड़ देती है और गाँव के जमींदार राजा राजकमलसिंह की उन्मादिनी पत्नी की परिचारिका बन जाती है । वहाँ उसे 1200 रूपये प्रतिमाह मिलते हैं जिन्हें वह अपनी मां को भेज देती है । वह पूरी निष्ठा से मालिकन की सेवा करती है । अचानक राजकमल के बीमार पड़ जाने पर वह उनकी भी निष्काम भाव से सेवा करती है, लेकिन मालकिन मालती को यह अच्छा नहीं लगता/उन्माद में वह कुमुद का गलादबा देती है । अन्ततः 'चल खुसरों घर आपने' सोच वह वापस अपने शहर लौट आती है । इसमें राजकमल एक आदर्श पात्र की भूमिका निभाता है । कुमुद अन्त तक शिक्षित, कर्त्तव्यनिष्ठ होने पर भी नियति की शिकार बनी रहती है ।

पात्र - विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र-

1.	राजा राज कमल सिंह	(जमींदार)
2.	नूरबक्श	(राजा का नौकर)
3.	धरणीधर	(कुंमुद जोशी के पिता)
4.	रघुवर दत्त पाण्डेय	(धरणीधर के सहपाठी मित्र)
5.	माथुर साहब	(डी0आई0जी0)
6.	लालू	(कुमुद का छोटा भाई)

---

1. बदला,शिवानी, पृष्ठ 55
2. सन् 1987 में प्रकाशित

स्त्री पात्र-

1.	कुमुद जोशी	(धरणीधर की पुत्री)
2.	उमा	(कुमुद की छोटी बहन)
3.	गोंदी	(कुमुद की मां)
4.	गौरी	(कुमुद की प्रतिवेशिनी)
5.	मालती	(राजा राजकमल सिंह की पत्नी)
6.	काशी	(
7.	रामपियारी	(राजा की नौकरानियां)
8.	मिस जोसेफ मरियम	(मालती की प्रथम परिचारिका)

आदर्श पात्र- कुमुद जोशी एवं राजा राजकमल सिंह

कुमुद जोशी:

शिवानी के अन्य नारी पात्रों की तरह कुमुद भी एक कर्त्तव्यनिष्ठ पात्र है । पिता की मृत्यु के पश्चात् छोटे भाई लालू एवं छोटी बहन उमा के जनक का भारभी उसे ही वहन करना पड़ता है । वह उनके लिए रात-दिन खटती है फिर भी भाई को गांजा-चरस की लत पड़ जाती है, बहन स्वेच्छाचारिणी हो जाती है । स्वार्थी मां भी इन निठल्ले भाई-बहन पर ही जान छिड़कती थी -' वह अकेली क्या-क्या करें, राशन, नून, तेल, लकड़ी से लेकर, बाबूजी की पेंशन फीस, मकान का किराया, बिजली का बिल । यह भी कैसा अन्याय था अम्मा का । कमाती, खटती, मरती वह थी, सरा लाड़ अम्मा, उमा-लालू पर ही उड़ेलतीं-' उमा की सलवार फट गई है, उमा के लिए कोई अच्छा - सा टॉनिक लेती आना भूख नहीं लगती है उसे, एक ही फुलका खाकर उठ जाती है ।'[1] फिर भी वह हंस कर सबकी फरमाइशें पूरी करती है । ' जब कभी इधर-उधर से पैसा मिलता, कहीं उमा के लिए साड़ी खरीद लाती, कहीं लालू के लिए पैंट का कपड़ा ले आती और कभी मां के लिए साड़ी।'[2] जब मां ने दुराचारिणी उमा के विवाह के लिए उसके सामने कुछरूपयों का प्रस्ताव रखा तो एक क्षण को वह खिन्न हो गई थी -' उसे लगा, बड़ी पुत्री के कौमार्य को बड़ी उदासी से लांघ, वह छोटी के विवाह की योजना, बड़े उत्साह से बनाने लगी थी, यह उसका अन्याय नहीं तो और क्या था । '[3] अरे, यह क्या सोच गई वह, तुरंत अपने को संयत कर सर्वस्वत्यागिनी कुमुद मां से कहती है - ' तुम चिन्ता मत करो अम्मा, मैं

---

1. चल खुसरो घर आपने, शिवानी, पृष्ठ 39
2. वही, वही, पृष्ठ 84
3. वही, वही, पृष्ठ 82

तुम्हें जाते ही अगले महीने की तनख्वा एडवांस लेकर भेज दूंगी ।'[1] और उसने जाते ही पांच हजार रूपये भेज दिए थे ।

औरों के लिए जीने वाला अपनी जिजीवषा को भूल जाता है । दूसरों को भौतिक सुख प्रदान कर स्वयं वीतरागी बन जाता है । सर्वस्वत्यागिनी कुमुद जोशी को भले ही अपने परिवार से कुछ न मिला हो, उसे पाठकों की असीम श्रद्धा अवश्य प्राप्त होती है एवं आदर्श पात्र होने का गौरव भी ।

राजा राजकमल सिंह -

राजा राज कमल सिंह आदर्श परम्पराओं के अस्तित्व को संरक्षित रखते हुए सामने आते हैं । वह भावुक हृदय एवं एक आदर्श पति हैं । उनमें एक पत्नी व्रत निष्ठा और भावुकता का अद्भुत सम्मिश्रण है । शादी से पहले ही उसकी पत्नी को उन्माद के दौरे आते थे । उसका उन्माद खानदानी था इससे वह अनभिज्ञथे । किन्तु सप्तपदी के पावन सूत्रों में बंध जाने के पश्चात् वे अपनी पत्नी व ससुराल वालों से इस छलावे की कोई शिकायत नहीं करते अपितु उसकी स्वयं काफी देखभाल करते हैं, अच्छे से अच्छा इलाज करवाते हैं एवं उसके लिए वेतनभोगी परिचारिकाएं भी रखते हैं । परिचारिका कुमुद जोशी जब उनसे पत्नी को पागलखाने में रखने के लिए कहती है तो वे एक लम्बी सांस खींच कर कहते है -' जिसके साथ जिन्दगी के पूरे बीस वर्षों की मीठी-कड़ुई यादें जुड़ी हैं, आज उसी की बेबसी का फायदा उठा, मैं चाहने परभी अपने से उसे अलग कर, बिजली के झटकों से तड़पाने किसी पागलखाने में नहीं भेज पाया। यह बात नहीं कि मैने कोशिश नहीं की । कितनी ही बार, दूर-दूर तक घूम , एक-एक पागलखाने की खाक छान आया, पर जैसी हालत वहां के मरीजों की देखी, फिर साहस नहीं हुआ । '[2]

उम्र के उस तारूण्य में जब उनके हृदय में प्रणय की तीव्र संवेदनशील भावनाओं का अतल सागर लहरा रहा था, उसी समय अनाथ परिचारिका मरियम स्वयं उनसे प्रणय-निवेदन

----

1. चल खुसरों घर अपने , शिवानी, पृष्ठ 85
2. चल खुसरों घर आपने, शिवानी, पृष्ठ 25

करती है, तब भी उनके मन में कोई विकार नही आने पाता-' मरियम सुन्दर थी, आकर्षक थी। किन्तु सच कहता हूँ कुमुद, उसके प्रति किसी विकार ने, एकपल के लिए भी मेरे हृदय को मलिन नहीं किया।'[1] वे अपनी उन्मादिनी पत्नी के प्रति कर्त्तव्य के नैतिक पक्ष के बलिदान होने के लिए भी प्रस्तुत हैं। राजा राजकमल सिंह वस्तुतः एक आदर्श पात्र के रूप में पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में सफल सिद्ध हुए हैं।

'तिलपात्र'[2]

'तिलपात्र' का नायक अखिलेश्वर शर्मा शिवानी के संवेदना पत्र के प्रत्युत्तर में स्वयं पूरी कहानी लिख जाता है। तिलपात्र की नायिका 'दिलराज' शिवानी की फैन होती है और शादी के तुरंत पश्चात् वह अपने पति अखिलेश्वर के साथ शिवानी से मिलने आती है। अचानक उसकी मृत्यु का समाचार अखबार में पढ़ शिवानी अखिल को औपचारिक संवेदना पत्र भेजती है। प्रायश्चित की अग्निमें झुलसता अखिल पूरा 'तिलपात्र' ही शिवानी को थमा जाता है।

'तिलपात्र' के पात्र इस प्रकार हैं -

पुरूष पात्र-

1.	अखिलेश्वर शर्मा	(नायक)
2.	रघुनाथ	(अखिलेश्वर का अर्दली)

स्त्री पात्र -

1.	दिलराज कौर	(नायिका)
2.	कुसुम	(अखिलेश्वर की बहन)
3.	अम्मा जी	(अखिलेश्वर की मां)
4.	मम्मी	(दिलराज कौर की मां)

---

1. चल खुसरों घर आपने, शिवानी, पृष्ठ 109
2. सन् 1987 में प्रकाशित (चल खुसरों घर आपने में संकलित)

अखिलेश्वर शर्मा -

अखिलेश्वर पहले चारित्रिक दुर्बलताओं से युक्त एक सामान्य पात्र के रूप में सामने आता है । । पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसके चरित्र में अभूतपूर्व परिवर्तन होताहै । अपनी बहन की शादी में वह सब कुछ लुटा देता है । शेष मां के नाम कर देता है । पत्नी को समर्पित तिलांजलि के रूप में अपने कृत्य का प्रायश्चित कर उस अश्रुसिक्त तिलपात्र (आत्मकथ्य) को वह शिवानी को थमा तन-मन-धन से वीतरागी बन हिमाच्छादित अरण्य में विलीन हो जाता है । उसका यह वीतराग उसे आदर्श की पराकाष्ठा पर पहुंचा देता है ।

"पाथेय"[1]

लघु उपन्यास ' पाथेय' भी पुनर्जन्म में शिवानी की आस्था को दर्शाता है । नायक प्रतुल के पिता 16 वर्ष की नायिका तिलोत्तमा से अपने पुत्र का विवाह यह जानते हुए भी करदेते हैं कि उनके पुत्र को टी0बी0 है । वह चाहते है कि प्रतुल के कोई सन्तान हो जाये किन्तु ऐसा नहीं हो पाता ।

प्रतुल की मां पागल होती है , वह पागलखाने में रहती है । मौसी घर में रहती है । जिसका अवैध संबंध प्रतुल के पिता से होता है । दो - तीन महीने पश्चात्- प्रतुल की मृत्यु हो जाती है। श्वसुरके द्वारा ज्यादती किये जाने पर वह खिड़की से कूदकर भागती है । जॉन एण्ड मारिया (दंपति) उसे उसके घर(मायके) पहुंचा देते हैं। तिला के पिता उसे पढ़ाते है, लंदन में डॉक्टरेट दिलाते हैं । भारत वापस आकर वह यूनिवर्सिटी में डॉक्टर हो जाती है ।

वर्षों पश्चात् शिवशंकर नामक एक आगंतुक अपने इंजीनियर पुत्र विनायक के साथ आते हैं । 24 वर्षीय विनायक अपने को प्रतुल बताता है, वह तिला से मिलना चाहता है पर उसके पिता उसकी शादी कर देना चाहते हैं, वह बीमार पड़ जाता है । जब तिलोत्तमा

----

1. सन् 1989 में प्रकाशित (मेरा भाई में संकलित)

को पता चलता है तो वह विनायक से मिलती है । विनायक उसे अपने पूर्वजन्म की पूरी कहानी बताता है और अपने को प्रतुल साबित करता है । अंत में उसकी मृत्यु हो जाती है । तिला उसके नाम का दीया जलाती है । यही स्मरणदीप उसका 'पाथेय' है ।

उपन्यास के सभी पात्रों का विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र-

1.	प्रतुल	﴾नायक﴿
2.	माधव बाबू	﴾प्रतुल के पिता ﴿
3.	निखिल	﴾माधव के मित्र﴿
4.	डॉ0 खजानचंद्र	﴾प्रतुल के डॉक्टर﴿
5.	जॉन	﴾तिलोत्तमा की सहायता करने वाला युवक﴿
6.	विनायक	﴾शिवशंकर का पुत्र﴿
7.	शिवशंकर	﴾विनायक के पिता﴿
8.	राघवन शास्त्री	﴾शिवशंकर के मित्र﴿
9.	मैनेजर राखाल बाबू	﴾माधव बाबू के मैनेजर﴿
10.	बाबा	﴾तिला के पिता ﴿

स्त्री पात्र-

1.	तिलोत्तमा ठाकुर	﴾नायिका﴿
2.	छंदा	﴾तिला की बड़ी बहन ﴿
3.	कमला तर्वे	﴾ छंदा की सहपाठिनी﴿
4.	शिवानी	
5.	सोना मौसी	﴾प्रतुल की मौसी ﴿
6.	हरिबाला	﴾प्रतुल की नौकरानी﴿
7.	मारिया	﴾जॉन की पत्नी﴿
8.	बुआ जी	﴾तिलोत्तमा की बुआ﴿
9.	आनन्दी	﴾ बुआ जी की नौकरानी . ﴿

तिलोत्तमा ठाकुर -

पाथेय भी सत्यकथानक पर आधारित पुनर्जन्म में विश्वास को दर्शाता शिवानी का संस्मरणात्मक उपन्यास है । इसकी नायिका तिलोत्तमा ठाकुर मुक्त हृदय की आदर्श पात्रा

है । बेचारी तिला अपने वैधव्य जीवन में भी विविध विसंगतियों के मध्य नैतिक-मूल्यों के संरक्षण में आत्म सुख का अनुभव करने वाली करूणामयी पात्रा है, जिसे विवाह के पश्चात् भी अक्षत् कौमार्य व्रत धारण करना पड़ा, फिर भी पति के प्रति उसकी असीम निष्ठा है । आत्म-सम्मान को ईमानदारी के साथ निभाने की उसमें उद्भुत शक्ति है। जब उसका रूग्ण पति प्रतुल उससे पूछता है -'क्यों सब कुछ जानकर भी प्राण रहते ही सती बनने का शौक चर्राया तुम्हें? क्या तुम्हारी जबान नहीं थी, मना नहीं करसकीं, तुम, जबाब दो ?'[1] उसने कहा-' क्या जबाब दूं प्रतुल, हमें कुछ भी पता नहीं था, न मां को,न बाबा को, न स्वयं मुझे ।'[2] पति ने पुनः करूण प्रश्न पूछा -' तुम्हें पता होता तो क्या तुम मना कर देती ?'[3] तिला का दृढ़ स्वर उसकी गहनतम सच्ची भावना से पगा, स्वयं ही उसके मुंह से निकल गया - 'नहीं'[4] सोलह वर्ष की मासूम तिला भी शायद अपने पति के हार्दिक एवं अनन्य स्नेह - दुलार से सन्तुष्ट थी । उस समय यदि वह कह देती कि 'हाँ मैं मना करदेती ! तो शायद उसका रूग्ण प्रणयी उसी समय वहीं दम तोड़ देता । उस बेचारे का क्या कसूर ? कसूरवार तो उसका अपना सगा मामा था, जिसने जानते हुए भी यह रिश्ता कराया था ।

विधवा होने के पश्चात् तिलोत्तमा की बुआ ने उससे पुनर्विवाह करने को कहा -' तेरे पति ने तो तेरा स्पर्श भी नहीं किया तिला, तेरा रूप औरयह कच्ची उम्र, कैसेकाटेगी तू? -[5] उसने दृढ़ता पूर्वक कहा - ' नहीं बुआ, मैं कभी विवाह नही करूंगी - मैसे कर सकती थी मैं ? तीन महीनों की स्मृतियों की जो अमूल्य सुवर्ण मुहरों की गागर-छाती से लगाए घूम रही थी - कैसे भूल सकती थी मैं उस शून्य में फैली बाहों का व्यर्थ आह्वान ? ------------'तिला-तिला, एक बार तुझे छाती से लगा लू -'[6]

---

1. पाथेय शिवानी पृष्ठ 118 (मेरा भाई में संकलित)
2. यथोपरि
3. यथोपरि
4. यथोपरि
5. पाथेय (मेरा भाई में संकलित), शिवानी पृष्ठ 129
6. यथोपरि

बुआ जी ऐश्वर्य सम्पन्ना थीं, मृत्यु के पश्चात् उनका सब कुछ तिला को मिला, तब तिला के लिए रिश्तों का तांता सा लग गया, पर तिला अपने निश्चय पर चट्टान की तरह अडिग रही । स्वयं उसी के शब्दों में - ' जब पूर्ण यौबना थी तब किसी ने मेरा हाथ नहीं मांगा, अब विरासत हाथ लगने का समाचार लोगों ने सुना, तो एक से एक रंगीन नौशों ने मुझे घेर लिया, कोइ बत्तीस वर्ष का बिजनेस इक्जीक्यूटिव था कोई चालीस वर्ष का सुदर्शन विधुर कोई विदेश प्रवासी उद्योगपति और कोई विश्वविद्यालय का रजिस्ट्रार । पर मैंने भी दुनिया देखी थी, मैं अपने निश्चय पर अडिग, अटल जमी रही । "[1] उसने चिर कौमार्य-व्रत धारण कर अपने पातिव्रत्य को अक्षुण्ण बनाया ।

तिला का यही मृतपति प्रतुल शिवशंकर के यहाँ जन्मा, उसे सब कुछ याद था । बड़ा हुआ, शादी का प्रश्न आया तो उसने अपने पिता से कहा, मुझे तिला ही चाहिये । उसने तिला का पूरा पता दिया - घर का भी, मायके का भी । विवश होकर पिता तिला को लिवा ले गए । अपनी स्मृति मंजूषा को विनायक ने ज्यों-का-त्यों उसके सामने बिखेर दिया । विनायक भी मृत्युशया पर था, उसने भी प्रतुल जैसा आह्वान किया - "यहां आओ तिला, मेरे पास, मुझे कुछ नहीं दिखा रहा है - तुम्हें एक बार छाती से लगा लूं ।"[2] पचास वर्ष की तिला उसके आह्वान को नकार न सकी - " पचास वर्ष की तिलोत्तमा एक अनजान मृत्युपथ के यात्री को छाती से चिपटाये पड़ी थी ।"[3] और विनायक ने पूर्वजन्म की पत्नी के स्कंधकोटर में मुंह छिपाकर बड़ी सहजता से जीवन से मुक्ति पा ली ।

---

1. पाथेय (मेरा भाई में संकलित), शिवानी, पृष्ठ 129-30.
2. वही, वही, वही, पृष्ठ 139.
3. वही, वही, वही, पृष्ठ 140.

वृद्ध जीर्ण - जर्जर विनायक के पिता के दुःख को तिला सह नहीं पाई । वह उन्हें अपने साथ लिवा लाई - " आपकी बहू हूं मैं, अब आपको मेरे साथ चलना ही होगा ।'[1] वह जहाँ जाती, उन्हें अपने साथ ले जाती । उनका परिचय देती - यह मेरे ससुर हैं । उनकी प्राणमन से सेवा की फिर भी वे उसे जीवन पथ पर अकेली छोड़ गए । मृत्यु के पहले उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति तिला के नाम कर दी थी । किन्तु तिला ने उनके विपत्ति के सखा राघवन शास्त्री के नाम उनके ' फार्म हाउस ' को ट्रान्सफर कर दिया एवं उनके शेयर, बैंक की सम्पत्ति आदि उसी अस्पताल को सौंप दिया - जहाँ उसके विनायक की मृत्यु हुई थी -" उनके शेयर बैंक की सम्पत्ति, यूनिट सबका ट्रस्ट बना उसी हास्पिटल को दे दिया जिस कुटिल रोग ने उनके इकलौते पुत्र के प्राण लिए, शायद उनका वैभव, किसी ऐसे ही अभागी रोगी की यंत्रणा कुछ कम कर सकें।'[2]

पहले वह प्रतुल के मृत्युपथ को आलोकित करने के लिए ' पाथेय प्रदीप ' जलाती रही, अब पिता - पुत्र (शिवशंकर - विनायक) दोनों के मृत्युपथ को अनन्तकाल तक आलोकित करने के लिए वह 'पाथेय प्रदीप' जलाती है ।

वस्तुतः तिला ने अनेक पीड़ाओं के बोझिल दबाव के पश्चात् भी अपने - आप को असन्तुलन की स्थिति से बचाकर कर्त्तव्य - भावना के प्रति सापेक्ष्य रखा । उसने अपने प्रणय को निरीह - सरल हृदय प्रतुल की सेवा एवं स्मृति में सम्पृक्त कर आत्म - सुख का अनुभव किया । तिला एक आदर्शनिष्ठ पात्र के रूप में हृदय में श्रद्धाभाव जगा देने में पूर्णतया सक्षम है, उसका आदर्शवाद स्पृहणीय है ।

---

1. पाथेय (मेरा भाई में संकलित),शिवानी, पृष्ठ 141.

2. वही, वही, वही 142

" कस्तूरीमृग "

पिता की उपेक्षा का शिकार है शिवानी का 'कस्तूरीमृग' उपन्यास । पति की उपेक्षा सहते - सहते मां की तो मृत्यु हो जाती है किन्तु पुत्र सबकुछ झेलकर भी एक बड़ा अफसर बनता है । दूर के रिश्ते में लगने वाली भांजी कनक से वह शादी करना चाहता हैं कि रात - दिन वेश्यालय में रहने वाले कुष्ट रोगी पिता का श्राप आड़े आ जाता है - ' ईश्वर करे तू कभी - भी घर - गृहस्थी का सुख न भोगे ।' जो पिता अपने को पुत्र को जीवन भर स्नेह की एक झलक भी न दे पाया, जीवन भर वेश्याओं की पग-धूल चाटता रहा वही कर्त्तव्यविमुख पिता अपने निर्दोष एवं सुसंस्कृत पुत्र को इतना बड़ा अभिशाप देने का अधिकारी कैसे बन गया ? इसे लेखिका ने स्पष्ट नहीं किया ।

उपन्यास के पात्र इस प्रकार हैं : -

पुरूष पात्र

1.	नन्हें	(नायक)
2.	पिता जी	(नन्हें के पिता)
3.	घोष बाबू	(नन्हें के वेतनभोगी संरक्षक)
4.	रामधनी	(नन्हें का नौकर)
5.	दिनेश	(नन्हें का मित्र)
6.	अवध	(नन्हें के फूफा)
7.	जगतानारायण	(कनक के पिता)
8.	नरबहादुर	(वृंदा का नौकर)

---

1. सन् 1990 में प्रकाशित

स्त्री पात्र

1.	कनक	(नायिका)
2.	अम्मा	(नन्हें की मां)
3.	भगौती	(कनक की मां)
4.	राजेश्वरी	(नन्हें के पिता की रखैल, वेश्या)
5.	वृन्दा	(राजेश्वरी की पुत्री)

आदर्श पात्र : **' नन्हे '**

नन्हें :-

नन्हें एक महत्वाकांक्षी पात्र के रूप में पाठकों के सामने अवतरित होता है जो अपने अनैतिक आचरणों से ग्रस्त पिता के प्रति भी कर्त्तव्यशील होकर अपने आदर्शों को स्थापित करता है । फिर भी अपने पिता के श्राप का ही भागी बनता है ।

उसके पिता जीवन पर्यन्त एक गायिका के चरण दास बने रहे । पत्नी - पुत्र की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी । किन्तु नन्हें महत्त्वाकांक्षी था । घोष बाबू के सहयोग एवं अपने बलबूते पर वह पढ़लिखकर बहुत बड़ा आफीसर बना । एक आफीसर बन जाने के बाद भी वह बचपन से मन में बसी एक सरल हृदया ग्राम बाला से ही विवाह करना चाहता है । जब वह अपना प्रस्ताव कनक के पिता के समक्ष रखता है तो कनक केपिता इसे मजाक समझ लेते हैं । वह गम्भीर होकर कहता है - " मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ मुझे कुछ नहीं चाहिए । एक आदर्श विवाह करना चाहता हूँ मैं ।" [1]. शायद पिता का श्राप आड़े आ गया , कुछ देर रूककर कनक के पिता ने यह कहकर उसका तिरस्कार कर दिया -

---

1. कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 33

"उस पुत्र को कौन अपनी बेटी देगा, जिसका बाप जीवन भर वेश्या के कोठे में पड़ा रहा हो ।' 1. पाप पिता ने किया, फल बेटे को मिला । व्यक्ति को समाज कुछ भी संज्ञा दे - किन्तु व्यक्ति के आदर्श उससे विखण्डित नहीं हो सकते । जगतनारायण को क्या पता कि जिसके बाप ने पूरा जीवन कोठे में बिताया हो - उसके बेटे का हृदय कितना निर्मल, कितना निष्पाप एवं कितना उज्जवल है । अन्यथा आज के युग में एक उच्च आफीसर का एक साधारण ग्राम बाला को स्वयं मांगना क्या कोई साधारण बात है । काश ! इसे जगतनारायण जी समझ पाते !

1. कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 34.

' उपप्रेती ' ।.

xxxxxxxxxxxx

रमा एक सांवले किन्तु आकर्षक नैन - नक्श की लड़की जो अपनी सौतेली मां के अत्याचारों की शिकार होती है फिर भी वह उफ़ नहीं करती । उसकी शादी उमेश (उपप्रेती) नाम के एक इंजीनियर युवक से हो जाती है । उमेश रमा के सांवले हाथ देखकर ही अपनी सर्विस में वापस चला जाता हैं। छोटे भाई दिनेश की शादी में जब वह आता है तो उसकी नजर अपनी पत्नी पर पड़ती है । वह उसके आकर्षक सौन्दर्य से प्रभावित होता है और बारात से वापस लौटकर उसे अपने साथ ले जाने का वायदा करता है । तभी एक आकस्मिकता हो जाती है । वापस आ रही बारात की बस एक खाई में गिर जाती है । संयोगवशात् सिर्फ उमेश और नबवधू नन्दी ही जीवित बचते हैं । उमेश घायल नबवधू की सेवा-सुश्रूषा करता है और ठीक हो जाने पर वह उसे लेकर विदेश चला जाता है । नबवधू नंदी भी उसे अपना पति ही समझती है ।

विदेश में भी रमा की सहेली शिवानी उमेश से टकरा जाती हैं । उमेश उनसे क्षमायाचना करता है - वह पूरी घटना सुनाता है और यह स्वीकार करता है कि जेठ होकर उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था, फिर भी वह इस बात को रमा से न कहने की याचना करता है । इस प्रकार रमा भी जीवन पर्यन्त त्रासदी की शिकार बनी रहती है । इस आकस्मिकता में केवल उमेश को ही बचाकर रमा के जीवन के साथ उपन्यास का अन्त भी सुखान्त बनाया जा सकता था ; किन्तु शायद जो अनुभूति और सोच त्रासदी देती है, उसे से अभिभूत प्रतीत होती हैं शिवानी,।

---

1. सन् 1991 में प्रकाशित

पात्र -विवरण इस प्रकार है :'

पुरूष पात्र

1.	उमेश	(नायक)
2.	डाँ0 खजानचन्द्र	(पहाड़ के डाक्टर)
3.	पाण्डे जी	(रमा के पिता)
4.	नाथशाह	(रमा के पिता के मित्र)
5.	दिनेश	(उमेश के छोटे भाई)
6.	महेश	-तदैव-

स्त्री पात्र

1.	रमा	(नायिका)
2.	नन्दी	(रमा की देवरानी)
3.	शिवानी	(स्वयं लेखिका)

रमा

उपप्रेती भी शिवानी का सत्यकथानक पर आधारित उपन्यास है । उपप्रेती की नायिका पीड़ामयी मूर्ति रमा जो सधवा होकर भी विधवा का जीवन जीने के लिए विवश है । बेचारी मायके में विमाता के अत्याचार सहती रही, फिर भी चेहरे पर कभी शिकन नहीं आई,वरन् अपनी विमाता का गुणगान ही करती रही । वह शिवानी की बचपन की सहेली थी । एक दिन शिवानी ने उसे झिड़ककर कहा - "भाड़ में जाये तेरी कैंजा, दिन रात तो मुझे जूतियों की ठोकर मारती रही है । एक तू है कि उसी के गुणगान गाती है ।"[1] बड़ी मुश्किल से शादी भी हुई

---

1. उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 11.

हुई तो पति ने सांवले हाथ देखकर ही अस्वीकार कर दिया और ससुराल वालों ने उसे बिना वेतन की महरी बना लिया, वह दासी की भाँति खटती रही फिर भी उफ़ नहीं की ।

अपने भाई दिनेश की शादी में उमेश रमा को देखता है वह उसके कृष्णवर्णी सौन्दर्य से प्रभावित होता है और शादी के बाद उसे साथ में ले जाने को कहता है किन्तु वापस लौट रही बारात की बस एक गहरी खाई में गिर जाती है और उमेश लौटकर घर नहीं आता तो भी वह उसकी प्रतीक्षा करती है । फिर पति के बहुत दिनों तक न आने पर गृह त्याग कर नैमिषारण्य में वीतरागिनी बन जीवन यापन करती है । साइबेरिया में उमेश एवं नंदी की भेंट शिवानी से होती है । उन दोनों को एक साथ देख शिवानी उमेश को क्षमा नहीं कर पातीं और मन ही मन चिन्तन करती हैं -" वह विधुर होता और दुर्घटना में मृत छोटे भाईकी स्पर्शकातरा अक्षत कौमार्य सेंतती विधवा को ब्याह लाता तो मेरे हृदय में उसके लिए श्रद्धा होती । पर यह क्या, रमा को जानबूझकर वैधव्य की मरीचिका, में भरमा, उसे इस विलासपूर्ण जीवन को जीने का क्या अधिकार था ? और विधाता का भी यह कैसा न्याय था कि विधवा सधवा बनी सौभाग्य का भरपूर सुख भोग रही थी, और साधवा,वैधव्य का दारूण दुख झेल रही थी - एक थी मुखर, दूसरी मौन ।"[1] शिवानी उमेश को रमा के तापसी जीवन से आगाह करना चाहती हैं कि - " तुम्हारी तथाकथित मृत्यु के उस भ्रामक आघात के बाद उसने कभी अन्न का स्पर्श भी नहीं किया । असंख्य निर्जला एकादशियों के कठोर व्रत ने उसे अपर्णा बनाकर रख दिया है । उस कंकाल के किस अंधेरे कोटर में, कौन सी धड़कन ने उसे अब तक जीवित रखा है ? शायद अब भी अभागिनी तुम्हारे संभावित प्रत्यावर्तन का निष्कंप प्रदीप जलाये बैठी है कि तुम्हारी देह तो मिली नहीं, क्या पता तुम कभी लौट ही आओ ।"[2] लेकिन नंदी को उसके साथ देखकर शिवानी उससे कुछ भी नहीं कह पातीं ।

---

1. उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 21-[illegible]
2. उपप्रेती , शिवानी पृष्ठ 21-22

जिस पति ने उसका (रमा का) स्पर्श तक नहीं किया था, बैराग धारण करने के पश्चात् भी वह उस पति को भूली नहीं थी, इसकी पुष्टि शिवानी जी ने स्वयं की है - "दीमक की खायी जीर्ण पीली पुस्तक ' वेदत्रयी ', एकमुखी रूद्राक्ष की जपमाला और मेरे ही हाथ का बना चमड़े का बटुआ, जो कभी मैंने उसे शाँतिनिकेतन से भेजा था । खोला तो उसमें दो चित्र थे - एक उसकी गुरू मां का, दूसरा उपप्रेती का पीला पड़ गया चित्र । मैं समझ गई कि सुदीर्घ साधना के बीच भी अभागिनी के चित्र से उसके क्षणस्थायी सौभाग्य की स्मृति विलीयमान नहीं हो पायी थी ।"[1].

अंततः इसमें कोई सन्देह नहीं कि सर्वस्वत्यागिनी रमा ने अपने उद्धरणीय,पातिव्रत्य से भारतीय संस्कृति की गरिमा को और भी महिमामंडित बनाया है । उसका चरित्र आदर्श की पराकाष्ठा है

' दो सखियां '[2]

इस लघु उपन्यास में सखुबाई और आनन्दी दो सखियाँ हैं । सखुबाई तेज-तर्रार है, जबकि आनन्दी शाँतिप्रिय । शादी के पश्चात् सखुबाई के पति की बस - दुर्घटना में अकाल मृत्यु को जाने से शीघ्र ही विधवा हो जाती है । वह स्वयं पढ़ती है और अपने पुत्र को भी पढ़ाती है । वह पढ़ लिखकर प्रिंसिपल बन जाती है और बेटा शादी के बाद पराया । क्षुब्ध होकर वह 'आश्रय' नामक अनाथालय में आ जाती है ।

---

1. उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 25
2. सन् 1991 में प्रकाशित (उपप्रेती में संकलित)

आनन्दी के भी दो लड़कियां और एक लड़का होता है । पति की मृत्यु के पश्चात् वह अपने बेटे के साथ रहती है किंतु पुत्रवधू उग्र स्वभाव की होती है । उसकी बड़ी लड़की उसे अपने साथ ले जाती है किन्तु जामाता को यह स्वीकार नहीं होता । अतः वह अपनी छोटी लड़की राधा के यहाँ आ जाती है । यहाँ भी उसका अपमान ही होता है । अंततः उसे भी 'आश्रय' में जाना पड़ता है, जहाँ पुनः दोनों सखियों का मिलन होता है । उपन्यास 'दो सखियाँ' शीर्षक का कोई खास अर्थ तो समझ में नहीं आता । हाँ दोनों सखियों के दुःख-दर्द जरूर एक से हैं जिन्हें शिवानी की लेखनी ने बखूबी उकेर कर रख दिया है ।

उपन्यास में पात्रों का विवरण इस प्रकार है -

पुरूष पात्र

1.	हरदयाल	(आश्रय के सदस्य)
2.	रोहित	(सखुबाई का पुत्र)
3.	श्याम	(आनन्दी का पुत्र)
4.	अतुल	(आनन्दी के बड़े जामाता)
5.	कार्तिकेय	(राधा का बेटा)
6.	सरदार करतार सिंह	(आश्रय का प्लंबर)

स्त्री पात्र

1.	आनन्दी	(बचपन की सहेलियां)
2.	सखुबाई	-तदैव-
3.	रुक्मिणी	(आनन्दी की पुत्रियां)
4.	राधा	-तदैव-

5. सुरेखा (रुक्मिणी की पुत्री)

6. सुधा (हरदयाल की पुत्री)

7. गुरुविन्दर कौर (आश्रय की सदस्या)

शिवानी ने ' दो सखियां ' उपन्यास में आदर्श पात्र की दृष्टि से किसी भी पात्र की सृष्टि नहीं की । अनाथालय ' आश्रय ' में या तो वे रहने आते हैं जो एकदम निःसंग, असहाय होते हैं या वे आते हैं जो अपने ही लोगों द्वारा सताये जाते हैं । सभी अपनी वेदना को इस वेदना - गृह में भुलाने की कोशिश करते हैं । शिवानी ने वर्तमान युग के सन्दर्भ में यह दर्शाने का सफल प्रयास किया है कि अत्यन्त लाड़ - प्यार से पाले गये पुत्र पत्नी के आगोश में आते ही कैसे अपने मां - बाप को भूल जाते हैं । अच्छे-अच्छे अधिकारी पुत्रों के मां - बाप भी अपनी वृद्धावस्था में नितान्त असहाय हो जाते हैं । वे अपने अधिकारी पुत्रों के रहते हुए भी दीन - हीन जीवन जीने को विवश होते हैं । आनन्दी और सखुबाई बचपन की सहेलियां हैं । दोनों ही अपने - अपने पुत्र की उपेक्षा की शिकार हैं । अपनी व्यथा मिटाने के लिए दोनों को ' आश्रय ' की सदस्यता स्वीकार करनी पड़ती है , जिनके पुत्र महीने में बीस-बीस हजार रूपये कमा रहे हों, यह आधुनिक समाज की विडम्बना ही तो है ।

घ. शिवानी के उपन्यासों में नीति और नैतिकता

शिवानी के उपन्यासों मे नैतिकता के प्रति आस्था और आग्रह का प्राचुर्य है । उन्होंने अपनी लेखनी को नीति और नैतिकता की कसौटी पर कसकर ही उपन्यासों का सृजन किया है । उनकी लेखनी नीति और नैतिकता के मार्ग से न तो विचलित हुई है और न ही अर्थोपार्जन के अरण्य में दिग्भ्रमित हुई है । सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्य उनके लिए सर्वोपरि हैं , मौद्रिक (मुद्रा) मूल्य गौण । उनकी नैतिकता ने ही उन्हें नारी के भटकाव, कुण्ठा, संत्रास को लेखन का विषय बनाने के लिए विवश किया है । शायद इसीलिए उनके उपन्यासों में नारी पात्रों की प्रधानता एवं बहुलता है । शिवानी नारी पात्रों को नैतिक बनाकर अनैतिक समाज को नैतिक बनाना ज्यादा सरल एवं सहज समझती हैं, न कि पुरूषों को सीधे नैतिकता का पाठ पढ़ाकर । उनकी दृष्टि में नारी ही पुरूष की नैतिक और अनैतिक क्रियाओं की केन्द्र बिन्दु है । नारी पात्र शिवानी के उपन्यासों की शाश्वत् धरोहर है और इन्हीं नारीचरित्रों के सृष्टि बाहुल्य के कारण शिवानी के उपन्यास छायावादी दुःखन्त गीति की दिशा से आगे नहीं बढ़ पाये । उनके लगभग सभी उपन्यास दुःखान्त हैं । उनके सभी उपन्यासों के कथानाकों में नारी-जीवन की व्यथा के बहुतेरे स्तर खुलते हैं । जिस प्रकार प्रसिद्ध नाटककार जयशंकर प्रसाद के चरित्र लक्ष्य एक पहुंचकर उत्सर्गशील या वैरागी हो जाते हैं ठीक उसी प्रकार शिवानी के नारी पात्र उपलब्धि के अवसरों पर भी अपने निश्छल प्रणय एवं जीवन तक का उत्सर्ग कर देते हैं । यही शिवानी के नारी पात्रों की नीति है, नैतिकता है और नियति है ।

नैतिक आज से दीप्त नारी अनैतिक पुरूषों को भी अपनी नैतिकता के प्रकाश से उज्जवल कर देती है । ' अतिथि ' उपन्यास की नायिका जया अपने अनैतिक पति को अंततः नैतिक बनाकर ही अपनी सार्थकता सिद्ध करती है ।

शिवानी के उपन्यासों में नीति और नैतिकता का अनुशीलन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि हम नीति और नैतिकता पर विचार कर लें ।

नीति -

नीति शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि इस शब्द का निर्माण ' णीञ् प्रापणे ' से हुआ है । यहाँ णीञ् अथवा णी का अर्थ ले जाना, लाने के अर्थ में, आगे बढ़ाना, दिशा देना, नेतृत्व करना एवं व्यवहार कौशल है अर्थात् मनुष्य और समाज को सत्य एवं सही दिशा में आगे ले जाना ।

कुछ विद्वान इसकी व्याख्या नी धातु क्तिन् प्रत्यय निर्देशन, दिग्दर्शन, प्रबन्ध के अर्थ में आचरण, कार्यक्रम, व्यवहारिय कार्यक्रम, योजना , उपाय के अर्थ में करते हैं । वस्तुतः नीति नियमों का वह पुण्य प्रशस्त पंथ है जिस पर चलने वाला व्यक्ति अपनी आसुरीवृत्तियों का दमनकर सदाचरण करता हुआ औचित्यमय बुद्धत्व को प्राप्त कर अपने जीवन को सार्थक, समाजोपयोगी एवं आदर्शमय बना सकता है । इसी सन्दर्भ में आचार्य उमेश शास्त्री का मत है - ' 'विद्रूप, विसंगतिपूर्ण वृत्तियों से हटाकर सद्वृत्तियों अथवा सत्य के पंथ की ओर मानव को प्रशस्त करना नीति का कार्य है । नीति दिशाबोध दायिनी है, सन्मार्गबोधिका है और सोद्देश्य जीवन का विकास करने वाली है । नीति से समन्वित दृष्टि का नाम नैतिक है ।''[1].

---

1. प्रसाद साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन, आचार्य उमेश शास्त्री, पृष्ठ 395.

नीति हंस की तरह उचित-अनुचित का नीर-क्षीर भेदकर व्यक्ति को उचित व्यवहार करने का मात्र सदुपदेश ही नहीं देती, अपितु अपनी नियामक शक्ति द्वारा नीतिसंगत आचरण के लिए प्रेरित एवं कभी-कभी विवश भी करती है । नीति शब्द ' नीक ' अर्थात् अच्छा, उचित, सद् , श्रेष्ठ, उत्तम एवं भले कार्य, व्यवहार एवं आचरण की शिक्षा है, रीति है, एक सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था है । नीति आचरण का शास्त्र है, दर्शन है, विज्ञान है । नीति नैत्यिक व्यवहार की नियमावली है । इस सन्दर्भ में डॉ0 गंगाधर भट्ट का अभिमत है - " नीति का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करनातथा लोक रक्षा कर मर्यादा को प्रतिष्ठापित करना है । "[1]

नीति का साहित्यिक महत्व निर्विवाद है । साहित्य केवल स्वान्तः सुखाय, वाणी - विलास या जन - मन - रंजन की वस्तु नहीं है, वह सामाजिक व्यवस्था के संतुलीकरण हेतु प्रबुद्ध चिन्तकों द्वारा किया जाने वाला गम्भीर प्रयास है । साहित्यिक घटनाओं के पात्र अपनी नीति संगत आचरण द्वारा समाज को तदनुसार व्यवहार करने की परम्परा का बोध कराते हुए समाज को एक दिशा-निर्देश के समाज की संगठनात्मक व्यवस्था के सन्दर्भ में मनमाना आचरण करने पर अंकुश लगाते हैं ।

साहित्य और साहित्यकार की सफलता का आंकलन उसके या उसके सृजित पात्रों द्वारा सामाजिक हितादर्शों की संरक्षा, प्रतिस्थापना या प्राप्ति के लिए साहित्य और साहित्यकार इस कसौटी पर जितना खरा उतरता है , वह उतना ही महान होता है । इस प्रकार जो साहित्य जितना अधिक हितकारी होगा वह उतना ही उच्च कोटि का होगा ; क्योंकि साहित्य की

---

1. संस्कृत काव्यों में नीति - तत्व, डॉ0 गंगाधर भट्ट, पृष्ठ 12.

प्रवृत्ति हितकारी होती है । अतएव हितकारी साहित्य ही साहित्य है और यह हितसाधना केवल नीति के पथ पर चलकर ही की जा सकती है । निष्कर्ष के रूप में नीति और साहित्य एक - दूसरे के अनुपूरक हैं ।

नीति और साहित्य को एक दूसरे का पूरक मानते हुए डॉ0 गंगाधर भट्ट ने भी अपना समर्थन प्रस्तुत किया है - " साहित्य और नीति दोनों ही मानव विकास को लेकर आगे बढ़ते हैं । जिस प्रकार काव्य जीवन से अनुप्राणित होता है उसी प्रकार नीति भी जीवन का आधार है । इससे जीवन के दो अंग परस्पर विरोधी कभी नहीं हो सकते । काव्य को जीवन के लिए मानने वाले विद्वान काव्य में नीति तत्व को आवश्यक तत्व मानते हैं । प्राचीन मनीषियों के आधार पर नीति से समन्वित उत्कृष्ट काव्य चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का कारण होता है ।"[1] इस पूर्णता को सार्थक करते हुए आचार्य उमेश शास्त्री का अभिमत है - ' वही साहित्य सफल साहित्य एवं शाश्वता को लिए हुए होगा - जो मानव को दिशा - निर्देश दे सके - हर युग में उसके विकल प्राणों में चेतना को स्फूर्त कर सकें ।[2]

भारतीय संस्कृति आदर्शपरक एवं धर्ममूलक रही है अतः भारतीय मनीषियों ने मानव जीवन एवं साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में नीति - तत्वों की भी विवेचना की है आचार्यों ने प्रमुख नीति तत्वों को विविधता के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार स्पष्ट किया है :-

---

1. संस्कृत काव्यों में नीति तत्व, डॉ0 गंगाधर भटट, पृष्ठ 22.
2. प्रसाद साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन, आचार्य उमेश शास्त्री, पृष्ठ 401.

नीति तत्व :-

1. चातुर्वर्ण्य 2. आश्रम - व्यवस्था 3. गृहस्थ - धर्म 4. ब्रह्मचर्य 5. ब्राह्मण 6. विश्वबन्धुत्व 7. पवित्रता 8. आशावाद 9. सत्य 10. नारी 11. वैवाहिक जीवन 12. पारिवारिक जीवन में नैतिकता 13. पारस्परिक सहयोग 14. कर्त्तव्य भावना 15. अतिथि सत्कार 16. साधुता 17. वैराग्य 18. परोपकार 19. करूणा 20. सुख - दुःख पूर्ण संसार 21. शील 22. दारिद्रय में धर्म 23. शरणागत वत्सलता का धर्म 24. क्षमा - भावना 25. त्यागशीलता 26. संतोष - भावना 27. धैर्य - साहस 28. कर्म - दृढ़ता 29. विश्वास एवं कृतज्ञता 30. स्वाभिमान 31. शौर्य 32. प्रेम 33. राष्ट्र प्रेम 34. धर्म भावना 35. पातिव्रत्य धर्म 36. शासक 37. प्रतिज्ञा पालन 38. शत्रु व्यवहार 39. आत्म दर्शन आदि ।

यद्यपि नीति - तत्वों की गणना तो असंख्य हो सकती है किन्तु साहित्य में मूल आधार के रूप में आस्था,विश्वास , शुचिता, कर्त्तव्य एवं मानवता आदि नीति तत्वों का समावेश होना अनिवार्य है; क्योंकि ये तत्व मूलतः नैसर्गिक हैं ।

नैतिकता -

आचरण मूलक नीति शब्द की भाववाचक संज्ञा नीति अर्थात् आचरण युक्त नैतिक होता है । व्यवहार आचरण की लोक स्वीकृति ही नैतिकता है । नीतिगत आचरण की परम्परागत लोक स्वीकृति और मर्यादापूर्ण आचरण का स्वीकृत मानदण्ड भी नैतिकता है । लोकहित के उद्देश्य से परम्परागत स्वीकृत मर्यादित मानदण्ड से परिपूर्ण आचरण आदर्श नैतिकता है ।

किंग्सले डेविस के शब्दों में - ' नैतिकता कर्त्तव्य की आन्तरिक भावना है जिसमें उचित - अनुचित का विचार सन्निहित है ।'[1] जिसवर्ट ने भी नैतिकता को अच्छाई - बुराई का अनुभव कराने वाली व्यवस्था बताते हुए लिखा है - " नैतिक नियम - नियमों की वह व्यवस्था है जो कि अच्छे और बुरे कार्यों से संबंधित है तथा जिसका अनुभव अन्तरात्मा द्वारा होता है । "[2] मैकाइवर एवं पेज नैतिक नियम की इस व्यवस्था को आचार - संहिता *(Moral-Code)* मानते हुये कहते हैं - " सही अर्थ में नैतिकता नियमों का वह समूह है जिसमें व्यक्ति का अन्तःकरण सत्य - असत्य का ज्ञान कराता है ।'

" But in the stricter sense the moral code is that body of rules which the individual" conscience " upholds as constituting right or good conduct. "[3]

वस्तुतः नैतिक नियम तार्किक होते हैं एवं नैतिक नियमों का पालन अपनी अन्तरात्मा की पुकार तथा स्वेच्छा से किया जाता है, न कि ईश्वरीय भय के कारण । नैतिकता का सम्बन्ध सामाजिक मूल्यों से भी होता है । सामाजिक सन्दर्भ में नैतिकता को स्पष्ट करते हुए जेम्स . एस. रॉस का कथन है -

" Morality has usually a social reference. The morality of a primitive social group is merely the mores or customs that make for the well being of that

---

1. *K. Davis, Human Society, Page 73.*
2. *Gisbert, op,cit, Page - 183.*
3. *R.M. Machiner & C.H. Page: Society, page - 141.*

group as a whole. As the conception of the social groups is enlarged, the ideal of loyal adherence to the mones may be sublimated to an ideal of the brotherhood of man, but it is still conceived of in terms of its social reference. Without such reference, however, morality is seen to be, at its highest, the steady pursuit of that spritual value we have called goodness, the quest after personal perfection." 1.

रॉस के उपरोक्त कथन से परिलक्षित होता है कि नैतिकता का पक्ष सामाजिक हैं । यह एक समाज सापेक्ष शब्द है । प्रारम्भिक काल में सामाजिक प्रथाए और रूढ़ियां जिनमें समाज का हित निहित होता था, वे नैतिकता की श्रेणी में आती थीं । ज्यों -ज्यों समाज के स्वरूप का विकास एवं विस्तार हुआ, नैतिकता भाईचारे की भावना के सन्दर्भ में समझी जाने लगी । लेकिन रॉस का यह भी मानना है कि नैतिकता का उच्चतम स्वरूप उसके आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से सम्बन्धित है । फिर भी वह प्रत्येक बिन्दु पर नैतिकता को समाज सापेक्ष ही व्याख्यायित करता है ।

जब व्यक्ति सामाजिक परम्पराओं को अपनाते हुए सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति के लिए सचेष्ट एवं निरन्तर प्रयत्नशील रहता है और उसके मन में यह भावना भरी होती है कि उसके द्वारा किये गये कार्य से किसी का अहित न हो । बल्कि अधिकतम समाज का

---

1. *Ground work of educational theory: James S.Ross Page -131.*

कल्याण हो तो यह निर्विषाद रूप से कहा जा सकता है कि उस व्यक्ति में नैतिकता का प्राधान्य है । समग्र रूप से वह व्यक्ति पूर्ण नैतिक है ।

आशय यह कि व्यक्ति का नैतिक धर्म ही समाज को समृद्ध व सुसम्पन्न बनाने का एक अचूक अस्त्र है क्योंकि कोई भी समाज नैतिकता (नैतिक व्यवस्था) के बिना टिक नहीं सकता ।

नैतिकता का सम्बन्ध मनुष्य के चरित्र एंव स्वभाव से भी है । इस तथ्य का समर्थन करते हुए डॉ0 रिकमेन ने भी कहा है - "नैतिकता किसी मनुष्य में उपजाई नहीं जा सकती। यह तो अपने ढंग से तथा अपने समय में विकसित होती है किन्तु भारतीय शिक्षाशास्त्र के अनुसार तो मनुष्य को जन्मजात नैतिक माना गया है । नैतिकता व्यक्ति के स्वभाव का एक अंग मानी गई है ।"[1]

वस्तुतः हम जिस समाज में रहते हैं, उस समाज के हर सदस्य को यह विश्वास रहता है कि नैतिकता का पालन करने से वह कितना प्रगतिशील बन सकता है और इसी समाज में वह कितना प्रशंसनीय बन सकता है । व्यक्ति जब कभी भी नैतिक नियमों की अवहेलना करता है, तब यही समाज उसका परिहास करता है, व्यंग्य करता है एंव सामाजिक रूप से उसका तिरस्कार भी होने लगता है । ऐसे व्यक्ति को समाज में अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान भी खोना पड़ता है । अतः उचित-अनुचित का बोध आत्मा की आवाज के रूप में व्यक्ति को आत्म-बल प्रदान करती है । ताकि वह कठिन से कठिन समस्याओं का डटकर मुकाबला कर सकें एवं अपने नैतिक बल से समाज को जीवंत व सुदृढ़ बना सकें । नैतिकता के पालन का सम्बन्ध चरित्र की दृढ़ता से भी है । D.N. Gaind & R.P. Sharma - के शब्दों में - "Morality means good character, disposition and an -

---

1. डॉ0 रिकमेन

adaptability to the social environment ."[1] महान दार्शनिक हरबर्ट ने तो यहां तक कह दिया कि शिक्षा के समस्त कार्य केवल एक शब्द "नैतिकता" में ही समाहित हो सकते है - " The one and the whole work of education", may be summed up in the concept- Morality".[2]

नैतिक मनुष्य स्वंय अपने पर नियन्त्रण करने में सक्षम होता है । सामाजिक परिप्रेक्ष्य में आत्म चिन्तन द्वारा उचित-अनुचित का स्वंय निर्णय ले वह अपनी अन्तरात्मा की जिस उचित आज्ञा का पालन करता है वही तो नैतिकता है । डॉ0 राधाकृष्णन के अनुसार तो " नैतिकता " का ज्ञान ही वास्तविक शिक्षा है ।"

वस्तुतः नैतिक नियम सत्यता, ईमानदारी और पवित्रता की भावना पर आधारित होते हैं । नैतिकता का सम्बन्ध मनुष्य एवं समाज से होता है जबकि धर्म का सम्बन्ध परलोक एवं ईश्वर से होता है । अस्तु नैतिकता का तात्पर्य उन सभी नियमों से है जो उचित और अनुचित को स्पष्ट करके कर्त्तव्य की भावना को सर्वोच्च स्थान प्रदान कर सकने में पूर्णतया सक्षम होते हैं । नैतिकता का सम्बन्ध लौकिक जगत से होता हैं , पारलौकिक जगत से नहीं । नैतिकता सामाजिक धर्म है । नैतिकता देश-काल और परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होती रहती है क्योंकि विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के कर्तव्य भिन्न-भिन्न हो सकते हैं । किसी भी युग का प्रबुद्ध साहित्यकार भी नैतिकता के अभाव में अपने को कालजयी नहीं बना सकता । हर युग के साहित्यकारों का यही प्रमुख दायित्व रहा है कि वे युगबोध के चित्रण के साथ ही सत्यं, शिंव, सुन्दरं की स्थापना एंव नैतिक मूल्यों का निरूपण अपने साहित्य में कर समाज को नैतिकता की ओर उन्मुख करें ।

उपर्युक्त तथ्य की परिपुष्टि आचार्य उमेश शास्त्री के निम्न कथ्य से हो जाती है - "नैतिकता साहित्य का परम लक्ष्य है और जीवन का शाश्वत सत्य है - इसकी उपेक्षा किसी

---

1. Educational Theon'es and modern Trends:D.N.

भी युग को स्वीकार नहीं हो सकेगी और यही एक ऐसा तत्त्व है जो युग-युगों से व्यक्ति चेतना को सृजनधर्म के हितप्रेरित करता रहा है ।" [1].

साहित्य यदि कल्पनाजन्य यथार्थ की भूमि पर मुकुलित पुष्प है तो नैतिकता उसकी सुरभि है, सुगन्ध है । नैतिकता के आभाव में साहित्य मात्र मनोरंजन का साधन या कल्पना का प्रासाद बनकर रह जाता है ।

साहित्य नैतिकता को पीढ़ी - दर पीढ़ी हस्तान्तरित करने के लिए साहित्यवाहक का कार्य करता है । साहित्य के रथ पर सवार होकर ही नैतिकता अपनी प्रजा का (समाज का) कल्याण करती है, उत्थान एंव विकास करती है । नैतिकता साहित्य में मर्यादाओं की एक ऐसी लक्ष्मण रेखा खीचती है जिसके प्रतिकूल जाने जिसका उल्लंघन करने पर अनीति का रावण सदैव कांपता है । नैतिकता के ही सुदृढ किनारों के बंधकर साहित्य की धारा सतत् प्रवाहमयी बनी रहती है । नैतिकता के बिना साहित्य का सृजन तो किया जा सकता है किन्तु उससाहित्य से व्यक्ति व समाज का कल्याण किया जा सकता हे, यह संदिग्ध है । जब नैतिकता के हिमायल का नैतिक हिम पिघलकर धरणी को उर्वर एंव जन समुदाय का उद्धार करने के लिए साहित्यकार को भागीरथ बनने के लिए उत्प्रेरित करता है, तब उस भगीरथ की अथक तपस्या उसकी सृजनात्मक कल्पना से निस्सृत होती हुई भागीरथी की भांतिं जन-जन के त्राण की तोषक बनती है ।

नैतिकता और आदर्श का बड़ा ही सूक्ष्म समन्वय प्रस्तुत करते हुए नवोदित कवि श्री वेद प्रकाश मिश्र लिखते हैं - "आदर्शो के सांचे में तप, स्वर्ण चरित्र का ढलता है । नैतिकताओं की गोदी में-व्यक्तित्व पुत्र सा पलता है । " आदर्श पिता, नैतिकता माँ, बिन इसके यह संसार नहीं । आदर्श नही तो जीवन में, कुछ तत्त्व नही, कुछ सार नही ।"[2]:

---

1. प्रसाद साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन : आचार्य उमेश शास्त्री : सन्दर्भीय
2. श्वेत श्याम रत्नार, वेद प्रकाश मिश्र, पृष्ठ 56

भारतीय मनीषियों ने सम्पदा से भी अधिक नैतिकता को महत्त्व दिया है एवं साहित्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरं की प्रतिस्थापना की है । डॉ0 गंगाधर भट्ट ने इन तीनों तत्त्वों का बड़ा ही सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है - " भारतीय वाड़्मय में सत्यं, शिंव, सुन्दरं की भावना का सुन्दर समन्वय स्थापित करने का प्रयास सफलता से किया गया है । इन तीनों तत्त्वों को काब्य की उत्तमता के लिए अनिवार्य अंग के रूप में, महामनीषियों द्वारा अंगीकृत किया गया है ---

अनुद्वेगकर . वाक्यं सत्यं प्रियं हितञ्च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते । - गीता 17/15

अर्थात् वही काव्य (साहित्य) उत्तम माना गया है, जो उद्वेगकर न होकर सत्यं, शिवं तथा हितं की पूर्ण प्रतिष्ठापना करता हो । "[1]

नीति और नैतिकता के आशय को समझ लेने के पश्चात् अब हम शिवानी के उपन्यासों में नीति और नैतिकता पर दृष्टिपात करेंगें - जैसा कि पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है कि नैतिकता का सम्बन्ध मानव के नैतिक कृत्यों से है , मूल्यों से है, जबकि नीति का सम्बन्ध मानवता से है । शिवानी के उपन्यासों में उनके पात्र नीति और नैतिकता के निर्वाह में पूर्णतया सफल सिद्ध हुए हैं ।

शिवानी के समग्र साहित्य में भी पग-पग पर नीति एंव नैतिकता के सहज दर्शन होते हैं । आज का साहित्य यथार्थ का पक्षधर है । अतः शिवानी के साहित्य में भी आधुनिक कुंठा, संत्रास, अनस्तित्व एंव चुनौती की बाढ़ सी आ गयी है । यथार्थ वादी होने पर भी शिवानी के पात्र आदर्श एवं नैतिकता से अछूते नहीं रह सके । शिवानी के पात्र अपने प्राणों

---

1. संस्कृत काव्य में नीति तत्व, डा0 गंगाधर भट्ट पृष्ठ 28

का विर्सजन करके भी नैतिक एंव आदर्श मूल्यों का सरंक्षण करते हैं । "मायापुरी" उपन्यास की नायिका "शोभा अपने भावी कल्पनातीत सुखमय जीवन की आहुति देकर नैतिकता एंव आदर्श की मर्यादा को अक्क्षुण्ण रखती है एवं स्वंयं पुनः दर-दर भटकने के लिए विवश हो जातीहै ।

शिवानी ने अपने कई उपन्यासों में यह दर्शाया है कि हिन्दुओं की अपेक्षा क्रिस्चिएन वर्ग कहीं अधिक सह्रदय, सेवानिष्ठ एवं कर्त्तव्यनिष्ठ होते हैं । यह बात काफी हद तक सही भी है । परोपकार एवं सेवा - सुश्रषा में यह वर्ग अग्रगण्य है । "पाथेय" उपन्यास की नायिका तिलोत्तमा अपने ही श्वसुर की हैवानियत से बचकर जब सड़क पर अन्धांधुध भाग रही होती है तो उसी समय वह फरिश्ते जॉन से टकरा जाती है । उसकी बदहवासी देखकर जॉन उसे अपने घर लें आता है । उसकी पत्नी मारिया भी उसे अपने घर में आश्रय देती है एवं ढाढस बंधाती है , फिर वे उसे सही सलामत उसके घर तक पहुचांने जाते हैं । घर पहुंचने ही तिला अपने माता-पिता से लिपट जाती है । अपने माता-पिता से वह उस देवदूत का परिचय कराती , इससे पहले ही वह फरिश्ता तिरोहित हो चुका था - " अपने उस मिलन में, हम अक्षम्य स्वार्थपरता से उस देवतुल्य व्यक्ति को भी भूल बिसर गए, जिसने हमारे उस मिलन को ऐसे सहज बना दिया था । हम तटस्थ हुए तो वह किसी देवदूत सा ही अपना कर्त्तव्य पूरा कर तिरोहित हो गया था । हम उसे धन्यवाद भी नही दे पाए ।"[1].

कर्त्तव्य एंवं मानवता हिन्दी साहित्य के मूलतः नैसर्गिक नीति तत्व माने गए हैं । शिवानी ने अपने इस उपन्यास में जॉन एवं मारिया के नैतिक कर्त्तव्य द्वारा मानवता के मूल आधार के रूप में इन तत्वों का समावेश किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि यही नैतिकता साहित्य का परम लक्ष्य है और जीवन का शाश्वंत् सत्य भी ।

---

1. पाथेय, शिवानी पृष्ठ 127

' रतिविलाप' उपन्यास में अपने उन्मादी पुत्र विक्रम की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् करसनदास भोगीदास कपाड़िया ने अपनी नवयौवना पुत्रवधू को देख प्रायश्चित के रूप में उसकी जो निः स्वार्थ सेवा की उसे देखकर उनकी पुत्रवधू को भी अपने ऊपर ग्लानि हो उठती है । "पिताजी, अपने रहते आपको यह सब करते देखती हूँ तो मुझे बड़ी ग्लानि होती है । " पागल कहीं की", वे मुझे ही डपटकर रख देते। मेरे गुरूदेव कहा करते थे , बेटा, निःस्वार्थ रूप में जन-सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बताए रखना । जनसेवा ही तो है यह ।" मै दुकान जाने लगती, तो वे नाश्ते के डिब्बे में अचार की फांक से लेकर हरी मिर्च, नमक रखना भी नही भूलते हैं । शाम को थकी-मांदी लौटती, तो देखती कि मेरे वार्धक्य जर्जर श्वसुर गैस जला मेरे लिए चाय बना रहे हैं , ओफ ! कैसा कठोर प्रायश्चित कर रहे थे पिताजी ।" [1].

वंश वृद्धि के लिए उन्होंने अपने उन्मादी पुत्र की शादी की थी किन्तु शीघ्र ही उनकी पुत्र वधू वैधव्य से अभिशप्त हो गई । अतः कठोर प्रायश्चित के रूप में उन्होंने अपनी जिस नैतिकता का परिचय दिया वह उनके नैतिक पक्ष को ही उजागर करता है ।

'विवर्त्त ' उपन्यास की नायिका ललिता अपने पति की प्रवंचना का शिकार हो लंदन के एक नीग्रो हब्शी आर्थर से टकरा जाती है । उसकी मुखाकृति को देख ललिता सहम जाती है । वह उसके साथ जाने जाने से घबराती है । किन्तु वह उसके लिए फरिश्ता साबित होता है । आर्थर ललिता को आत्म- हत्या करने से तो बचाता ही है, उसके भारत लौटने की सम्पूर्ण व्यवस्था भी करता है - "आर्थर ने ही मेरे लौटने की सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी थी । मैं चलने लगी, तो आर्थर की मां ने मुझे छाती से चिपटा लिया, कहने लगी, "बच्ची , तुम अभी जवान हो, एक बार ठोकर खा ली तो क्या हुआ ? उठकर खड़ी हो, और फिर सीना तानकर चलती रहो । " [2] आर्थर का यह नैतिक कृत्य उसे पाठकों की निगाह में महान बना देता है।

---

1. रति विलाप शिवानी पृष्ठ 18
2. विवर्न्त्त शिवानी पृष्ठ 62

"कस्तूरीमृग" उपन्यास में नायक 'नन्हें' के पिता वेश्यागामी थे । जीवन भर वे वेश्याओं की पगधूल ही चाटते रहे । पत्नी एंव पुत्र से बिमुख पिता ने परिवार के प्रति अपने दायित्वों का पालन कभी नहीं किया । घोष बाबू ही उनके वेतनभोगी संरक्षक थे । संत्रास एवं कुंठा में जी रही नन्हें की मां भी उसे असहाय छोड़कर चली गई । फिर तो घोष बाबू ने ही नन्हें को पितृवत् पाला-पोषा और पढ़ाया - लिखाया एवं पिता के आचरणों की छाया से भी उसे दूर रखा ।

"सच पूछिए तो अम्मा के जाने के बाद, उस श्रीहीन स्नेहशून्य कोठी में घोष बाबू ही थे मेरे एक मात्र आत्मीय, सखा, सहचर, पथप्रदर्शक - सब कुछ । " [1] घोष बाबू के स्नेह एवं आशीवार्द से ही नन्हें एक दिन बहुत बड़ा आफीसर बन सका । उनके इस नैष्ठिक कर्तव्य को उनकी महानता ही कही जाएगी ।

'मोहब्बत' उपन्यास में डाँ0 मनोहर बर्वे का नौकर अनवर अपने स्वामी के प्रति इतना ईमानदार एंव स्वाभिभक्त होता है कि वह सहज में ही पाठकों की असीम श्रद्धा का पात्र बन जाता है, उसकी नैतिक स्वामिभक्ति का एक उदाहरण प्रस्तुत है - " वह अनवर जिस पर उन्हें अगाध विश्वास था, अनारकली की ही भांति , यदि जिन्दा दीवार में चिन भी दिया गया, तब भी उसके मुंह से, इस परिवार की दारूण लज्जा का एक शब्द भी बाहर नहीं फूटेगा ।" [2]. अनवर की नीतिपरक सच्ची सेवकाई ही उसकी नैतिकता की चरम सीमा है ।

"मायापुरी" उपन्यास की मञ्जरी नैतिकता की प्रतिमूर्ति है । वह शोभा जैसी गरीब लड़की को अपने घर में सच्चे मन से प्रश्रय देकर अपनी नैतिकता का परिचय देती है । राजदूत तिवारी जी के यहां फंग्शन में जाने के लिए मञ्जरी शोभा को अपनी साड़ी पहनने के लिए देती है, किन्तु शोभा संकोचवश अपनी ही साधारण सी साड़ी पहन लेती है । तब वह

---

1. पाथेय) मेरा भाई में संकलित) शिवानी, पृष्ठ 13[illegible]

2. मोहब्बत, शिवानी
पृष्ठ 143

बड़े अपनत्व से उसे फटकारती हुई कहती है - "मैंने तुम्हें तैयार होने को कहा था , खटाऊ वायल का विज्ञापन बनने को नहीं । "[1]. यह मञ्जरी की नैतिकता ही थी कि शोभा उसके घर में रहकर उसके स्तर का ही पहने ओढ़े । बड़ी ना-नुकर के बाद जब शोभा उसकी साड़ी पहन लेती है तो मञ्जरी की आंखों में स्नेह के आंसू छलक आते हैं ।

'मायापुरी ' उपन्यास की नायिका शोभा भी मञ्जरी की भांति नैतिकता की सञ्जुल मूर्ति है । जब राजदूत तिवारी जी सतीश के गौर - प्रशस्त ललाट पर रोली अक्षत से तिलक कर जनार्दन जी से भी वधू का शकुन करने को कहते हैं तो जनार्दन जी घबरा उठते है । शोभा उनकी इस धबराहट को भांप लेती है और तुरन्त अपनी नैतिकता का परिचय देती है - "जनार्दन जी हटप्रभ- से हो उठे । वह क्या देकर भावी पुत्रवधू को टीका करें । घर में तो कोई ऐसी वस्तु नहीं थी । इतने ही में उनके पास खडी शोभा ने उनके हाथ में कुछ रख दिया उन्होंने मुट्ठी खोलकर देखा, हीरे की अगूंठी थी । कितनी समझदार लड़की है शोभा । "[2] शोभा हीरे की अगूंठी के क्षणिक मोह के लिए जनार्दन जी के भवितव्यको संकटापन्न नहीं करना चाहती । उसका यह आदर्श नैतिक-मूल्यों के सम्बल पर अवश्य टिका रहेगा ।

"कृष्णकली" उपन्यास की डॉ0 पैद्रिक एंव पन्ना ने भी अपनी आत्मशक्ति का परिचय देकर अपने नैतिक मूल्यों की स्थापना की है । डॉ0 पैद्रिक एंव पन्ना के नैतिक प्रयासों से ही असदुल्ला एंव पार्वती की नवजात शिशु 'कली' को जीवनदान मिल सका - 'लाओ रोजी, मैं इसे लेकर आज ही चली जाऊँगी, एक ही पल में निश्चय कर पन्ना ने डॉ0 पैद्रिक की गोदी से बच्ची को लेकर एक बार फिर छाती से लगा लिया । कृतज्ञता से विह्वल डॉ0

---

1. मायापुरी, शिवानी
पृष्ठ 43

2. मायापुरी, शिवानी
पृष्ठ 32

पैद्रिक के कण्ठ से एक शब्द भी नहीं फूटा, ऐसी आनन्दाभूति उन्हें पहले कभी नही हुई थी उसी सन्ध्या को वे स्वयं पन्ना को विदा दे आयी थीं ।" [1]. डॉ0 पैद्रिक ने कली को जीवनदान दिया तो पन्ना नेउसके लालन-पोषण में जो त्याग व तपस्यामय जीवन व्यतीत किया, वह उनके नैतिक मूल्यों की सुरक्षा का एक आदर्शमय उदाहरण बन गया ।

'अतिथि' उपन्यास के मंत्री माधव बाबू अपने देश के प्रति पूर्णतया सम्पर्ति हैं । उनके मन की पवित्रता , विचारों की उच्चता एवं दिव्य व्यक्तित्व की भव्यता आदि देव गुण उनके पूर्ण मनुष्यत्व के प्रतीक हैं । देश की दुदर्शा देखकर वे चिन्तातुर हो उठते हैं और त्यागपत्र देकर वे इस दुर्नीत्रि से मुक्ति पा लेना चाहते हैं - " उनका वह देश, जिसके लिये वे कभी अपना सर काट हथेली पर धर सकते थे । जिसके लिए वे अपने परिवार के मोह के बंधन काट, हाथ में लुकाठी लिए फक्कड़ बने निकल पड़े थे। कहां था वह देश ? जनसेवा, ज्ञानार्जन का अर्थ ही था ऐसा ज्ञानार्जन जो केवल अपने खोखले पाण्डित्य को आकर्षक चौखट में मढ़, लोगों को प्रभावित कर सके - और सद्भावना प्रचार केवल वोट बैंक से भुनाने वाला चेक मात्र रह गया था । इसी से उन्हें अपना आदर्श विहीन जीवन उनके लिए ऐसा शव बोझ बन गया था जिसका वहन वे किसी विवश शमशान यात्री की भांति कर रहे थे । वे मन ही मन स्थिर कर चुके थे कि आज राजदरबार की पेशी में वे निर्भिक होकर वही सब कह देगें जो उन्हें बहुत पहले कह देना चाहिये था । घृणा और भय से मुक्त होने पर ही तो आत्मबल का उदय होता है ।' [2].

नीतिपरक दृष्टि में - 'शासक के वैद्य, गुरूऔर मंत्री सदा हां में हां मिलाते हैं तो शीघ्र ही शासन का शरीर, धर्म और कोष क्षीण हो जाता है । 'शरीर धर्म कोषेम्य: क्षिप्र स परिहीयते -' 3. देश के प्रति उनकी स्वस्थ भावनाओं एवं नैष्ठिक कर्त्तव्य नेउन्हें महान घोषित

---

1. कृष्णा (कली) शिवानी पृष्ठ 23-24
2. अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 211-5
3. यथोपरि

कर दिया फिर भी वे अपने आदर्श मूल्यों के लिए ही जीते रहे एंव नैतिकता का निर्वाह करते हुए वे परिवार के होते हुए भी वीतरागी ही बने रहे । उनका व्यक्तित्व सदैव तटस्थ ही रहा । देश के अनाचार एवं परिवार के दुराचार नेउन्हें उनके नैतिक मूल्यों से जरा भी विचलित नही किया ।

'सुरंगमा' उपन्यास में रॉबर्ट एवं उसकी बहन वैरोनिका नैतिक मूल्यों के पर्याय ही दृष्टिगत होते हैं । वे दोनों लक्ष्मी को जीवनदान ही नही देते बल्कि उसकी अवैध सन्तान को वैधता प्रदान करने के लिए नैतिकता की पराकाष्ठा को भी लांघ जाते हैं - "मै तुम्हें वचन देती हूँ। रॉबर्ट संत है । ए सेंट पर्सनीफाइड । तुम्हें वह केवल पति का आरक्षणनही देगा तुम्हारी भावी सन्तान को अपना नाम देगा, लक्ष्मी । पिता का वात्सल्य देगा, नही देगा, पिता की छत्रछाया देगा, यह क्यों नही समझती तुम? मै आत्मीयों को तुम्हारा परिचय रॉबर्ट की पत्नी के रूप में दूगी ।"[1] और सचमुच वैरोनिका परिव्यक्त लक्ष्मी की शादी अपने भाई रॉबर्ट से करके उसे सामाजिक लाञ्छनों से बचाकर अपने नैतिक - मूल्यों की संरक्षा ही करती है ।

'चौदह फेरे' की मदर प्रोविंशियल भी साक्षात् नैतिकता की प्रतिमूर्ति है । अशान्त अहल्या जब उनके कन्वेण्ट में सर्विस करने की इच्छा व्यक्त करती है तब वे तत्काल प्रत्युत्तर देती हैं - "अपनी प्राक्तन छात्रा को अध्यापिका रूप में देखने में उन्हें बड़ी प्रसन्ता होगी, उनके कन्वेण्ट मेंस्थान रिक्त न होने पर भी जब भी वह आएगी स्थान की सृष्टि हो जाएगी ।"[2] अपनी प्राक्तन छात्रा के अशांत मन की शान्ति हेतु स्थान रिक्त न होने पर भी स्थान की सृष्टि करना मदर प्रोविंशियल की नैतिक मानसिकता ही है ।

---

1. सुरगमा, शिवानी पृष्ठ 41

2. चौदह फेरे , शिवानी पृष्ठ 128

चतुर्थ अध्याय

शिवानी की कहानियों में आदर्शवाद एवं नैतिकता का दर्शन

शिवानी की कहानियों में आदर्शवाद एवं नैतिकता का दर्शन

" गुल शोर बबूला आग हवा
और कीचड़ पानी मिट्टी है
हम देख चुके इस दुनिया को
यह धोखे की सी टट्टी है ।

शिवानी के अन्तःकरण में पहाड़ों की उक्त धारणा नेपथ्य की अदृश्य आवाज की तरह स्थिर हो चुकी है । यह नाशवान् संसार अपनी संसरणशील निरन्तरता के कारण ही रूचिकर लगता है और अपनी क्षणभंगुरता के कारण अरूचिकर । इसी रूचि और अरूचि के बीच में जो धारणा बनती है, वह इस नाशवान् संसार को समझने में सहायक होती है, यही समझ हमको आदर्शवाद के सन्निकट खड़ा करती है । सार्वजनीन लोकहित का सम्बल आदर्शवाद की धुरी है । सार्वजनिक हित या लोकैषणा को छोड़कर आदर्शकी परिकल्पना नहीं की जा सकती । बहुजनहिताय की सोच में स्वान्तः सुखाय की धारणा को समाहित कर देने वाले लोग वस्तुतः आदर्शपुंज ही होते हैं ।

उत्कृष्ट कविता और अनिन्द्य सुन्दरी बनिता दोनों ही पदविन्यासमात्रेण हृदयहरण की सामर्थ्य रखती हैं । हृदयहरण की यह सामर्थ्य आकर्षण की परिधि में भले ही वनितामूलक हो किन्तु भावसत्ता में पदविन्यास मात्र से प्रभावित करने वाली कविता अपनी जीवन्तता के कारण लोकोत्तर बन जाती है । आदर्श और आदर्शवाद भी इसी धरती पर लोगों के बीच परिलक्षित होता है । कोई अप्रिय सत्य कथन की तुलना में मौनव्रती आदर्श भले ही न हो किन्तु आदर्शवाद की नींव का पत्थर बनने की चेष्टा अवश्य है । आचरण में विधि और निषेध की जो प्रक्रिया उपलब्ध होती है, वह कहीं न कहीं हमें आदर्श के धरातल पर ही खड़ा करती है । रामवत् आचरण की स्वीकृति और रावणवत् आचरण की अस्वीकृति आदर्शवाद की ही दोनों धुरी हैं । स्वीकार्य की प्रवृत्ति और अस्वीकार्य की निवृत्ति आदर्शवाद में दोनों ही ध्यातव्य हैं ।

शिवानी ने अपनी कहानियों में आदर्श और आदर्शवाद को इसी परिप्रेक्ष्य में अनुस्यूत किया है । कुमायूँ के प्रति शिवानी के मोह को उनके आलोचकों ने यद्यपि दोष माना है फिर भी शिवानी का कथ्य अपने परिवेश की नैतिकता से ओतप्रोत होता है । यह सत्य है कि शिवानी के उपन्यासों और कहानियों में अधिकॉश कथ्य कुमायूँ की माटी से उपजे हैं फिर भी परिवेश चित्रण के सन्दर्भ में शिवानी कुमाऊँनी - बोध को सर्वत्र लिये हुए प्रतीत नहीं होती - " मेरे लिये तो कुमायूँ के प्रत्येक सूर्योदय एवं सूर्यास्त की निजी मौलिकता है । जिस परिवेश में मैं रही हूँ, जहाँ मैने सिंह पर घास के अशक्य बोझ की गरिमा वहन करती सुन्दरी ग्राम्या के अलस पद - विन्यास को दिन - रात देखा है, वहाँ क्या मुझे एक बार भी बासीपन की गंध आई हैं । [1]"

आदर्श और नैतिकता वास्तव में अन्योन्याश्रित हैं । नैतिकता के बिना आदर्श की परिकल्पा निरर्थक है और आदर्श के बिना नैतिकता बिल्कुल लाचार । शिवानी के साहित्य में नैतिकता न तो लाचार है और न आदर्श निरर्थक । वास्तव में नैतिकता में [illegible] ही [illegible] आदर्श की सार्थकता है और आदर्श में ही नैतिकता का आत्म-संबल । शिवानी के उपन्यास, कहानियाँ, संस्मरण, निबन्ध - भूल - भुलैया इसी जीवन्तता से ओत-प्रोत हैं ।

शिवानी आदर्श या नैतिकता का दुराग्रह नहीं करतीं बल्कि एक सहज परिवेश में आदर्श स्वयं जन्म लेता हुआ परिलक्षित होता है । उसकी मोहकता चरित्र के नैतिक निर्वाह में नैतिकता बनती हुई प्रतीत होती है ।

"करिए छिमा" कहानी की नायिका पतिता है किन्तु जैसे तीर्थ स्थान में किया गया पाप - पाप नहीं होता, ऐसे कुमायूँ की पतिता में भी एक अनोखा तेज रहता है, वह पतिता होकर भी पतिता नहीं लगती, अपने प्रेमी को बचाने में अपनी अवैध सन्तान को जल समाधि देने में वह तिलमात्र भी विचलित नहीं होती ।[2]"

1- मेरे प्रिय कहानिॅयाँ, शिवानी, भूमिका, द्वितीय अनुच्छेद ।

2- मेरे प्रिय कहानियाँ, शिवानी, भूमिका , पृष्ठ -9

एक पतिता में सती की नैतिकता का समावेश यद्यपि अविश्वसनीय लगता है किन्तु यह असंभव तो नहीं है । आदर्श और नैतिकता का दर्शन वास्तव में समग्रता में एकात्मता की अनुभूति का दर्शन है । शिवानी की यही धारणा है - " जीवन की समग्रता में कहानी की एकात्मता मेरे लिये सदैव एक अनोखे आनन्द की अनूभूति बन उठती है किन्तु अपने पात्रों की सृष्टि पर, उनमें भय - विस्मय, हर्ष- विषाद सबको अपने अनुभूत जगत से रसप्लावित करने पर भी मुझे कभी संतोष नहीं होता ।[1]

1- अपराधिनी, शिवानी, भूमिका, पृष्ठ. 8.

क. शिवानी की कहानियों में आदर्श चरित्र

कंचन मिट्टी में मिलकर भी अपना मूल्य नहीं खोता । कंचन - कंचन ही रहता है । उसी प्रकार आदर्श चरित्र भी कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थितियों में अनादृत आचरण करने का विवश होते हैं, किन्तु वे आदर्शहीन की संज्ञा नहीं पाते । क्योंकि आदर्शच्युति की ग्लानि - अग्नि में तप कर वे स्वयं को खरा - कंचन सिद्ध करने का प्रयास करते हैं । यही उनकी आदर्शमयता और आदर्शप्रियता है । शिवानी की कहानियों के चरित्र इसी आदर्शप्रियता के वाहक हैं ।

चनुली -

" अपराधिनी" में संकलित कहानी ' जा रे एकाकी" की चनुली सास के कर्कशाघातों और प्रतिवेशिनी के मिथ्यालांछनों के संघर्षण से निकली क्रोध की चिनगारी स्वरूप दरांती से प्रतिवेशिनी का गला काट देती है। जब अकारण कोई किसी को परेशान करता है, तब कभी - न - कभी क्रोध तो आ ही जाता है । इसी क्रोध के आवश में आकर शांतिप्रिय चनुली से यह दुष्कृत्य हो गया । मुकदमें के दौरान उसका यह कहना - ' नहीं साब, मैनें खून नहीं किया, वह तो मुझसे हो गया ' । यह उसके हृदय की निष्कलुषता ही कही जायेगी । इन परिस्थितियों में उसका हल्का सा झूठ उसे जेल की दृढ़ लौह-शलाकाओं में मुक्ति दिला सकता था, किन्तु उसने झूठ का प्रश्रय न ले सद्भाषण से असह्य जेल यातना सहज स्वीकार कर लिया और वहाँ भी अपने सद्व्यवहार एवं कार्य कुशलता से सबको प्रभावित कर एक सौ अस्सी बंदिनियों की गाइड अर्थात् आदर्श बंदिनी बनी -- ' एक अकेली चनुली ही उस कारागार की , ज्योतिपुंज बन, आलोकित कर सकती थी । वह अब जेल की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी ही नहीं, अपने अनुकरणीय आचरण से , अपूर्व लोकप्रियता भी प्राप्त कर चुकी थी । नीली साड़ी और गाइडिंग का बिल्ला लगाये ,मुड़े कफ की कुरती में चनुली किसी द्युतिमान तारिका से कुछ कम आकर्षक नहीं लगती थी ।[1]"

1- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ 36-37

मिसेज बेदी -

' मौसी' कहानी की आदर्श चरित्र हैं मिसेज बेदी । मिसेज बेदी अपनी कारवी की बेटी तारो से बहुत दिनों के पश्चात् मिलती हैं तो उन्हें तारो के विषय में ज्ञात होता है कि वह पुनः माँ बनने वाली है और उसकी सास ने उसे मायके इसलिये भेज दिया है क्योंकि ससुराल में उसकी सन्तानें जीवित नही बचती थीं । मिसेज बेदी भी माँ बनने वाली थी । संयोग और सौभाग्य से तारो और मिसेज बेदी दोनों एक ही रात को एक - एक बच्ची को जन्म देती हैं । मिसेज बेदी तारों को सोता देख चुपचाप जाकर अपनी बच्ची से उसकी बच्ची बदल लेती हैं । दोनों बच्चियाँ रोने लगती हैं । तीसरे दिन मिसेज बेदी अर्थात् तारों की असली बच्ची की मृत्यु हो जाती है और तारों की बेटी अर्थात् मिसेज बेदी की असली बेटी कुनमुनाती रहती है । इस प्रकार मिसेज बेदी ने अपने हृदय में पत्थर रखकर तारों के सुख के लिये अपनी बेटी का दान कर स्वयं माँ से ' मौसी' बनकर एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती हैं, जो अन्य किसी भी माँ के लिये संभव नहीं हो सकता - "मिसेज बेदी दिल की पत्थर थीं । बचपन में भी कड़ी से कड़ी चोट लगने पर भी वे सदा होठंकाटकर रूलाई रोक लेती थीं । आज भी उनकी आँखे गीली नहीं हुईं ।[1]"

त्याग ससुराल जा रही तिला से (मिसेज बेदी का घर का नाम (सिसकियाँ लेते हुए तारो ने पूछा ' तू अब कब आयेगी तिला ?" मिसेज बेदी लौटीं उनकी उदास निष्प्रभ आँखों में विषाद घनीभूत हो उठा । मुड़कर उन्होनें तारों के कंधो पर हाथ धर दिये, ' तारो मैं नहीं आ सकी तो अपनी इस बिटिया से कहना इसकी एक मौसी थी, जो --------[2]" आगे वह कुछ नहीं कह पाते हैं और अपनी बिटिया को प्यार कर अपने मातृत्व अधिकार को तारों को सौंप उससे विदा लेती हैं । कितना बड़ा उत्सर्ग कर गई थी वे चुपचाप । उत्सर्ग आदर्श का ही एक प्रतिरूप है ।

1- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ 160.

2- यथोपरि ।

बसन्ती दी -

'मरण सागर पारे' नामक संस्मरणात्मक कथा की नायिका बसंती दीदी से शिवानी के दोहरे रिक्ते थे । प्रथम रिश्ते के अनुसार बसंती दीदी शिवानकी इकलौती ननद की जिठानी थीं । दूसरे रिश्ते के अनुसार शिवानी की छोटी बहन उनकी पुत्रवधू थी । बसंती दीदी वास्तव में इतनी विशाल हृदया नारी थीं कि उनकी तुलना में देवियाँ ही ठहर सकती हैं, संकीर्ण हृदया सामान्य नारी नहीं । तभी तो शिवानी उनकी मृत्यु पर शोक व्यक्त करते हुए उस क्षति का उल्लेख करती हैं, जो उनके न रहने पर स्वजनों द्वारा अनुभूत की जायेगी - " जिसकी मृत्यु ने केवल उसी के पुत्र - पुत्रियों को अनाथ नहीं किया, अनाथ किया उन उन्नीस सन्तानों को जिन्होंनें अपनी जननी खोकर उस वात्सल्यायी उदार नारी की गोद में खोई माँ का वात्सल्य पाया था । शायद ऐसे ही अमर प्राणों के लिये रवीन्द्रनाथ ने यह पंक्ति लिखी थी :

' मरण सागर पारे
तोमरा अमर तोमादेर स्मरि ।'
-मरण सागर के पार भी तुम अमर हो, हम तुम्हारा स्मरण करते हैं "[1]

रवीन्द्रनाथ की अमर प्राण स्वरूपा बसंती दीदी के पाल्य आश्रितों में से एक जब पढ़-लिखकर विदेश से बैरिस्टर बनकर वापस आया तो उसके विषय में शिवानी ने जब दीदी से पूँछा, ' क्यों बसंती दी, एक नौकर को तुमने पढ़ा लिखाकर इतना योग्य बनाया, उसने तुम्हें कभी कुछ भेजा ? इसका उत्तर जहाँ एक ओर बसंती दीदी के आदर्श का बोध कराता हे, वहीं दूसरी ओर उस बैरिस्टर बने नौकर की नैतिकता का सजीव चित्र भी प्रस्तुत करता हैं - मैंने क्या उसे इसलिये पढ़ाया था कि वह मुझे कुछ भेजे । पर जब कभी भी आया, कुर्सी देने पर भी नही बैठा, खड़ा ही रहा ।[2] उनका चेहरा कृतज्ञ भृत्य की नम्रता की स्मृति से स्निग्ध हो उठा था । आदर्श और नैतिकता का कितना सुखद मणिकांचनीय संयोग झलक रहा था उस भावनाप्रवण उत्तर में । इसी वार्तालाप के मध्य बसंती दी की दी हुई सीख - " किसी का भला करती है, तो कभी मुँह मत खोल और न कभी यह आशा रख कि तुझे वह सोने से

1- रथ्या, शिवानी, पृष्ठ 120

2- रथ्या, शिवानी, पृष्ठ 113.

मढ़ेगा ।[1]" इसका शतांश भी मैं अपने जीवन में नहीं उतार पाई [2] इस तथ्य को शिवानी ने स्वयं स्वीकार किया है ।

शिवानी की दृष्टि में बसंती दी निःसंदेह एक आदर्शनारी थीं । बसंती दी ने सबके साथ उपकार करने की सोची, बदले में कुछ पाने की नहीं । ऐसे निस्वार्थ परोपकारी प्राणियों के सम्बन्ध में शिवानी का तो विश्वास यहाँ तक है कि उनका आदर्श व्यक्तित्व उनके चित्रों तक में झलकता प्रतीत होता है - " वैसे भी मेरी यह धारणा है कि जिसने जैसा जीवन जिया है, उसकी एक - एक रेखा उसके चित्र में उभर आती है, चाहे कुशल चितेरे का कैमरा या तूलिका अनचाही रेखाओं को कितना ही मिटाना चाहे । जिसका हृदय निष्कपट है, उसका चित्र भी अवश्य ही उतना ही निष्कपट उतरता है, उतना ही स्वाभाविक अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग समान रूप से उज्जवल ।[3]" बसंती दी का ऐसा ही स्वाभाविक चित्र शिवानी की बहन के पूजागृह में टंगा था, जो उनके ' मरण सागर पारे " में वर्णित आदर्श से हू-बहू मेल खाता है । वस्तुतः बसंती दी भारतीय संस्कृति के गरिमामय आदर्शनिष्ठ चरित्रों की परम्परा में अपना विशेष स्थान रखती हैं ।

लक्ष्मी -

देवेन्द्र 'घण्टा' कहानी का प्रमुख पात्र हैं । उसके सीमित आय वाले अध्यापक पिता ने उसे उच्च शिक्षा दिलाकर उच्च राजकीय अधिकारी बनाया, किन्तु वह अपने पिता को अंगूठा दिखा, जन्म से पूर्व की अपनी अपूर्व सुन्दरी वागदत्ता लक्ष्मी का रिश्ता फेर अपने से चार वर्ष बड़ी सुलता से विवाह कर अपने आत्मसम्मानी, नेत्रहीन, वृद्ध, विधुर पिता की आशाओं में पानी फेर देता है । उसके नियमित मनीआर्डर को वापस कर पिता तीर सा उत्तर भेजता है - ' मैं ईश्वर की कृपा से स्वयं जीवन यापन कर सकता हूँ , आज तक मेरा एक पुत्र था अब पुत्रहीन हूँ । [4]"

लक्ष्मी का विवाह एक टी0बी0 के मरीज से हो जाता हे । विवाह के तीन माह पश्चात् ही वह विधवा हो जाती हे । यही लक्ष्मी देवेन्द्र के पिता की वृद्धावस्था का सहारा

1- रथ्या, शिवानी, पृष्ठ 113
2- रथ्या, शिवानी, पृष्ठ 113
3- वही, वही, पृष्ठ 111
4- विषकन्या, शिवानी पृष्ठ 92

बनती है और देवेन्द्र के पिता लक्ष्मी का सम्बल बनते हैं । वे लक्ष्मी को पढ़ा -लिखाकर अध्यापिका की सर्विस दिलवा देते हैं और वह उस वृद्ध - पिता की पितृवत् सेवा करती है ।

देवेन्द्र अपने एक दौरे के दौरान पिता को देखने आता हे, पिता की असहाय स्थिति देखकर उसे स्वयं पर ग्लानि होती है । उसे पिता द्वारा ज्ञात होता है कि लक्ष्मी ही उसके वृद्ध पिता की सेवा सुश्रूषा करती है - " अपनी लक्ष्मी बड़ी अच्छी लड़की है, सब कुछ कर जाती हे । निश्चय ही पूर्व जन्म में मेरी लड़की रही होगी ।[1]"

एक पिता के शब्दों द्वारा ही लक्ष्मी का आदर्श और देवेन्द्र की आदर्शशून्यता परिलक्षित हो जाती है । देवेन्द्र पुत्र होकर भी पुत्र का कर्त्तव्यपालन न करने के कारण पिता को पुत्र हीनता का कष्टकारी अनुभव कराता है । वहीं लक्ष्मी पुत्री न होकर भी एक पुत्री का दायित्व निर्वाह कर उस वृद्ध व्यक्ति की पुत्री होने का सुखद आभास देकर अपने आदर्श चरित्र का निरूपण करती है ।

कप्तान जोशी -

'लाटी' कहानी की नायिका ' बानों ' का पति कप्तान जोशी एक चरित्र प्रधान पात्र हैं । वह विवाह के तीसरे दिन ही अपनी फौजी नौकरी के आवश्यक बुलावे के कारण बसरा चला जाता है और जब दो वर्ष बाद वापस आता है तो उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी सैनिटोरियम में भर्ती है । वह तुरन्त पत्नी के पास जाता है । वह समझ जाता है कि उसकी पत्नी घर वालों के व्यंग्यबाणों एवं ज्यादतियों का शिकार हो गयी है । वह बड़े स्नेह से पत्नी की सेवा करता है - " पास के बंगलों के मरीज बड़ी तृष्णा और चाव से उनकी कबूतर - सी जोड़ी को देखते । ऐसी घातक बीमारीमें से कितने यत्न और स्नेह सेवा करता था कप्तान जोशी । कभी उसके आनन्दी चेहरे पर झुंझलाहट या खीज की अस्पष्ट रेखा भी नहीं उभरती । नित्य निकट आती मौत ने बानों को चिड़चिडा बना दिया, पर जैसे इकलौते जिद्दी दुर्बल बालक की हर जिद् को स्नेहमयी माता हंस खेलकर झेल लेती है, वैसे ही कप्तान हठीली बानों की हर जिद पूरी करता [2]" तीन महीने बाद डॉक्टर उसे घर जाने

1- विषकन्या, शिवानी, पृष्ठ 93

2- कृष्ण वेणी, शिवानी, पृष्ठ 67-70

नोटिस दे देते हैं --- 'कल ही ले जाना होगा, आई गिव हर टू टू थ्री डेज । इससे जयादा नहीं बचेगी ।"[1] बड़ी रात तक कप्तान उसके गालों के पास अपना चेहरा ले जाकर गुनगुनाता रहा - " बानों, मेरी बन्नी, बन्नू ।" जब बानों को नींद आ गयी तब वह भी अपने पंलग पर सो गया । सुबह उठने पर बानों उसे अपने पंलग पर नहीं मिलती है । दूसरे दिन उसकी साड़ी रथी घाट पर मिलती है । बानों को वह चाहकर भी नहीं बचा पाया । वह उसका इलाज प्राइवेट बंगला लेकर सैनिटोरियम से अलग कराना चाहता था किन्तु बानों इसके पहले ही उसे छोड़कर चली जाती है । पत्नी के प्रति उसके प्रेम की पराकाष्ठा इस पंक्ति से प्रमाणित हो जाती है - " शोक से पागल होकर कप्तान उसकी साड़ी को छाती से चिपटाये फिरता रहा [2]"

जीवन की लम्बी राह पर अकेले गुजर संभव नहीं होती, इसलिये उसने दूसरा विवाह कर लिया और जब अपनी दूसरी पत्नी के साथ घूमने के लिये नैनीताल आता है और भुवाली की एक छोटी सी दुकान में चाय पीने के लिये रूकता है तो उसी समय एक दल आता है जिसमें उसकी पूर्व पत्नी बानों भी होती है । उस वैष्णवी दल में बानों लाटी के नाम से जानी जाती है। कप्तान उसे पहचान लेता हैं, किन्तु अपरिचित बने रहने का नाटक वह केवल इसलिये करता है कि जिससे उसकी पूर्व पत्नी बानों यानी लाटी का धार्मिक जीवन अधार्मिक न बने और न ही अपनी दूसरी पत्नी प्रभावती का वर्तमान सुखद जीवन सौत की परिकल्पना से दु:सह एवं नारकीय बनें । उसकी यह पत्नीनिष्ठा उसके आदर्शमय चरित्र की पराकाष्ठा है । लाटी भी एक आदर्श चरित्र हैं । वह उसके जीवन से अपनी वेदना लिये हुए कट जाती है । पुनः मिलने पर भी खामोश ही रहती है। उसने अपने वैवाहिक जीवन का परित्याग कर वैष्णव भक्ति की दीक्षा ली । इस प्रकार पति पत्नी दोनों का ही चरित्र पारस्परिक सौहार्द्र और आदर्श उत्सर्ग से ओतप्रोत हैं ।

1- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ 72

2- कृष्णवेणी, शिवानी पृष्ठ 73

बिन्दू-

'दो स्मृतिचिन्ह' कहानी में बिन्दु की भूमिका नारी व्यवहार के विशद - पटल में एक आदर्श बिन्दु ही हैं । वह सौन्दर्य - स्वरूपा हैं, धनसम्पन्ना हैं, सुखी है किन्तु गर्व और सन्तान से हीन है । सन्तान के लिये उसका मोह स्वाभाविक ही हैं । जब वह अपनी छोटी बहन, जो एक मध्यम वर्गीय व्यक्ति से ब्याही होती है , उससे स्टेशन पर मिलने जाती है, तो उसका बेटा सुरेश बिन्दु के पति के कीमती कोट को चॉकलेट की चाटी हुई चासनीयुक्त हाथ की उँगलियों के निशान से चिन्हित कर देता है । यह चिन्ह न तो बिन्दु के पाति को भाता है और न उसकी बहन को, किन्तु बिन्दु इन नन्हें अंगुल बिन्दुओं को स्मृति चिन्ह के रूप में संजोलेती है । एक दूसरी घटना जो कुछ दिन बाद घटती है । एक दिन प्रातः काल बिन्दु को किसी बच्चे के रोने की आवाज घर के गेट के पास ही सुनाई पड़ती है , वह वहाँ जाती है और एक सुन्दर बच्चे को अकेला देखकर उठा लाती है और पति को बताती है कि ईश्वर ने उसे संतानहीना से पुत्रवती बना दिया है, यह उन्हीं की कृपा है । इसी बीच उस बच्चे की माँ उसे लेने आ जाती है । अपनी माँ की गोद में जाने से पहले ही वह सुरेश बाबू नाम का बच्चा बिन्दू के पति के कीमती कम्बल को अपनी पेशाब से आबदार बना देता है । बिन्दू के पति झुंझला पड़ते हैं । वे न तो उस कीमती कोट को ही पहनते हैं और न ही इस कीमती कम्बल को ओढ़ते हैं । सन्तानहीना बिन्दु दोनों सुरेश बाबुओं के इन स्मृतिचिन्हों को अपने मातृत्वकक्ष में बड़े यत्न से टाँग अपने आदर्श का परिचय देती हैं । " बिन्दु ने बड़ी ममता से रग (कम्बल) को उठा लिया । हैंगर पर दो नन्हीं हथेलियों का चॉकलेट का ठप्पा लगा दूसरा स्मृति - चिन्ह झूल रहा था । बिन्दू नहीं भुनभुना सकी । उसके तो जी में आ रहा था, वह उनदोनों स्मृतिचिन्हों को सुनहरे चौखट में मढ़, अपने जीवन के रिक्त कक्ष में टाँग दे और दिन - रात निहारती रहें । [1]"

1- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ 104

आरती सक्सेना -

'अपराजिता' कहानी की आरती सक्सेना वस्तुतः आरती उतारने योग्य आदर्श चरित्र हैं । वह एक अवकाश प्राप्त जिलाधीश की इकलौती पुत्री हैं, कान्वेन्ट शिक्षिता है और स्वयं प्रशासनिक सेवा में है । उसे अपने पद की गरिमा का बोध है पर गर्व नहीं । वह एक्साइज कलेक्टर के रूप में जिस दुःसाहस का परिचय दे दुःसाहसी तस्कर और कुख्यात अपराधी 'कलुआ' को गिरफतार करने में सफल होती है, वह निःसंदेह अद्वितीय हैं । उसकी ईमानदारी और कर्त्तव्यनिष्ठा प्रशंसनीय है -- ' रूपये के मोह ने आरती सक्सेना को कभी उसकी कर्त्तव्यनिष्ठ से नहीं डिगाया।[1]" इतना ही नहीं उसने अपने देहाती पति का कायाकल्प कर एक सभ्य नागरिक बना अपनी पतिनिष्ठा का भी परिचय प्रस्तुत किया है - " पति मुँह में दतौन दबा, लोटा लेकर दिशा - जंगल जाया करता था । नाम का तो वह ग्रेजुएट था, किन्तु सभ्य शिष्टाचार की वर्णमाला से उसका सामान्य सा भी परिचय नहीं था । अंग्रेजी बोलना तो दूर, पढ़ने में भी वह बुरी तरह हकलाता था । आरती प्राणान्तक चेष्टा से ही अपने उस निपट गंवार पति को एक सुसंस्कृत नागरिक बना पाई थी ।[2]"

आरती का पति राम भजन जब एक गंजेड़ी बाबा को अपना गुरू मान घर छोड़कर भग जाता है, तब आरती बड़ी ही कुशलता, साहस, धैर्य और बुद्धिमानी का परिचय देकर अपने पति को वहाँ से लाने में सफल हो जाती है । इन्हीं गुणों के कारण आरती का चरित्र आरती उतारने योग्य हो उठता है । वह एक कर्त्तव्यनिष्ठ आफीसर होने के साथ-साथ एक पतिपरायण एवं आदर्शनिष्ठ पत्नी भी है ।

शिवानी आरती के चरित्र के माध्यम से यह सिद्ध करना चाहती हैं कि नारी केवल अबला ही नहीं वह सबला भी हैं ।

पुष्पा पंत -

पुष्पा पंत 'तर्पण' कहानी की प्रमुख पात्र हैं । वह विद्यालय में प्रधानाध्यापिका है । उसका चरित्र दपर्ण की तरह स्वच्छ हैं । वह अपने सर्वनाशकर्त्ता एवं माता- पिता की

1- स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 38

2- स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 42.

मृत्यु के कारक ख्यातिप्राप्त मन्त्री की हत्या कर अपने माता-पिता का तपर्ण करती है , वह निस्संदेह प्रशंसनीय है, नारी समाज के लिये गौरवमय आदर्श है - " मैने हत्या क्यों की ? आज से वर्षों पूर्व इस दानव ने मेरा सर्वस्व हरण किया था । उसी लज्जा ने मेरे पिता के प्राण लिये , माँ को दिल का दौरा पड़ा और वह भी चली गई । आज इतने वर्षों में मैने पुत्री होकर भी माता-पिता का तर्पण किया ।[1]" माता-पिता का तर्पण करने वाली पुष्पा जब जीप में चढ़ती है, तो ऐसा लगता है जैसे वह मानवी नहीं, बलवीर्य मदोद्धत असुर की छाती पर पैर धरे मुस्कराती साक्षात् अष्टभुजा है ।

पुष्पा पंत अपने आदर्शचरित्र, कर्त्तव्य निष्ठा एवं शालीन व्यवहार के प्रति अपने ग्राम वासियों के लिये कितनी श्रद्धेय थी , इसका अंदाज इस भीड़ से लग जाता है जो दुश्चरित्र मंत्री की हत्या करने के पश्चात् भी अपनी जनप्रिय हेडमास्टरनी को विदा देने के लिये इकट्ठा थी ।-- ' जीप के द्वार पर पहुँच कर पुष्पा बिदा देने आई भीड़ की ओर मुड़ी। इस अपार उमड़ते जनसमूह को देखकर एक पल को उसका गला रूँध गया । दोनों हाथ जोड़कर वह खड़ी हुई, तब ही भीड़ को चीरती एक रोती सिसकती छात्रा उसके गले में लाल - लाल बुरूंश फूलों की लम्बी माता डाल गयी । साथ ही ताली की गड़गड़ाहट से ग्राम का आकाश गूँज उठा ।[2]"

नीलाकाश को तालियों की गड़गड़ाहट से अभिगुंजित करने वाला यह जनसमूह अपनी ग्राम्य देवी के गरिमामय तर्पण का समर्थन हर्षध्वनि के साथ करने को एकत्रित हुआ था, न कि उस दुरागामी मन्त्री के विलासी व्यक्तित्व के दर्शनार्थ जुटा था । लोगों को मंत्री की हत्या पर क्रोध या दुःख नहीं था, वरन् गर्व था अपनी वीर ग्राम बाला के सत्साहस और शौर्य पर । अपने अनुकरणीय चरित्र के कारण वह देवी की भाँति पूजी जाती थी " विभाग ने भले ही उस सतयुगी (सत्यवादी एवं आदर्शनिष्ठ) हेडमास्टरनी को मान्यता न दी हो, पूरा ग्राम उसे देवी की भाँति पूजता था । मजाल थी कि उसकी कोई प्राक्तन छाया, गोद में शिशु लिये, पहली बार मायके आये और आते ही पत्र पुष्पसहित अपनी प्रिय गुरूआनी के चरण छूने न चली आये ।[3]"

1- माणिक, शिवानी, पृष्ठ 81।

2- माणिक, शिवानी, पृष्ठ 80-81।

3- माणिक, शिवानी, पृष्ठ 55

सतयुग की सीता जैसी ये नारियाँ कलियुग के रावणों को पर्याप्त सीख दे सकती हैं, किन्तु आवश्यकता है उन्हें जाग्रत करने की ।शिवानी की लेखनी ने तर्पण कहानी के माध्यम से नारी - जागरण का जो शंख फूँका है, वह स्तुत्य है । यह अनुगूँज कहाँ तक और कब तक गूँजती रहेगी, यह आत्मशक्तिशीला नारियों पर निर्भर करता है ।

पुट्टी-

'नथ' की नायिका पुट्टी भी शिवानी की चरित्र प्रधान नायिका है । पुट्टी अपने पति से नथ बनवाने के लिये मचलती है । पति अपनी प्राणप्रिया के लिये छः तोले की नथ गढ़वाता है, साथ में हिदायत भी देता है कि इसे जमीन में गाड़कर रखना । पुट्टी अपनी माँ से कहती है -- " कह गये हैं, अम्मा से बचाकर जमीन में गाड़ देना ।।[1]" पुट्टी उसे जमीन में गाड़ देती है । उसका फौजी पति गुमान सिंह जब युद्ध में मारा जाता है और कमिश्नर साहब तहसील आकर सभी लोगों से सैन्य सामग्री खरीदने हेतु सोना - दान करने को कहते हैं तो पूरी भीड़ सन्नाटा खींच जाती है । कमिश्नर साहब अपनी पत्नी, जिसने अपनी गले की (आधे तोले की) सोने की चेन दान दे दी, का हवाला देकर भीड़ को प्रोत्साहित करते हैं, तभी पुट्टी अपनी छः तोले की नथ उन्हें दान दे, बिना रसीद लिये चली जाती है । नथ देखकर अपनी पत्नी के सामान्य दान की ऊँची घोषणा का खोखलापन स्वयं कमिश्नर साहब को धिक्कार उठता है ।

पति की मृत्यु के पश्चात् अब नथ का पुट्टी के लिये क्या उपयोग था । जिस कार्य को करते हुए उसका प्रति वीरगति को प्राप्त हुआ, यदि उसी में थोड़ा सहयोग पुट्टी ने भी कर दिया तो उसने कौन सा अनोखा कार्य कर दिया । इस प्रकार की ऊँची सोच रखने वाली पुट्टी निःसंदेह आदर्श स्त्रियों की श्रेणी में अपने आप खड़ी हो जाती है । उसकी सास - ननद अपनी नथ देने को तैयार नहीं थी --- ' हमारे दरिद्र गाँव में तो दो बेला एक मूठ अन्न भी नहीं जुटता । मेरे पास दस तोले की नथ है पर क्यों दूँ ? इन्होनें ही तो मेरा बेटा छीन लिया ।[2]"

1- चिरस्वयंवरा, शिवानी, पृष्ठ 82

2- चिरस्वयंबरा , शिवारी , पृष्ठ 83-84

पुट्टी के दिये गुप्त दान के लिये कमिश्नर साहब को घोषणा करनी पड़ी -- ' एक अज्ञात महिला अभी - अभी यह नथ दे गयी है । भीड़ में वह जहाँ कहीं भी हों, आकर रसीद ले जायें ।[1]" किन्तु पुट्टी रसीद लेने नहीं गयी । उसे अपने दान का प्रमाण नहीं चाहिये था । उसे तो चाहिये था हृदय की शांति जो उसे नथ दान देकर स्वयं प्राप्त हो चुकी थी ।

सुहासिनी -

'भीलनी' कहानी की सुहासिनी क्षमा की प्रतिमूर्ति है । कहानी के नारी पात्रों में दो सगी बहनें सुहासिनी और विलासिनी हैं । सुहासिनी बड़ी है । दोनों बहनें एक - दूसरे से अति प्रेम करती हैं । विलासिनी सुन्दरता की प्रतिमा है । सुहासिनी के प्रथम प्रसव के समय विलासिनी अपनी बड़ी बहन की सेवा के लिये उसके पास ही थी । सुहासिनी का पति उस पर आसक्त हो जाता है और फिर एक रात दोनों एकाकार हो जाते हैं । सुहासिनी यह दुष्कृत्य बर्दाश्त नहीं कर पाती और क्रोधावेश में आकर रिवाल्वर से अपने पति की हत्या कर बैठती है, फिर स्वयं ही उसी रिवाल्वर से अपनी आत्महत्या कर लेती है । जब उसके पिता के परिचित कमिश्नर दामले उसका बयान लेते हैं, तो वह बयान बदल देती हैं -- पुत्र जन्म के बाद मैं अलग कमरे में सोने लगी थी, बड़ी रात तक गौतम (पति) नहीं लौटे । सुबह तीन बजे मैं एक बार उनके कमरे में देखने गयी कि लौटे या नहीं ----- मैने देखा ----- मेरे पति की बाहों में एक अर्द्ध नग्न काली- कलूटी भीलनी पड़ी सो रही है । मैं क्रोध से एक क्षण को विवेक खो बैठी । भागकर भरी रिवाल्वर निकाली मारना चांहा था भीलनी सौत को, पर निशाना चूका गया अंकल, [1]" नाम पूछने पर वह कती हैं ' नाम तो मैं नहीं जानती, खिड़की से कूद कर भाग गयी । मैनें अपने को खुद गोली मार दी, पुलिस किसी को परेशान न करने पायें अकंल ।[3]"

सचमुच सुहासिनी ने विलासिनी को उसके कृत्य के अनुसार 'भीलनी' की जाति वाचक संज्ञा देकर जहाँ उसे सबकी नजरों में गिरने के साथ ही साथ पुलिस से भी बचा लिया,

---

1- चिरस्वयंवरा, शिवानी, पृष्ठ 84

2- गैण्डा, शिवानी, पृष्ठ 69

3- गैण्डा, शिवानी, पृष्ठ 70.

वहीं उसे भी आजीवन के लिये 'भीलनी' का अभिशाप दे दिया । सुहासिनी का चरित्र आदर्श मंडित ही कहा जायेगा, क्योकिं उसने अपना सर्वस्व खोकर भी अपनी बहन को क्षमा कर बचा लिया ।

बेगम अख्तरी -

"कोयलिया मत कर पुकार " शिवानी की संस्मरणात्मक कहानी है । इस कहानी में शिवानी ने बेगम अख्तरी के आदर्श चरित्र का चित्रण किया है । बेगम अख्तरी एक सुप्रसिद्ध गायिका थीं । उनका विवाह लखनऊ के एक समृद्ध परिवार में जन्में बैरिस्टर जनाब इश्तियाक अहमद अब्बासी से हुआ जो पद, कुल, व्यक्तित्व एवं आभिजात्य के ही धनी नहीं, हृदय के भी धनी थे । संसार में कुछ रिश्ते ऐसे भी होते हैं, जिन्हें तुच्छ मानव चाहने पर भी न तोड़ सकता है, न जोड़ सकता है । जन्म - जन्मान्तर का यह रिश्ता स्वयं प्रकृति पुरूष ही जोड़ता है । यह रिश्ता भी ऐसा ही दुर्लभ रिश्ता था । लक्ष- लक्ष संगीत अभिन्य - प्रेमी हृदयों की एकच्छत्र साम्राज्ञी अख्तरी अब केवल एक हृदय की निरंकुश साम्राज्ञी थीं - वह भी एक ऐसे हृदय की, जिसका सिंहासन था हिरण्यमय । विवाह के पश्चात् उनके पति ने उन्हें राय दी -- 'बिब्बों, अब तुम गाना भूल जाओं।" एक पतिव्रता नारी की भॉति बेगम अख्तरी ने कानूनी पति के इस आदेश को भी कानून मानकर ही ग्रहण कर लिया । रिकार्ड में अपनी आवाज सुनकर भी वे घबरा जातीं । स्वयं उन्ही के शब्दों में -- ' मैं अब घर की बहू थी. ---- कहीं भी मेरा रिकार्ड बजता तो मैं सहम जाती । मेरी जो आवाज मेरी सबसे बड़ी पूँजी थी, वही अब मुझे सहमा जाती है । इनकी मुमानी, भावजें, चची सब सुनेंगी, तो क्या कहेंगी ?"[1]

इसी बीच बेगम की मॉं का इंतकाल हो गया । यह दूसरी चोट उन्हें तिलमिला गयी । वह अपनी जननी की कब्र से लिपटी घंटों रोती रहतीं । पति से जब उनका दुःख

1- 'कोयलिया मत कर पुकार ' शिवानी पृष्ठ - 95, हिन्दी डाइजेस्ट, 1973

देखा नहीं गया तो एक दिन उन्होनें स्वयं ही अपनी प्राणों से प्रिय पत्नी के लिये संगीत के बंद द्वार खोल दिये, किन्तु दो शर्तो के साथ - पहली शर्त थी - श्रोताओं के सम्मुख वे नहीं गायेंगी, दूसरी शर्त थी - रिकार्डिंग का जो पारिश्रमिक मिले, उसे स्वयं चाहे जैसे भी खर्च करें, पर घर के खर्च के लिये एक आदर्श पत्नी की भाँति उन्हें पति की आश्रिता रहना होगा । किन्तु डाल पर चहकती बुलबुल और पिंजरे में बंद चहकती बुलबुल के तराने क्या कभी एक से हो सकते हैं? अखबार वालों ने भी छाप दिया - 'बेगम फेल्स टु इम्प्रेस ', संसार का कौन सा कलाकर नहीं चाहता कि उसकी कला सराही न जाये ? फिर उनके उदार पति ने स्वयं ही पहला अंकुश हटा लिया, किन्तु दूसरे अंकुश का पालन बेगम अख्तरी ने बड़ी निष्ठा से किया । उनकी इस निष्ठा-पालन से अभिभूत होकर उनके पति अब्बासी स्वयं गर्व से कहते हैं - " पारिश्रमिक का चेक देखते ही देखते इधर - उधर बंट जाता है । लोग इस उदार महिला की दुर्बलता को पहचान गये हैं । किसी की बिटिया का ब्याह है तो किसी के बेटे का मर्ज । कभी - कभी तो रेडियों स्टेशन के दरवाजे तक पहुँचने से पहले ही किसी से रूपया लेकर बाँट आती हैं - घर लौटने के लिये भी कभी तार करके घर रूपया मँगवा लेती हैं ।[1]"

बेगम अख्तरी एक आदर्श पत्नी ही नहीं, एक संस्कारशीला आदर्श गृहिणी भी थीं । उन्हें के शब्दों में " मैं स्टेज तक ही आर्टिस्ट हूँ, घर में हूँ सिर्फ बीबी।[2]

बेगम अख्तरी का चरित्र निःसंदेह भारतीय नारियों के लिये स्पृहणीय है ।

1- 'कोयलिया मत कर पुकार ' , शिवानी, पृष्ठ 96, हिन्दी डाइजेस्ट 1973 में प्रकाशित ।

2- यथोपरि ।

ख. आदर्श पात्रों की समाज - सापेक्ष विचार धारा

सामाजिक प्राणी होने के नाते साहित्यकार द्वारा विरचित साहित्य सामाजिक जीवन की प्रत्याभिव्यक्ति के रूप में सर्व ग्राहय हैं । ज्यों - ज्यों समाज जटिल से जटिलतम होता जा रहा है, त्यों-त्यों उसके भावों में जटिलता आती जा रही है । आज का साहित्यकार प्रेम, घृणा, क्रोध, कुंठा, संत्रास, प्रतिशोध, वास्ना, संघर्ष , अन्तर्द्वन्द्व, निराशा, मनो-ग्रंथि, भग्नाशा आदि को अपने साहित्य के वर्ण्य - विषय के रूप में चुनता है फिर उसे कल्पना और रागात्मकता का रंग देकर रोचक और प्रेरक रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है । समाज से कटकर नितान्त काल्पनिक या पारलौकिक चरित्रों के माध्यम से कुछ भी कहने में आज वह अपने को असमर्थ पा रहा है । आज उसके पारलौकिक चरित्र राम और कृष्ण भी वर्तमान समाज के श्रेष्ठ नागरिकों की भाँति व्यवहार करते दिखते हैं न कि देवलोक के प्राणी की भाँति असाधारण और अलौकिक । आज का साहित्यकार अपने चरित्रों का समाज सापेक्ष चित्रण कर उन्हें आदर्शवान दर्शाने का प्रयास करता है । उसकी दृष्टि में समाज विरोधी आचरण करने वाले व्यक्ति ही चरित्र हीन या आदर्शहीन व्यक्ति कहे जा सकते हैं । शिवानी ने भी चरित्रों के माध्यम से जो समाज - सापेक्ष धारा प्रस्तुत की है, वह उनकी कहानियों में द्रष्टव्य है ।

'अपराधिनी' में संकलित कहानी (छि: मम्मी तुम गंदी हो) की जानकी यद्यपि अपने पति की जान की ग्राहक स्वंय बन बैठती है । वह अपने किशोर प्रेमी से उसकी हत्या करवा कर आजन्म कारावास का दण्ड भुगतती है । वह इस जघन्य अनारीय कृत्य के लिये उतनी दोषी नहीं है । जितनी वे त्रासद परिस्थितियाँ , जिनके कारण उसे अपने से तिगुनी उम्र वाले व्यक्ति को अपना पति स्वीकारना पड़ा था , जबकि वह उसका होने वाला जेठ था किन्तु चरित्रहीन और कामी होने के कारण पति बनने का प्रस्ताव कर बैठा था । लाचार पिता ने जानकी को उसके हवाले इस प्रकार कर दिया था जैसे वृद्ध गाय को कसाई के हवाले कर दिया गया हो । पहले तो उसने सुना था कि - "उसका रिश्ता पक्का करने उसके जेठ आ रहे हैं । कितनी रातें, अनजानें, अनचीन्हें प्रियतम की मादक कल्पना में डूबती- उतराती, काट लेती हैं और फिर कोई छाती पर घूँसा सा मार जाता है । रिश्ता पक्का तो हो गया किन्तु छोटे से नहीं, बड़े से । ससुराल आई, तो तीसरे ही दिन चरित्रहीन, पति का

निर्लज्ज - प्रणय नाटक देखकर सहम गयी । उसे देखकर खिसियाई हंसी हंस, उस दूर के रिश्ते की जिठानी ने बेहया कैफियत देने की धृष्टता भी की थी । 'अरी नई बहू, हमें एक साथ देखकर घबड़ा क्यों गयी ? इनसे तो मेरा ठिठोली का रिश्ता बहुत पहले का है, तब तू शायद पैदा भी नहीं हुई होगी ।[1]"

क्या ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ किसी पतिपरायणा स्त्री के लिये कभी सहन हो सकती हैं, कदापि नहीं । इन परिस्थितियों में यदि उसका आचरण सामाजिक नियमों का उल्लंघन कर अनैतिक हो जाता है तो शिवानी भी उसे उचित न ठहराकर उसे उन परिस्थितियों से, संघर्ष करने, समझौता करने और सामंजस्य स्थापित कर समाज को स्वस्थ बनाने की सीख देती हैं --- ' पति क्रोधी भी था तो वह चेष्टा करने पर बिना गंड़ासे के भी उसे साध सकती थी । नरभक्षी बनराज को क्या सर्कस के रिंग - मास्टर का धैर्य पालतूनहीं बना लेता ? गृहस्थी का सुख-दुख, धूप - छाँह, सिसकियाँ, खिलखिलाहट, भला किस गृहिणी के जीवन में नहीं है ? इसी में तो गृहस्थी का सुख है ।[2]"

जानकी के माध्यम से शिवानी ने बेमेल विवाह की समस्याको उजागर करने का प्रयास किया है, इसके साथ ही उसके सामाजिक दुष्परिणामों का भी लेखा- जोखा प्रस्तुत किया है । बेमेल विवाह परम्परागत सामाजिक समस्या है । इसे शिवानी ने उजागर कर समाज को विशेषतः नारी समुदाय को सजग करने का कर्त्तव्य पालन किया है । यह शिवानी का समाज -सापेक्ष चिन्तन है ।

इसी प्रकार बेमेल विवाह का दुष्परिणामां 'चीलगाड़ी' कहानी की नायिका भी झेलती है । उसका विवाह सम्पन्न किन्तु रोगी व्यक्ति से हो जाता है । और सात माह के पश्चात् ही वह विधवा हो जाती है । अपने पति की मृत्यु पर वह रो भी नहीं पाती । वह अपने पति की मृत्यु पर न रो पाने का जो स्पष्टीकरण देती हैं, वह हृदयहीन व्यक्ति को भी रूला सकता है । त्रुटिहीन सेवा करने पर भी -- ' उस कठोर - निर्मम व्यक्ति के साथ बिताये गये सात महीने की अवधि में मुझे एक भी ऐसा - प्रणय - प्रसंग स्मरण नहीं आ रहा था, जिसका आधार लेकर मैं बिलख सकती ।"[3]

1- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ 64

2- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ 65-66

" करिये छिमा- संकलन की ' करिये छिमा' कहानी मेंशिवानी ने आदर्श पात्रों की प्रकृति की स्वाभाविकता को बखूबी दर्शाया है । 'करिये छिमा' का श्रीधर आदि से अंत तक अपनी आदर्श छवि बनाये रखने में सफल होता है । हीरावती का क्षणिक आगमन अवश्य उसके जीवन में होता है । फिर भी वह अस्तित्व हीन नहीं होता । उसके चरित्र में कंचन जैसा निखार है ।

'करिये छिपा' की नायिका हीरावती का आदर्श भी कम प्रशंसनीय नहीं है । उसका प्रणयी समाज में लांछित न हो, इसके लिये वह प्रणयी के 'स्मृति चिन्ह' पुत्र' का भी गला घोटंने में नहीं चूकती । श्रीधर के पूँछने पर ' तुमने ऐसा क्यों किया हीरावती ? कभी झूठ न बोलने वाली हीरावती ने कहा -- ' सोचा कि मैं तो बदनाम हूँ ही, तुम्हें कीचड़ में क्यों घसीटूं ? सारा गाँव तुम्हें पूजता था । बड़ा होता, सब पहचान लेते कि किसका बेटा हैं [1]

काश। समाज में हीरावती के पुत्र को पहचानने के साथ उसके चरित्र को भी पहचानने की दृष्टि होती ? श्रीधर के उजले पक्ष को, उसके सच्चे अस्तित्व को समझने की शक्ति होती समाज में ? वास्तव में समाज तो अमूर्त होता है किन्तु परम्पराओं और रूढ़ियों में जी रहे लोगों तथा इन्हीं परम्पराओं और रूढ़ियों का विरोध कर रहे लोगों के बीच मूर्त होने का आभास दिलाता है ।

" दो बहनें-- कहानी में जया और विजया एक दूसरे के लिये माता - पिता हैं, अभिभावक हैं और मित्र भी । जया बहुत ही गम्भीर , सादगी पसंद प्राध्यापिका है । वह बड़ी होने के नाते विजय का विवाह करना अपना दायित्व समझती है और स्वयं अविवाहित रहने का संकल्प सा लिये रहती है । किन्तु जब जया की बुआ केशव को विजया को देखने के लिये भेजती है तो उसकी प्रथम भेंट जया से होती है और वह विजया को छोड़ जया के जीवन में बड़े ही मौलिक ढंग से प्रवेश कर जाता है । 'आग लगा जमालों दूर खड़ी' कहावत की तरह वह जया, विजया और बुआ तीनों को अपने एक ही वाक्य से राख की ढेरी में बदल देता है । " मेरी तो ट्रेन में ही सगाई हो गयी ।[2]" पर आपकी पोटली पहुँचा दी थी बुआ । बुआ के पूछने पर - ' भतीजियाँ मिली थी ' वह तुरन्त मुकर जाता है - ' नहीं, नौकर को दे आया था, बड़ी जल्दी में था । जबकि हजरत जया का सर्वनाश कर आश्वासन दे गये थे -- कि मैं बुआ से कह दूँगा -- 'मुझे आपकी बड़ी भतीजी पंसद हैं ।[3]

1- करयि छिमा, शिवानी पृष्ठ - 33

2- करिये छिमा, शिवानी, पृष्ठ 78

"जिलाधीश" कहानी की नायिका ' जिलाधीश सुमन' आदर्श विचारों से सम्पन्न एक दृढ़ संकल्प नारी है फिर भी एक प्रेस रिपोर्टर के द्वारा छली जाती है । विषम परिस्थितियों में अपने पद के ओहदे को भूल उसे प्रेस रिपोर्टर से विवाह भी करना पड़ता है ।

इस कहानी में शिवानी जिलाधीश पद के अनुरूप चित्रण करने में सफल नहीं हुई हैं क्योकि जिलाधीश को शासन की ओर से चालक एवं सशस्त्र अंगरक्षक और व्यक्तिगत सहायक अवश्य उपलब्ध होते हैं । आधिकारिक दौरे में इन सबका साथ होना अनिवार्य होता है । शिवानी ने जिलाधीश सुमन को इन सबसे रहित चित्रित कर केवल चित्रण के लिये चित्रण किया है । जबकि जिलाधीश सुमन ने एक कुख्यात प्रेस रिपोर्टर से विवाह कर उसे सच्चरित्र बनाने का मौका दिया और सचमुच वह जिलाधीश सुमन के सान्निध्य में आते ही कंचन की तरह कांतिमान हो उठा । शिवानी ने सुमन के माध्यम से समाज के समक्ष यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । कि परिस्थितियों वंश बिगड़े हुए व्यक्ति समुचित माहौल और अनुकूल साहचर्य पाकर अनायास सुधर जाते हैं ।

उक्त कहानियों में शिवानी एक समाज चिन्तक के रूप में उस तथ्य को विभिन्न चरित्रों, घटनाक्रमों एवं परिस्थितियों के माध्यम से स्पष्ट करना चाहती हैं, जो आज के युवा - वर्ग के पतन का एक प्रमुख कारक है । युवा - मन का विश्वामित्र कभी भी डिग सकता है, रावण सीता का अपहरण कर सकता है, दु:शासन द्रोपदीका चीरहरण कर सकता है और अलाउद्दीन पद्मिनी के लिये निकृष्ट धूर्तता तक कर सकता है । शिवानी इन सबसे चिन्तित प्रतीत होती हैं और इनसे बचकर रहने का ही संदेश अपनी इन कहानियों के माध्यम से देती हैं ।

'सती' कहानी की प्रमुख पात्र 'मदालसा' सती होने का ढोंग रचकर अपनी सहयात्री स्त्रियों को लूटने में सफल हो जाती है, किन्तु हम सबको यह सोचने के लिये विवश कर जाती है कि आज भी भारतीय नारियों में सतियों के प्रति असीम श्रद्धा पाई जाती है । हमारी धार्मिक भावनाओं से खिलवाड़ कर आये दिनों ' सती' जैसी ठगी की घटनायें समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं । शिवानी इस प्रकार के धार्मिक धोखे बाजों और धार्मिक वेशभूषा के दुरूपयोग से समाज को सावधान रहने को कहती हैं । --- ' चेन खींचकर गाड़ी रोकी

गई, सचमुच ही समाज सेविका को पुलिस को खबर देनी पड़ी, पर सती को बचाने नहीं, पकड़वाने के लिये । वह मिल जाती तो शायद हम तीनों स्वयं उसकी चिता चुनकर उसे आग में झोंक देतीं । पर कहना व्यर्थ है , आज तक पुलिस उस सती मैया के फूल नहीं चुन पाई ।[1]"

इस कहानी के माध्यम से शिवानी ने नारियों की धर्मभीरूता और धार्मिक अंध विश्वासों पर तीक्ष्ण प्रहार कर अपने सामाजिक चिन्तन का स्वस्थ स्वरूप प्रस्तुत किया है ।

'अपराधिनी कौन' की नायिका और उसकी ननद मीना जो उसकी ननद ही नहीं प्राणप्रिय सखी भी थी । दोनों की मैत्री मुहल्ले भर की स्त्रियों के लिये स्पृहणीय थी । ऐसी दुलर्भ मैत्री को उनके आभूषण प्रेम ने डस लिया । वे एक - दूसरे के प्रति अपराध बोध की भावना से ग्रस्त हो गयीं । इस कहानी के द्वारा शिवानी ने नारी के आभूषण प्रेम की सहज वृत्ति का परिचय दिया है कि आभूषणों के लिये नारी कितनी नीचे गिर सकती है । उसे उसके दूरगामी दुष्परिणाम की चिन्ता नहीं होती है, उसे तो अपनी त्वरित उपलब्धि पर गर्व ही होता है ।

माँ की दुलर्भ करधनी के लिये मीना अपना बहुमूल्य हार तक खो बैठती है, जिसका पश्चाताप करती हुई वह कहती है -- 'उसके हीरे के हार का केवल लोलक ही बेचने पर भाभी के पूरे खानदान की बेटियाँ ब्याही जा सकती थीं । हाय, कितने छोटे अपराध की कितनी बड़ी सजा दे गयी भाभी ।[2]"

शिवानी का सामाजिक चिन्तन प्रेमचन्द के 'गबन' उपन्यास जैसा ही नारी के आभूषण प्रेम पर आधारित है, जिसका दुष्परिणाम दोनों नारियों को काफी समय तक भोगना पड़ता है ।

'ज्येष्ठा ' नामक कहानी ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्मी कन्या के दुर्भाग्य की कहानी है । इस कहानी के द्वारा शिवानी ने ज्योतिष पर अपनी आस्था व्यक्त की है । ज्येष्ठा कन्या

1- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ 147

2- रथ्या, शिवानी, पृष्ठ 59

का विवाह यदि ज्येष्ठ लड़के के साथ नहीं होता तो ज्येष्ठ लड़कों की मृत्यु निश्चित होती है । इसलिये कहानी की नायिका हरिप्रिया अपने जेठ को अपना सौत मानती है । जो पन्द्रह वर्ष का अज्ञातवास बिताकर अचानक धूमकेतु की भाँति हरिप्रिया के विवाह के ठीक एक सप्ताह पूर्व उसके सौभाग्य आकाश में उदित हो जाता है । उसे मृत समझकर उसकी क्रिया-कर्म तक उसके पिता सम्पन्न कर देते हैं । ठीक शादी के वक्त उसका अचानक आगमन हरिप्रिया के मन में उसके प्रति सौतिया डाह उत्पन्न कर देती है । हरिप्रिया दिया जलाकर उसकी मृत्यु की कामना करती है -- 'तू किस सौत की मृत्युकामना से दिया जला रही है ?----- मेरी सौत कौन है तू नहीं जानती ? मेरा जेठ ----[1]"

ज्योतिष पर किया गया अंधविश्वास जीवन में कितना विष घोल सकता है, इसके सपुष्ट प्रमाण को दर्शाती यह कहानी है ।

'शपथ' कहानी की आदर्श पात्र कालिंदी भाभी एवं शुभ्रा हैं । शुभ्रा छोटी बहू है, बड़ी भाभी की कद्र करने वाली और बड़ी भाभी का भी शुभ्रा पर अनन्य अनुराग हैं । शुभ्रा की मझली जिठानी मालिनी ने उसे चैलेन्ज किया कि वह पहली अप्रैल को बड़ी भाभी को रूलाकर दिखाये तभी वे उसकी बुद्धि का लोहा मानेंगी । गर्व से तनकर शुभ्रा ने इस चैलेन्ज को स्वीकार कर लिया और पहली अप्रैल को वह कालिंदी भाभी से परिहास कर बैठी कि उसके बड़े जेठ उसके पूर्व प्रेमी हैं और उनकी (कालिंदी भाभी की) दत्तक पुत्री इला उसी की पुत्री है । पहले तो भाभी को विश्वास नहीं हुआ, फिर उन्होनें शुभ्रा से कहा कि वहि शिवलिंग पर हाथ रखकर शपथ खाकर कहे कि यह सच है । शुभ्रा का उद्देश्य तो उन्हें रूलाने का था ही, उसने शिवलिंग पर हाथ धरकर सच की पुष्टि कर दी । किन्तु शुभ्रा को यह परिहास बहुत महँगा पड़ा - बड़ी भाभी इस परिहास को सच मान सेरिब्रल थ्राम्बोसिस का शिकार हो तुरन्त काल - कवलित हो जाती हैं और शुभ्रा का ही परिहास शुभ्रा को विक्षिप्त कर मानसिक रोगी बना देता है । शिवानी छोटी बहू की मनोदशा का उल्लेख करती हैं - " क्या पता कालिंदी भाभी की प्रेतछाया उसका मुँह दाब, उससे कह रही हो - " तुझे पति सुख नहीं भोगने दूँगी शुभ्रा, तूने झूठी शपथ खाकर मेरा पति मुझसे छीना है न ?"

1- विषकन्या, शिवानी, पृष्ठ 69

2- विषकन्या शिवानी, पृष्ठ 89

यदि शिवलिंग और शपथ पर इतनी आस्था या अंधविश्वास न होता तो न तो कालिंदी काल - कवलित होती और न ही शुभ्रा विक्षिप्त ।

"पिटी हुई गोट' कहानी की आदर्श पात्र हैं साठ वर्षीय वृद्ध गुरूदास की नवपरिणीता 'चन्दों' । भोली, मासूम एवं आदर्श की प्रतिमूर्ति चंदो अपने वृद्ध खूसट पति को ही अपना आराध्य मान उसे देवता की तरह पूजती है । फिर भी उसका पति दीवाली में जुआरियों की संगत में फँसकर अपनी समस्त जमा - पूँजी और दूकान तक हार जाता है । जुये में जीता हुआ मुहिम भट्ट अपनी धूर्तता से द्यूत क्रीड़ा में उसकी पत्नी तक को दॉव में लगवा कर विजयी बन उसे अपनी पत्नी बना लेता है । इसी ग्लानि में उसका वृद्ध किन्तु स्वाभिमानी और निष्ठावान पति तालाब में डूबकर आत्म हत्या कर लेता है । शिवानी की यह कहानी समाज में व्याप्त कुरीतियों पर करारा प्रहार करती हुई कहती है कि कुत्सित प्रवृत्ति के लोग किस प्रकार अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु अंधविश्वास और कुरीतियों का सहारा लेते हैं । इतना सब होने के बाद भी पाठकों की वृद्ध पति गुरूदास के प्रति पूरी सहानुभूति बनी रहती है और दॉव में हारी उसकी पत्नी चंदों की आदर्शवादिता तो आदर्श की पराकाष्ठा को भी लॉघ जाती है " सचमुच वह लक्ष्मी थी, सतयुग की सती, जिसका सुनहरा चित्र कलियुगी चौखटे में एकदम ही बेतुका लगता था ।[1]"

'विप्रलब्धा' कहानी में शिवानी ने नारियों की परनिन्दा प्रवृत्ति की जमकर निन्दा की है --- ' विवाह की तैयारियॉ आरम्भ हो गयी । कहीं गेहूँ और पर्वताकार तिल के स्तूपों को बीनने मुहल्ले - टोले की महिलाओं की चींटी सी कतार चली आ रही थी । चाय और फलाहारी नाश्ते के साथ कई जोड़ा हाथ क्रिया शीलता का नाटक रच रहे थे, जिसमें हाथ कम और जबान ही अधिक चल रही थी । अनाज के कंकड़ ज्यों के त्यों धरे रहते है, पर समाज का कूड़ा - करकट खूब बीना-फटका जाता है, सुना बहन, तुमने ? अंधेर हो गया -----"[2]

1- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ -82

2- कृष्ण वेणी, शिवानी, पृष्ठ 114

" पूतो वाली ' में संकलित' श्राप ' कहानी भी नारी की परनिन्दा प्रवृत्ति की पुष्टि करती है ---" मैं सोचती हूं नारी स्वभाव को जितनी अभिज्ञता विवाहादि अनुष्ठानों में बटोरी जा सकती है, उतनी शायद जीवन भर इधर - उधर विभिन्न गृहों के अतंरंग कक्षों में झॉक - झूँक कर नहीं बटोरी जा सकती है ।"[1]

जहाँ 'श्राप' कहानी नारी की निन्दा प्रवृत्ति का प्रमाण है, वहीं दहेज के दुष्पारिणामों का एक दस्तावेज भी है । शिवानी इस मूक अन्याय की साक्षी हैं ----" अब कभी-कभी सोचती हूँ कि नारी होकर भी मैं उन्हें एक नारी के प्रति हो रहे अन्याय का विरोध करने को क्यों नहीं उकसा पाई । क्यों नहीं कह सकी कि जो संगाई में ही ऐसे नीचे लोलुप स्वभाव का परिचय दे गया, उसे क्यों अपनी कन्या सौंप रहे हैं आप ? अभी क्या बिगड़ा हैं , तोड़ दीजिये यह सगाई "[2]

शिवानी दहेज लोभियों द्वारा जलायी गयी नववधू की वेदना की अनूभूति से सिहर उठती हैं और गहन पश्चाताप में डूब जाती है कि समय रहते उन्होनें कन्या पक्ष को क्यों नहीं सचेत किया ।

'विप्रलब्धा' कहानी की नायिका निम्मी की शादी पहाड़ में होते - होते रह जाती है । पहाड़ी जीवन में विकृत परिवर्तन को देखकर शिवानी क्षुब्ध हो उठती है और यह सोचने को विवश होती हैं कि अच्छा ही हुआ जो रूप मदमत्त गर्वीली निम्मी की शादी पहाड़ में नहीं हुई अन्यथा वह सुशिक्षिता यहॉ कैसे निभा पाती - " आज सोच रही हूँ, बहुत अच्छा किया निम्मी, जो तू पहाड़ नहीं आई । प्रांगण अब भी वहीं हैपर अब वह पत्ते पर झॉक धरकर बॉटने वाला पीढ़ी बीत गयी है । जहॉ तिल का एक - एक दाना भी बॉट कर खाया जाता है, आज वैमनस्य की चिनगारी ने भाई-भाई को खून का प्यासा बना दिया है । आज घर - घर में दारा, मुराद और औरंगजेब हैं । लड़कियॉ स्वच्छन्द होकर बाजार में सिर उघाड़े घूम सकती हैं । आज उन्हें हमारी भॉति टोकने वाला कोई नहीं हैं । युग पुरूषनेकरवट ले ली हैं ।[3]

1- पूतोवाली, शिवानी, पृष्ठ 92

2- पूतोवाली, शिवानी, पृष्ठ 95-96

3- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ 115

शिवानी का यह सामाजिक चिन्तन निरर्थक नहीं है । आज समाज परिवर्तन को जिस द्रुतगति से स्वीकार कर रहा है, वह पहाड़ से फिसली हुई चट्टान के समान स्वयं पहाड़ी पगडंडियों पर चलने वालों के लिये कितना घातक हैं, यह शिवानी के उक्त कथन में द्रष्टव्य हैं ।

साधु, संतो, स्वामियों और गुरूओं पर अंध विश्वास करने के कारण न जाने कितने परिवार विघटित और भग्न हो जाते हैं । न जाने कितनी नारियाँ वासना की शिकार हो आत्महत्या करने को विवश होती हैं । निर्वाण कहानी की नायिका मनोरमा चोपड़ा का जीवन एक ऐसे ही तथाकथित गुरूदेव के कारण विनष्ट हो गया। जब कि मनोरमा चोपड़ा आदर्श नारी के रूप में जानी जाती थीं ----" मनोरमा चोपड़ा एक आदर्श पत्नी, पुत्रवधू और जननी थी । उसका सुखी परिवारिक जीवन किसी भी सम्पन्न श्रीमंत की पत्नी को ईर्ष्या से उद्वेलित कर सकता था ।[1]" किन्तु पढ़ी-लिखी मनोरमा न जाने कैसे गुरू के चक्कर में पड़ गयी और स्वय ही अपनी सुखी गृहस्थी में आग लगा बैठी - " अपनी सुखी गृहस्थी की लक्ष्मण रेखा स्वेच्छा से ही लॉघ कपटी रावण का हाथ पकड़ लिया था । पहले भी कई बार उसकी पति से इन्हीं गुरू को लेकर झड़प हो चुकी थी । आये दिन उनके साथ धार्मिक गोष्ठियों में भाग लेने, देश-विदेश की खाक छानती मन्नू (मनोरमा) पति, पुत्र, पुत्री सबको भुला बैठी थी ।[2]" आश्चर्य तो तब होता है जब वह बुखार से ग्रस्त अपने बेटे को छोड़कर गुरू के साथ सदैव के लिये जाने को तत्पर होती है, तब उसकी सास गुरू से मन्नू को समझाने को कहती हैं , किन्तु गुरूदेव अपनी मूक दृष्टि से सबको वही झुलसा दते हैं ' एक सुखी सम्पन्न परिवार की नींव में जानबसूझकर ही डाइनामाइट सुलगाता, वह संसार त्यागी, रहस्मय, स्वामी चुपचाप खड़ा था [3]" क्षोभ तो उस समय और हुआ जब देश के प्रमुख समाचार पत्रों ने उसके गुरूदेव की धज्जियाँ उड़ाकर रख दीं । उनकी तस्करी की कहानियाँ, भोली-भाली युवतियों को ही नहीं, अनेक सुशिक्षिता आधुनिकाओं को भी अपने सम्मोहन पाश में बाँधने का रंगीन विवरण, कई विदेशी चेले चपाटों को लूटपाट कर उन्हें पथ का भिखारी बना देने का लेखा पढ़कर मनोरमा के घर वाले सकते में आ गये ।

1- स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 63

2- स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 72

3- स्वयंसिद्धा , शिवानी, पृष्ठ 73

एक बार मनोरमा शिवानी से अपने गुरूदेव के दर्शन करने को कहती है तो शिवानी ने उसे आधुनिक समाज के परिप्रेक्ष्य में जो घुट्टी पिलाई, उसका भी उस पर कोई असर नहीं पड़ा , जबकि शिवानी की यह समाज - सापेक्ष घुटटी उसकी ऑखों खोल सकते में पूर्णतया: सक्षम थी ---' माफ करनामन्नू, मेरी इन स्वामियों में कोई श्रद्धा नहीं है । मैं एकदम ही एग्नोसिक हूँ, ऐसी बात नहीं है, ईश्वर में मेरा दृढ़ विश्वास है, किसी लब्ध प्रतिष्ठित स्वामी का सान्निध्य, मेरे या अन्य किसी के जीवन में, मॉगलिक परिवर्तन संघटित कर सकता है, या किसी गुरू का भृकुटी - विलास अप्रसन्न होने पर किसी का, अनिष्ट कर सकता है । यह सहसा मान लेने को मेरा चित्त प्रस्तुत नहीं होता ।[1]"

समाज अन्धानुगमन से मुक्त हो और स्वामियों के चमत्कारों का जादू समाप्त हो इसलिये 'अपराजिता" कहानी की अपराजिता नायिका आरती सक्सेना जो आदर्श की पराकष्ठा है, ने भी इन पाखण्डी साधुओं को खरीखोटी सुनाकर उनकी धज्जियाँ उड़ाई हैं ---' तुम जैसे भण्ड स्वामियों को मैं खूब जानती हूँ । एक बार आजमगढ़ में, ऐसे ही आश्रम से मैने छापा मारकर सेरों अफीम बरामद की थी । जवान छोकरियों को अपने इस आश्रम में बटोर, तुम कैसी दीक्षा दे रहे हो, इस छोकरी को देखते ही मैं समझ गयी हूँ ।[2] दहकते अंगारे - सी लाल ऑख्वें खोलकर औघड़ गुरू ने उस आबकारी - अधिकारी को डराने की चेष्टा की - " जानती है तु, किससे बातें पर कर रही है? किन्तु डरना तो दूर रहा , वह तेजस्विनी निर्भीक हिरनी-सी ही गरज उठी -" हाँ, हाँ, जानती हूँ । एक ऐसे धूर्त चोट्टे से, जो लोगों की सुखी गृहस्थी उजाड़, योग में नहीं भोग में लिप्त हैं "[3] इतना कहकर वह तेजी से पलटकर निकल गई थी ताकि यथाशीघ्र आश्रम में छापामार कर उस औघड़ गुरू की धर - पकड़ की जा सके

"सौत" कहानी में महेश की पत्नी नीरा एक आदर्श पत्नी की भाँति पति की छत्रछाया में सन्तुष्ट रहती है । किन्तु प्रतिवेशिनी राज्यम् की अंतरंगता उसके जीवन में विष घोल देती है । नीरा रिश्ते में शिवानी की ननद लगती थी । उनकी इस अंतरंगता को देखकर सशंकित शिवानी पहले इसे अपना भ्रम मात्र समझती है --- ' हो सकता था वह संदेह मेरी आवयकता से अधिक, संस्कार ग्रस्त देहाती चित्त की, कल्पना मात्र हो ।

1- स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 65

2- स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 59

3- स्वयंसिद्धा शिवानी , पृष्ठ - 60

क्या पता ? आधुनिक पतिव्रता की मान्यतायें, अब हमारी मान्यताओं से भिन्न। बन , पति को ऐसीस्वतन्त्रता स्वेच्छा से ही दे देती हों [1]" फिर भी रात -दिन महेश के साथ राज्यम का उठना - बैठना उन्हें अच्छा नहीं लगा और चलते-चलते उन्होनें नीरा को आगाह कर ही दिया था ' तुम्हारी सखी से तुम्हारी ऐसी मैत्री देखकर बड़ा आनन्द आया, किन्तु एक अंग्रेजी की कहावत सुनी है ? अंतरंगता घृणा की जननी होती है, इसे मत भूलना, नीरा ।[2] भोली नीरा अप्रत्यक्ष रूप से किये गये इस संकेत को भी नहीं समझ सकी - "हाय, भाभी, तुम्हें क्या लगता है कि मैं किसी से लड़ंगी ?[3]"

किसी शादी में पहाड़ आने पर शिवानी को जब यह पता चलता है कि नीरा का पति महेश अपनी प्रतिवेशिनी को लेकर मद्रास भाग गया है और नीरा एकदम गुमसुम हो गयी है, तब शिंवानी प्रायश्चित की अग्नि से दग्ध हो उठती हैं " मुझे बार- बार यही लगता है कि वह पृथ्वीराज संयुक्ता की जोड़ी यदि आधी- आधी रात मेरे लिये पान लेने न जाती तो शायद नीरा का उतना बड़ा सर्वनाश नहीं होता [4] लेकिन होनी क्या कभी टल भी सकती है ? नीरा के माध्यम से शिवानी ने यह दर्शाया है कि प्रतिवेशी पत्नियों से ज्यादा घनिष्ठता नहीं रखनी चाहिये । यदि नीरा राज्यम् को अपने घर में इतनी छूट न देती तो शायद उसका भविष्य इस तरह अंधकारमय न होता ।

'स्वप्न और सत्य ' नामक संस्मरणात्मक कहानी में शिवानी ने यह बताने का प्रयास किया हे कि बंद पलको का स्वप्न कभी - कभी खुली आँखों का स्वप्न बन जाता है । ऐसी अलौकिक या अविश्वसनीय घटनाओं पर विश्वास तभी होता है , जब स्वयं पर बीतती है । इस सन्दर्भ में शिंवानी ने समाज की उस व्यवस्था पर अपनी लेखनी चलाई है, जिसके

1- स्वयंसिद्धा, शिवानी, पृष्ठ 81

2- स्वयं सिद्धा , शिवानी पृष्ठ - 82

3- यथोपरि

4- स्वयंसिद्धा , शिवानी पृष्ठ 83

कारण घूरे के पास पड़े किसी ' शिशु-कबीर' को कुत्ते के पिल्ले सा भी स्नेह और संरक्षण नहीं मिलता है ---" कुत्ते के पिल्ले का पालना कितना सहज है, मनुष्य के दुधमुँहे को पालना कितना कठिन । श्वान शिशु का कुलगोत्र समाज नहीं माँगता, उसके जनक का परिचय उसके जीवन के लिये अनिवार्य नहीं होता, किन्तु मानव शिशु के जनक का अभिमान उसके प्रत्येक श्वास के लिये अनिवार्य हो उठता है [1]"

शिवानी ने स्वप्न में एक नवजात शिशु को देखा था । दूसरे दिन पुस्तकालय से लौटते समय उन्होनें सचमुच वैसे ही नवजात शिशु को बरसते मौसम में निर्जन स्थान मे अकेले रोते देखा और उसे उठाकर भी वहीं छोड़ दिया, साथ नहीं ला सकीं, न ही उस जन शून्य स्थान में अधिक समय तक ठहर सकीं । कारण शिवानी स्वय बताती हैं ---" और फिर कहीं किसी ने इस जंगल में , नीली साड़ी में लिपटे इस चीखते शिशु के साथ मुझे पकड़ लिया तब ?" तब इस 'तब' के लिये दी गयी लाख दलीलें भी समाज के सहज शंकालु मन को सन्तुष्ट न कर पातीं और समाज शिवानी को एक विचित्र दृष्टि से घूरता । शिवानी का दर्द यही है कि चाह कर भी कोई संवेदन शील हृदय घूरे के ढेर में पड़े इन रत्नों को उठा कर अपना नहीं सकता , और विशेष कर अविवाहित युवा कन्यायें, क्योंकि उनका औदार्य उनके ही कौमार्य के लिये अभिशाप बन सकता है ।

'चार दिन की ' नामक कहानी शिवानी की संस्मरणात्मक कहानी है । शिवानी ने संस्मरणात्मक कथाओंकेलिये जिन प्रसंगों एवं घटनाओं का चयन किया हे, वे सामाजिक चिन्तन को दिशा देने में सफल हुए हैं । आज समाज में हिन्दू और मुसलमान जिस शंकालु दृष्टि से एक दूसरे को देखते या परखते हैं, वैसा आज से कुछ वर्षो पूर्व नहीं था । इसी सामाजिक सौहार्द का शिवानी ने " चार दिन की ' कहानी मे उल्लेख कर समाज से फिर वही अपेक्षा की है - "साहबजादे अब्दुल वाहिद खान मेरे पिता के घनिष्ठ मित्र थे । उनके परिवार ने मेरे पिता की मृत्यु के समय जिस स्नेहपूर्ण ओदार्य का परिचय दिया था, वह कोई ~~xxxxxx~~ निकट आत्मीय भी शायद ही दे पाता । आज जब इंच-इंच की सीमा निर्धारित करने के लिये असंख्य लाशें बिछ जाती हैं, जब क्षणिक समझौते की सीमा की राख में दबी,

---

1- माणिक, शिवानी, पृष्ठ 107

2- यथोपरि ।

धार्मिक विद्वेष की चिनगारियाँ कभी भी लपलपाती लपटों की सृष्टि कर सकती हैं, हिन्दू - मुस्लिम एकता के ऐसे दृष्टान्त सम्भवतः मन गढंत ही लग सकते हैं, पर एक समय ऐसा भी था, तब ताशकंद के निरर्थक समझौते नहीं हुआ करते थे । अपूर्व मैत्री के उन समझौतों मे रहते थे अदृश्य हस्ताक्षर, जिनके खोखले प्रदर्शन की किसी भी पक्ष को उत्सुकता नहीं रहती थी ।[1]"

'ठाकुर का बेटा ' कहानी में शिवानी ने सौतों के मधुर सम्बन्धों का जो उल्लेख किया है, वह अत्यन्त सुखद है ' ठाकुर की पतिव्रता पत्नियों का राधा -रूक्मन सा जोड़ा । जिन्होंने कभी सौतो का रिश्ता नहीं माना, सगी बहनों में भी ऐसा प्रेम नहीं होता [2]" इतना ही नहीं जब ठाकुर ने पुरोहित जी की ज्योतिष गणना पर विश्वास कर पुत्र कामना से तीसरा विवाह कर एक नई सौत ले आये तो भी तीनों मे एक अबूझ समझौता देखने को मिला - "

"सौतो के स्नेहपूर्ण प्रतिबन्धों में बंधकर हंसा निहाल हो गयी । विमाता की ताड़ना ने उसके सुनहरे बचपन में विष घोल दिया था, दोनों सौतो के अप्रत्याशित स्नेह से सब विष घुलकर बह गया ।[3]"

कहने का अभिप्राय यह कि पत्नियाँ यदि सूझ-बूझ से काम लें तो उनका दाम्पत्य जीवन कभी कष्टमय नहीं रह सकता । यद्यपि बहुपत्नी प्रथा किसी भी दशा में अच्छी प्रथा नहीं है, किन्तु जहाँ कहीं भी ऐसी स्थिति आये तो यह कहानी उनके विषाक्त जीवन में अमृत घोल सकती है, ऐसा विश्वास है ।

आज भी समाज में डॉ0 खजानचन्द्र जैसे देवतुल्य डॉक्टरों की कमी नहीं है, कमी है हमारी राजनीति में डूबी सामाजिक संरचना की, जिसने डॉ0 खजान चन्द्र जैसे दुलर्भ रत्न की कद्र नहीं की --' यह हमारा सचमुच दुर्भाग्य है कि राजनीति का विष शिक्षा एवं चिकित्सा से सम्बद्ध पावन सस्थाओं तक फैल गया है ।प्रत्येक नियुक्ति एक राजनीतिक दल की नियुक्ति होती है, गुणी योग्य व्यक्ति की नहीं ।[4]

1- माणिक, शिवानी, पृष्ठ 11।
2- चिरस्वयंवरा, शिवानी, पृष्ठ 106
3- चिरस्वयवरा, शिवानी पृष्ठ -108
4- मेरा भाई, शिवानी , पृष्ठ - 65

'मेरा भाई' कहानी में भी शिवानी 'चार दिन की ' कहानी की भाँति अपने मुस्लिम भाई हामिद को निष्कपट दोस्ती और बहन के नापाक रिश्ते की दुहाई देते हुए लिखती हैं -- " आज जब समस्त पृथ्वी हिंसा से उन्मत्त हैं, जातिवाद रक्तबीज दैत्य के रक्त की बूँदों की भाँति नित्य शत-सहस्त्र दानवों की सृष्टि कर रहा है, जब राम जन्म भूमि और बाबरी मस्जिद जैसे व्यर्थ के प्रसंगों ने विभिन्न धर्मावलम्बियों के हृदय संदेह के आरे से चीर दिये हैं -- तब कभी - कभी लगता है कि यदि किसी ऐसे व्यक्ति की चर्चा की जाये, जो मुसलमान होकर भी हिन्दू था तो शायद लोगों को विश्वास नहीं होगा ।[1]"

कभी किसी प्रसंग पर शिवानी ने उन्हें छेड़ दिया कि मैं हिन्दू हूँ , आप मुसलमान । रूष्ट होकर हामिद भाई कहते हैं " फिर वही बेहूदी बात ! न तुम हिन्दू न हम मुसलमान, न तुम्हारे मंदिर न हमारी मस्जिद । बस यह याद रखना बच्ची, तुम हमारी बहन हो, हम तुम्हारे भाई । यही एक रिश्ता है हमारा और हमेशा रहेगा ।[2]

हामिद भाई शिवानी को अपनी सगी बहन से बढ़कर मानते थे । ईद पर शिवानी को ईदी और सिवइयाँ अवश्य देते थे । और शिवानी भी ईद के दिन उनकी अपलक प्रतीक्षा किया करती थीं -- " इस बार लखनऊ लौटने के दूसरे ही दिन ईद पड़ी । मैं बड़ी देर तक उनकी राह देखती रही । ऐसा क्या कभी हुआ था कि वे मुझे ईदी देने न आयें ? साथ में रहता था रूमाल में बंधा सेवइयों से भरा कटोरा । उनके यहाँ क्या कभी चूल्हा जलता था ? होटल में रहते थे, पर ईष्ट मित्र सेवइंया भेजते थे। मेरे हिस्से की सहेजकर कटोरे में रख लेते । घर - घर की विभिन्न स्वाद, रंग , रस की सेवाइयों की वैसी दुर्लभ सौगात शायद ही किसी को जुटती होगी । इस बार वे नहीं आये, न उन्होनें बंबई से लिखे गये मेरे पत्र का ही उत्तर दिया था । मेरा माथा ठनका और मैंने एक परिचित मित्र को फोन किया । " अरे क्या आपने नहीं सुना ? उनका तो मई में ही इंतकाल हो गया । सोये थे , बस सोते ही रहे ।[2]"

1- मेरा भाई, शिवानी, पृष्ठ -7
2- मेरा भाई, शिवानी, पृष्ठ -16
3- मेरा भाई, शिवानी , पृष्ठ 17
4- मेरा भाई, शिवानी, पृष्ठ 7

दोनों की इस आत्मीयता को देखकर हिन्दू - मुस्लिम का जातीय बैर अपने आप ही धुलकर बह जाता है । इस कहानी के माध्यम से शिवानी ने यह दर्शाया है कि हम जातिवाद की खाई को पाटकर मानवीय सम्बन्धों को जी सकते हैं ।

ग. कहानी के पात्रों में जीवन संघर्ष के प्रति आस्था

संघर्षों की छेनी जीवन की अनगढ़ शिला को दिव्य स्वरूप प्रदान करती है । जीवन का संघर्ष जहाँ एक ओर मनुष्य को क्षरित करता है, वहीं दूसरी ओर उसे मजबूत भी बनाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे तपने के पश्चात् सोने में और निखार आ जाता है । जीवन का सच्चा अर्थ संघर्षों से जूझने के पश्चात् ही समझ में आता है । अतः जो संघर्षों के पद - प्रहार को सहर्ष स्वीकार करता है , उसका जीवन अहल्या की तरह पावन एवं जीवंत हो उठता है । शिवानी ने अपनी कहानी के पात्रों को जीवन संघर्ष के प्रति इसी प्रकार आस्थावान बनाया है ।

' जा रे एकाकी ' कहानी की नारी पात्र चनुली की जीवन संघर्ष के प्रति अगाध आस्था है । उसके प्रति के बारे में यह अफवाह फैल जाती है . कि उसका पति फौज में मारा जा चुका है । उस समय यह प्रतिबद्धता अनिवार्य रूप से थी कि विधवा स्त्रियाँ सुहाग चिन्ह धारण न करें और यदि वे ऐसा करती हैं तो निश्चित ही उन्हें 'कुलटा ' शब्द से विभूषित होना पड़ता था । चनुली अपना मंगलसूत्र धारण किये रहती है, क्योंकि उसे विश्वास था कि उसका पति जीवित है । उसके मंगलसूत्र को देखकर उसकी कुटिल प्रतिवेशिनी उसे लांछित करती है । क्रोध में आकर चनुली उसकी हत्या कर देती है और इस सम्बन्ध में वह जो तर्क प्रस्तुत करती हैं -- ' मेरा मन कहता था कि वे जिन्दा हैं और मेरा मन कभी झूठ नहीं बोलता । इसी में मैं चर्यो, फुल्ली नहीं उतारती थी, और क्या मैं सजने - धजने के लिये यह सब करती थी, फिर उसी रात को , मैंने उन्हें सपने में देखा था । "[1] इतना ही नहीं जेल जाते समय जब उसके सारे गहने उतरवा कर पटवारी उन्हें पत्थर पर रख देता है तो वह भावी अपशकुन से भयभीत हो पटवारी को तुरन्त टोककर जीवन संघर्ष के प्रति पुनः अपनी आस्था व्यक्त करती है -- " फिर फुल्ली उतारकर पत्थर पर धर दी तो मैंने पैर पकड़ लिये आप तो पहाड़ी हैं, जानती ही होंगी कि सोहाग कहीं पत्थर पर धरा जाता है । "[2] अपने सुहाग के प्रति वह इतनी आशावान है कि स्वयं शिवानी से उसके सुरक्षित होने की पुष्टि करने का आग्रह कर बैठती है - ' तुम जरा जाकर अपनी आँखों से देख लेना दीदी, मेरी फुल्ली ठीक से धरी है या नहीं ।[3]"

1- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ -35
2- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ 40
3- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ 40-41

अपने सधवा होने का दृढ़ विश्वास उसे अंत तक विधवा नहीं होने देता है । उसका पति जीवित फौज से वापस आता है और चनुली से जेल में मिलकर सजा कम करवाने की अपील करता है । वस्तुतः चनुली एक ऐसी सशक्त पात्रा है , जिसकी जीवन के प्रति गहरी आस्था है और आस्था की इसी ऊर्जा के बल पर वह जेल के यातनामय नारकीय जीवन को भी सुखद बना सबको वशीभूत कर लेती हैं ।

"चीलगाड़ी" की नायिका के असमय वैधव्य को जब श्वसुर का विपुल वैभव भी नहीं बाँध सका तो वह रिश्तों का बन्धन और रूढ़ियों की जंजीर को तोड़कर एयर होस्टेस की नौकरी कर लेती है । इस प्रकार वह अपने को पाखण्डी स्वामी आत्मानन्द की वासना का शिकार होने से तो बचाती ही है, साथ ही देवर देबूलला की बेजा हरकतों से भी अपनी रक्षा करने में समर्थ होती है । सब कुछ छोड़कर नौकरी करना ही उसके नवजीवन का प्रथम अध्याय बनता है और यही सिद्ध करता है कि उसमें जीने के लिये संघर्ष करने की शक्ति है । उसका स्वयं का अस्तित्व है । वह धन की ओर से खींची जाने वाली पंतग मात्र नहीं है । वह एक जुझारू नारी हे, परिस्थितियों से समझौता कर स्वयं निर्णायक बनकर कहती है --- ' मुक्ति का एक ही उपाय था । चन्द्रावती मसीह मेरे साथ पढ़ती थी । हम दोनों की मैत्री , विमाता की पैनी दृष्टि की लपटों से भी नहीं झुलस पाई थी । उसने लिखा था, मामा बहुत बड़े - बड़े लोगों को जानते हैं, तू यहाँ चली आ और तेरे परी से चेहरे को देखते ही वे तुझे एयर होस्टेस बना लेगें । कितना सन्दर प्रस्ताव था । पृथ्वी के भूखे भेड़ियों की पहुँच से दूर उड़कर एकदम आकाश में । ------ मैं अब पृथ्वी छोड़कर आकाश में आ गयी हूँ ।[1]" उसका यही विवेक पूर्ण निर्णय उसकी जीवन धारा को बदल देता है । वह अपने व्योमलोकीय जीवन से पूर्ण सन्तुष्ट दिखती है ।

डॉ0 खजानचन्द्र एक ऐसे प्रेरणा दीप पात्र हैं, जिनके प्रकाश में कोई भी थका, -हारा भूला भटका पथिक अपना पथ खोज सकता है । उनकी जीवन संघर्ष के प्रति गहरी आस्था है और उनके अन्दर कुछ कर दिखाने की जो ललक है , वह अनेक संकटों की कारा

1- करिये छिमा, शिवानी, पृष्ठ 142

में घुटकर दम तोड़ने के बजाय कारा की सलाखों को ही तोड़कर दम लेना चाहती है । डॉ0 खजानचन्द्र ने कभी अव्यवस्था में डूबते अल्मोड़ा के सैनिटोरियम को जीवन-दान दिया था, कुछ राजनीतिक लोगों की स्वार्थपरता के कारण उन्हें बड़ी अनिच्छा से वही सैनिटोरियम छोड़ना पड़ा उन्हीं खजानचन्द्र की संघर्षशक्ति का एक चित्र शिवानी की लेखनी इस प्रकार खींचती है --" इस अनोखे गुणी विशेषज्ञ को न सम्मान की आकांक्षा है न किसी के प्रति क्षोभ या उपालम्भ। नैनीताल के सीमांत पर बसे "लौंगव्यू' के एकान्त में वह आज भी अपनी उस क्षयरोग की आमूल विध्वंसकारिणी औषधि के नित्य - नवीन प्रयोग में वैसे ही आकण्ठ डूबा रहता है । ऊँचे देवदारू सा शरीर अभी भी वयभार से नमित नहीं हुआ है चाल में वही फुर्ती है और आँखों में वही विनम्र दीप्ति [1]"।

"मेरा भाई" कहानी के पात्र हामिद भाई ने शिवानी के प्रति की मृत्यु के पश्चात् शिवानी को जीने , संघर्ष करने और धैर्य रखने की जो शिक्षा दी थी, वह शिवानी के लिये किसी शस्त्र से कम नहीं थी --- "" कभी मौत से मत डरना । हमें देख, दोनों पैर क़ब से कब्र में लटकाए बैठे हैं । अल्ला मियाँ ने पुकारा और हम उतर पड़े कब्र में । याद रख, बुजदिलों को ही मौत तड़पा-तड़पा कर मारती है । चूहा बिल्ली से डरता है, तभी तो बिल्ली उसे पटक - पटक कर मारती है । जो मौत से नहीं डरते , मौत उन्हें कंधे पर बिठा कर ले जाती है । [2]" सचमुच शिवानी को विपत्ति से जुझने का जिरहबख्तर उन्हें हामिद से ही मिला था । उन्होनें स्वयं स्वीकारा है " पति की मृत्यु के पश्चात् एक हामिद भाई ही विपत्ति के उस कठिन क्षण में मेरे साथ खड़े रहे । -- देख बच्ची', मेरे कंधे पर उन्होनें हाथ धरकर कहा था, हिम्मत हारेगी तो काम नहीं चलेगा । कमर कस और आगे बढ़ । इंशा अल्ला मियां खुद हाथ बढ़ा देगा।"[3]

1- मेरा भाई, शिवानी, पृष्ठ 65-66

2- मेरा भाई , शिवानी, पृष्ठ 16-17

2- मेरा भाई, शिवानी, पृष्ठ -8

हामिद भाई स्वयं अपने जीवन के अंतिम क्षणों तक संघर्षरत् रहे । उनके सभी परिचित और रिश्तेदार किनारा काट गये थे । किन्तु अपनी संघर्ष शक्ति के बूते पर वे अपराजेय योद्धा की भाँति अंत तक अकेले डटे रहे । यदि उनमें जीवन संघर्ष के प्रति अटूट ~~तक अकेले डटे रहे । यदि उनमें जीवन संघर्ष के प्रति अटूट~~ आस्था न होती तो अपने विपत्ति के क्षणों में रिश्तेदारों के इस प्रकार कन्नी काट जाने पर न जाने कब के टूट चुके होते । फिर शिवानी को जीवन से संघर्ष करने का जो अमोघ अस्त्र दिया था वह कहाँ से दे पाते ।

-चिरसाथी मोर- कहानी के पात्र लोहनी जी का जीवन भी अंतर्संघर्षों से भरा था किन्तु उन्होनें भी जीवन संघर्षों से कभी हार नहीं मानी और अपनी इसी अन्तर्शक्ति के कारण वे अपने जीवन में अपराजेय बने रहे ।

लोहनी जी शिवानी के परिवार के जितने भी प्रकार के सचिव हो सकते हैं, सभी थे । गृह सचिव, सूचना सचिव एवं वित्त सचिव आदि सभी का कार्यभार अकेले वही संभाले थे । वे शिवानी के परिवार में इतने घुल - मिल गये थे कि उन्हें दूध से पानी की तरह अलग करना दुरूह कार्य था । उनके जीवन संघर्ष के सन्दर्भ में शिवानी जी ने लिखा है - -"अब उनकी आँखों की ज्योति भी क्षीण हो चुकी थी । वह सीना जो हमेशा कबूतर सा तना रहता था, सिमट - सिकुड़ कर बित्ते भर का रह गया था । उनके बंद गले का काला कोट , क्रिकेट खिलाड़ियों सा सफेद पीली - नीली पट्टीदार स्वेटर जो कभी मेरे पिता ने उनकी फरमाइश पर उन्हें विदेश से लाकर दिया था , क्रमशः क्षीण होती जा रही काठी पर ऐसे झूलने लगे, जैसे खेतों में खड़े बाँस के काकभगोड़े के तन पर झूल रहे हों । किन्तु रस्सी जल कर राख भले ही हो गई हो, ऐंठ नहीं गयी थी । उनकी जेब घड़ी, जिसने हमारे घर की तीन - तीन पीढ़ियों के हर पल, हर क्षण को अनुशासन में साध रखा था, अभी भी उसी बांकपन से, एक सिरा उनके कोट के बटन से लटकाये, उनकी जेब में टिक्-टिक कर रही थी । किन्तु उनके जीवन की घड़ी धीमी पड़ने लगी । माँ उनसे कई बार घर लौट जाने का आग्रह कर चुकी थीं, किन्तु उनकी अदम्य जिजीविषा ने उन्हें और भी जिद्दी बना दिया था । कैसे जाऊं ? अभी तो त्रिमी की शादी देखनी है, उसके बच्चों को गोद में खिलाना हैं"-[1]

1- मेरा भाई , शिवानी, पृष्ठ 78-

निःसंदेह यह लोहनी जी की जीवन संघर्ष के प्रति आस्था ही है । जीवन संघर्ष के प्रति अपनी इस आस्था का एक और पुष्ट प्रमाण उन्होंने शिवानी को प्रथम बार ससुराल से मायके आने पर नसीहत के रूप में दिया था, क्योंकि शिवानी की ससुराल कट्टर सनातनी थी, घर में सास न होने के कारण पहली ही बार उन्हें घर के कामों में खटना पड़ा था । शिवानी को सिसकते देख उन्होंने समझाया था -- " रो मत । तुझे पति तो देवता मिला है ना ? धीरे - धीरे ये छोटे-मोटे बादल खुद छंट जायेंगे । पहाड़ी डोट्यालों को देखा है ना ? (पहाड़ी कुली जो अपनी ईमानदारी एवं दुर्वह बोझा ढोने के लिये कभी प्रख्यात थे) उनसे सीख । जब उनकी पीठ पर तीन - तीन मन का बोझा लाद दिया जाता है तो जान लेवा चढ़ाई बिना चूँ- चपड़ किये कैसे झेल लेते हैं, जानती है ? उस बोझ पर स्वयं मन भर का पत्थर लाद लेते हैं । आधी चढ़ाई चढ़ फिर खुद लाये गये उस पत्थर को दूर भनका देते हैं -- पीठ का बोझा अचानक फूल सा हलका लगने लगता है । और फिर देखते - ही - देखते रही - सही चढ़ाई वे पल भर में पार कर लेते हैं । वे कभी एक सीध में नहीं चलते , कभी दायें और कभी बॉए यानी उबाऊ दिनचर्या में पल - पल खुद बदलाव ले आते हैं । वही सीख समझी। बोझा कभी भारी बोझा नहीं लगेगा ।[1] "

जीवन संघर्ष के लिये दिया गया लोहनी जी का उपर्युक्त मंत्र शिवानी के जीवन में कितना प्रतिफलित हुआ, इसका उल्लेख स्वयं शिवानी ने किया है " जीवन के दुर्वह बोझ पर स्वयं लादा गया भारी पत्थर तो अब कबका भनका कर दूर फेंक चुकी हूँ । पीठ का बोझ स्वयं ही फूल सा हलका लगने लगा है । जीवन की एक रसता की तीखी चढ़ाई में दायें - बायें चलने का प्रयास भी व्यर्थ नहीं गया । आधी से अधिक चढ़ाई तो पार कर ही ली है । लोहनी जी का दिया गया गुरू मन्त्र रही - सही चढ़ाई भी पार करा ही देगा ।[2]

1- मेरा भाई, शिवानी , पृष्ठ - 82-83

2- मेरा भाई, शिवानी, पृष्ठ 83

वस्तुतः जीवन संघर्ष से ही जन्म लेता है जीवन दर्शन । शिवानी ने विविध परिचितों - अपरिचितों के जीवन में आये उतार - चढ़ाव को बड़ी सहजता से समेटने की दक्षता प्राप्त किया है शान्ति निकेतन के आशान्त उपवनों में । वृक्षों, उपवनों, पुष्पों एवं समवयस्क सहपाठिनियों के सानिध्य में शिवानी को प्राप्त हुई है उत्कृष्ट शिक्षा की तरह पर दुःख कातरता की भाव प्रवणता ।

इसी भाव प्रवणता से आती है साहित्य की समझ और इसी समझ में सहज हो जाता है द्वन्द्धावेशी मानव जीवन । बंगला साहित्य इसी से जीवन्त है ।

घ. शिवानी की कहानियों में पुरूष पात्रों एवं नारी पात्रों के आदर्श की तुलना

तुलना यानी तौलना - मापना और तौलने - मापने का कार्य तराजू करता है । इस प्रकार तुलना शब्द तराजू का पर्याय हुआ । तराजू का एक पलड़ा ऊपर उठते ही दूसरे को नीचे गिरा देता है और नीचे झुकने वाला पलड़ा दूसरे को ऊपर उठाता अवश्य है अर्थात् पलड़ों का उठना और गिरना तराजू के दोनों पलड़ों की सापेक्ष स्थिति का विज्ञान है । समतुल्य होने के लिये दोनों पलड़ों को समान धरातल में क्षैतिज होना ही पड़ेगा । शिवानी की कहानियों में भी कहीं पुरूष पात्रों एवं नारी पात्रों के आदर्श की समतुल्यता तो कहीं ऊँच-नीच का वैषम्य देखने को मिलता है ।

शिवानी की लम्बी कहानी 'चाँचरी' पुरूष एवं नारी पात्र के समतुल्य आदर्शों की कहानी है । कहानी की नारी पात्र 'बिन्दी' ही चांचरी (परी) के उपनाम से विख्यात है । वह सत्य निष्ठा मितभाषी रहस्यमयी अलौकिकता सम्पन्न सुन्दरी युवती है । प्रमुख पुरूष पात्र श्रीनाथ एक जन्मजात एक्जिक्यूटिव गुणों से युक्त प्रभावशाली व्यक्ति है । वह बिन्दी से विवाह करने के लिये अपने पूरे परिवार का कोपभाजन बनता है । किन्तु 'नहा धोकर घंटो ध्यानमग्ना पद्मासन में बैठी न जाने किन - किन शतसहस्त्र मंत्रों का पाठ बुदबुदाने वाली बिन्दी ' अपने प्रणयी पति श्री नाथ के प्रणय निवेदन का उत्तर देने की बजाये ' दोनों हाथ छाती पर धरे उसकी प्राणप्रिया, दंतहीन भोले शिशु की-सी गहन निद्रा में निमग्न' हो पति श्री नाथ को रात भर पिंजरे में बंद खूँखार शेर सा ही कमरे में चक्कर लगाने को विवश कर देती है । यद्यपि उसकी सेवा में कहीं कोई त्रुटि नहीं थी किन्तु रात को छुई-मुई बनी जा रही बित्ते भर की लड़की के व्यवहार से क्षुब्ध श्रीनाथ उस समय उसका कोई बचाव नहीं कर पाता जब उसकी (श्रीनाथ की) बहन प्रेमा बिन्दी पर गहनों की चोरी का आरोप लगाती है -- ' अरे इतना ही रीझी थी मेरे गहनों पर तो मुँह खोलकर मुझसे माँग लेती । मेरे पास क्या गहनों की कमी थी ?[1] " अब बोलती क्यों नही ? चुप क्यों हो, सच हो तो कह दो तुमने पोटली नहीं छिपाई । ' श्रीनाथ के यह पूछने पर भी जब बिन्दी एक शब्द भी नहीं बोली तो 'मौन

1- चांचरी, शिवानी पृष्ठ 23 (धर्मयुग 16 अक्टूबर 1990 में प्रकाशित)

स्वीकार लक्षणम्' मानकर और अपने को सबके सामने अपमान से नंगा होते देख श्रीनाथ बिन्दी को सबके सामने धकेल घर से बाहर निकाल देता है -- ' जा अपने भिखारी बाप के पास । खबरदार जो कभी इस घर की देहरी लाँघी । यह शरीफों का घर है । [1]"

पति निष्काषिता बिन्दी फिर कभी पतिगृह नहीं लौटी । पिता के साथ वह हरिद्वार में बस गयी । पिता की मृत्यु के बाद वैराग्य धारण कर 'सिद्धि माँ' के रूप में अत्यधिक प्रसिद्धि अर्जित करती है । श्रीनाथ उसके सतेज आनन को देख अवाक् रह जाता है -- " वह अपलक दृष्टि से उसे देख रही थी । इतने वर्षों बाद भी उसे देखकर वह नहीं चौंकी । महामाया का साक्षात पार्थिव विग्रह ही क्या सहसा अवतरित हो उसे सम्मोहित कर रहा था । वह अडिग भव्य मुद्रा में पूर्ववत् खड़ी थी - शाँत, निश्चल, अस्खलित । किसी अदृश्य प्रलयाग्नि की दीप्त प्रभा से उसकी मनोरम काँति रह - रहकर दमक रही थी ।[2]"

सिद्धि माँ बनी बिन्दी से जब श्रीनाथ पत्नी के रूप में घर वापस चलने को कहता है --"मैं तुम्हें लेने आया हूँ बिन्दी । जो कुछ हुआ उसे भूलकर मुझे क्षमा कर दो । मैं तुम्हारा पति हूँ बिन्दी, यह अधिकार मैंने अभी भी नहीं खोया हैं । [3]" इसके उत्तर में बिन्दी बिना किसी आवेग के दस वर्षों से मौन व्रत रखने के कारण स्लेट पर -- " मैने आज तक जीवन में पराई वस्तु का कभी स्पर्श तक नहीं किया है, मैं निर्दोष थी, अब मैं जहाँ हूँ वहाँ से लौटना असंभव है । अब न मेरा कोई अतीत है, न वर्तमान, न भविष्य , तुम चले जाओं और फिर कभी यहाँ न आना ।[4]यह लिखकर थोड़ी देर बाद अपनी गुफा में अदृश्य हो जाती है । श्रीनाथ अकेले लौटने को विवश हो जाता है ।

1- चांचरी, शिवानी पृष्ठ 23 (धर्मयुग 16 अक्टबूबर 1990 में प्रकाशित)

2- यथोपरि , पृष्ठ 21

3- यथोपरि , पृष्ठ 27

4- यथोपरि , पृष्ठ - 27

बिन्दी प्रारम्भ से ही धार्मिक प्रवृत्ति की थी । उसने प्रति को भी पूजा की सामग्री समझा, जबकि श्रीनाथ मानव की सहज मूल प्रवृत्ति काम की कामनापूर्ति का साधन अपनी नवपरिणीता प्राणप्रिया बिन्दी को मानता था । एक दूसरे के पूरब -पश्चिमी स्वभाव, छत्तीस की संख्या, सम-विषम रूचियाँ और जाग्रत स्वाभिमानों ने एक दूसरे को सदा - सदा के लिये खो दिया । दोनों के मन में एक दूसरे के प्रति उपालम्भ है किन्तु अचाह, अनिष्ट और आशंका नहीं । दोनों के क्षेत्र अलग अवश्य थे , किन्तु दोनों ही अपने क्षेत्रों में सफल थे । अन्त में बिन्दी का पलड़ा ही भारी बैठता है । क्षमा माँगने के पश्चात् श्रीनाथ का पलड़ा अनायास ऊँचा हो जाता है । एक भारी है तो दूसरा ऊँचा । श्रीनाथ का अभिशाप तो बिन्दी के लिये आध्यात्मिक उपलब्धि का वरदान बन गया किन्तु बिन्दी का अकुशल पत्नी - व्यवहार श्रीनाथ के जीवन में रिक्तता का विष घोल गया । अतः श्रीनाथ के चरित्र में यदि कहीं - कोई कलुष दिखता है तो उसका कारण श्रीनाथ की चरित्रहीनता नहीं उसकी पत्नी का उसके प्रति प्रेम विहीन ठंडा व्यवहार है ।

इसी प्रकार नियति- नटी के क्रिया - कलापों का परिणाम भोगते पति-पत्नी की व्यथा - कथा ' लाल हवेली' के प्रमुख स्त्री और पुरूष पात्रों के आदर्शों की तुलनात्मक कहानी है ।

कहानी की प्रमुख स्त्री पात्र सुधा है जो हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बंटवारे के समय हुए दंगे में घर से बेघर हो जाती है । घर वाले समझते हैं, वह दंगे में मर गयी । उसका पति अपने शहर के नामी वकील का बेटा होता हे । लाल हवेली उसकी अपनी हवेली है । पत्नी के इस आकस्मिक निधन के लिये वह तैयार नहीं है । किन्तु कर भी क्या सकता था । हृदय पर पत्थर रखकर वह निःसंतान होने पर भी दूसरा विवाह नहीं करता है । बैरागी सा जीवन बितानें लगता है । सुधा को वह एक पल के लिये भी नहीं भूलता । स्वयं ताहिरा बनी सुधा कहती है --' जिस देवता ने उसके लिये सर्वस्व त्यागकर बैरागी का वेश धर लिया है, क्या एक बार भी उसके दर्शन नहीं मिलेगें ?[1]" जब चोरी से बुर्का ओढ़कर सुधा अपने पूर्व पति के दर्शनार्थ जाती है तो देखती हैं -- ' वही गंभीर मुद्रा, वही लट्ठे का इकबर्रा पायजामा और मलमल का कुर्ता । मेज पर अभागिन सुधा की तस्वीर थी जो गौने पर

1- चिरस्वयवंरा, शिवानी , पृष्ठ 62

पर बड़े भैया ने खींची थी । [1]" अपने पति के आदर्श चरित्र और पत्नीव्रत होने का प्रमाण - पत्र देने वाली सुधा भले ही सुधा से ताहिरा बन गयी हो, किन्तु वह न तो सुधा के रूप में चरित्रहीन थी और न ही ताहिरा के रूप में पतिता । वह सुधा के रूप में यदि पतिव्रता पत्नी थी तो ताहिरा के रूप में साध्वी नारी । दोष उसका कभी नहीं रहा । परिस्थितियों ने उसे सुधा से ताहिरा बना दिया ।

दंगे में उसको बचाने वाला रहमान यदि बाद में रहमकर्ता के रूप. में उसका पति बन जाता है तो उस सुधा का क्या दोष जिसकी कल्पना में उसका परिवार दंगे की भेंट चढ गया हो । रहमान की पत्नी के रूप में ताहिरा ने न तो कभी रहमान को छला और न ही रहमान ने उसे मुसलमान बनाकर धोखा दिया । रहमानऔर ताहिरा की जोड़ी आदर्श जोड़ी रही -- " रहमान की जवान बीबी को भी ऐसे ही पीस दिया गया था देहली में , वह जान बचाकर भाग आया था, बुझा और घायल दिल लेकर । सुधा ने बहुत सोचा - समझा और रहमान ने भी दलीलें की, पर पशेमान हो गया । हारकर किसी ने एक - दूसरे पर बीती बिना सुने ही मजबूरियों से समझौता कर लिया । ताहिरा उदास होती तो रहमान अली आसमान से तारे तोड़ लाता , वह हंसती तो वह कुर्बान हो जाता ।[2]"

लाल हवेली के तीनों पात्र - सुधा, सुधा के पूर्व पति और रहमान आदर्श के तराजू पर खरे उतरते हैं । सुधा के दोनों पतियों को यदि तराजू के दोनों पलड़ों पर बिठा दिया जाये तो सुधा के द्वारा डंडी उठाये जाने पर दोनों पलड़े सम स्तर पर क्षैतिज ही रहेगें । न तो रहमान का पलड़ा नीचे - ऊपर जायेगा और न ही वकील पुत्र का । तीनों पात्र आदर्श के एक ही धरातल पर खड़े दिखते हैं ।

1- चिरस्वयंवरा, शिवानी , पृष्ठ 63

2- चिरस्वयंवरा, शिवानी, पृष्ठ 59

"लाटी" कहानी का पुरूष पात्र कप्तान जोशी और स्त्री पात्र बानों, दोनों का ही आदर्श स्पृहणीय है । दोनों का एक - दूसरे के प्रति किया गया उत्सर्ग पाठकों के समक्ष एक नव - आदर्श की स्थापना करता है । कप्तान जोशी अपने घर वालों के मना करने के बावजूद भी अपनी रूग्ण पत्नी बानों की पूर्ण मनोयोग से सेवा-सुश्रुषा करता है । बीमारी के कारण चिड़चिड़ी हो गयी पत्नी की एक स्नेहमयी माँ की तरह हर जिद पूरी करता है । डॉक्टरों के मना करने पर भी कि यह संक्रामक रोग है, उसे पत्नी से दूर रहना चाहिये, वह पत्नी की प्राण - पण से सेवा करता है । जब डॉक्टर उसे नोटिस दे दतें हैं कि वह उसे घर ले जाये क्योंकि अब उसका जीवन - दो - तीन दिन तक का ही है । कप्तान। जोशी घबरा जाता है । उन अमूल्य पलों के अमृतस्वरूपी रस की अंतिम बूँद भी उसे छोड़ना मंजूर न था घर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता था, तीन रसभरे महीनों की मीठी धरोहर को वह घर की कड़वाहट से अछूता ही रखना चाहता था । सैनिटोरियम छोड़कर हम कल दूसरी जगह चलेगें, बानों । यहाँ तबीयत बोर हो गयी है [1]" बडे उत्साह और आनन्द से कप्तान ने कहा, अब मैं तुम्हें किसी अच्छे सैनिटोरियम में ले चलूँगा और वहीं तुम्हारा इलाज कराऊँगा ।

डॉक्टर के द्वारा नोटिस दिये जाने पर भी वह हताश नहीं होता । पत्नी का उससे भी अच्छा इलाज करवाने की कल्पना करता है । वह एक आदर्श पति के धर्म का निर्वाह करता है । पत्नी को टी0बी0 जैसी घातक बीमारी होने पर भी उसे असहाय नहीं छोड़ता, उसकी ऐसी सेवा करता है कि आस - पास के मरीज उसे बड़ी तृष्णा से देखते हैं -- 'पास के बंगलों के मरीज बड़ी तृष्णा और चाव से उनकी कबूतर - सी जोड़ी को देखते । ऐसी घातक बीमारी में कितने यत्न और स्नेह से सेवा करता था कप्तान जोशी । कभी उसके आनन्दी चेहरे पर झुंझलाहट या खीझ की अस्पष्ट रेखा भी नहीं उभरती ।[2] शायद उसके सच्चे स्नेह और आदर्श की पराकष्ठा ही उसकी पत्नी को बचा लेती है, किन्तु वह उसकी पहुँच से दूर चली जाती है ।

1- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ 72

2- कृष्ण वेणी, शिवानी, पृष्ठ 67,

कप्तान जब उसे किसी दूसरे सेनिटोरियम में ले जाने की बात कहता है तो वह समझ जाती है कि उसे भी नोटिस के रूप में मृत्यु का पासपोर्ट मिल गया है । यदि वह घर गई तो उसके सच्चे स्नेही पति को घरवालों का कोपभाजन बनना पड़ेगा । घर जाकर वह करेगी भी क्या । फिर उसके जीवन के दिन ही कितने शेष हैं ? वह अपने पति को अपमानित होते नहीं देख सकती थी अतः एक दृढ़ संकल्प ले वह रात को सैनिटोरियम से चुपचाप निकल जाती है और नदी में छलांग लगा देती है । मृत्यु का वरण कर वह पति को मुक्त करना चाहती थी । कप्तान की सेवा - सुश्रुषा और बानों का प्राण- विसर्जन अपने आप में महान है । बानों की साड़ी चिपकाये महीनों कप्तान सिसकता रहा था । वह दूसरी शादी कर लेने पर भी अन्त तक बानों को भूल नहीं पाता । वर्षों बाद अपनी दूसरी पत्नी के साथ जब वह नैनीताल आता है तो उसे बरबस बानों की याद आ जाती है ----" नैनीताल आकर कप्तान के दिल में एक टीस - सी उठी । काठगोदाम से चलकर गेठिया दिखा और वह गुमसुम - सा हो गया ।[2]"

विस्मृत रूग्ण पत्नी की स्मृति से विह्वल कप्तान का आदर्श अनायास ही पत्नी के प्राण - विसर्जन से भी आगे निकल जाता है । यहाँ आकर कप्तान का आदर्श अनायास ही पत्नी के प्राण-विसर्जन से भी आगे निकल जाता है । यहाँ आकर कप्तान का आदर्श बानों के आदर्श से ऊँचा उठ जाता है ।

"प्रतीक्षा" कहानी के पुरूष पात्र शिवेन्द्रमोहन' और उनकी विदेशिनी पत्नी लिली का आदर्श भी एक -- दूसरे के हृदय की महानता से टक्कर सा लेता नजर आता है । कहानी का नायक विमल उनकी पुत्री मिनी को नापसन्द कर उन्हीं की भानजी माधवी को मानसिक रूप से ग्रस्त होने पर भी पसन्द कर लेता है । शिवेन्द्र मोहन के बहुत समझाने पर भी विमल जब उनके अनेक तर्क - वितर्कों के व्यूह से जीता-जागता निकल ही आता है । तो

1- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ 67

2- कृष्ण वेणी, शिवानी, पृष्ठ - 73

शिवेन्द्र मोहन अपने बंगले से ही माधवी का कन्यादान करते हैं और मन ही मन विमल के इस दुस्साहस की दाद देते हैं ---" मन ही मन शिवेन्द्र मोहन उस दुःसाहसी युवक की आन पर सौ-सौ बार निछावर हो रहे थे । [1]" शिवेन्द्र मोहन की पत्नी ने भी माधवी को दिल खोलकर यथासाध्य दहेज भी दिया ---' माधवी को श्वसुरकुल का एक भी आभूषण नहीं मिला था । आँटी ने ही अपना एक मोटा - सा विदेशी कंकण उसकी कलाई में डाल दिया था । इतना ही नहीं आंटी ने यथासाध्य दहेज भी दिया ।[2]"

यदि शिवेन्द्र मोहन की पत्नी चाहतीं तो उसे अपनी बेटी का अपमान समझकर इस विवाह को कभी न होने देतीं किन्तु जब उन्होंनें देखा कि उनके पति को इस विवाह से कोई आपत्ति नहीं है, प्रत्युत ये पूर्णमनोयोग से इस विवाह में रूचि ले रहे हैं और आँखों ही आँखों में विमल को मूक प्रशंसा का अर्घ्य भी दे रहे हैं फिर वे क्यों पीछे रहती ? चट से उन्होंनें अपने हाथ का विदेशी कंकण माधवी के हाथ में पहना दिया और माधवी के पिता के दीन - हीन होने के कारण उन्होंने दिल खोलकर दहेज भी जुटा दिया । अंततः शिवेन्द्र मोहन और उनकी पत्नी का आदर्श समाज के लिये एक नैतिक आदर्श है ।

शिवानी की कहानियों के नारी पात्र आदर्श की तुलना में न तो पुरूष पात्रों से पीछे हैं और न ही पुरूष पात्र नारी पात्रों से आगे । आदर्श के तुलनात्मक धरातल पर वे नहले पर दहला की तरह खरे साबित होते हैं । शिवानी की कहानी ' कोयलिया मत कर पुकार ' की नारी पात्र बेगम अख्तरी ' एक सुप्रसिद्ध गायिका कलाकार थीं । विवाह के पश्चात् पति ने उसकी गायकी पर बंदिश लगा दी कि अब वे कहीं भी नहीं गायेगी । बेगम अख्तरी ने एक आदर्श पतनी की भाँति पति की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर लिया और अपनी गृहस्थी में डूब गयीं । यद्यपि इसके लिये उनके प्राण कण्ठागत हो रहे थे फिर भी भूलकर भी उन्होंनें पति से इसका जिक्र नहीं किया । किन्तु माँ की मृत्यु के पश्चात् वे मूक रूप से तड़प उठीं । उनके पति ने देखा कि यह केवल उनकी जननी के वियोग की ही मर्मांतिक व्यथा नहीं है यह उनके प्रिय सखा संगीत के वियोग की तड़प भी है । फिर एक दिन स्वयं ही उन्होंनें अपनी प्राण प्रिय बिब्बों (पत्नी) के लिये संगीत के बंद द्वार खोल दिये ।

1- कृष्णवेणी , शिवानी पृष्ठ 6।

2- यथोपरि ।

सामने दो शर्तें भी रख दी ' एक : श्रोताओं के सम्मुख वे नहीं गायेगी । दो: रिकार्डिंग का जो भी पारिश्रमिक मिले, उसे स्वयं चाहे जैसे खर्च करें, घर के खर्चे के लिये, एक आदर्श पत्नी की भाँति, उन्हें पति की ही आश्रिता रहना होगा । [1]

पहली शर्त निश्चय ही कठिन थी । उनके पर्दों के पीछे से गाने पर अखबार वाले नहीं चूकें -- चट से छाप दिया -- 'बेगम का गायन प्रभावित करने में असमर्थ रहा । ' कौन कलाकार अपनी प्रशसा नहीं सुनना चाहता ? बेगम अख्तरी विषाद में डूब गई । पति इश्तियाक अहमद अब्बासी ने उनकी आँखों में तिरते इस विषाद को भी पहचान लिया और तुरन्त उन्होंनें अपना पहला अंकुश स्वयं ही हटा लिया । पति की दूसरी शर्त के अनुसार बेगम अख्तरो ने कभी भी पारिश्रमिक में मिले पैसों को अपने ऊपर नहीं खर्च किया । उन्हें जो भी पारिश्रमिक मिलता , अवढरदानी की तरह लुटा देती। फिर तो कोई न कोई उन्हें घेरे ही रहता, घर तक आने के लिये भी पैसे न बचते । पत्नी की इस निष्ठा को देखकर उनके पति ने स्वय कहा भी है -----' घर लौटने के लिये भी कभी तार कर घर से रूपया मंगवा लेती हैं । [2]"

प्रस्तुत कहानी में बेगम अख्तरी और उनके पति इश्तियाक अहमद अब्बासी का आदर्श नहले पर दहले की तरह खरा साबित होता है । यदि बेगम अख्तरी पति की आज्ञा मान कभी गाने की जिद न करके एक आदर्श पत्नी के आदर्श को प्रस्तुत करती हैं तो अहमद अब्बासी आदर्श की प्रतिमूर्ति बनकर उनके लिये संगीत के बंद द्वार स्वयं खोलकर खड़े हो जाते हैं । और यदि अहमद अब्बासी बेगम अख्तरी को परिश्रमिक ग्रहण न करने की नसीहत देते हैं तो बेगम अख्तरी अवढरदानी बनकर पारिश्रमिक को दोनों हाथों लुटाकर पति के स्वाभिमान की रक्षा करके एक नया ही आदर्श प्रस्तुत करती हैं । तुलनात्मक द्रृष्टिकोण से दोनों का ही आदर्श अपनी-अपनी जगह पर सर्वोच्च है । यदि अहमद अब्बासी एक आदर्श पति के रूप में अवतरित होते हैं तो बेगम अख्तरी एक संस्कार शीला पति परायणा पत्नी के रूप में पाठकों के समक्ष खड़ी हो जाती हैं । फिर यह कहना मुश्किल हो जाता है कि किसका पलड़ा भारी है । अतः विवाद में न पड़कर दोनों को समतुलय कक्ष में खड़ा कर देना ही श्रेयस्कर होगा और उचित भी ।

1- मेरा भाई, शिवानी, पृष्ठ 42

2- मेरा भाई शिवानी, पृष्ठ 44

ड. शिवानी की कहानियों में पात्रों का नैतिक चरित्र एवं नैतिक दर्शन

भ्रष्ट समाज में नैतिकता की कमी उसी प्रकार देखने को मिलती है, जिस प्रकार कालरा - ग्रस्त रोगी के शरीर में पानी की कमी । ग्लूकोज की बोतलें चढ़ाकर पानी की इस कमी को दूर करने का प्रथम प्रयास यदि डॉक्टर करता है तो आदर्शमय संसार की सृष्टि कर साहित्यकार भ्रष्ट समाज को नैतिकता का अमृत पान कराता है । अपने पात्रों के माध्यम से वह अनैतिकता के दुष्परिणामों का प्रति बोध समाज को करा , उन्हें नैतिक आचरण करने को प्रेरित करता है ।

शिवानी ने अपनी कहानियों में युगबोध का चित्रण तो किया ही है, पात्रों के नैतिक चरित्र के माध्यम से उन्होंने नैतिक - मूल्यों की संवर्धना भी की है । भारतीय - संस्कृति के नैतिक मूल्यों को संरक्षण प्रदान करना ही शिवानी के साहित्य का परम् आदर्श रहा है । शिवानी केवल युगप्रवर्त्तक साहित्यकार ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति एवं भारतीय परम्परा की मानवता वादी नैतिकता की प्रबल - पोषिका भी हैं । अब हम पात्रों के नैतिक चरित्र के माध्यम से शिवानी की कहानियों में नैतिक दर्शन के मूल्यों पर प्रकाश डालेगें । शिवानी भी अपने पात्रों के साथ समानान्तर रूप से चलती हैं । उनकी विचार धारायें नैतिकता का समर्थन कहाँ तक कर पाती हैं, यह भी स्पष्ट हो जायेगा ।

शिवानी की कहानियों और उपन्यासों में वेश्या पात्रों की संख्या पर्याप्त मात्रा में हैं । उनमें से कुछ तो परिस्थिति जन्य वेश्या हैं जो उबरने के अनूकूल अवसर की प्रतीक्षा में रत् दिखाई हैं, तो कुछ जन्मजात वेश्या हैं, किन्तु वेश्या कर्म में लिप्त नहीं हैं । कुछ ऐसी भी हैं जो इस दुष्कर्म में लिप्त रहने पर भी इस प्रकार आनंदित हैं जिस प्रकार गंदगी और कीचड़ में लिप्ट शूकरीं । चाँद कहानी की चाँद इसी श्रेणी की वेश्या है, जिसे अनेक सुअवसर और अनुकूल परिस्थितियाँ भी वेश्या - कर्म से विरत नहीं कर सकीं, उल्टे प्रयासकर्ता उसके कीचड़ में सन कर कलंकित ही नहीं हुए अपने परिवार के विघटन के दोषी भी बने । चाँद को इस दल दल से निकालने में जे0के0 एवं उसकी पत्नी मोना का नैतिक चरित्र उभरकर सामने आता है । जे0के0 के बारे में उनकी पत्नी का भी विश्वास था ---" जे0के0 को

को तुम नहीं जानती हो, उसे संसार की किसी सर्पिणी का विष नहीं व्याप सकता, इम्यून हैं वह "[1] मोना उसे अपने घर की परिचारिका बना लेती हैं । गंभीर जे0के0 उससे दूर ही रहता है । किन्तु मोना तीन महीने पश्चात् जब मायके से वापस आती है तो जे0के0 की तकिया के नीचे ' चाँद ' के बालों में लगाने वाले चाँदी के काँटे उसे मिलते हैं, तब तो पति - पत्नी के जीवन में इतने काँटे विखर जाते हैं कि वह जे0के0 को छोड़ कर पुनः मायके चली जाती है । जबकि चाँद पुनः अपने पुराने टीले पर बैठ अपने तन और यौवन की चाँदमारी करती दिखाई देती है ।

चाँद के इस अनैतिक चरित्र द्वारा शिवानी ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि इस समाज में चाँद जैसी स्त्रियों की कमी नहीं है । उन्हें इस दलदल से निकालने वालें जे0के0 और मोना जैसे कुलीन एवं चिरत्रवान लोगों की भी कभी नहीं हैं, किन्तु जे0के0 और उनकी पत्नी जैसे कुलीन और अभिजात वर्गीय लोगों लिये उनसे बचकर रहना ही जयादा श्रेयस्कर है वर्ना पूर्णिमा का चाँद समुद्र में ज्वार लाने के लिये ही अपनी समस्त कलाओं का प्रदर्शन करता है । अनैतिकता के इस ज्वार से जन - समुद्र को बचाये रखना ही शिवानी का नैतिक दर्शन हैं ।

'अनाथ' कहानी की नारी पात्र ' ऐनी ' आदर्श एवं नैतिकता की प्रतिमूर्ति है । कहानी का नायक बनर्जी ऐनी से प्रेम विवाह कर लेता है, किन्तु जब बनर्जी के पिता को इस विवाह का ज्ञान होता है तो वे बनर्जी को उच्च शिक्षा हेतु विदेश भेज देते हैं । वापस लौटने पर बनर्जी एक अन्य लड़की से शादी करके राजपुरूषों सा सुखद जीवन व्यतीत करने लगता है । वह ऐनी एवं अपने बच्चे को भी भूल जाता है । ऐनी जब प्रतीक्षा करते - करते थक जाती है तो उसके पुत्र को अनाथाश्रम में छोड़ नैनीताल की एक पहाड़ी गुफा में कुष्ठ रोग से ग्रस्त अपनी माँ, मौसी एवं नाना की सेवा - सुश्रुषा में रत रहकर अपना परित्यक्त जीवन बिना किसी उपालम्भ, आरोप एवं आक्रोश के व्यतीत करने लगती है । शिवानी ने जब उससे पूछा --'तुम क्या यहीं कहीं रहती हो ? उसने कहा -- ' हाँ मेम साहब, हम सोचा, जब बाहर का बिरादरी हमारा छूत मानता तो हम यहीं रहेगा । [2] " और ऐनी तुम्हारा बच्चा ?

1- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ 122

15 कैंजा, शिवानी, पृष्ठ 121

डरते - डरते शिवानी ने पूछा । पुत्र की स्मृति के गह्वर से उसका कण्ठ क्षण - भर को अवरूद्ध हो गया । फिर बोली ----' हमारा लड़का हुआ था । मिशन मांगा, बिरादरी माँगा, पर हम नहीं दिया ! उसका बाप हिन्दू था , इसी से हम हिन्दू अनाथालय को दे दिया ।'[1] ऐनी ने हिन्दू बाप की हिन्दू सन्तानको हिन्दू अनाथालय में ही दिया, यही उसका नैतिक दर्शन है ।

परित्यक्त होने पर भी अपने पति बनर्जी के प्रति उसके हृदय में अगाध प्रेम और असीम विश्वास हैं । संभवतः उसका यह विश्वास भारतीय पत्नियों की एक पति निष्ठा की सुमधुर कल्पना पर आधारित हो और वह भारतीय पतिव्रता : नारियों की भाँति आजीवन अपने पति की स्मृति में अपना जीवन व्यतीत कर अपना परम कर्त्तव्य और अभीष्ट मानती है । ऐनी जब शिवानी से पूछती है - बनर्जी शादी बनाया मेम साहब ? वह तो तुम्हारे सबका बहुत फ्रेण्ड था । " शिवानी के मिथ्या किन्तु आवश्यक और नैतिकता सम्मत मिथ्या उत्तर " नहीं ऐनी, वह कभी शादी नही बनायेगा , से वह इतनी प्रसन्न हो जाती है कि शिवानी के हाथो को झकझोर कर चूम लेती है और कहती है ---' हम जानता था, मेमसाहब हम जानता था ।" शिवानी उसकी पवित्र भावनाओं और अटल विश्वास से अभिभूत हो उठती है ---' चुम्बन यदि चौखट में मढ़ाने योगय वस्तु होती तो मैं उन पवित्र चुम्बनों को अपने पूजा गृह में सहेज कर नित्य पूजती । जिस दुर्बल हृदय, निर्वीर्य पुरूष ने उसे निर्ममता से फेंक दिया था , उस पर उसका विश्वास कितना अगाध था - कितना महान् ?[2]....

शिवानी के इस मिथ्यावाचन को आदर्श तो नहीं कहा जा सकता । किन्तु उनका यह मिथ्यावाचन शिवानी के उस नैतिक दर्शन की पुष्टि अवश्य करता है कि थोड़े से झूठ का आश्रय लेकर यदि किसी का जीवन बचाया जा सकता है तो उस मिथ्यावाचन में दोष नहीं होता । शिवानी का यह मिथ्या वाचन ऐनी के अभिशप्त जीवन के लिये कितना सुखदायी होता है उसकी कल्पना कर स्वयं शिवानी अत्याधिक सन्तुष्ट होती हैं ----' आज रात उसे उसके अभिशप्त जीवन के सबसे रंगीन सपने दिखेगें, यही मुझे सन्तोष था ।[3] लेकिन उन्हें

1- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ।2।

2- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ ।23

3- यथोपरि

इस मिथ्यावाचन के थोथेपन का बोध कचोटता भी है ---' पुरूष के हृदय पर नारी निरंकुश साम्राज्ञी बनकर ही राज करना चाहती है । ऐनी का साम्राज्य मैंने उसे सदा के लिये सौंप दिया था । किन्तु कैसा विचित्र साम्राज्य । न पहनने को ताज, न बैठने को सिंहासन ।[1] फिर भी शिवानी ने ' सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम्' की नैतिकता का ही प्रतिपालन एवं प्रतिपादन किया है ।

' मित्र ' कहानी के पात्र कामेश्वर और राघव अभिन्न मित्र होते हैं और दोनों को ही नैतिकता का प्रतिबिम्ब माना जा सकता है । दोनों का नैतिक चरित्र सर्वोपरित्र हैं । राघव अपनी ऐश्वर्यमयी स्थिति के बाद भी अपने मित्र को नहीं भूलता और उसके शहर में आने पर होटल में टिकने की बजाये सामान्य स्थिति वाले कामेश्वर के यहाँ रूकने में अधिक सुख का अनुभव करता है । कामेश्वर अपनी साधारण स्थिति के बाद भी अपने मित्र की हृदय खोलकर आतिथ्य - सेवा करता है किन्तु उसकी पत्नी जो निर्धनता के कारण चिड़चिड़े स्वभाव की बन जाती है, पति के मित्र की अपेक्षित आवभगत नही कर पाती और जब राघव विदा के समय किराये के लिये कुछ धन की माँग कर बैठता है तो कामेश्वर की पत्नी भड़क उठती है, लेकिन अंत में रूपये दे देती हैं । संयोगवश सदैव रूपयों से खेलने वाला राघव मित्र के इस अल्प ऋण को भूल जाता है, जिसके लिये कामेश्वर की पत्नी कामेश्वर को इतने ताने देती हैं कि उसके लिये अपना बचाव करना कठिन पड़ जाता है । जबकि राघव एक बार मित्र को फलों का उपहार भेजता है । दूसरी बार जब शहर आता है तो मित्र की पत्नी और लड़कियों के लिये कीमती साड़ियां खरीदता है और बिना किसी सूचना के मिलने चला आता है । वहाँ पहुँचकर शाम के धुंधलके में मित्र और उसकी पत्नीके वाक्युद्ध को सुनकर हतप्रभ रह जाता है ---' एक आपके मित्र हैं, दस - बीस के फल और मुफ्त की सलामी में मिले अखरोट भेजकर पूरे सौ रूपये डकार गये । तन का ही नहीं मन का भी काला था आपका मित्र ।[2]

1- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ 123

2- रति विलाप, शिवानी, पृष्ठ 125

मित्र को बिना किसी सूचना दिये उसे आश्चर्य और आनन्द से अभिभूत कर देने के संकल्प से आया राघव काँप उठता है । क्या सचमुच ही वह तन और मन का काला है -----' डबडबाई आँखों से उसने एक बार सिर झुकाये मित्र को देखा । क्या भीतर जाकर उपहार सहित सौ रूपये दे आये ? नहीं ----- नहीं अब वह भीतर नहीं जा पायेगा, तार से रूपये भेज देगा । कुछ देर ठिठका , फिर हाथ में सूटकेस लटकायें , मित्र के द्वार से मित्र बाहर चला गया ।[1]

उधार प्रेम की कैंची है और सचमुच कामेश्वर की पत्नी राधा की कतरनी सी जुबान ने दोनों मित्रों को उधार के सौ रूपयों की खातिर पल भर में कतर कर रख दिया । पत्नी के चिड़चिड़े स्वभाव के परिप्रेक्ष्य में दोनों मित्रों के नैतिक चरित्र अंधेरे में चन्द्रमा की भाँति जगमगते रहते हैं ।

" प्रतीक्षा " कहानी में शिवानी ने यह दर्शाया है कि विमल ने माधवी को पसंद कर यह सिद्ध कर दिया कि भारतीय युवकों के लिये भारतीय लड़कियाँ ही पत्नी बनने के लिये अधिक उपयुक्त होती हैं । माधवी के पागलपन को जानकर भी वह अपने प्रथम प्रणय के प्रति निष्ठावान बना रहता है । शिवेन्द्रमोहन की अतुल सम्पत्ति एवं प्रभावशाली वैभव उसे न तो मोहित ही कर पाते हैं और न ही विचलित । माधवी को मानसिक रोग का दौरा पड़ने पर वह एक अच्छे पति की तरह उसके इलाज की व्यवस्था करता है । वह माधवी को एक सच्चे पति एवं प्रणयी का प्रेम प्रदान कर अपनी नैतिकता का निर्वाह करता है । इनता ही नहीं विवाह से पूर्व वह माधवी से एकांत में कई बार मिलता है , किन्तु उसकी अस्मिता पर आँच नहीं आने देता है । यदि वह चाहता तो माधवी का कौमार्य लूट उसके मामा की लड़की से विवाह कर उनकी विपुल धनसम्पति का उत्तराधिकारी भी बनता । किन्तु ऐसा न कर उसने सर्वत्र अपनी नैतिकता और निष्ठा का ही उदार परिचय दिया है । मामा शिवेन्द्र मोहन के नाराज होने पर वह माधवी से कहता है ----' बकने दो माधवी उन्हें, विवाह अवश्य होगा ।[2] उसका यह नैतिक दर्शन कितना पावन हैं ।

1- रतिविलाप , शिवानी, पृष्ठ 125

2- कृष्णवेणी, शिवानी, पृष्ठ 61

यद्यपि शिवानी ने अपने उपन्यासों, संस्मरणों एवं कहानियों में राखीबंद भाइयों के प्रति सदैव शंका और अश्रद्धा ही व्यक्त की है, जिन्होंनें राखी की ओट में राखी बाँधने वाली अपनी बहनों की इज्जत को लूटा , किन्तु जिन लोगों को शिवानी ने राखी बाँध अपना राखीबंद भाई बनाया है और उनके प्रति अपनी श्रद्धा दिखाई है वह स्वयं में विरोधाभास है । ' मेरा भाई' कहानी में शिवानी का राखीबंद भाई सुबय्या चालीस वर्षों के पश्चात् ट्रेन में यात्रा कर रही शिवानी को एक ट्रेन लुटेरे के रूप में मिलता है और शिवानी से उनका बटुआ, चेन, घड़ी, टाप्स सभी कुछ ले लेता है, उनका सूटकेस लेकर जब वह जाने लगता है तो शिवानी उससे पासपोर्ट भर वापस करने के लिये गिडगिड़ाती हैं ।वह सूटकेस खोलकर पास पोर्ठ निकालता है और जब उसे ध्यान से देखता और पढ़ता है तो बचपन में कभी राखी बाँधने वाली अपनी बहन को पहचान लेता है । वह बत्ती जलाकर सबकुछ शिवानी को वापस कर देता है और अपने दुष्कृत्य पर प्राचश्चित कर शिवानी से क्षमा माँगता है ---' आज इतने बरस में तुमसे मिला, वह भी ठीक रक्षाबन्धन के दिन । तुम पासपोर्ठ नहीं माँगता तो हमसे आज कितना बड़ा पाप हो जाता [1]" यहीं उसके चरित्र में निखार आ जाता है ।

वह कुख्यात हो चुका था, फिर भी उसने राखी की मर्यादा रखी, जबकि अन्य ख्याति प्राप्त राखी बंद भाइयों ने राखी के धागों को कलंकित ही किया । 'छिः मम्मी तुम गंदी हो ' में शिवानी ने उन राखी बंद भाइयों पर तीव्र आक्षेप किया है, जो पहले तो हुमायूँ बन कर्मवती की रक्षा करने जैसा दम्भ भरते हैं, किन्तु अन्त में भैया से सैंया बनकर रक्षिता को ही लूटना आरम्भ कर देते हैं । फलतः वह रक्षिता कभी - कभी ऐसी दुरूह स्थिति में फँस जाती है, जिसकी कल्पना मात्र ही भयावह होती है । शिवानी नारियों को इन राखीबंद भाइयों से सचेत रहने का कहती हैं ---" इस धोखे की टट्टी की आड़ में चाहे कैसे ही गंगा नहा लो ----' इस रिश्ते के खतरनाक भाई साहब कभी - कभी अपनी धर्म की बहन को अविवेक की घाटी में भी खींच ले जाते हैं[2]" छिः मम्मी तुम गंदी हो का ऐसा ही राखीबंद भाई ' जानकी ' (धर्मबहन) को अपने जानकी विल्लभ (पति) के जान की ग्राहक बना देता है ।

1- पूतोंवाली , शिवानी , पृष्ठ 125

2- अपराधिनी, शिवानी, पृष्ठ 55-56

राखीबंद भाई नारियों के लिये प्रायः आस्तीन के साँप सिद्ध होते हैं, इसका एक और प्रमाण शिवानी के उपन्यास ' श्मशान चम्पा' में देखने को मिलता है । चम्पा की बहन जूही अपने राखीबंद भाई तनवीर से विवाह कर अन्त में पतन की पराकाष्ठा को प्राप्त होती है । यहाँ भी शिवानी शिवानी सरल हृदया नारियों को चेतावनी देती हुई लिखती हैं --" इन राखी बंद बिना रिश्ते के धर्म - भाईयों से वह बेहद घबड़ाती थी । [1]" और चम्पा की माँ की यह घबड़ाहट सच ही निकली । इस घबड़ाहट से शिवानी भी अछूती नहीं हैं । उन्होनें स्वयं स्वीकार किया ---" हो सकता है मैं स्वभाव से ही शंकालु रही हूँ, किन्तु मुझे इन बिना रिश्ते के राखीबंद भाइयों पर कभी भी श्रद्धा नहीं रही है । [2]

यहाँ शिवानी ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि कहीं राखी के नैतिक धागे अनैतिकता की मजबूत जंजीर न बन जायें अतः इन पवित्र धागों की रक्षा नारियों को स्वयं प्राण- पण से करना चाहिये बिना जाँचे - परखे राखी बंद भाईयों की कलाइयों में राखी बाँधे कर उन्हें कलंकित न करें ।

अनाथ सुबय्या जो अपनी बुआ के यहाँ नौकर की तरह रहता था । बचपन में बाँधी गयी राखी की कितनी बड़ी कीमत चुका गया । सुबय्या की अनाथ कलाई में जब शिवानी ने पहली बार राखी बाँधी थी तब उसके उल्लास का ठिकाना नहीं रहा था " मैने उसे तिलक लगाकर राखी बाँधी और मुह में लड्डू भर दिया । " आज से तू हमारा भाई बन गया सुबय्या भाई । उसकी आँखों में उल्लास की सहस्त्र किरणें फूट उठी ।[3] " वही अनाथ निरीह राखीबंद भाई सुबय्या आज अपने नैतिक चरित्र से ख्याति प्राप्त राखी बंद भाइयों को पराजित करके चला गया ।

1- श्मशान - चम्पा, शिवानी पृष्ठ 10

2- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ 96-97

3- पूर्तोंवाली, शिवानी, पृष्ठ 122

पंचम अध्याय

"शिवानी के संस्मरणों में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन"

शिवानी के संस्मरणों में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन

अपने संस्मरणों के सृजन के सम्बन्ध में शिवानी स्वयं स्वीकारती हैं - 'कैसा आश्चर्य है कि जहां कहानी की सृष्टि अपने बस की बात नहीं है, प्रसव-वेदना की भांति वह स्वयं अपना समय निर्धारित करती है, वहीं पर संस्मरणों की मंजूषा कभी भी किसी उजड़े इत्रफरोश की कांच - लगी रिक्त मंजूषा की भांति ढक्कन खोलते ही अपनी मादक भ्रामक सुगन्ध से सूंघने वाले को भाव विभोर कर देती है।' [1] संस्मरणों द्वारा होने वाली यह भाव विभोरता उनके संस्मरणों में अभिव्यक्त आदर्श एंव नैतिक तत्त्वों की सुगन्ध बाहुल्य के कारण होती है।

प्रायः वही घटनायें, स्थल एवं व्यक्ति संस्मरण का रूप ग्रहण करते हैं जो आदर्श एंव नैतिकता से युक्त होते हैं। गुरूदेव शिवानी के प्रथम आदर्श व्यक्ति थे। अपनी पुस्तक 'आमादेर शांतिनिकेतन' में शिवानी ने गुरूदेव के औदार्य का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी है। शिवानी, स्वयं में एक आदर्श हैं, फिर, भला वह क्यों न अभिभूत होतीं अपने परम आदर्शमय गुरूदेव के नैतिक दर्शन से ?

शिवानी एक सांस्कारिक नारी ही नहीं अपितु लेखिका भी हैं। वे अपने संस्कारों के प्रति सदैव जागरूक रही हैं। इस लिए उनके संस्मरणों में कहीं न कहीं उनके संस्कारों की छाप अवश्य है। चाहे व्यक्ति हों, चाहे स्थल हों या घटनाएं। सभी कुछ न कुछ कहना चाहते हैं। उनका यह कहना निरूद्देश्य न होकर सोद्देश्य ही दिखता है और जो कुछ दिखता है वह है आदर्श एंव नैतिकता।

वर्तमान हिन्दी साहित्य जगत् में शिवानी के संस्मरण बेजोड़ हैं। बनारसी दास चतुर्वेदी शिवानी के संस्मरणों से प्रभावित होकर 'आमादेर शान्तिनिकेतन' की भूमिका में लिखते हैं - 'जैसे कोई कुशल, कलाकार अपनी तूलिका के कम से कम प्रयोग द्वारा अनेक सजीव चित्र उपस्थित कर देता है, वैसे ही इस छोटी सी पुस्तक की यशस्वी लेखिका ने, गुरूदेव तथा उनके आश्रम की बीसियों मनोहर झांकियां पाठकों को दिखला दी है -------- यह आशचर्य की बात है कि आश्रम की एक छात्रा, सबसे आगे बढ़कर, बाजी मार ले गई और हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रतिष्ठित कहे जाने वाले लेखक पिछड़ गये'। [2].

आदर्शवाद एंव नैतिक दर्शन शिवानी के संस्मरणों का परम लक्ष्य रहा है । उनके इस लक्ष्य की विस्तृत विवेचना के लिए उनके संस्मरणों का बिन्दुवार अध्ययन करना अधिक समीचीन होगा ।

क. आदर्श व्यक्तित्व प्रधान संस्मरण

व्यक्ति ही प्रधानतः आदर्श और नैतिकता का संवाहक होता है । अपने सद् आचरणों द्वारा वह समाज के लिए प्रेरणा-स्त्रोत बनता है, साथ ही आदर्श और नैतिकता को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण कर उन्हें अक्षुण्ण बनाए रखने में सहायक होता है ।

शिवानी ने अपने संस्मरणों और रेखाचित्रों के माध्यम से आदर्श और नैतिकता का जो वातावरण निर्मित करना चाहा है, उसकी झलक उनकी पुस्तक 'आमादेर शांतिनिकेतन' में जगह - जगह पर देखने को मिलती है । गुरूदेव निर्विवाद रूप से शिवानी के परम आदर्श विभूति रहे हैं । निःसंदेह गुरूदेव के व्यक्तित्व एंव दंर्शन ने ही सर्वप्रथम शिवानी के बालमानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है ।

गुरूदेव रवीन्द्र नाथ :

गुरूदेव के अनुकरणीय आदर्श एंव उनका विरल नैतिक दर्शन ही शिवानी के व्यक्तित्व मे रच-बस गया । ' आकष ' मे संकलित ' गौरा पंत शिवानी से बातचीत ' नामक साक्षात्कार में कृष्ण कुमार श्रीवास्तव द्वारा यह पूछे जाने पर कि ' जब आप रवीन्द्र जी तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में रहीं तो स्वाभाविक है कि रवीन्द्र जी की आध्यात्मिकता और दर्शन से जरूर प्रभावित हूई होंगी ? ' के प्रव्युत्तर में उन्होंने स्वंयं स्वीकारा है -- ' गुरूदेव से हम लोगों का सम्बन्ध ऐसा था जैसे पितामह और पौत्री का । उन्होंने ही मुझे बंगला वर्णमाला सिखाई । मैं गुरूदेव के दर्शन से पूरी तरह प्रभावित रही हूं और अभी तक हूं और हमेशा रहूंगी ।' 1.

शिवानी ने आदर्शों की प्रतिमूर्ति एंव साकार स्वरूप गुरूदेव के माध्यम से अपने आदर्शवादी विचारों का सोमरस पाठकों का पिलाने का प्रयास किया है । गुरूदेव की आर्कषक काया और प्रभावशाली व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए शिवानी ने लिखा है -- ' परम श्रद्धेय

गुरूदेव का मैंने प्रथम दर्शन सन् 1935 में किया । स्फटिक सा गौर वर्ण, ज्वलन्त ज्योति - से जगमगाते विशाल नयन, गोरे ललाट पर चन्दन का शुभ्र तिलक, काला झब्बा और काली टोपी । यही थे आश्रम-वासियों के हृदय-हार गुरूदेव । कितना महान व्यकितत्व और कैसा सरल व्यवहार । ऊँच नीच, छोटे - बड़े सब उनके स्निग्ध व्यक्तित्व की छाया के नीचे समान थे । ------- कभी कोई अनुशासन धृष्टता न करता । आश्रम के इस संयमित वातावरण का रहस्य था स्वयं गुरूदेव का स्नेहपूर्ण संचालन । ------ मैं तब पाठ भवन की छाया बनकर आश्रम गई थी । हमनें प्रणाम किया । सिर पर हाथ धरकर उन्होंने हंस्ते हुए पूछा, 'क्यों बहुत घबरा रही हो क्या ? बांग्ला सीख लोगी तो फिर कभी घर की याद नहीं आयेगी । रूको, पूपे (पौत्री) से तुम्हारा परिचय करा दें ।' और फिर अपनी दोनों पौत्रियों से उन्होने हमारा परिचय ही नहीं कराया, अपने साथ खाना खिलाने के लिए भी रोक लिया ।'[1]

प्रथम दर्शन मे ही गुरूदेव ने शिवानी के बाल मन को विजित कर लिया और फिर सचमुच शिवानी को कभी घर की याद नही आई । घर से कहीं अधिक सुखद अनुभूतियां उन्हें गुरूदेव के सान्निध्य में रहकर मिलीं । गुरूदेव के स्नेहाज्वल की छांव मे न कोई बड़ा था, न कोई छोटा । न कोई देशी था, ने कोई विदेशी । सभी उनके अपने थे और यही अपनत्व की भावना छात्र-छात्राओं, शिक्षक-शिक्षकाओं तथा सेवक-सविकाओं सभी को एक सूत्र में बांधे रहती थी । शांतिनिकेतन को कोई भी वासी अपने को प्रवासी नही समझता । उसे शांतिनिकेतन घर से भी अधिक शांत एंव सुखदायी प्रतीत होता था । शिवानी को कभी भी ऐसा आभास नहीं हुआ कि शांतिनिकेतन एक सरकारी या शैक्षिक संस्थान है । उस पर गुरूदेव को व्यवहार साक्षात देव जैसा था । अनुशासन के लिए छात्रों को दण्डित करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी । गुरूदेव का स्नेहसिक्त संचालन स्वमेव समग्र वातावरण कर अनुशासन की स्वाभाविक व्यवस्था में बाधें हुए था । उनका बहुआयामी ज्ञान छात्र-छात्राओं के लिए सदैव गौरव का केन्द्र बिन्दु रहा है । उनकी अनेक कलामर्मज्ञता को दर्शाते हुए शिवानी ने लिखा है --- 'विश्वविभूति कवीन्द्र रवीन्द्र थे । संगीत, साहित्य और दर्शन के विचित्र-रूपी शिल्पी किन्तु आश्रमवासियों के थे वे गुरूदेव, स्नेही पितामह । कविता, नाटक, उपन्यास, चित्रकला, संगीत, नाटक-परिचालन - इन सबसे भी अधिक चिन्ता थी उन्हें अपने प्रिय आश्रम की । कौन सोच सकता है कि आज जिनकी यशः पताका दिग् - दिगन्त में फहरा रही है, उन्होंने कभी अपने

स्निग्ध स्नेह का स्पर्श पा वहां छात्रों की संख्या शीघ्र ही सैकड़ों में पहुच गई । आश्रम में राजकुमार और राजकन्याएं भी थीं, उद्योग - पतियों और लक्षाधिपतियों के पुत्र-पुत्रियां भी किसी को किसी तरह का अहं नहीं था । सभी गुरूदेव के स्नेहमय अनुशासन की डोर में बंधे रहते । आश्रम की इस सफलता का रहस्य, शिवानी ने, स्वयं गुरूदेव की वाणी में स्पष्ट किया है -- 'शिक्षा संस्कार एंवं पल्ली संजीवनी ही मेरे जीवन का मुख्य ध्येय है । मैं यहां कवि नही हूं, मैं यहां साहित्य का कारोबार नही करता एंवं मेरे कार्यक्षेत्र में जो वाणी मुखर हुई है, जिस आलोचक-प्रभा की दीप्ति स्पष्ट हो उठी है, उसी में देश के अभाव और उसकी भावना का अन्तर निहित है ।' 1.

शिक्षा को व्यापार न मानकर कर्मपथ मानने वाले गुरूदेव आदर्शों के ऐसे प्रकाशपुञ्ज थे कि उनकी पतिपरायणा पत्नी भी उन्हीं के रंग में रंग गई थीं । यदि गुरूदेव आदर्शों की मूर्ति थे तो गुरूपत्नी नैतिकता की प्रतिमा । आश्रम के विकास में, आश्रम की आलोक प्रभा निरन्तर प्रज्वलित बनी रहे, इसके लिए गुरूदेव एंव उनकी पतिव्रता पत्नी ने जो त्याग किया, संघर्ष झेले, यह सदैव अविस्मरणीय रहेगा -- ' गुरूदेव की धर्मपत्नी ने जिस प्रकार अपने गहने बेचकर आश्रम की रक्षा की थी और गुरूदेव को, अपनी दो पुत्रियों तथा कनिष्ठ पुत्र की मृत्यु की कारण कैसा कठोर आघात पहुचां, पर वे फिर भी अपने कर्मपथ से विचलित नहीं हुए ।' 2.

गुरूदेव की पत्नी ने स्वेच्छा से अपने गहने बेचकर आश्रम के अस्तित्व की जो रक्षा की है वह निश्चित ही समाज के लिए एक प्रेरक प्रसंग है । आज ऐसे ही आदर्शों की समाज को आवश्यकता है, जो अपना सर्वस्व न्योछावर कर सांस्कृतिक धरोहर की सुरक्षा कर सके । इन गिने-चुने भामाशाहों की खोज एंव उनका चरित्रांकन शिवानी जैसी भावप्रवण लेखिका के लिए संभव है ।

आर्चाय हजारी प्रसाद द्विवदी -

शिवानी ने अपने संस्मरणों में गुरूदेव के पश्चात् जिस दूसरे आदर्श व्यक्तित्व का चित्रण किया है, वे हैं उनके परम श्रद्धेय आर्चाय हजारी प्रसाद द्विवेदी । वे सपत्नीक शिवानी के आजीवन श्रद्धेय एंव प्रेरणादीप बनें रहे । आचार्य द्विवेदी जी के व्यक्तित्व से

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 64

अभिभूत शिवानी आज भी उन मधुर समृतियों को अपने हृदय में संजोये हुए गर्व का अनुभव करती हैं -- 'क्या अध्यापक थे । हजारी प्रसाद द्विवेदी हमें हिन्दी पढ़ाते थे । उनके स्नेह और व्यक्तित्व के क्या कहने । उनके सान्निध्य में रहना क्या हर किसी के भाग्य में था ।' [1]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की धर्मपत्नी श्रीमती भगवती द्विवेदी के स्नेहपगे व्यवहार की भी सुखद स्मृति करती हुई शिवानी लिखती है -- 'मुझे कभी भी याद नही पड़ता कि उतनी सारी छात्राओं को एक साथ जिमाने में भाभी जी के स्निग्ध चेहरे पर विरक्ति की शिकन भी उभरी हो । बाहर से खूब बड़बड़ाएंगी, ' लो आ गईं महारानी लीडर बनकर । आओ, बैठो, तो पंगत जिमाऊ ।' पर परसने में ऐसा स्नेह घृत के साथ-साथ दाल पर उलट देती कि बस अमृत का स्वाद आ जाता ।' [2]

शिवानी अपने दिव्य गुरू के प्रति जिस हद तक श्रद्धा से नतमस्तक थीं, उससे कहीं अधिक गुरू भी अपनी इस श्रद्धालु शिष्या के प्रति उदार थे । गुरू-शिष्य की यह प्रगाढ़ श्रद्धा और स्नेह आजीवन घनिष्टता की श्रृंखला बनी रही ।

भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के स्नेहप्रवण व्यवहार ने भी शिवानी की लेखनी को अपना संस्मरण लिखने के लिए विवश किया है । प्रियदर्शनी इंदिरा गांधी ने भी शांतिनिकेतन में ही शिक्षा ग्रहण की थी । प्रधान मंत्री जैसे उच्च पद पर आसीन होने के पश्चात् भी वे अपने आश्रम के आदर्शों को नहीं भूली थीं । अपने आश्रम के गुरूओं के प्रति उनकी असीम श्रद्धा पूर्ववत् बनी रही । अपने सहपाठी - सहपाठिनियों के प्रति उन्होंने अपने नैतिक दायित्वों का जो निर्वाह कियाण वह अविस्मरणीय ही है ।

एक बार जनता शासन काल में जब आर्चाय हजारी प्रसाद द्विवेदी जी को संस्थान के काम के लिए भी गाड़ी नहीं दी गई तो उनकी पत्नी ने क्षुब्ध होकर इंदिरा जी को याद किया था - ' इन्दिरा जी होतीं तो हिम्मत थी किसी की ? ' शिवानी के शब्दों में इंदिरा जी का व्यक्तित्व देखिये -' बात एकदम ठीक कही थी उन्होंने (द्विवेदी जी की पत्नी ने) अपने आश्रमगुरू का इन्दिरा जी जो सम्मान करतीं थीं, उसकी चर्चा प्रायः ही स्वयं पंडित जी किया

---

1. धर्मयुग, 16 मार्च 1992, पृष्ठ 16
2. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 97

करते थे । आज जनता शासन अपने कृतित्व की लाख प्रशंसा करे, इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने उस संक्षिप्त स्वप्रशंसित शासन काल में अपने उस वरिष्ठ साहित्यकार को वह सम्मान वह नहीं दे पाया जो उनका जन्मसिद्ध अधिकार था ।' 1.

श्रीमती इन्दिरा गांधी -

इन्दिरा जी ने सम्बन्धों को आत्मीयता का अमली जामा पहनाने का सदैव प्रयास किया है । अपनी प्रिय सहपाठिनी अमला की स्मृति में स्थापित विधालय 'अमलालय' के वार्षिकोत्सव पर अमला के पति द्वारा आमंत्रित किए जाने पर जिस प्रकार समय निकालकर उन्होंने अपनी सहपाठिनी की मित्रता का निर्वाह किया वह निश्चित ही प्रधानमंत्री जैसे महिमामय और व्यस्ततम पद पर पदासीन व्यक्ति के लिए आदर्श दृष्टव्य है - ' कुछ वर्ष पूर्व उसी स्कूल (अमला के पति) ने मुझे मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित किया था, किसी कारणवंश मैं वहां नहीं पहुंच पाई । गत् वर्ष गई तो राय साहब ने बताया कि इन्दिरा जी से उन्होंने दो वर्ष पूर्व पधारने का आग्रह डरते-डरते ही किया था कि कहां देश की प्रधान मंत्री का अमूल्य एक-एक क्षण और कहां यह छोटा सा स्कूल, किन्तु वे आईं, अपने व्यस्त कार्यक्रम के बीच भी उन्होंने अपनी आश्रम की उस (दिवंगत) सहपाठिनी के छोटे से स्कूल के लिए समय निकाल ही लिया और लहरतारा की उस जनसंकुल अलीगलियों से होती वहां पहुंच गई और अपने अक्लांत औदार्य से अपनी वर्षों पूर्व की मैत्री को निभा गई । आज 'अमलालय' का एक पूरा कमरा आश्रम में अमला दी के साथ खिंची इन्दिरा जी की तस्वीरों से भरा है ।' 2.

जिस आदर्श व्यक्तित्व ने अपनी एक सहपाठिनी के प्रति भी अपनी नैतिकता का साफल्य निर्वाह किया, उस व्यक्तित्व ने देश के लिए क्या कुछ नही किया होगा ? उनकी इस निर्मम हत्या से शिवानी की लेखनी वेदना - कातर हो उठती है - 'इसमें कोई सन्देह नहीं कि गोलियों की हृदयहीन बौछार ने केवल इन्दिरा जी को ही निष्प्राण नहीं किया, एक - एक देशवासी की देह आज अदृश्य गोलियों की बौछार से निष्प्राण हो गई है । एक हतबुद्धि स्तब्धता, जिसने वाणी को ही नहीं छीन लिया, हमारे विवेक को भी हमसे छीन लिया है । ऐसा तेजस्वी, समर्थ एवं साहसी 'ज्वलंतमिव पर्वतम्' तेजपुञ्ज क्या बार-बार पृथवी पर प्रकट होता है ? हम भारतवासियों के पूर्वकृत पुण्यों के फलस्वरूप हमे हमारी मुश्किल आसान करने वाली जो विलक्षण नेता मिली थी, वैसी कोई अन्य शक्ति हमें अब मिलेगी ? क्या, अब किसी

के सम्मुख हम उसी श्रद्धा और विश्वास सें नतमस्तक होकर कह सकेंगें कि सर्वेश्वरी तुम इसी प्रकार तीनों लोकों की बाधाएं शांत कर, हमारे शत्रुओं का नाश करती रहो ।' 1.

सचमुच इंदिरा जी ने देश की बागडोर अपने हाथों में संभालकर ख्याति के हिरण्यमय तुंग आसन पर आसीन होकर देश को भी उसी तुंग आसन पर आसीन कर दिया था । आज हमारे ही दुष्कर्मों के प्रभाव से वह तेजपुंज सहसा शून्य में विलीन हो गया है । यह भी कैसी विडम्बना है कि जब तक मनुष्य पृथ्वी पर रहता है, उसकी महत्ता, उसके देवदुर्लभ गुणों में भी दूसरों को दोष ही दोष दिखाई पड़ते हैं, उसकी महानता का आभास उन्हें तब होता है, जब वह इस प्रथ्वी पर नहीं रहता ।

संस्मरण के अंत में शिवानी जी ने मूक प्रार्थना की है । विश्व भर में दूर - दूर तक बिखरे उनके आश्रम के समस्त प्रावतन छात्र - छात्रायें अपनी मौन शोकाकुल श्रंद्धाजलि अपनी उस विलक्षण छात्रा को उसी पंक्ति के अर्ध्य से दें -

'मरण सागर पारे तोमरा अमर
तोमादेर स्मरि' 2.

{मरण सागर के पार भी तुम अमर हो, हम तुम्हारा स्मरण करते हैं । }

मूर्तिकार कृपाल दत्त त्रिपाठी -

'आकष' में संकलित खंडित मूर्तियों को प्राणवंत बनानें वाले शिल्पी कृपाल दत्त त्रिपाठी के अभूतपूर्व व्यक्तित्व से भी शिवानी जी प्रभावित हुई हैं । उनके अनुकरणीय आदर्श व्यक्तित्व को शिवानी ने पाठकों के सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत किया है - 'जीवन के अनेक सर्घषों से जूझते त्रिपाठी जी चौहत्तर वर्ष की आयु के होने पर भी जीवन से हारे नहीं हैं, वह अपने संचित ज्ञान को अपने ही तक सीमित नही रखना चाहते । न उन्हें सम्मान की आकांक्षा है, न मान्यता की । उनकी एकमात्र इच्छा है कि भावी पीढ़ी में वह अपना ज्ञान एवं अनुभव वितरित कर जायें । इसी इच्छा को पूर्ण करनें के लिए उन्होंने ललितकला पीठ की स्थापना की । अब उनकी यही साधना - भूमि है । एक वर्ष पूर्व गिर जाने से अब वह चल - फिर नहीं सकते । साधना सदा ही सीमित रहे । उस पर पुत्रशोक भी वहन करना पड़ा । किन्तु अब

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 110 - 111

भी उनके सरल चेहरे पर वही स्निग्ध मुस्कान है । आजीवन कला साधना के धनी इस अद्‌भुत कलाकार की निष्ठा एंव धैर्य सचमुच अनुकरणीय है ।'[1]

त्रिपाठी जी के शिल्प की सफल साधना का प्रमाण हरिद्वार में स्थापित 'मृत्युञ्जय अभिषेक' फौव्वारे के रूप में श्वेत सीमेण्ट की भव्य मूर्ति है, बैठकी पर चारों ओर शिव का ध्यान अंकित है । जब इसके सम्मुख तीर्थयात्री मनौती मानते हैं, तब त्रिपाठी जी को एहसास होता है - 'इस मूर्ति के सम्मुख मनौती मानने आये अनेक तीर्थयात्रियों को जब मै अपनी आखों से देखता हूं तो लगता है, मेरा प्रयास निष्फल नहीं गया '।[2] ऐसे त्यागी सृजनकर्ता कब समाज के लिए आदर्श नहीं बने ? जो यश के लिए नहीं शिल्प के लिए जिए और मरें ।

प्रोफेसर चन्द्रा -

'जालक' में शिवानी ने अपंग हुई डा0 चन्द्रा के माध्यम से यह आदर्श प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि अपंग व्यक्ति का व्यक्तित्व कभी अपंग नहीं हो सकता है, यदि वह अपना आत्म विश्वास न खोये । शिवानी ने डा0 चन्द्रा के प्रोफेसर के शब्दों में व्यक्त किया है - 'मुझे यह कहने में रंचमात्र भी हिचकिचाहट नहीं होती कि डा0 चंद्रा ने विज्ञान की प्रगति में महत्त्पूर्ण योगदान दिया है । चिकित्सा ने जो खोया है, वह विज्ञान ने पाया'[3] अर्थात् विकलांग चंद्रा जिसे उसकी मां कुर्सी में बैठा पूरी कक्षाओं में स्वयं घुमाती और प्रत्येक पीरिएड में छात्रा की तरह उसके पीछे खड़ी रहती । अपनी आदर्शमयी एंव ममतायमी मां की सहायता से चन्द्रा ने प्रत्येक परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर मैडल जीते । और अन्ततः प्राणिशास्त्र में शोधकार्य कर अपने लिए डा0 की उपाधि अर्जित की । जिसकी लगन, निष्ठा और धैर्य को देखकर शिवानी को राणा सांगा की बरबस याद आ जाती है - 'उस हंसमुख लड़की को देख मुझे युद्धक्षेत्र में डटे राणा सांगा का ही स्मरण हो आता था । क्षत - विक्षत शरीर में घावों के असंख्य चिन्ह, किन्तु मण्डित भव्य मुद्रा ।[4]

वस्तुतः इस प्रकार के व्यक्तित्व मृत्युशय्या पर पड़े (अपाहिज) लोगों के लिए संजीवनी सा आदर्श प्रस्तुत करते हैं । धन्य है वे मां और बेटी ।

---

1. आकष, शिवानी, पृष्ठ 93
2. आकष, शिवानी, पृष्ठ 91
3. जालक, शिवानी, पृष्ठ 9

भारत की प्रथम महिला डाक्टर आनन्दी गोपाल -

जालक में ही संकलित भारत की प्रथम महिला डाक्टरनी आनन्दी का जो आदर्शमय भारतीय नारी एंव पत्नी का स्वरूप शिवानी ने प्रस्तुत किया है, वह आदर्शों के लिए भी आदर्श है । कम पढ़ी - लिखी बालिका वधू आनंदी को उसका तीस वर्षीय पति गोपाल राव बात - बात पर डपटता रहता है । सास काम के लिए कहती है, पति पढ़ने के लिए । उसकी तीव्र बुद्धि देखकर गोपालराव उसे परिवारिक रूढ़ि-बंधनों से मुक्त करा पहले बंबई लाये फिर उसे डाक्टरी पढ़ने अमेरिका भेज दिया । विदेश में भी वह अपना पति धर्म नहीं भूली । शिवानी ने उसके आदर्श व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए भारतीय नारी को सीख दी है - 'आज से सौ वर्ष पूर्व जन्मी भारत की प्रथम डाक्टरनी आनन्दी गोपाल की अद्भुत पतिपरायणा, निष्ठा एंव सहिष्णुता हमारी आज की पीढ़ी को बहुत कुछ सिखा सकती है - आनन्दी विदेश में भी नौगजी साड़ी पहनकर विदेश जाती, एकांत में पति के कटाक्षपूर्ण पत्र पढ़कर रो लेती किंतु पति के प्रति प्रेम, विनम्रता में रंचमात्र भी अंतर नहीं आने देती । विदेश में रहकर भी वह नहीं भूली थी कि पत्नी का स्थान पति के चरणों में है । भारत की प्रथम महिला डाक्टरनी को लेकर गोपाल राव स्वदेश लौटे । विरोध, वेदना, विरह के बीच दृढ़ रहकर आनन्दी ने प्रमाणित कर दिया कि चाहने पर भारत की नारी सब कुछ करने में समर्थ है । यदि, आज भारत की नारी पुरूष के साथ - साथ गर्वोन्नत मस्तक लेकर खड़ी हो सकी है तो उसका समग्र श्रेय आनन्दी जैसी अतीत की उन विलक्षण महिलाओं को है, जिन्होने हमें वह अमूल्य दीक्षामंत्र थमाया कि गर्वोन्नत मस्तक उठाने से पहले उसे झुकाना सीखना चाहिये ।'[1].

पं० गोविन्द नारायण नाटू -

जालक में ही संकलित आदर्शमय व्यक्तित्वों की श्रृंखला में जो अगला नाम जुड़ता है, वह भातरखण्डे संगीत महाविधालय के प्रोफेसर पं० गोविन्द नारायण नाटू का है । जो केवल गुरु ही नही, एक आदर्श गुरू की परिभाषा के पर्याय हैं । उनके विषय में शिवानी लिखती हैं - 'अपनी इस त्यागमय जीवन की म्लान गोधूलि में उन्हें न किसी से शिकायत है, न शिकवा न उन्हें किसी अभिनन्दन की आकांक्षा है, न किसी आर्थिक सहायता की अभिलाषा । ठीक भी है, 'हीरा मुख से ना कहे लाख टका मेरो मोल', उसका मूल्य आंकना तो परखने वाले

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 27, 28, 29

जौहरियों का काम है । एक जन्मजात कलाकार के आत्मसम्मान से इस वयस में भी उनकी तनी ग्रीवा उतनी ही सतर है, किंतु मानव - स्मृति की क्षणभंगुरता इसी वयस में कभी पैनी खंजर की तेजी से कलेजा फाड़कर रख देती है ।' 1.

ऐसी त्यागमयी मूर्तियां ही आदर्श का रूप धारण किया है, जिन्हें किसी से कुछ अपेक्षा नहीं होती और समाज प्रतिमा निरन्तर उपेक्षा करता है । कलाकार में वही आदर्श की प्रतिमा बनते हैं ।

मि0 हेनरी -

एक अन्य संस्मरण में शिवानी बैंगलोर के बार - सेक्रेटरी मि0 हेनरी का उल्लेख करती हैं कि मि0 हेनरी एक अंग्रेज प्राणी थे और उनके पिता के अफसर एंव अंतरंग मित्र भी थे । अंग्रेजों के विषय में यह जनधारणा थी कि वे भारतीय मातहतों की ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता एंव निष्ठा का उचित मूल्य चुकाने में कभी भी कृपणता नहीं बरतते थे । एक बार सामान्य सी असावधानी में कार में साधारण सी खरोंच आ जाने पर जब मि0 हेनरी अपने ड्राईवर बिजली के गाल पर तमाचे जड़ते हैं , तब शिवानी के पिता उन्हें रोकते हैं - 'हेनरी, दिस इज वेरी अनाब्रिटिश आफ यू ' । इस ह्रस्व भर्त्सना को सुनकर हेनरी को 'आई ऐम वेरी सॉरी, बिजली' कहकर भरी भीड़ के सामने क्षमा मांगने में जरा भी संकोच नहीं होता है । यह घटना जहां अंग्रेजों की व्यवहारिकता का आदर्श है, वहीं भारतीयों के लिए एक अनुकरणीय सीख । मि0 हेनरी शिवानी के पिता से कहते हैं - ' पंडि, तुमने मुझे याद दिलाया कि हम ब्रिटिश अफसरों के लिए भारतीय हृदय में जो सहृदय अफसर होने का आदर्श अंकित है , उसे अपने क्षणिक आवेश में मैं स्वयं मिटाने की मूर्खता कर बैठा था । मैं तुम्हारी सीख आजन्म गांठ बांधकर रखूंगा ।' 2.

एक बार अचानक मुरादाबाद स्टेशन पर ड्राईवर बिजली शिवानी को मिल गया । फिर उसने शिवानी को जो बताया, वह भारतीय आदर्शों से भी परे था - ' साहब विलायत चले गये पर बराबर 200 रुपया हर महीना हमें भेजते रहे । पांच - पांच बेटियों की शादी की, हर बार खत भेजा तो बदस्तूर दो - दो हजार के चेक हमें भेजते रहे । जिन्दगी - भर रियासत

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 84
2. जालक, शिवानी, पृष्ठ 98 (दरीचा, शिवानी, पृष्ठ 12)

के मुलाजिम रहे । अपने हिन्दुस्तानी हाकिमों के न जाने कितने घूंसे - थप्पड़ खाए पर वे तो उसे अपना हक समझते थे और हम अपनी बदकिस्मती । एक अंग्रेज हाकिम ने हाथ भी उठाया तो कब्र में जाने तक हर्जाना भरा । साहब नहीं, फरिश्ता था हुजूर । '1.

अपने सामान्य से अविवेकी आचरण का जो हर्जाना मिस्टर हेनरी ने मृत्युपर्यन्त चुकाया, उससे बढ़कर गरिमामय और आदर्शमय प्रायश्चित और कुछ हो ही नहीं सकता था । यही उस अंग्रेज अधिकारी का आदर्शमय उज्जवल पक्ष है जिसे रेखांकित करने के लिए शिवानी की लेखनी मचल उठी ।

आज भी शिवानी उस फरिश्ते को नहीं भूली हैं । अपने छात्र मायसोर महाराना के आग्रह पर दीवान पद ग्रहण करने के लिए जब शिवानी के पिता बंगलौर पहुंचे, उन्हें खबर मिली कि अचानक महाराज का देहान्त हो गया है । वे इधर के रहे न उधर के । उस अनजान शहर में उनका न कोई परिचित था न कोई मित्र । तभी अकस्मात् देवदूत के रूप में उनके वही पुराने मित्र मिस्टर हेनरी मिल गये और उनहोंने इस जटिल समस्या से उन्हें उबार लिया । शिवानी के ही शब्दों में - 'उन दिनों द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था और मि0 हेनरी तत्कालीन वार सेक्रेटरी के उच्च पद पर नियुक्त थे । उन्होंने तत्काल हमारे पिता को असिस्टेंट वार सेक्रेटरी का पद भार सौंप दिया । जिस आघात से वे लगभग निष्प्राण होकर, उत्तर से दक्षिण चले आये थे, उससे उबर पाना उनके लिए बहुत सहज नहीं था । किन्तु नयी नियुक्ति के पश्चात हमारे दुर्दिन विलुप्त होने लगे । ' 2. किन्तु डेढ़ वर्ष के पश्चात शिवानी के पिता अचानक बीमार पड़े । उन्हें अदीठ फोड़ा निकला था, उनके मस्तिष्क की शिराएं फट गई थीं, तब उनकी बीमारी का पूरा खर्चा भी मि0 हेनरी ने ही उठाया था - "हमारे पिता की बीमारी का पूरा खर्चा, उन्होंने वहन किया था, वे ही जिद कर उन्हें बंगलौर के तब, सबसे महंगे अस्पताल 'सैंट मार्थाज' में दाखिल कराने ले गये थे । किन्तु वहां का शांत, स्वच्छ वातावरण, विदेशी नर्स की अपूर्व सेवा भी उनहें बचा नहीं सकी । 3.

पिता की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात शिवानी के बड़े भाई त्रिभुवन को मि0 हेनरी ने ही काफी बोर्ड में एक अच्छी नौकरी भी दिला दी थी, किन्तु शिवानी की मां

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 98 (दरीचा, शिवानी, पृष्ठ 12)
2. धर्मयुग, (फरिश्ता शीर्षक, शिवानी) । नवम्बर 1991 पृष्ठ 7
3. धर्मयुग, (फरिश्ता शीर्षक, शिवानी) । नवम्बर 1991 पृष्ठ 7

अपने पुत्र को उस शहर में नहीं छोड़ना चाहती थीं, जहां उनहोंने अपने पति को खोया था । सभी को पहाड़ वापस लौटना था जिसके लिए पर्याप्त धनराशि की जरूरत थी । पहाड़ के आत्मीय स्वजनों ने कोरे पत्रों में 'ईश्वरेच्छा बलवती है' कहकर अपना पल्ला झाड़ लिया । सिर्फ एक चचेरे ताऊ जी ने मात्र पांच सौ रूपये का मनीआर्डर कर अपनी असमर्थता व्यक्त की थी जिनके लिए शिवानी के पितामह ने कभी एक विराट भवन बनवा दिया था, पढ़ाया - लिखाया सो अलग । शिवानी की मां की आखें डबडबा आईं - 'इतना तो मै कभी अपने नौकरों को दीवाली का इनाम देती थी । [1]. शिवानी की भी व्यथा देखिये - 'एक-एक कर औने-पौने दाम में रोजवुड का वह फर्नीचर, जिसे कभी हमारे पिता के सुरूचिपूर्ण संधान ने ढूंढ़-ढूढ़ खरीदा था, बेच दिया गया । एक दिन उनके वैभव का अतिंम स्मृतिचिह्न भारी सोने की पेटी भी चली गई, फिर भी इतने बड़े परिवार की पहाड़ यात्रा के लिए पर्याप्त धनराशि नहीं जुट पा रही थी । तब ही एक दिन अचानक मि0 हैनरी पत्नी सहित आ गये । उनकी बांह में, अभी भी प्रिय मित्र की मृत्युशोक का काला पट्टा बंधा था । उनकी पत्नी मां से लिपट कर रोने लगीं - हमने तो एक प्रिय मित्र खो दिया पर तुम्हारा दुख तो हमारे दुख से कहीं अधिक है ------ उस दिन पति - पत्नी बड़ी देर तक हमारे पास बैठे रहे । चलने लगे तो एक लिफाफा मां को थमाकर बोले - 'वह मेरा मित्र ही नहीं, मेरा सच्चा सहयोगी भी था । मेरी ओर से यह भेंट स्वीकार नहीं की तो मुझे ही नहीं, मेरे मित्र की आत्मा को भी कष्ट होगा । इसका यही अर्थ होगा कि तुमने मुझे मित्र रूप में नही स्वीकारा । ' ------- यही नहीं, हमारा आरक्षण, जाने तक हमारे छोटे - मोटे खर्चे, उन्होंने चुकाये । दोनों स्वयं स्टेशन पहुंचाने आये, विदा लेने लगे तो हमें लगा, हमारे पिता ही हमसे दूसरी बार बिछड़ रहे हैं । मेरे बड़े भाई पर उनका विशेष स्नेह था, जिसे वे उनकी गवर्नेस के धरे नाम 'टिकर' से ही पुकारते थे , उसके कंधे पर हाथ धरकर बोले - 'याद रखना टिकर कि खराब मौसम, कांच की बंद खिड़की से और भी भयावह लगता है । पर हर काले बादल में एक रूपहली रेखा छिपी रहती है । [2].

संस्मरण के अंत में अपनी श्रद्धा का अर्ध्य अर्पित करती हुई शिवानी कहती हैं - 'मिस्टर हेनरी को हम सदैव अपने जीवन के घन कृष्ण मेघ की रूपाय रेखा के रूप में स्मरण

----

1. धर्मयुग, (फरिश्ता शीर्षक, शिवानी) । नवम्बर 1991 पृष्ठ 7
2. धर्मयुग (फरिश्ता शीर्षक, शिवानी) । नवम्बर 1991, पृष्ठ 7

रखेगें । वर्षों पूर्व उनके स्वामि - भक्त चालक (बिजली) के शब्द , आज मैं भी उसी कृतज्ञता से दोहराती हूं - 'साहब इनसान नहीं फरिश्ता था बिन्नों, अल्लाह उनकी रूह को जन्नत बख्शे ।'[1] शिवानी पुनः कहती हैं, दीया लेकर ढूढ़ने पर भी आज क्या ऐसा फरिश्ता मिल सकेगा ?

बालक ध्रुव कुण्डु -

'चिरस्वंयवारा' में संकलित 'तुई जे पुरूष मानुष रे' शीर्षक के अन्तर्गत शिवानी ने ध्रुव कुण्डु नामक नन्हें बालक जो आश्रम के शिशु भवन का छात्र था और प्रायः अकेले किचन' जाने में डरा करता था । वही नन्हा ध्रुव जब हाथ में तिरंगा ले एक जुलूस की अगुवाई कर रहा था तभी पुलिस की गोली ने उसे सदा-सदा के लिए सुला दिया । उसका बलिदान शहीद खुदीराम, भगतसिंह और आजाद से किसी भी मायने में कम नहीं था । अन्यत्र जिसका कहीं उल्लेख नहीं किया गया, उस नन्हें शहीद की शहादत का उल्लेख करते हुए शिवानी ने लिखा है - 'पूर्णिया जिले के कटिहार का नन्हा ध्रुव कुंडु, हाथ में तिरंगा लिए जिस जुलूस का अगुआ बना, नन्हीं छाती फुलाए जा रहा था, उसी पर पुलिस की गोली चली और उस बर्बर गोलीकांड का पहला शहीद बना ध्रुव कुंडु - वही ध्रुव कुंडु, जिसकी सामान्य सी चोट भी कभी जिसे रूला देती थी, अंधेरा होते ही जाने का आदेश पाकर जो अपनी गोल - गोल आंखे भय से विस्फारित कर, मेरी अंगुली कसकर पकड़कर कहता था - 'तक्खोन, ऊनी जे डाकेन' । तुई जे पुरूष मानुष रे' - तू तो पुरुष है रे - भय कैसा - आज वह अपनी खोखली हंसी इतने वर्षों में भी मैं स्पष्ट सुन पाती हूँ ---- बालिश्त भर की छाती फुलाये क्या वह सचमुच ही 'पुरूष मानुष' बना नहीं चला गया ?'[2]

नन्हें ध्रुव का वह अनुपम बलिदान भले ही स्वतंत्रता संग्राम के एतिहासिक पन्नों में कहीं अंकित न हो किन्तु वह अपने अनुकरणीय कृत्य से ध्रुव तारे की भांति शिवानी के स्मृति - पटल पर अवश्य अंकित हो गया ।

लक्ष्मी कान्तम्मा रेड्डी -

'चिरस्वयंवरा' का 'एक अनाघ्रात पुष्प' एक ऐसी आदर्शमयी नारी का स्मृतिचित्रण है जो पूर्व में शिवानी की शांतिनिकेतन की मित्र थीं और वर्तमान में राज्यपाल की

---

1. धर्मयुग (फरिश्ता शीर्षक, शिवानी) । नवम्बर 1991, पृष्ठ 7
2. चिरस्वयवरा, शिवानी, पृष्ठ 123

महिमामयी पत्नी श्रीमती लक्ष्मी कान्तम्मा रेड्डी । राजमहिषी के गरिमामय पद से सम्मानित होने के पश्चात् भी उनकी सादगी और शालीनता प्रत्येक नारी के लिए आदर्श व्यवहार है । उनकी सौम्यता से प्रभावित होकर शिवानी लिखती हैं - 'शायद यह शान्त स्वभाव उन्हें अपने पिता से विरासत में मिला है । उनके पिता, श्री रामा रेड्डी अपने समय के प्रसिद्ध देशसेवी रह चुके हैं । बहुत बड़ा अहाता घेरे, उनका 'सुदर्शन महल' भी बहुत कुछ अंश में राजभवन का ही छोटा संस्करण लगता था, फिर भी उनका रहन-सहन अत्यन्त सरल था । शायद मायके के इसी सरल आडम्बर हीन जीवन ने कान्तम्मा दी को श्वसुर- गृह की सादगी के लिए बहुत पहले ही गढ़ लिया था । आज उनका सहज व्यक्तित्व उनके सरल स्वभाव का जीता-जागता प्रतिबिम्ब है । पति के सर्वोच्च पद का मदज्वर न उन्हें डस पाया है, न कभी डस पायेगा ।' 1.

निरभिमानी लक्ष्मी कान्तम्मा रेड्डी की प्रशंसा में शिवानी के पुनः लिखे गये शब्द अतिशयोक्ति नहीं कहे जा सकते हैं - 'मेरी द्रृष्टि में वह एक आदर्श पत्नी, आदर्श जननी एंव आदर्श मित्र हैं और मैं सोचती हूं कि जिस व्यक्ति में इन तीन अलभ्य गुणों का समन्वय हो, वह निश्चय ही एक महान व्यक्तित्व है । '2.

रामरती -

'एक थी रामरती' की रामरती शिवानी के व्यक्तिचित्रों में से निःसन्देह एक आदर्श व्यक्तिचित्र है । रामरती की संरचना स्वंयं में विरोधाभास थी । देह जितनी दुर्बल थी, मन उतना ही पुष्ट । नौकरानियों के लिए पुष्ट देह यष्टि जहां नौकरी प्राप्त करने के लिए प्रथम प्रमाण-पत्र माना जाता है, उसमें पूरी तरह अनुत्तीर्ण यानी 29 किलो वजन वाली रामरती को शिवानी ने उसकी निष्कलुष आखें देखकर ही पति के विरोध के बाद भी अपने यहां रख लिया था । यही रामरती एक आदर्श सेविका तो बनी ही, साथ में वह शिवानी की द्रृष्टि में एक स्मरणीय शिक्षिका भी थी । पति की मृत्यु के पशचात् जब शिवानी ने रामरती को नौकरानी के रूप में रखने पर अपनी असमर्थता व्यक्त की - 'रामरती अब तुम्हें नहीं रख पाऊंगी तुम कोई और घर देख लो' इस पर रामरती ने जो उत्तर दिया उसे सुनकर शिवानी निर्वाक रह गई - 'ल्यो, अउर सुनो । कहती हैं अउर घर देख लो । हमका तोहका अइसन घड़ी में छोड़ देई ?" 3

---

1. चिरस्वंयवरा, शिवानी, पृष्ठ 140
2. चिरस्वंयवरा, शिवानी, पृष्ठ 141
3. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 47

वस्तुतः रामरती का चरित्र एक ऐसी कर्त्तव्यपरायण सेविका का चित्रण है जो अपनी निष्ठा से संस्मरणात्मक प्रतिष्ठा को प्राप्त कर शिवानी के साथ - साथ समाज के लिए भी एक आदर्श बनी ।

गंगा बाबू -

भोपाल की गोष्ठी में जब शिवानी से गंगा बाबू के लिए कोई साहित्य-कर्मी शिवानी से यह पूछने की धृष्टता कर बैठते हैं कि यह गंगा बाबू है कौन ? यह प्रश्न सुनकर शिवानी का क्षुब्ध हो जाना जहां उनके साहित्यिक प्रेम को दर्शाता है, वहीं साहित्यकारों के प्रति दिखाई जाने वाली उपेक्षा का भी दिग्दर्शन कराता है ।

शिवानी का क्षुब्ध होना स्वाभाविक ही है क्योंकि आज वे ही साहित्यकार साहित्यकारों की श्रेणी में आते हैं जो येन केन प्रकारेण साहित्य भवन के गुम्बद बनने के लिए जी तोड़ प्रयास करते हैं , उन्हीं को पुरस्कार प्राप्त होते हैं, उन्हीं को अलंकार प्रदान किये जाते हैं और उन्हीं को प्रकाशन का अवसर मिलता है तथा उन्हें ही देश जानता है । दूसरी ओर वे जो चुपचाप बिना किसी चाह के नींव के पत्थर बन साहित्य भवन को दृढ़ता एंव स्थायित्व प्रदान कर निरन्तर ऊंचा उठाने में स्वयं भार वहन करते हैं, उन्हें कोई जानता नहीं, उनका कोई नाम लेने वाला तक नहीं होता । शिवानी गंगाबाबू के आदर्श व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए लिखती हैं - 'हिन्दी का यह सच्चा सफल सेनानी, कभी किसी प्रशस्ति या यशख्याति का भूखा नहीं रहा । आज हिन्दी ऐसे ही तपः पूत पूतों के पुण्यों से बची हैं, जो जीवन-भर हिन्दी को समर्पित रहे, जिन्होंने हिन्दी के लिए सच्चे अर्थ में संघर्ष किया, किन्तु कभी भी अपने मुंह से अपने कृतित्व का प्रचार नहीं किया । शायद यही कारण है कि आज भी हिन्दी के ही क्षेत्र में कार्य करने वालों में अनेक ऐसे व्यक्ति हैं जो यह भी नहीं जानते कि गंगा-बाबू कौन थे । '2.

हम अपनी साहित्यिक बिरादरी को ही नहीं पहचानते, यही हमारा दुर्भाग्य है । व्यंग्यात्मक किंतु सटीक शब्दों में शिवानी पुनः लिखती है - 'यही आज हमारा दुर्भाग्य है ।

---

1. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 47
2. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 73

हम हिन्दी के उत्तुंग सौंध को देख उसे सराहते हैं , जिन मजदूरों ने बांस की जानलेवा खपच्चियों में चढ़ गारे - मिट्टी की कांवरें ढो, उसके झरोखों को दर्शनीय जालियों को संवारा है, उसके दरीचों की सीमेंटी चिलमनों में जालियों के नक्शे बुने हैं, उन्हें भला कौन याद करेगा ?'1.

अमृत लाल नागर -

स्व0 अमृतलाल नागर जी पर शिवानी की अटूट श्रद्धा रही है और अमृतलाल नागर जी का शिवानी पर अनन्य स्नेह । शिवानी जी 1957 में नागर जी के सान्निध्य में आई थी, उन पर नागर जी का छोटी बहन जैसा अनुराग रहा है । नागर जी के आदर्श सम्पन्न व्यक्तित्व से शिवानी ने बहुत सी मर्म की बातें अर्जित की हैं । तभी तो उनकी मृत्यु पर शोक विहल हो शिवानी की लेखनी उस दिव्य विभूति को चित्रित करती है - 'अभी भी विश्वास नहीं होता कि हिन्दी साहित्य की रत्न किरीट अब उसके मस्तक पर नहीं रहा । केवल लखनऊ ही अनाथ नहीं हुआ , भारत - भारती ही अनाथ हो गई । जिनकी वाणी अनेकानेक साहित्यकारों को नित्य-नवीन प्रेरणा देती रही, जिस युगपुरुष ने अपनी तेजस्विता से नवीन पीढ़ी को आशा का प्रकाश दिया था, वह सहसा ऐसे चला जाएगा, यह कभी सोचा भी नहीं था । किन्तु, कुछ विभूतियां ऐसी भी होती है जो जाते-जाते मृत्यु को भी गौरवान्वित कर जाती हैं, नागर जी ऐसी ही दुर्लभ विभूति थे । आज लखनऊ का मातम, सारे भारत का मातम बन गया है । नागर जी जिस शान से रहे, उसी शान से गए, 'आशिक का जनाजा था बड़ी धूम से निकला' देखिये कलम की ताकत, कि गए तो बन्दूकों का सिर भी झुका गए ।'2.

नागर जी के अलौकिक व्यक्तित्व का स्मरण करते हुए शिवानी पुनः लिखती है - 'इस नश्वर जगत् में, असंख्य मानव जन्म लेते हैं , समय पूरा होने पर एक दिन सबको जाना भी पड़ता है । किन्तु नागर जी जैसा व्यक्ति, जिसमें मृण्मय एवं चिन्मय, दोनों विधायक तत्वों का दुर्लभ सन्तुलन हो, बार-बार पृथ्वी पर अवतरित नहीं होता । उनके बाह्य व्यवहार में वही मृण्मय तत्व मुखर हो उठता था और उनकी आभ्यंतरिक गरिमा का व्यञ्जक था, उनके व्यक्तित्व में रिसा - बसा चिन्मय तत्व । 3.

---

1. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 74
2. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 85
3. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 86

नागर की नवीनता और प्राचीनता का अद्‌भुत सम्मिश्रण थे । उनकी स्मृति में शिवानी में करूण स्वर पुनः अश्रमय हो उठते हैं ' - भव्य मूर्ति, भारतीय संस्कृति का प्रतीक, नवीनता और प्राचीनता का अद्‌भुत सम्मिश्रण - यही थे नागर जी । ऐसा विद्वान, त्यागी, स्नेही और सदा हंसमुख पुरूष हमें फिर कब मिलेगा ? कहां मिलेगा ?' [1] शिवानी का यह करूण क्रन्दन ही नागर जी को एक अनुपमेय व्यक्तित्व सिद्ध करता है ।

तीन समाज सेविकाएँ -

प्रचार के वर्तमान युग में जहां समाज सेवा केवल मंचों में स्थान प्राप्त करने, पत्र-पत्रिकाओं में नाम एवं चित्र प्रकाशित करवाने तथा मंत्रियों और अफसरों के बीच अपनी पहचान बनाने का एक सरल साधन बन गया है, वहां समाज सेवा लेशमात्र भी नहीं पाई जाती है । जहां सच्ची समाज सेवा है, वहां प्रचार की चाह नहीं है । सेवा और सुविधा एक नदी दो पाट हैं । सेवक को सुविधा नहीं और सुविधाभोगी के लिए सेवा संभव नहीं । किन्तु आज के सुविधाभोगी सेवकों ने अपने आडम्बरों के द्वारा इसे संभव कर दिखाया है । वे दलितों की सेवा करने का ढोंग करते हैं और ए0 सी0 में यात्रा करते हैं । इस विडम्बना से विक्षुब्ध हो शिवानी ने समाज-सेविकाओं के आदर्श को स्थापित करते हुए जिन तीन समाज-सेविकाओं को अपने संसमरण का पात्र बनाया है, [2] वे सिर्फ सच्चे अर्थों में आदर्श व्यक्तित्व प्रधान हैं । उन्हें न तो कभी पत्रों ने छापा, न ही शासन ने पुरस्कृत किया किन्तु शिवानी ने उन्हें अपने समृति-पटल पर छायांकित किया और अपनी लेखनी से उन्हें गौरवान्वित किया - उनमें से प्रथम एक ऐसी समाज सेविका को उल्लेख है जो पहले देह व्यापार में लीन थी किंतु स्वतन्त्रता - सग्रांम के शुरू हो जानें पर वह अपने पेशे को छोड़ खद्‌दर की गठरी सिर पर रख गली-गली बेचने और देश की आजादी को सफल बनाने में इतनी तल्लीन हो गई कि उसके सौन्दर्य के ग्राहक उसके खद्‌दर के ग्राहक बन गये ।

दूसरी समाज सेविका विदेश में जन्म लेकर भी भारतीय जनजातियों के सामाजिक विकास के लिए इतना कुछ कर गई कि शांति निकेतन की उनकी शिष्याएं उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी ।

---

1. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 87 - 90
2. वातायन, शिवानी (क्रमांक तेरह पर आधारित) पृष्ठ 60-63

तीसरी ने तो कुष्ठ रोगियों की सेवा इतनी तल्लीनता से की कि स्वयं उस रोग से ग्रस्त हो गई किन्तु स्वस्थ होने पर पुनः उसी स्नेह एवं निष्ठा से अपने कार्य में तत्पर होकर हम सभी के लिए एक ऐसा आदर्श छोड़ गई कि सच्चा सेवक न तो प्रचार चाहता है और न ही सुविधा। वह तो केवल स्वर्ण अवसरों की तलाश में रहता है।

शिवानी ने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी अपने संस्मरण पाठकों तक पहुंचाये हैं। उनके संस्मरण स्मारिका, धर्मयुग एंव साप्ताहिक हिन्दुस्तान में भी समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। शिवानी के कीर्तिस्तम्भ [1], फरिश्ता [2], शुचिस्मिता [3], यात्री आमी ओरे [4] (शरद जोशी) अरूंधती [5], सुशीला [6] आदि संस्मरण पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

शिवानी ने संस्मरणों के माध्यम से जितना अधिक शाँतिनिकेतन के परिचितों को स्मृत कर उनके प्रति अपना स्नेह, आभार, श्रद्धा एंव श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है, वह स्वंय में एक आदर्श है। यद्यपि साहित्यकार साहित्य के प्रति इतने गंभीर हो जाते हैं कि न तो उन्हें अपने बचपन के साथी याद आते हैं और न ही स्कूल के शिक्षक और सहपाठी। लेकिन शिवानी ने संस्मरण कीर्तिस्तम्भ के माध्यम से बचपन की सखी निष्पाप निष्कलंक तिलका का चित्रण किया है, जो न चाहते हुए भी वेश्या जीवन का भार वहन करती है। संस्मरण फरिश्ता के माध्यम से अपने पिता के सुख-दुख के साथी मिस्टर हेनरी का अविस्मरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है। संस्मरण शुचि स्मिता के माध्यम से पूपे (गुरूदेव की पौत्री) और उसके पति गिरधारी जो उनके शाँतिनिकेतन के सहपाठी थे, के अपूर्ण व्यक्तित्व का स्मरण किया है। संस्मरण यात्री आमी औरे के माध्यम से स्तम्भ लेखक व्यंग्यकार शरद जोशी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि व्यक्त की है। उनका स्मरण करते हुए शिवानी कहती है - 'कभी सोचा भी नहीं था कि मुझसे आठ रोज छोटा वह अनुज सम प्रिय व्यक्ति मुझसे पहले ही चल देगा, जो सबको हंसाता रहा, वह आज अपने अंतिम स्तम्भ में सबको रूलाकर चला गया।' संस्मरण अरून्धती के माध्यम से फिल्म अभिनेत्री अरून्धती एंवं संस्मरण सुशीला के

---

1. स्मारिका, श्री राजकिशोर मिश्र, पी0सी0एस0, प्रभारी अधिकारी, 25वीं स्वतन्त्रंता जयन्ती, अल्मोड़ा द्वारा प्रकाशित, 1973. पृष्ठ 105
2. धर्मयुग, 1 नवम्बर 1991, पृष्ठ 4
3. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 29 सितम्बर 1991, पृष्ठ 52
4. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 6 अक्टूबर 1991, पृष्ठ 52
5. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 13 अक्टूबर 1991, पृष्ठ 52
6. साप्ताहिक हिन्दुस्तरन, 20 अक्टबर 1991 पृष्ठ 52

माध्यम से शिवानी ने शांतिनिकेतन की अपनी मित्र सुशीला की स्नेह-प्रवणता का चित्रण किया है ।

ख. घटना प्रधान संस्मरणों का आदर्श

व्यक्ति की भाँति घटनाएं भी कभी-कभी जीवन और समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत किया करती हैं । इनमें व्यक्ति से अधिक प्रभाव घटना के घटित होने और उसके परिणाम का होता है । घटनाएं प्रमुख होती हैं और व्यक्ति गौण । इन घटना प्रधान संस्मरणों के माध्यम से साहित्यकार अपने पाठकों के समक्ष ऐसे आदर्श उपस्थित करता है कि पाठक उन्हें अपने जीवन में आत्म-सात करने के लिए प्रेरित होता है । यही साहित्यकार का लक्ष्य भी होता है । शिवानी भी इस लक्ष्य की प्राप्ति में सफल रही हैं । उन्होंने जहां एक ओर आदर्श व्यक्तित्व प्रधान संस्मरण लिखे हैं, वहीं दूसरी ओर घटना प्रधान संस्मरण भी लिखे हैं । उन्होंने घटनाओं के माध्यम से भी आदर्शों को स्थापित करने का सफल प्रयास किया है ।

वास्तव में यदि देखा जाए महत्तवपूर्ण न तो व्यक्ति है और न ही घटना । महत्तवपूर्ण तो आदर्श होते हैं, जिन्हें स्थापित करने के लिए इनमें से किसी को भी माध्यम बनाया जा सकता है । वास्तव में यात्रा, महत्त्वपूर्ण होती है, साधन नहीं । किसी भी साधन से यात्रा तय की जा सकती है । हां, यह अवश्य है कि साधन जितना ही सुविधाजनक होगा, यात्रा उतनी ही सुगम होगी । जिस प्रकार साधन का चुनाव परिस्थिति और यात्री पर निर्भर करता है, उसी प्रकार अभिव्यक्ति का आधार व्यक्ति हो या घटना, यह साहित्यकार पर निर्भर करता है । शिवानी ने जहां व्यक्ति चित्रण के माध्यम से अनेक आदर्शों की स्थापना की है, वहीं घटना प्रधान संस्मरणों के माध्यम से भी आदर्शों की सम्प्रस्तुति की है ।

शांतिनिकेतन एवं गुरूपल्ली की घटनाएँ -

आमादेर शांतिनिकेतन शिवानी के संस्मरणों का एक ऐसा संकलन है जिसमें व्यक्ति प्रधान, घटना प्रधान एंव स्थल प्रधान संस्मरणों के ढेरों चित्र हैं । इस संकल्प में शांति निकेतन की गुरूपल्ली की घटनाओं का जो सिलसिला शुरू होता है, वह न तो किसी को बिना हंसाए छोड़ सकता है और न ही बिना प्रभावित किए रह सकता है । शांतिनिकेतन शिवानी की दृष्टि में कठोर अनुशासन का एक उल्लेखनीय शैक्षिक स्थल था । जहां शिक्षक अनुशासन प्रिय एंव स्वानुशासित थे । शिष्य और शिष्याओं से भी यही अपेक्षा रखी जाती थी । किन्तु चंचल किशोर मन कब स्थिर रह पाये हैं ? उनकी चंचलता कहीं न कहीं, किसी ने किसी रूप में हास, उपहास और अट्टहास का कारण बनती रही हैं । इसके माध्यम से शिक्षकों का जो व्यवहार

सामने आया है वह शिक्षकों के साथ-साथ शांतिनिकेतन की अनुशासनात्मक आदर्श की जीवन्त छवि प्रस्तुत करता है । शिवानी ऐसे ही प्रसंगों के माध्यम से अपने गुरूओं के प्रति जहां आदर व्यक्त करती हैं, वहीं उनकी स्मृति कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा ।

आंवला का रसास्वादन और दण्ड -

शिवानी अपनी पहली घटना का जिक्र करती हैं - आश्रम में प्रायः सभी छात्र-छात्राएं आंवले का रसास्वादन बड़े चाव से किया करते थे और उसकी गुठली को मुंह में रखकर चूसते और कुतरते रहते थे । मानो आंवला न होकर वह अमृत - फल ही हो । एक दिन इसी रसास्वादन में व्यस्त एक सीधा-सादा छात्र पकड़ा गया । पं० हजारी द्विवेदी जी का पीरिएड था । उन्होंने उस छात्र से मुंह दिखाने का कहा तो उसने बड़े यत्न से गुठली जीभ के नीचे छिपाकर उन्हें भोले कन्हैया की भांति मुंह खोलकर त्रैलोक्य दर्शन करा दिए, फिर भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ । उसे पूरे पीरिएड खड़े रहने का दण्ड देकर द्विवेदी जी ने जब उसी परिप्रेक्ष्य में शिवानी की प्रशंसा की तो शिवानी अपनी प्रशंसा सुनकर स्थिर न रह सकीं, उन्हें खांसी का ऐसा ठसका लगा कि उनकी सयत्न छिपाई हुई गुठली छिटककर सीधी पंडित जी की गोद में जा गिरी । पहले तो वे चौंक उठते हैं फिर ठहाका लगाकर हंस पड़ते हैं । इस सन्दर्भ में शिवानी अपने गुरू द्विवेदी जी का स्मरण कर कहती हैं - 'उस उदार गुरू का वह राशिभूत अट्टहास आज भी रह-रह कर मेरी स्मृति - प्राचीर में गूंज उठता है । कान उमेठकर लेखनी की सही पकड़ सिखाने वाले उस सहृदय गुरू के चेहरे के बाद, दूसरा कठोर चेहरा उभरता है - अंग्रेजी के अध्यापक, तनय दा का ।'[1].

इस घटना के माध्यम से शिवानी ने जहां एक ओर छात्रों की शैतानियों का जिक्र कर स्वयं तक को उस परिधि में खड़ा कर दिया है । वहीं दूसरी ओर गुरू की उदारता और स्नेहसिक्त अनुशासन का चित्रण । कान उमेठकर लेखनी की सही पकड़ का अभ्यास कराने वाले आज कितने गुरु हैं जिन्हें अपने शिष्यों के उज्जवल भविष्य की कामना है और उनके प्रति अपनत्व भाव । यह छोटी सी घटना शिक्षक का क्या आदर्श है, क्या आदर्श होना चाहिये, इस तथ्य की ओर संकेत करती है ।

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 25

जम्हाई और वैष्णवी त्रिपुण्ड -

'तनय दा' भी एक ऐसे ही आदर्श शिक्षक हैं जिन्होंने अपने अनुशासन के कारण शिवानी के मस्तिष्क में एक कठोर शिक्षक की छवि अंकित कर दी है क्योंकि उन्होंने शिवानी को जम्हाई लेने पर भरी कक्षा में खड़ी करके माथे पर खड़िया से जो वैष्णवी त्रिपुण्ड खींचा था और जिसके कारण शैतान छात्रों द्वारा शिवानी का उपनाम 'की हे वैष्णवी' प्रचलित हो गया था। वही तनय दा अनुशासन के साथ-साथ लिखावट की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान देते थे। एक बार एक सम्पन्न राजकन्या ने अपने निबन्ध के केवल एक ही वाक्य को काटने पर पूरा निबन्ध फिर से लिखने का दण्ड पाया था। इस दण्ड के अनौचित्य पर छात्रा ने बड़े दुस्साहस से कहा था - 'मैंने एक ही वाक्य को काटा है, आपने मेरा पूरा सुन्दर निबन्ध ही काट दिया।'[1] प्रत्युत्तर में थप्पड़ सा मारते हुए तनय दा ने कहा - 'तुम्हारे सुन्दर चेहरे से केवल तुम्हारी नाक ही काट ली जाती, फिर क्या तुम्हारा चेहरा सुन्दर रह जाता।'[2] विवश हो राज-कन्या को दण्ड स्वीकार करना पड़ा था।

यह घटना यह सिद्ध करती है कि उस समय अनुशासन के साथ-साथ स्वच्छ लेखन पर भी शिक्षक ध्यान देते थे और छात्र-छात्राओं को इसके लिए प्रेरित करते थे। आज यह प्रतिमान समाज से तिरोहित होते जा रहे हैं।

शर्म नही आयी तुम्हें -

गुरूपल्ली की इसी श्रृंखला में 'अनिल दा' के आदर्श को उजागर करने वाली एक घटना का वर्णन करते हुए शिवानी लिखती हैं - 'एक बार हमें लेकर वे राजमहल गये थे और दूसरी बार बनारस। बनारस में राजघाट स्कूल में ही हमारे रहने की सुव्यवस्था कर दी गयी थी। दिन-भर हमें इधर-उधर घुमा, जी भरकर नौका - विहार करा अनिल दा हमारी पूरी पार्टी को चाट भी खिला लाये थे; पर फिर भी हमारा मन नहीं भरा था। एक बार तांगे में चढ़ विश्वनाथ की गलियों में फिर घूमने का हमारा अविवेकी मन ललक उठा। इस बार हमने एक भयानक दुस्साहसी छलांग लगायी। चुपके से, बिना अपने उदार गुरू की अनुमति लिये ही, एक तांगा भी मंगवा लिया और देखते - ही - देखते उसमें एक चादर परदे की भी सुव्यवस्था कर दी

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 27
2. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 27

गयी । फिर क्या, हम कुछ छात्राएं उसमें सवार होकर शहर घूमने चल दीं । हमने सोचा था कि अनिल दा अभी तो हमें घुमाकर छात्रावास पहुंचा गये हैं, सन्ध्या से पहले तो हमें देखने आयेगें नही, सोचेगें हम सब थककर सो रही हैं । जब तक वे स्वयं जगकर हमें खाने के लिए बुलाने आयेगें, हम लोट आयेंगीं । किन्तु नर के मन की योजना नारायण भला कब भंग नहीं करता । हमने मन भरकर विश्वनाथ की गलियों के चक्कर लगाये, कचौड़ियों खायी, कुहनी तक रेशमी चूड़ियों के लच्छे पहने, एक बंगाली दूकान से तांत की साड़ियां खरीदीं और पान से होंठ लालकर फिर उसी परदे - तने तांगे पर, मुसलमान जनानी सवारियों - सी लदी-फंदी घर की ओर चलीं । 'समय अभी बहुत है, देखना छह बजे ही हमें पहुचाना है तांगेवाले, और तांगा फाटक से कुछ दूर ही रोकना समझे ? हमने कह तो दिया पर वह बेचारा समझने पर भी क्या हमें छह पहुंचा सकता था । मार्ग का रेल का फाटक बन्द था और देर की प्रतीक्षा के बाद, कांखती, करांहती एक बूढ़ी सी मालगाड़ी आयी भी तो वहीं दम तोड़कर पसर गयी । सर्व-सम्मति से यही तय हुआ कि अब दूसरे घुमावदार मार्ग से वापिस चल, अनिल दा से क्षमा - याचना करनी होगी; किंतु हमारा अपराध क्या साधारण था ? तांगेवाले ने घोड़ा मोड़ा ही था कि छात्रों का दल-बल लिये अनिल दा, हमें स्वंयं वहीं खड़े मिल गये । मुझे आज भी उनकी वह आग उगलती आग्नेय द्रृष्टि स्मरण कर जूड़ी चढ़ आती है । तनतमाये चेहरे को देखकर, फिर हमें कुछ कहने का साहस न हुआ था । तांगेवाले को किराया देकर, उन्हीं ने विदा किया और फिर जो फटकार पड़ी थी - 'शर्म नहीं आयी तुम्हें ! छिः छिः आश्रम की छात्राएं हो, अपनी जिम्मेदारी पर मैं तुम्हें इतनी दूर घुमाने लाया हूं, अगर ये तांगे वाला तुम सबको लेकर कहीं भाग जाता तब ?' 1.

आश्रम की छात्राओं से ऐसे व्यवहार की अपेक्षा न रखने वाले अनिल दा अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जितने सचेत थे, आश्रम की मर्यादा के प्रति उतने ही सचेष्ट, भूल करना अविवेकी छात्र - छात्राओं का स्वभाव हुआ करता है किन्तु मार्गदर्शक शिक्षक का आदर्श होता है उनका उचित मार्गदर्शन करना और अनिल दा इस मायने में खरे उतरते हैं ।

अन्याय सहन करना अपराध है -

जालक में संकलित अपने तेरहवें संस्मरण में शिवानी ने आज के समाज में व्याप्त रिश्वत की जो आचरण - भ्रष्टता देखी है, उसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है - "आज के

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 39 - 40

युग में बिना घूस के निकल पाना कल्पनातीत है । हाकिम के दिव्य चक्षुओं के सामने, कोर्ट के दरवाजे से लेकर, कोर्ट रूम तक दलालों एंव प्रतारकों का अबाध राजत्व चल रहा है । यानी कोर्ट न हो कोठा हो गया'।[1] इसी सन्दर्भ में शिवानी 'देश' के संपादकीय में उल्लिखित घटना का उल्लेख करती हैं - 'प्रख्यात चीनी दार्शनिक कनफूशियस ने एक दिन देखा कि एक जनशून्य पार्वत्य अंचल में श्वापद संकुल एक निर्जन अरण्य में पत्रों की झोपड़ी बनाकर एक वृद्धा बैठी है । विस्मित कनफूशियस ने पूछा, 'आप ऐसे भयावह बघहे जंगल में झोपड़ी बनाकर क्यों बैठी हैं?' (वृद्धा ने कहा, 'यहां बाघ अवश्य हैं किन्तु कोई राजा नही है) इससे निरापद स्थान और मुझे कहां मिल सकता है ?

इस घटना के द्वारा शिवानी ने यह बताना चाहा है कि यदि शासन आचारहीनता की दशा में पहुंच रहा हो तो उसके लिए जनता भी कुछ अंशों तक दोषी होती है क्यों कि आज जनता ही शासक है और जनता ही शासित है । जब तक हम अन्याय सहन करते रहेंगे, हम देश का अहित ही करते रहेंगे । अन्याय सहन करना स्वयं में एक अपराध है । इसी अन्याय के प्रति आवाज उठाना प्रत्येक कर्त्तव्यनिष्ठ नागरिक और जागरूक व्यक्ति का कार्य है । किंतु जब नागरिक ही स्वयं इसको आश्रय देने लगें तो इसमें सुधार की कल्पना मात्र कल्पना ही होगी । शिवानी का यह संस्मरण समाज के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठता का आदर्श प्रस्तुत करता है ।

जाति का आधार जन्म नहीं है -

शिवानी ने (जालक में ही संकलित) एक अन्य घटना प्रधान संस्मरण के माध्यम से स्पष्ट किया है कि जाति का आधार जन्म नहीं मनुष्य के कर्म होते हैं । जब उत्तराखंड शिल्पकार संघ ने शिवानी की 'रतिविलाप' और 'सुरंगमा' पर प्रतिबंध लगाने की मांग शासन से की थी क्योंकि उनके अनुसार उनमें डोम या डोमिनी शब्द का प्रयोग किया गया था, जबकि इन दोनों पुस्तकों में इस शब्द का कहीं भी प्रयोग नहीं है और सुरंगमा में तो केवल उन्होंने अपनी ही जाति (ब्राह्मण) के दौर्बल्य का चित्रण किया है । अपने स्पष्टीकरण में उन्होंने लिखा है - 'इस उपन्यास (सुरंगमा) में तो मैंने आरम्भ से अन्त तक अपनी ही जाति का दौर्बल्य अंकित किया है, जबकि एक ब्राह्मण होने के नाते यह मेरा अक्षम्य अपराध है । ब्रह्माण्ड एंवं वायु पुराण के निर्देशानुसार ब्राह्मण के आचरण के विषय में तर्क करना वर्जित है । बृहदारण्यक उपनिषद् में ब्राह्मण की निंदा करना निषिद्ध है - 'ब्राह्मणान्ननिन्दते ।' ब्राह्मण होने से ही

---

1. जालक शिवानी, पृष्ठ 6।
2. जालक शिवानी, पृष्ठ 6।

कोई व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता, यह तथ्य मैंने अपनी कई कहानियों में अंकित किया है।'[1] इतना ही नहीं उन्होंने आगे भी लिखा है - 'मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी साहित्यकार ऐसी छोटी - छोटी बातें ध्यान में रखकर किसी वर्ण विशेष को आहत करने के लिए कहानी या उपन्यास नहीं लिखता। किसी कर्ण या जाति विशेष की विसंगतियों का वर्णन करना किसी भी रचनाकार का अभीष्ट नहीं होता, किन्तु उसका कर्त्तव्य है कि मानव चरित्र की दुर्बलताओं को वह ईमानदारी से उजागर करे। चाहे वह ब्राह्मण हो,क्षत्रिम हो, वैश्य हो या शूद्र हो, मानव हमेशा मानव ही रहेगा।'[2]

इस प्रकार शिवानी ने जाति का आधार जन्म नहीं कर्म है, का समर्थन किया है। साथ में यह आदर्श स्थापित करने का प्रयास भी किया है कि व्यक्ति घृणित नहीं होता, घृणित होती है उसकी दूषित भावनाएं। कर्म सदैव ही पूज्य रहा है। कर्म से च्युत व्यक्ति ही घृणा का पात्र बना है, कर्मनिष्ठ व्यक्ति कभी नहीं। इस प्रकार शिवानी ने संकीर्ण विचारधारा एवं संकीर्ण भावना पर कुठाराघात करते हुए स्वस्थ मनोवृत्ति के आदर्श को प्रस्थापित करने का प्रयास कर छूत-अछूत आदि की भावना को समाप्त करने का आह्वान किया है।

गुरू की कैसी परीक्षा -

शिवानी की दृष्टि में गुरूओं का महत्त्व सदैव अत्यधिक रहा है। आश्रम के गुरूओं के अतिरिक्त उन्होंने एक अन्य घटना के माध्यम से गुरू महिमा का उल्लेख किया है - उन्हीं के शब्दों में - 'इस सन्दर्भ में मुझे वर्षों पूर्व इलाहाबाद में श्री निगम से सुनी एक रोचक घटना का स्मरण हो जाता है। श्री निगम तब उच्च पदस्थ आई0 सी0 एस0 अधिकारी थे एवं किसी महत्त्वपूर्ण विभाग में सचिव के पद पर थे। पब्लिक सर्विस कमीशन में विभागीय हेड मास्टर के पद का चुनाव चल रहा था। श्री निगम भी निर्णायकों में से एक थे। चेयरमैन थे एक अन्य वरिष्ठ सिविल सर्विस के अंग्रेज अफसर। सहसा जिस व्यक्ति को वहां पहले परीक्षार्थ बुलाया गया, उसे देख निगम अप्रस्तुत हो गए, वह थे उनके बहुत पुराने स्कूल के अध्यापक, जिन्होंने उन्हें कभी ग्राम के स्कूल में पढ़ाया था। आज वही अपने छात्र के सम्मुख हेड मास्टर के पद की परीक्षा के छात्र बने खड़े थे। दोनों की मुखमुद्रा देख, चतुर विदेशी अफसर

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 62
2. जालक, शिवानी, पृष्ठ 63

समझ गए कि शायद दोनों का पूर्व परिचय रह चुका है । क्यों, क्या आप इन्हें जानते हैं ? उसने श्री निगम से पूछा । जी हां, श्री निगम उठकर जाने लगे, 'मेरा निर्णायक रूप में यहां रहना उचित नहीं होगा । यह मेरे अध्यापक रह चुके हैं , इन्होंने मुझे स्कूल में पढ़ाया है । 'आप बैठिये', अफसर ने उन्हें बिठा दिया, इन्होंने आपको पढ़ाया है इतना ही पर्याप्त है, मुझे अब इनसे कुछ नहीं पूछना है, आप जा सकते हैं । तत्काल उनके गुरू को चुन लिया गया था । जिसका शिष्य आज आई0 सी0 एस0 बन स्वयं गुरू का गुरू बन गया है, फिर उसकी कैसी परीक्षा ?' [1].

इस घटना प्रधान प्रेरक संस्मरण का उल्लेख कर शिवानी ने 'गुरूब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवो महेश्वर' को पुनः चरितार्थ कर वर्तमान शिष्यों के समक्ष गुरू के प्रति आस्था, आदर एवं श्रद्धा का आदर्श प्रस्तुत किया है ।

ईश्वर भी माफ कर देगा -

'चिरस्वयंवरा' में संकलित संस्मरण 'बिन्नू' जिसे समाज ने नित - नया - स्वयंवर रचाने वाली के रूप में पहचाना । उसी बिन्नू के जीवन की घटनाएं शिवानी के लिए नवीन आदर्श स्थापना का आधार बनीं । घटना प्रधान संस्मरण 'बिन्नू' के माध्यम से शिवानी ने यह दर्शाया है कि नारी परिस्थितियोंवशं पथभ्रष्ट, चरित्रहीन और विद्रोहिणी हो सकती है । किन्तु जब उसे उपयुक्त एवं अनुकूल वातावरण प्राप्त होता है तो उससे अधिक चरित्रवान और निष्ठावान अन्य कोई हो ही नहीं सकता । अतः समाज का यह दायित्व बनता है कि परिस्थितियों का शिकार हुई पतिताओं को स्वस्थ मन से आगे बढ़कर अपनाना चाहिए और उन्हें सुधरने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए । जो बिन्नू पहले घटनावश पतिता नारी के रूप में चित्रित की गई है, उसी को सुधरे रूप में पवित्रता की मूर्ति मान शिवानी स्वयं उसी के मुख से कहलाती हैं - 'चारों धाम कर आई हैं हम, एक धरमशाला बनवा दिए हैं, एक शिवाला बनवा रहे हैं । ससुर के सब पाप की कमाई के गहने बेच, हमने शिवाले में लगा दिए, एक छल्ला भी नहीं धरा, चार बार गंगा नहा ली । क्यों जिज्जी, अब तो हमें कुछ पाप नहीं लगेगा ।' [2].

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 82 - 83
2. चिरस्वयंवरा - शिवानी, पृष्ठ 118 - 119

अंततः शिवानी ने यह स्पष्ट किया है कि जो बिन्नू पहले सास के अनन्त अत्याचारों से प्रताड़ित थी, उसकी सास बिन्नू पर हाथ उठाने में भी नहीं चूकती थी। सास के इन अत्याचारों से क्षुब्ध होकर बिन्नू पतिता बन गई, सास द्वारा सताई जाने पर भी पति का मूक रह जाना उसे और अखरता था। सास की मृत्यु के पश्चात् जब उसका पति उसे लेने आता है तो वह पूर्ण मनोवेग से पति को स्वीकार कर लेती है और चारों धाम कर अपने किए का प्रायश्चित भी कर लेती है। शिवानी का अभिमत है कि ईश्वर भी माफ कर देगा। उन्हीं के शब्दों में - 'मैं उसके उस भोले प्रशन का कुछ भी उत्तर नहीं दे पाई, पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि जब मेरी वह विद्रोहिणी सखी उस सर्वशक्तिमान की अदालत में खड़ी होकर अपनी भोली चितवन के साथ अपना यही निष्कपट प्रशन दुहराएगी तो वह उदार न्यायाधीश उसके सौ ख़ून भी माफ कर देगा।'[1]

परिणति - बोध -

'एक थी रामरती' में संकलित संस्मरण लोक्खी टी' यह मैत्रेयी द्वारा दिया गया शिवानी का उपनाम है। मैत्रेयी यद्यपि शांतिनिकेतन की छात्रा कभी नहीं रहीं, फिर भी गुरूदेव का उन पर पितृवत् स्नेह था। प्रसिद्ध विद्वान एंवं दार्शनिक पिता श्री सुरेन्द्र नाथ दासगुप्त के साथ मैत्रेयी ने ठाकुरबाड़ी में प्रवेश किया था। तब से कविगुरू के तिरोधान के पूर्व तक, श्रीमती मैत्रेयी देवी, उनके निकट सान्निध्य में रहीं एंवं गुरूदेव की जीवनचर्या की घनिष्ठतम अंगदार रहीं। वहीं वे शिवानी की अंतरंग बनी।

'लोक्खी टी' एक घटना प्रधान संस्मरण है। एक बार मैत्रेयी के मायके से उनके सभी आभूषण चोरी चले गये थे। इस घटना से वे बहुत लज्जित थीं। मायके में गहनों की चोरी हो जाना वस्तुतः भारतीय पुत्री के लिए लज्जा की ही बात थी। इसके बाद अल्पवयस में ही मैत्रेयी के साथ कोई दूसरी घटना घटित हो जाती है, जिसे शिवानी ने गुप्त रखा है या उसका जिक्र करना उचित नहीं समझा। हां इतना अवश्य लिखा है कि - 'मैत्रेयी देवी ने कहीं गहरी गुम चोट अवश्य खाई थी, नहीं तो वह (उनकी) दुर्बल लेखनी क्या इतनी समृद्ध हो पाती ?'[2] इसी परिप्रेक्ष्य में शिवानी ने मैत्रेयी को लिखा गया गुरूदेव का

---

1. चिरस्वंयवरा, शिवानी, पृष्ठ 118 - 119
2. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 94. संस्करण 1991.

पत्र ज्यों - का - त्यों उद्घृत करती हैं -

'कल्याणीयासु'

तुम्हारे पत्र में जो पीड़ा प्रकाशित हुई है, उससे मैं अत्यन्त दुखी हुआ हूं । जीवन के साथ संसार का यदि असामञ्जस्य घटता है, तो उसे सहज में सहन कर पाना, वह भी तुम्हारी कच्ची वयस एवं अनभिज्ञता में संभव नहीं हो पाता । संसार के साथ धीरे - धीरे स्वर मिलाना हो उठता है अत्यन्त कठिन । तुम्हें क्या परामर्श दूं, समझ में नही आता । स्वयं अपनी अल्पवयस का स्मरण हो आता है । तीव्र दुख में जब मेरे दिन, कंटकित हो उठे थे, तब किसी तरह उत्तीर्ण होने का मार्ग नहीं ढूंढ पा रहा था, लग रहा था यह दुर्गमता अन्तहीन है । किन्तु, जीवन की परिणति एकांत विस्मृति में नहीं होती । दिन - पर - दिन वेदना को बोधना में ले जाना पड़ता है । कठोर को ललित, अम्लता को माधुर्य में परिपक्व करना ही है परिणति । तुम्हारे साथ यह घटेगा, यह मैं जानता था, क्यों कि तुममें कल्पनाशक्ति है, और यही शक्ति है सृष्टि शक्ति । अपने को पूर्णतर कर, तुम अवश्य सृष्टि करोगी, यह भी मुझे ज्ञात था । मैं जानता हूं कि हमारे देश की लड़कियों के लिए, उदार शक्ति का आश्रय लेकर आत्म-विकास बटोर पाना सहज नहीं होता । बाहर प्रसार का क्षेत्र, उनके लिए अवरूद्ध ही रहता है । अन्तर्लोक मे प्रवेश करने के लिए जो साधना अनिवार्य होती है, वह अनुकूलता उन्हें नही मिल पाती, किंतु तुम हताश मत होना । अपने पर श्रद्धा रखो, सब ओर से अपने को विच्छिन्न कर लो और उस गम्भीर निभृत में, अपने को स्तब्ध कर, मूदं लो उस निभृत कक्ष में, जहां तुम्हारी महिमा तुम्हारे भाग्य का भी अतिक्रमण कर ले । तुम्हारे पीड़ित चित्त को सांत्वना देने की शक्ति, यदि मुझमें होती तो मैं चेष्टा करता, किन्तु एकान्त मन से तुम्हारी शुभकामना करने के अतिरिक्त, मैं और कुछ नहीं कर सकता । यदि बाहर की कोई क्षुद्रता तुम्हें पीड़ित करे तो उससे पराभव स्वीकार करने में लज्जा बोध करो ।'

इति
स्नेहरत
रवीन्द्रनाथ' 1.

इस पत्र के माध्यम से गुरूदेव की यह शिक्षा कि नारी को अपने पर विश्वास और श्रद्धा रखकर कार्य करना चाहिए, समग्र नारी जाति के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है ।

---

1. एक थी रमरती, शिवानी, पृष्ठ 94-95

वस्तुतः समाज का द्रृष्टिकोण ही नारी के प्रति आलोचनात्मक एंव संदेहात्मक रहा है । आलोचनाओं की परवाह किए बिना निरन्तर अपने सृजन में लीन रहकर नारी अपने अभिष्ट को प्राप्त कर सकती है और अन्य नारियों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत कर सकती है । मैत्रेयी इस आदर्श की सम्प्रस्तुति में सफल रही हैं । गुरूदेव की शुभकामना उनके लिए कवच बन गयी । स्वयं उन्ही के शब्दों में - 'मोंगपू की गम्भीर निर्जनता, कर्महीन दिनों का अवसाद जब मेरे मन को असीम शून्यता से भर देता है, तब उसी क्षण नये-नये संभव-असंभव कार्यों की कल्पना मुझे उत्साह से पागल बना देती है । अवस्था की प्रतिकूलता ने ही मुझे सदैव नित्य आवर्तित मार्ग की ओर ठेला है । नये पथ के संधान में, नये-नये कार्य की संयोजना में, दीर्घ समय तक वापसी होने से, साहित्य से मेरा योग-सूत्र छिन्न हो गया था एंवं बहुईप्सित साहित्य-जगत में प्रवेश करने का मार्ग खो बैठी थी । मन में अवसाद अवश्य था, पर वही अवसाद मुझे नया पंथ दिखा गया । अनेक दूर चलने के पश्चात, आज जब मैं अपने 'खेलाघर' में विदेशी अतिथियों को कहते सुनती हूं कि 'वाह, यह तो मिनी शांति निकेतन बना दिया है आपने ' तब मुझे लगता है, मैं अपने भाग्य का अतिक्रम करने में सफल रही हूं । पराभव मुझे झुका नही पाया । गुरूदेव की शुभकामना ही मेरा कवच बन, मुझे सैंत गई है । '

इस घटना प्रधान संस्मरण के माध्यम से शिवानी ने इस आदर्श की सम्प्रस्तुति की है कि मनुष्य को घोर विपत्ति के क्षणों मे भी धैर्यच्युत नहीं होना चाहिए । यदि मैत्रेयी दी गुरूदेव के आशीर्वचनों को मन से ग्रहण न करतीं, तो क्या उनका जीवन इतना सार्थक हो पाता । यही पिरणति - बोध वास्तविक सार्थकता है ।

अमिट चिह्न का दण्ड -

शिवानी ने जीवन के वैविध्य को बहुत नजदीकी से देखा है, परखा है । चाहे वह पतिता बिन्नू का जीवन रहा हो, चाहे नृत्यांगना तिलका का । घर के बड़े बुर्जुगों की तमाम वर्जनाओं के बाद भी उन्होंने अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण उनके जीवन के रहस्य को पा ही लिया । फिर उनकी दृष्टि में न तो बिन्नू ही पतिता रही और न ही तिलका पेशवर नर्तकी ।

तिलका नैनीताल की एक प्रसिद्ध नर्तकी थी । उन्होंने उसे नैनीताल के नंदादेवी के डोले के आगे नाचते देखा था । उसने अपरूप सौन्दर्य को देखकर शिवानी का हृदय द्रवित हो उठा । उसके बारे मे जानने की उत्कण्ठा उनमें जाग उठी और फिर एक दिन वह उन्हें

मिल गई । कर्म से पेशेवर नर्तकी होने के पशचात् भी वह कितनी निष्पाप थी ! उसकी मुग्ध विस्फारित दृष्टि की दूधिया, भोली चावनी, नारी होने पर भी शिवानी के हृदय को आलोड़ित कर गई । शिवानी की खद्दर की साड़ी उसे पसन्द आ गई, शिवानी ने उसे दे दी । शिवानी की वह साड़ी ही इस घटना प्रधान संस्मरण का कारण बनी । उसकी बुआ के कुर्रम ने उसे उस साड़ी में देखा तो जल - भुन गया और उसके सिर पर लोहे की छड़ी मार दी । साड़ी जला दी अलग से । इसी घटना को समृतकर शिवानी ने लिखा है - 'मेरा स्मृतिचिन्ह तो उसकी बुआ के कुर्रम न जला दिया, किन्तु उसका स्मृतिचिन्ह उसके ठेकेदार - प्रणयी का दिया प्रेमोपहार वर्षों तक मेरे पास धरा रहा, फिर बैंगलोर की यात्रा में मेरे बक्से के साथ ही वह भी खो गया । अपनी दक्षिणी रेशमी साड़ियों के खोने से भी अधिक दुःख मुझे उस रूमाल के खोने का हुआ था । आज, जब स्वतंत्रता की रजत - जयन्ती के अवसर पर, देश के कोने - कोने के स्वतन्त्रता - सेनानियों को ढूंढ-ढूंढ, सूद-ब्याज समेत उनके सर पर पड़ी लाठियों का मूल्य बड़ी ईमानदारी से चुकाया जा रहा है, मुझे उस निर्भीक किशोरी के पीले चेहरे की स्मृति रह - रह कर व्याकुल कर उठती है । न उसे कोई प्रशस्ति पत्र मिला, न ताम्रपत्र । किन्तु फिर सोचती हूं, उसके अभिशप्त ललाट पर उसकी बुआ के साजिंदे की छड़ी का वह अमिट चिह्न ही तो उसका कीर्तिस्तम्भ था । उन हस्ताक्षरों को तो चाहने पर भी न तो विधाता मेट सका होगा, न कालचक्र । '1.

इस घटना प्रधान संस्मरण में शिवानी ने इस सत्य का उद्घाटन किया है कि दुष्कर्मों में लीन व्यक्ति, आवश्यक नहीं कि वे पतित ही हों । परिस्थितियों का शिकार व्यक्ति पतित नहीं होता । पतित तो वे होतें है जो उन्हें इस दलदल में ढकेलते हैं । साथ ही शिवानी ने इसमें इस आदर्श की भी सम्प्रस्तुति की है कि पतित घृण्य नहीं होता, घृण्य होती हैं वे परिस्थितियां, वे व्यक्ति जो उन्हें इन घृण्य कृत्यों के लिए विवश एवं प्रेरित करते हैं ।

शिवानी के मन में न तो अपने इन तथाकथित पात्रों के प्रति न ही घृणा है और न ही दुराव । उन्हें उनके प्रति असीम सहानुभूति है, जिसे उन्होंने स्वयं से सम्बान्धित मित्र, परिचित एवं सहपाठिनी दिखाकर समय - समय पर प्रमाणित भी किया है । शिवानी समाज से भी यही

---

1. श्री राजकिशोर मिश्र, पी0 सी0 एस0, प्रभारी अधिकारी, 25वीं स्वतन्त्रता जयन्ती, अल्मोड़ा द्वारा प्रकाशित, 'स्मारिका' 1973

अपेक्षा रखती हैं कि उनके पात्रों को समाज उपेक्षा की दृष्टि से न देखें । यदि इन्हें पुनः उचित अवसर एवं स्वस्थ सामाजिक परिवेश एवं अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करायीं जाएं तो इनका भी जीवन यथार्थ की ओर उन्मुख हो सकता है ।

ग. स्थल प्रधान संस्मरणों का आदर्श

स्थल प्रधान संस्रमरणों में किसी स्थान विशेष की महत्ता का चित्रण आदर्श के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है । स्थान विशेष जब किसी के लिए उत्थान का माध्यम, जीवन परिवर्तन का रहस्य एवं प्रेरणा का बिन्दु बनता है, तब उस स्थल से सम्बन्धित संस्मरण स्थल प्रधान संस्मरण कहलाता है एवं जनजीवन के लिए आदर्श बन जाता है । न जाने कितने भारतीय देवालय, अपने अलौकिक महत्व के कारण कालान्तर में तीर्थ स्थल बन कर लोगों के लिए आदर्श बन गए हैं । वे सारे स्थान जो किसी विशेष घटना को (जन्म) देकर सामाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित करते हैं, वे स्थल लोकमानस के लिए संस्मरण बन जाते हैं । शिवानी ने अपने संस्मरणों में कुछ ऐसे ही स्थलों का उल्लेखकर अपनी आदर्शप्रियता का परिचय दिया है ।

विश्व भारती - शांतिनिकेतन -

जैसा कि अनेक स्थलों पर लिखा जा चुका है कि शिवानी का साहित्यिक विकास शांतिनिकेतन से ही आरम्भ होता है । शांतिनिकेतन की पारसमाटी का स्पर्श पाकर उनका व्यक्तित्व काञ्चनीय हो उठा । उनके लिए ही क्या, शांतिनिकेतन तो अपने सभी शिक्षार्थियों के लिए पारसस्थल था । सर्वप्रथम उसी स्थल विशेष का स्मरण करते हुए शिवानी लिखती हैं - 'विश्वभारती गुरूदेव की प्रिय कर्मभूमि थी । छोटे - बड़े का भेद वहां की पावन रांगामाटी में घुल - मिलकर एक हो जाता था । त्रिपुरा के राजकुमार और कूच विहार की राजकन्या भी सब के साथ काठ की बेंच पर बैठकर खाना खाते और अपने - अपने आसन लेकर पेड़ों की सुशीतल छाया तले, परम उल्लास से पढ़ने बैठ जाते ।' 1. इस उद्धरण का एक एक शब्द वर्तमान शिक्षा पद्धति के लिए एक चुनौती भरा आदर्श है । वहां शिक्षा पूर्णतया मनोवैज्ञानिक रूचिकर एवं प्रभावपूर्ण थी । गुरू और शिष्यों में पठन - पाठन के प्रति उल्लास एवं उत्साह पाया जाता था । अनुशासन के नाम पर स्वानुशासन की प्रधानता थी । शिवानी ने वहां की आदर्श शिक्षा संहिता

---

1. आमोदर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 18.

की प्रशंसा में लिखा है - 'वहां बालकों के कोमल हृदयों को किताबी बेड़ियों से जकड़ा नही जाता था । पुस्तकें भी बड़ी रोचक, तस्वीरों से भरी, मुलायम जिल्द और मखमली पन्नेदार होती थीं । बच्चे ऐसे प्रेम से पुस्तकें खोलकर बैठ जाते , जैसे परीक्षा की पुस्तकें नहीं, मिठाई का डिब्बा हो । '1.

ऐसा पावन और प्रभावशाली शिक्षास्थल यदि विश्व के लिए आदर्श शिक्षा स्थल बनकर देश-विदेश के शिक्षार्थियों को अपनी ओर आर्कषित करने में सदैव सफल रहा हो तो शांतिनिकेतन निःसंदेह स्वंय में एक आदर्श शैक्षिक स्थल है । इस सन्दर्भ में शिवानी का यह कथन उल्लेखनीय है - ' सचमुच ही, शांतिनिकेतन गुरूदेव की पवित्र तपोभूमि का साकार स्वप्न था । न वहां चहारदीवारियों से घिरी कक्षाएं थी न किसी छत का अंकुश । जहां तक द्रृष्टि जाये, उन्मुक्त नील-गगन था । पढ़ते - पढ़ते जी ऊबता तो आसमान पर चहकते परिन्दों को देखने की बन्दिश नही थी ; लिखते - लिखते हाथ थक जाते तो क्षण भर कलम रख कर पास से गुजरते सन्थाल - दल के अगुवा की दो - गजी मादक वंशी के स्वर को सुनने पर कोई बंदिश नहीं थी; रेखागणित और बीजगणित के कठिन साध्यों के बीच इधर-उधर देखकर ताजगी पाने पर कोई रूकावट नही थी; सामने की डाल पर कबूतर बैठे हैं या गिलहरी कुटुर - कुटुर कुछ खा रही है, यह सब देखते - देखते भी विधार्थी पानीपत के तीनों युद्धों की दुरूह तारीखें कण्ठस्थ कर लेते थे । अकबर की धार्मिक नीति या विलियम बैण्टिक के शासनकालीन सुधारों का गुरूतर बोझ, आश्रम के छात्रों के कन्धों पर भी उतना ही था; जितना अन्य शिक्षण - संस्थाओं के छात्रों पर , किन्तु पढ़ने - पढ़ाने की ऐसी मौलिक व्यवस्था थी कि नन्हें मस्तिष्कों पर स्कूली पढ़ाई, कभी भी बोझ बनकर उतरी । आत्म संयम, उनको आश्चर्यजनक रूप से सचेत बनाये रखता ।'2.

वस्तुतः इस दृष्किोण से शांतिनिकेतन मात्र एक शिक्षा स्थल ही नहीं एक तपस्थल भी था और शिक्षार्थियों के लिए एक तीर्थस्थल भी । जहां मनोमालिन्य का लेश भी नहीं था, पारस्परिक सम्बन्धों में सिर्फ प्रगाढ़ता और पवित्रता थी, त्याग और परमार्थ की भावना थी । इसका ज्वलन्त उदाहरण स्वंयं गुरूदेव थे ।

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 19
2. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 20 - 21.

शील - सौजन्य का देश भारत -

'वातायन' में वर्णित एक स्थल प्रधान संस्मरण के माध्यम से शिवानी ने एक विदेशी वृद्धा के द्वारा भारत के प्रति जो श्रद्धा व्यक्त की है, वह पाश्चात्य सभ्यता के कीचड़ में डूबने को डूबने को व्याकुल भारतीय युवक - युवतियों के लिए स्वच्छ नीर से परिपूरित एवं कमलपुष्पों से युक्त एक झील सा सुन्दर आदर्श है । वे (विदेशी वृद्धा) भारत की उदारता एवं भारतवासियों के शील-सौजन्य से अभिभूत होती हुई शिवानी से कहती हैं - 'हमारा देश तुम्हारे भारत - सा उदार नहीं है, जहां बेटा मरे बाप को भी पानी देता है । तुम्हारी बहन को अपने बुड्ढे - सास - ससुर की सेवा करते देखती हूं तो ईर्ष्या होती है उनके सौभाग्य पर । हमारे यहां केवल आडम्बर है , तुम लोगों का - सा शील - सौजन्य नहीं । हमारी बहुएं मिलेंगीं तो चूमचाट कर रख देंगी, ममी अगर रहने चली गई तो डाल देंगी किसी होम में ।'[1]

ये उद्गार हैं एक विदेशी ब्यूटी क्वीन के, जो कभी नैनीताल के सामाजिक जीवन का एक सुदृढ़ स्तम्भ थीं, कमिश्नरी का कोई भी जलसा उनकी उपस्थिति के बिना साकार नहीं होता था । घुड़सवारी, मास्क बॉल, बाजार आदि आयोजित करने में उनकी विशेष ख्याति थी । उनके पति सिविल सर्जन थे , किन्तु क्रूर काल ने क्षण-भर में उनसे सब कुछ छीन लिया । तीनों पुत्रों को विदेश की ऊंची नौकरियों का आकर्षण वहीं का बना गया था । सुन्दरी पुत्रियां भी विदेश में ही बस गई थीं । पुत्र-पुत्रियों के होते हुए भी वे एक 'विडोज होम' में रहती थीं ।

इस संस्मरण के माध्यम से शिवानी यह दर्शाना चाहती हैं कि हमारा देश और हमारे संस्कार अन्य देशों की तुलना में कहीं अधिक श्रेष्ठ हैं , किंतु हम अपनी इस आदर्श परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने में असमर्थ होते जा रहे हैं । वे विक्षुब्ध होकर कहती हैं कि पाश्चात्य शिष्टाचार का विष, हमारे देश में, हमारे समाज में भी फैलता जा रहा है । हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर को स्वयं मिटाने पर तुले हुए हैं । कभी हमारा देश इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों के कारण का अन्य देशों के लिए एक उदहरण था और आज हम स्वयं पाश्चात्यीकरण का एक नमूना बनते जा रहे हैं ।

---

1. वातायन, शिवानी, पृष्ठ 34.

कुमाँयू मण्डल -

शांतिनिकेतन के बाद यदि शिवानी के हृदस्थल में किसी दूसरे स्थल के प्रति असीमित श्रद्धा दिखाई दी है तो वह स्थल है 'कुमाऊं'। 'कुमाऊं शब्द 'कूर्मांचल' का तद्भव रूप है। 'कुमाऊं' शब्द का प्रयोग, लोक साहित्य की दृष्टि से नैनीताल, अल्मोड़ा और पिथौरागढ़ के पर्वतीय जिलों के लिए किया जाता है।'[1]

"कुमाऊं की मिट्टी से लेकर परम्पराओं, रीति-रिवाजों एवं वहां के निवासियों ने भी शिवानी के लिए आदर्श प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से कुमाऊं भी शिवानी के लिए एक स्थलीय आदर्श है। वहां के अति सामान्य कुलियों के जीवन के चित्रण के द्वारा शिवानी ने उनकी कठिनता और संतुष्टि का जो आदर्श प्रस्तुत किया है, उससे पूरा कुमाऊं ही आदर्शवान हो उठता है। उनका चित्रण करती हूई शिवानी लिखती हैं - 'कुमाऊं का बोझा ढोने वाला कुली "दोययाल" मुझे सर्वदा ही कर्मठ जीवन का एक जीवंत प्रतीक लगता है। शरीर प्रर ह्रस्वतम वस्त्र, पीठ पर ढाई मन का बोझा और हाथों में मशीनी तत्परता से बिने जा रहे रंग बिरंगी गुलूबन्द की इन्द्रधनुषी छटा। चिकने - चुपड़े चेहरे पर झुझंलाहट का एक भी रेखा नहीं, दगदगाते स्वास्थ्य का जीवन्त विज्ञापन बना, वह गन्तव्य स्थान पर एक बोझा पहुचांते ही फिर दूसरे पर्यटक के सम्मुख खड़ा, उसी ताजी मुस्कान के साथ पूछता है - 'कुली होगा साब ?'[2]
इन कुलियों के अनुशासित जीवन से शिवानी जब सम्पन्न समाज के अनुशासन हीन जीवन की तुलना करती हैं तो कुमाऊं के कुलियों को ही श्रेष्ठ पाती है। शिवानी इन कुलियों की कर्मठता से प्रभावित होकर लिखती है - 'आज हमारी इस स्वार्थी अनुशासन हीन जीवन में भी यदि किसी ऐसे ही कमर्ठ मेट की कंठगर्जना, 'कौल्दे - कोल्दे - कोल्दे' के प्राण फूंक सकती, तो शायद चिरदरिद्र बोरे की कथरी में भी मखमली रजाई की उष्णता आ जाती, जीवन की तीखी चढ़ाई भी हमें उतनी भारात्मक नहीं लगती और क्षीण कलेवर नदी के चिकने पत्थरों में मछली के शोरबे का आनन्द लेना सीख लेते ।[3]

---

1. कुमाऊं का लोक साहित्य, डा० कृष्णानंद जोशी, एक परिचय, पृष्ठ 9.
2. वातायन, शिवानी, पृष्ठ 108.
3. वातायन, शिवानी, पृष्ठ 111.

नैनीताल में नन्दा देवी -

नैनीताल में नंदाष्टमी के दिन बड़ी धूम के साथ उठने वाला नंदादेवी का डोला कुमाऊं अंचल का ही दूसरा स्थल प्रधान संस्मरण है, जो आज भी शिवानी के मानस - पटल पर अंकित है । उसे स्मृत कर शिवानी लिखती हैं - 'मल्लीताल की छोटी सी बाजार में, न उन दिनों की - सी चमक-दमक थी, न नियोन बत्तियों की जगमगाहट । फिर भी नंदाष्टमी के दिन, केले के खाम लिए गाते - नाचते ग्रामीणों की बीच, बुरूंश और गेंदें के गजरों के लदे महिष, दूल्हों की तरह झूमते निकल जाते तो पहाड़ी ढालू छतों पर रंगीन पिछौड़ों की शत-शत यवनिकाएं एक साथ ऊपर उठ जातीं । डोला देखने को बैठी चन्द्रमुखियों के उल्लसित चेहरे पिटे सोने से दमक उठते । ग्रामीण बांकों की टोलियां वहीं घेरा बना, झोड़े की मधुर मुरकियों के बीच अपने जिस आशुकवित्व का परिचय दिया करते थे, उसके लिए अब कभी - कभी कलेजे में हूक - सी उठती है ।'[1] किंतु आज वहां सब कुछ बदल गया है । न वहां अब वह धूम है, न उत्साह, वहां न अब ग्रामीण बांकों की टोलियां रहीं और न ही उनका आशुकवित्व । इससे क्षुब्ध होना ही शिवानी के सांस्कृतिक आदर्श को परिलक्षित करता है । वे स्वयं लिखती हैं - 'शायद मैं ही मूर्ख हूं । मुझे आज भी उन विस्मृत लठ ग्रामीणों की गायकी भुलाये नहीं भूलती । लगता है आजादी के बाद, हमने यदि कुछ अंश में पाया भी है तो खोया है उससे अधिक । हमारी संस्कृति धीरे-धीरे हमारी मुट्ठियों से निकलती जा रही है ओर परायी संस्कृति के प्रति हमारी निष्ठा, हमारा मोह, हमारा ध्येय भावना को शिथिल करता जा रहा है । अतीत में हमारी सर्वोच्च निष्ठा धर्म के प्रति थी, इसी से हमारी पारम्परिक धर्मानुष्ठानों में हमारी संस्कृति भी अपने स्वाभाविक रूप से जीवित थी । यह सत्य है कि बुद्धि एक प्रबल शक्ति है, किन्तु यह शक्ति भी अपने समाज के परम्परागत रीति-रिवाजों का सम्पूर्ण रूप से खण्डन कर उन्हें नेस्तनाबूद नहीं कर सकती । हमारी संस्कृति बनी रहे, अतीत के प्रति हमारी निष्ठा शिथिल न हो , इसके लिए आवश्यक है सदियों से प्रचलित हमारी ये प्रथा - संस्थाए बनी रहें । '[2]

नैमिषारण्य -

'जालक' में संकलित नैमिषारण्य भी शिवानी के मानस - पटल में चिर - स्मृत एक प्रधान संस्मरण है । नैमिषारण्य स्वयं में एक आदर्श स्थल है । यह सीतापुर और हरदोई

---

1. कीर्ति-स्तम्भ, शिवानी, श्री राजकिशोर मिश्र, पी0सी0एस0, प्रभारी अधिकारी, 25वीं स्वतन्त्रा-जयन्ती, अल्मोड़ा द्वारा प्रकाशित, 'स्मारिका' 1973, पृष्ठ 105.
2. यथोपरि .

जनपदों का वह सयुंक्त तीर्थतुल्य अरण्य है जिसकी महिमा असाधारण मानी गई है । जहां संस्कृति और साहित्य का सरंक्षण एंवं संवर्द्धन हुआ है । संक्षिप्त अवधि में भी वहां जिस अद्‌भुत शांति का अनुभव होता है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है । इस पुण्यस्थल की दिव्यता का गुणगान शिवानी इस प्रकार करती हैं - 'मुझे अनेक तीर्थस्थानों की पावन धूलि ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, किन्तु संक्षिप्त अवधि में भी जो अद्‌भुत शांति का अनुभव मुझे यहां हुआ, वह इतिपूर्व नहीं हुआ । चाहे वह कोला हल पूर्ण ब्रहम्कुडं की गोलाकार परिधि हो, नवीन पुराण मंदिर की संकरी गली, दधीचि कुंड का मौलिक एकांत या हनुमान गढ़ी का भव्य गांभीर्य । सर्वोपरि व्यास गद्‌दी का वह शांत वातावरण, जहां कोयल की कूक भी मुझे एक भिन्न ही कूक प्रतीत हुई थी । विराट्‌ वृक्ष, उसके नीचे धरी वेदी पर बनी खड़ाऊ, आसपास धरी चार वृत्ताकार प्रस्तर की बेंचें । जब मैं गई तो द्विप्रहर प्रौढ़ भी नही हुई थी, फिर भी लग रहा थी, सन्ध्या घनायमान हो आई है । पेड़ों के झुरमुट से दिख रही क्षीणकाया गोमती । लखनऊ की गोमती से कितना भिन्न रूप है इस गोमती का । वह शांत - गम्भीर नील जलधारा मुझे कनकनन्दी-सी ही महिमामयी लगी, जहां स्नान करने से स्वेच्छाचारी विहंगम भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं ।'[1.]

शिवानी उस दिव्य अनुभूति से आज भी अभिभूत होती हुई पुनः लिखती हैं - 'तपः पूत ऋषि-मुनियों का कैसा अद्‌भुत तेज रहा होगा कि आज भी वहां बैठकर ऐसी विचित्र अनुभूति होती है जैसे किसी दिव्य पारसमणि ने हृदय को छू लिया हो । किन्तु वहां जाकर आचार्य हजारी प्रसाद जी की बहुत पहले कही गई एक बात याद आई कि हम अपनी विरासत को भूलते जा रहे हैं, कपूत हो गए हैं हम । ऐसा दिव्य पावन भूखंड, जहा भारतीय संस्कृति और साहित्य की सृष्टि एंव संवर्धन हुआ, उसे क्या हम अपने सामान्य - से प्रयास से अधिक शोभनीय नहीं बना सकते । एक ओर दक्षिण के महाबलिपुरम में विदेशी पर्यटकों के लिए दर्शनीय वातानुकूलित झोपड़ियां बनाने में हमारी सरकार ने लाखों रूपया बहा दिया है । (ऐसी नकली झोपड़िया बना क्या हमने अपनी आदि संस्कृति का खोखला प्रचार ही नहीं किया ?) किंतु जो आडम्बररहीन कुछ ऐसे दिव्य स्थान हैं जो आज भी बिना किसी प्रचार - प्रसार के स्वयं अपने ही प्रभामंडल से देदीप्यमान हैं, उनके सरंक्षण के लिए हमारे पास न समय है न धन ।'[2.]

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 72 - 73.
2. जालक, शिवानी, पृष्ठ 73.

अपने देश की आदि संस्कृति के प्रति शिवानी का विशेष मोह रहा है, और रहेगा । अपने ही देश से , अपनी ही संस्कृति को इस प्रकार विलुप्त होते हुए देखकर उनकी करूण वेदना क्षुब्ध हो कातर हो उठती है । काश । हम साहित्यकारों की इस कातरता को समझ पाते और अपनी इस धरोहर को सुरक्षित रख पुनः गले से लगा पाते ।

कपालेश्वर देवालय -

शिवानी ने देश-विदेश भ्रमण के साथ - साथ तीर्थ-स्थलों का भ्रमण भी खूब किया है और उन पर खूब लिखा भी है । मद्रास की मयूर नगरी जो अपने कपालेश्वर देवालय के लिए प्रसिद्ध है, के अुपम दर्शन भी शिवानी ने किए है । इस देवालय के दिव्य आदर्श को दर्शाते हुए उन्होंने अपने एक स्थल प्रधान संस्मरण में लिखा है - 'मायलापुर, जो कभी ब्लैक टाउन कहलाता था, अब मद्रास की प्रमुख बस्ती है । मायलापुर अर्थात मयूर नगरी आज अपने कपालेश्वर देवालय के लिए ही अधिक प्रसिद्ध है । एक तो दक्षिण के मंदिरों की सांध्यकालीन छटा वैसे ही दर्शनीय होती है उस पर कपालेश्वर के मंदिर पर तो जैसे एक रहस्यमय कोहरा - सा मंडराता रहता है । कोलाहल, कलरव मृदंग और मंत्रध्वनि के बीच भी मंदिर प्रांगण में बैठते ही लगता है, ऐसा सुरम्यशांत स्थल और कोई हो ही नहीं सकता ।'[1] शिवानी ने कपालेश्वर देवालय की पवित्रता को भारतीय जनजीवन का अभ्युदय केन्द्र माना है ।

महाबलीपुरम् -

'पर्यटकों का आर्कषण : महाबलीपुरम् 'नामक शीषक में शिवानी ने महाबलीपुरम् स्थल का जो विस्तृत वर्णन एवं विवेचना प्रस्तुत की है, उसमें उनकी धार्मिक प्रवृत्ति का भी परिचय मिलता है । वस्तुतः शिवानी की धर्म पर भी अटूट श्रद्धा रही है । तभी तो अपने संस्मरणों में धार्मिक स्थलों का चित्रण करने में भी उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है । शिवानी ने महाबलीपुरम् के भव्य आदर्श का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया है - 'महाबलीपुरम् जिसे यहां महामल्लपुरम कहा जाता है, विदेशी पर्यटकों को विशेष रूप से आकर्षित करता है । शायद इसलिए भी कि इसी के निकट कोवलोंग का दर्शनीय समुद्रतट है । महाबलीपुरम् में पर्यटन विभाग ने एक से एक सुन्दर पर्यटक निवास बनाए हैं । कुछ झोपड़ीनुमा छोटे-छोटे डिब्बे से आवासगृह हैं । हैं तो निराडंबर झोपड़ियां लेकिन उस वातानुकूलित भव्य सज्जा-मंडित

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 102.

झोपड़ियों में केवल विदेशी बादशाह रह सकते हैं । किंतु महाबलीपुरम् की गुदड़ी में छिपे हैं अद्भुत प्राचीनतम देवालयों के लाल । पल्लव कला की वह दर्शनीय छटा कलाप्रिय चित्त को सुशीतल ही नहीं करती, चट्टानों को खोदकर बनाई गई विराट् मूर्तियाँ पल भर को स्तब्ध कर देती हैं । कौन कह सकता है ये सातवीं शताब्दी की बनी मूर्तियां हैं । लगता है, अभी - अभी मूर्तिकार यहां से छैनी - हथौड़ा उठाकर विदा हुआ है । समुद्र तट पर बना हुआ मंदिर ही यहां का सबसे प्रसिद्ध मन्दिर है । '[1]

पक्षीतीर्थ -

शिवानी ने चिंगलपेट और महाबलीपुरम के मध्यस्थित तिरूवल्लीकुन्रम में एक ऊंची चोटी पर स्थित पक्षी तीर्थ का भी वर्णन किया है । उन्हीं के शब्दों में - ' ठीक साढ़े ग्यारह बजे घड़ी के कांटे के साथ पक्षियों का एक जोड़ा जिस तत्परता से आकर पुजारी के हाथ से अन्न ग्रहण करता है, उसे देख कर सचमुच आश्चर्य होता है । कहा जाता है कि ये गरूण पक्षीद्वय अनादि काल से ठीक इसी समय वाराणसी से रामेश्वरम् की यात्रा के बीच इस विश्राम स्थली पर उतरते हैं । '[2]

शिवानी अपने देश के विचित्र किन्तु गौरवमय आदर्श पर आश्चर्य व्यक्त करती हैं - 'सचमुच ही ऐसा विचित्र चमत्कारों का देश क्या कहीं और मिल सकता है ?'[3] वस्तुतः भारत जैसा उदार एवं संस्कृति प्रधान देश अन्यत्र मिलना दुलर्भ है ।

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 106
2. जालक, शिवानी, पृष्ठ 107 - 108
3. यथोपरि

घ. संस्मरणों में नैतिकता का निर्वाह

शिवानी के संस्मरणों मे अनेक ऐसे उद्धरणीय व्यक्ति, घटना, स्थल हैं, जो नैतिकता से आप्लावित हैं और जिनमें आद्यन्त नैतिकता का आग्रह परिलक्षित हुआ है । अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि शिवानी के साहित्य में नैतिकता का सर्वत्र निर्वाह हुआ है ।

शांतिनिकेतन, जहां से शिवानी के अनेक संस्मरण जुड़े हैं । यूं कहना अधिक उचित होगा कि शांतिनिकेतन ही शिवानी के संस्मरणों की उत्सभूमि है । इस लिए शिवानी की पुस्तक 'आमादेर शांतिनिकेतन' को उनके चिर - स्मृत संस्मरणों का एक अपूर्व संकलन माना गया है ।

वस्तुतः शांतिनिकेतन मात्र एक शिक्षा निकेतन ही नहीं, अपितु नैतिक संस्कारों का एक आदर्शमय निकेतन था । फिर वहां से सम्बन्धित प्रत्येक घटना या कार्य में नैतिकता स्वाभाविक है । वहां के सहज वातावरण में अनैतिक भी नैतिकता के रंग मे रंग जाता था । गुरूदेव की प्राणवायु से पोषित वह संस्थान नैतिकता के लिए ही तो कार्यरत था । नैतिकता के निर्वाह में स्वंय गुरूदेव अग्रगण्य रहे ।

एक बार कटक की किसी साहित्य सभा में गुरूदेव का अभिनन्दन था। वहां की एक दुबली-पतली लड़की ने गुरूदेव के स्वागत में उन्हीं के सम्मुख स्वागतगान गाया । उसके मधुर कण्ठ को सुनकर गुरूदेव केवल मुग्ध ही नहीं हुए, बलिक यह जानने के लिए विकल हो उठे कि वह कौन है, और संगीत शिक्षा की क्या व्यवस्था है ? जब इन्हें ज्ञात हुआ कि इसका जन्म ऐसे परिवार मे हुआ है, जहां दो जून का (भोजन) भी कठिनता से जुट पाता है। इधर-उधर से सुनकर गाना सीख लेना ही उसकी संगीत शिक्षा है । गुरूदेव की आत्मा उसकी प्रतिभा का हनन होते नहीं देख सकी, उन्होंने उसे आश्रम बुला लिया । वहां उसकी निःशुल्क शिक्षा एंवं रहने की पूर्ण व्यवस्था कर दी गई । शिवानी इस नैतिक प्रसंग से अभिभूत हो लिखती हैं - ' गुरूदेव ने सहायता का वचन दिया और कुछ ही दिनों बाद, वह आश्रम में आ गई । उसके रहने, खाने एंवं कपड़ों का प्रबन्ध आश्रमिका संघ की ओर से करा दिया गया । वह संगीत भवन में रवीन्द्र संगीत, सितार और अन्य विषयों की शिक्षा पाने लगी । इसी प्रकार अन्धा छात्र कालू भी निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करता रहा ।'[1.] इतना ही नहीं गुरूदेव अपने अत्यन्त व्यस्त जीवन से

---

1. आमादेर, शांतिनिकेत, शिवानी, पृष्ठ 59 - 60.

किस प्रकार समय निकालकर अपने अनगिनत प्रिय शिष्यों का मन रख लिया करते थे, यह उनकी नैतिकता का ही परिचायक है - 'आश्रम में आये दिन, साहित्य सभाएं होतीं, छात्र गुरूदेव के पास जाकर घेर लेते - 'आपको हमारी सभा का सभापति बनना ही होगा ।' हर महीने हर भवन को एक साहित्य - सभा होती रहती और उतनी सारी सभाओं का सभापतित्व ग्रहण करना गुरूदेव के लिए संभव न होता, पर वह सबका मन रख लेते - किसी को सभा सजाने के लिए उत्तरायण बगीचे के अनमोल गुलाब देकर और किसी को दूसरी सभा में स्वयं आगे उपस्थित रहने का आश्वासन देकर ।' 1.

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि शांतिनिकेतन अपने में एक नैतिक निकेतन भी था । यहां छात्रों को नैतिक कर्मों की भी नैतिक शिक्षा दी जाती थी । एक घटना का जो इस तथ्य की पुष्टि करती है, उल्लेख करते हुए शिवानी ने लिखा है - 'गांधी जी हों या पण्डित नेहरू, आश्रम का घण्टा अपने समय से ही बजता । हर घण्टे का अलग-अलग सन्देश रहता । खाने का हो या छुट्टी का, सभा का हो या किसी विशेष उत्सव का, खतरे का हो या किसी की मृत्यु का , हर घण्टे की मूक भाषा का 'कोड' आश्रमवासी पहचान लेते । विपत्ति के घण्टे को सुनते ही, सबके कान खड़े हो जाते । एक बार, सन्थाल ग्राम के एक विक्षिप्त लड़के ने फूस की भोपड़ी में आग लगा दी, देखते - ही - देखते आग की लपटें आकाश छूने लगीं । लाल-ज्वाला की लपलपाती जीभ देखते ही आश्रम के खतरे का घण्टा बज उठा - टंग - टंग - टंग - टंग - उपेन्द्र दा की, सधी टीम तत्काल घटनास्थल पर पहुंच गई और आग पर काबू पा लिया गया ।' 2.

खतरे की यह घण्टी वस्तुतः नैतिक - कर्त्तव्यों के निर्वाह की घण्टी थी । सामान्यतया यह देखा जाता है कि खतरा देखकर लोग भयभीत हो जाते हैं, साहस और धैर्य छोड़ बैठते हैं । ऐसे में कुशल नेतृत्व के द्वारा भयातुर लोगों में धैर्य बनाए रखने की प्रेरणा भरना और उन्हें खतरों से खेलने के लिए प्रोत्साहित करना नैतिक संस्कारों के निमार्ण की अनूठी कला है । शांतिनिकेतन के गुरू इस कला में निष्णात थे , छात्र - छात्रायें भी क्रमशः इसमें दक्ष होते गए । शिवानी को इन्हीं संस्कारों ने आदर्श और नैतिकता के प्रति इतना जागरूक बना दिया है कि उनके

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 60.
2. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 69.

समस्त लेखन में शांतिनिकेतन का यह प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है ।

शांतिनिकेतन में छात्र-छात्राओं को अतिथि सत्कार की भी शिक्षा दी जाती थी । शांतिनिकेतन के प्राक्तन छात्र-छात्रायें जब आश्रम के अन्य छात्र-छात्राओं से मिलते थे तो वे विशेष स्नेह दिखलाते थे । इस प्रकार के एक स्नेहिल स्वागत का संस्मरण कर शिवानी ने लिखा है - 'एक बार हम बैंगलोर में थे - आश्रम के बहुत पुराने छात्र श्री गोपाल रेड्डी वहां आकर बड़े प्रेम से हमें अपनी कार में अपनी नीलोर स्थित विराट हवेली 'सुदर्शन महल' ले गये और हमारी स्नेहपूर्ण आवभगत की ।'[1]

यह तो थी नैतिकता आश्रमवासी एक छात्र की दूसरे छात्र के प्रति । ऐसी ही नैतिकता का दिग्दर्शन आश्रमवासियों द्वारा किए गये आतिथ्य सत्कार में भी मिलता है । शिवानी की लेखनी इसकी प्रत्यक्ष दर्शिका है - 'आश्रमवासियों को आतिथ्य की विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थीं - कोई भी अतिथि क्यों न हो, वह कभी असन्तुष्ट होकर आश्रम से न लौटे, इसका विशेष ध्यान रखा जाता । एक बार राष्ट्रपति श्री राजेन्द्र प्रसाद जी आश्रम में पधारे । बिहार की छात्राओं ने मिलजुलकर स्वादिष्ट बिहारी व्यंजन बनायें । मुझे आज भी याद है कि भुने तिल की एक विशिष्ट परिचित मिठाई देखकर प्रसाद जी आश्चर्य से पूछने लगे - अरे, तुम लोग ।'[2] इतना ही नहीं शिवानी ने बाबू राजेन्द्र प्रसाद के एक सामान्य से कृत्य के द्वारा नैतिकता निर्वाह का आदर्श प्रस्तुत करते हुए पुनः लिखा है - 'श्रीभवन के बाहर बड़ी - सी दरी बिछा दी गई थी । उन दिनों राजेन्द्र बाबू अस्वस्थ थे ; फिर भी उन्होंने हमारी बनाई हुई चीजें चखीं, प्रशंसा की और बार - बार खांसी उठने पर भी हमारी हस्ताक्षर - पुस्तिका में अपने हस्ताक्षर किये ।'[3]

शिवानी ने अपने आश्रम की इस नैतिक - शिक्षा - प्रणाली की प्रशंसा में लिखा है - 'लॉड लोरियन, सर मॉरिस ग्वायर जेनेवा से आया, वैज्ञानिकों का शिष्ट-मण्डल । सब आश्रम आते और वहां की सर्वथा मौलिक शिक्षा की प्रणाली को देखकर मुग्ध हो जाते ।'[4]

---

1. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 81.
2. आमादेर शांतिनिकेतन, शिवानी, पृष्ठ 81.
3. यथोपरि
4. यथोपरि

शिवानी एक नारी हैं और नारी ही मां, बहू और सास आदि की भूमिकाएं निभाती है । मां जब अपनी बेटी को विवाह के पश्चात् घर से विदा करती है तो वह उसे नैतिक नियमों से प्रशिक्षित अवश्य करती है । शिवानी ने एक मां के द्वारा अपनी ससुराल जा रही बेटी को ऐसी ही शिक्षा दिलाई है - ' सास की आज्ञा मानना और पति को देवता मानकर पूजना । ' 1.

यही बहू आनन्दी भारत की प्रथम डॉक्टरनी बनने और विदेशी शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् भी अपनी मां की पूर्व की शिक्षा को आजीवन स्मृत रख पति को परमेश्वर मान उसके चरणों में अपना स्थान खोजती रही - जब उसके पति उसकी पढ़ाई समाप्त हो जाने पर उसे लेने के लिए विदेश पहुंचते हैं तो वह उनके चरणों पर अपना मस्तक रख देती है - ' विदेश में रहकर भी वह नहीं भूली थी कि पत्नी का स्थान पति के चरणों में है । गोपालराव (पति) के दोनों पैर पकड़ उसने उन्हें अश्रुसिक्त कर दिया । उधर गोपालराव उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखते, जैसे उसके अंतर की एक - एक परत खोल-खोल कर सूक्ष्म परीक्षण कर रहे थे । अंत में उस सती का तेज, उसकी पति - परायणता उन्हें विगलित कर गई । पूर्व और पश्चिम के बीच भारत का वह अनुपम रत्न अपनी सहज स्वाभाविकता से दमक उन विदेशियों को भी आश्चर्यचकित कर गया । ' 2.

पति - पत्नी का यह अद्भुत मिलन उन विदेशियों (मकान मालिक) के लिए एक विचित्र आश्चर्य बन गया । जब कि हमारे देश में इसे नारी का नैतिक धर्म माना गया है । पति कैसा भी हो उसकी आज्ञा मानना और उसकी सेवा करना हमारे देश की नारियों का नैतिक - कर्त्तव्य है ।

'रामरती' शिवानी की एक अतिविश्वसनीय सेविका थी जो अपने स्नेहाधिकार के कारण कभी - कभी अभिभाविका की भूमिका भी सफलापूर्वक निभाती थी । जहां रामरती सम्बन्धित संस्मरण की नैतिकता की निष्कलुष गाथा है, वहीं शिवानी ने भी उसके प्रति अपनी नैतिकता का निर्वाह कर एक स्वामिनी के दायित्व को निभाया है । कभी रामरती ने शिवानी से अपनी पुत्री के कन्यादान का वचन लिया था । शिवानी ने उसे पूरा कर अपनी नैतिकता का

---

1. जालक, शिवानी, पृष्ठ 27.
2. जालक, शिवानी, पृष्ठ 28.

निर्वाह किया है । उन्हीं के शब्दों में - 'ईश्वर ने उस कर्त्तव्य को निभाने की शक्ति दी । अपनी जीवन का वह चौथा कन्यादान भी सम्पन्न किया । विवाह मेरे ही घर से हुआ । हलवाई भी बैठे, शामियाना भी लगा, बिजली के लट्टू भी जगमगाये ।'[1.]

कन्यादान के अतिरिक्त दूसरे जिस दायितव का निर्वाह कर शिवानी ने अपने धर्म का पालन किया, वह रामरती का अंतिम संस्कार था, जिसके लिए उसने शिवानी से बचन ले लिया था । इस वचन को निभाकर शिवानी ने एक ओर जहां वचनबद्धता की नैतिकता का निर्वाह किया है, वहीं दूसरी ओर सेविका के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह । शिवानी के हृदय में उसके प्रति कितना प्रेम था , इसका संकेत इन पंक्तियों में भलकता है - 'पर आज नहीं हंस पा रही हूं, जब मेरा पुत्र श्राद्ध सम्पन्न कर एक - एक पितामह - मातामह, पितामही - मातामही सबका स्मरण कर तिलांजलि दे रहा था और पंडित जी कह रहे थे,' आपको जो भी प्रिय दिवंगत बंधु - बांधव हों उन्हें भी स्मरण कर दीजिए ।' जी में आ रहा था कहूं, एक तिलांजलि उसे भी दे दे जो इष्ट मित्र न होकर भी मुझे पुत्री - सी ही प्रिय थी ।'[2.]

रामरती ने भी स्थल - स्थल पर अपनी नैतिकता का निर्वाह किया है । पति के द्वारा रोज - रोज पिटने पर भी वह उसे छोड़ना नहीं चाहती है । अपनी नानी के द्वारा दूसरी शादी का प्रस्ताव रखने पर वह भड़क उठती है और कहती है - 'खबरदार, जो कबहुं इहु बात दोहरायो । हमार मनसेधू है, हमार अगूंठा पकड़िन है, हम का अइसन छोड़ देई ? छोड़े तो ऊ छोड़े, हम काहे छोड़ी ?'[3.] पति की मृत्यु के पश्चात् जब शिवानी उससे कहीं और चले जाने का कहती हैं, तब वह कहती है - ' हम का नमकहराम बिलार हैं दीदी, जो मालिक घरै दूध न मिली तो अंतै चली जाई ?[4.] यह कहकर वह अपनी स्वामिनी के प्रति अपनी सेवकाई धर्म का अनुकरणीय परिचय देकर अंत तक शिवानी की सेवा में रत रहती है ।

सुशिक्षित शिवानी लोक जीवन शैली के प्रति कितनी आस्थावान हैं, इसका एक उदाहरण डिग्रीधारी चिकित्सकों के सम्मुख सायकिल पर सवार जंग लगे टीन का बक्सा बांधे क्लिप, शीशा और कंघा बेचने वाला, शिवानी के शब्दों मे 'मोबाइल चिकित्सक' किस प्रकार अपनी नैतिकता का निर्वाह कर शिवानी के लिए सहसा आदर्शवान हो उठता है कि वह शिवानी के

---

1. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 57.
2. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 62.
3. एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 51.

लिए एक संस्मरणीय कथानक बन जाता है । शिवानी की भयानक मोच चार - पांच दिन में लगातार अपनी मालिश और औषधि से ठीक कर देने के पश्चात् जब उन्होंने उसे कुछ देने की चेष्टा की तो उसके शब्द नैतिकता के स्वर्ण - अक्षर बनकर शिवानी के मस्तिष्क में संरक्षित होकर रह गये - ' नहीं सरकार मैं किसी से भी कुछ नहीं लेता । अल्लाह ने मुझे बहुत कुछ दिया है ।'[1] उसके इन शब्दों को सुनकर यह सोचने को विवश हो जाती हैं - मेरी दृष्टि उसकी विवर्ण देश - भूषा पर गयी, सायकिल पर बंधा जंग लगा बक्सा, मलिन वस्त्र किन्तु आखों में संतोष की दिव्य दीप्ति और चेहरे पर निःस्वार्थ सेवा की अनोखी दमक । सन् 47 से कयूम अपनी बिसाती फेरी के साथ यह देसरी फेरी लगा रहा है , दुखती रंगों, उखड़ी हड्डियों और मोच खाये टखनों को यंत्रणामुक्त करने की फेरी । काश, हमारे इस युग के अर्थलोलुप चिकित्सा - विशेषज्ञ भी सरल - संतोषी कयूम की भांति माथे से हाथ लगाकर कह पाते - नहीं, हम कुछ नहीं लेगें , अल्लाह ने हमें बहुत कुछ दिया है ।'[2]

शिवानी अपने उस प्रिय पाठक की नैतिकता को भी नहीं भूल सकीं; जिसने उनकी पुस्तकों को पढ़ उनके प्रति एक सम्मान-जनक स्थान अपने हृदय में बना लिया था । जब शिवानी के पति के पेंशन का मामला लालफीताशाही के चक्कर में उलझ जाता है , तब वही सुधी पाठक उनके नाम और फोटों के आधार पर उनका काम अविलम्ब करवा देता है । उस पाठक के प्रति दो शब्द लिख कर शिवानी अपने नैतिक धर्म का परिचय देती है । साथ ही पाठकों की रचनाकारों के प्रति सम्मान की भावना का भी उद्घाटन करती हुई दिखती है - 'महीनों से सरकारी लालफीते का विष मेरी नस - नस में लहरें लेता मुझे लगभग निश्प्राण कर चुका था , इसी से उनके अभद्र आदेश की सर्वथा अवहेलना कर मैंने मुंह फेर लिया । इसी बीच मेरे पेंशन के कागजों पर मेरे नाम और चित्र को पहचान, मेरी लेखनी का एक अज्ञात प्रशंसक मुझे ढूंढता आ गया । उस तरूण, नम्र मिष्टभाषी कर्मचारी ने तत्काल मेरा काम कर दिया ।'[3]

---

1. वातायन, शिवानी, पृष्ठ 115.
2. वातायन, शिवानी, पृष्ठ 115 - 116.
3. वातायन, शिवानी, पृष्ठ 121.

षष्ठ अध्याय

शिवानी के निबन्धों में आदर्शवादी अनुचिन्तन एवं नैतिक दर्शन

शिवानी के निबन्धों में आदर्शवादी अनुचिन्तन एवं नैतिक दर्शनः

भारतीयता का साहित्यिक प्रतिनिधित्व करने वाली शिवानी के निबन्ध आदर्शवादी अनुचिन्तन एवं नैतिक दर्शन के जाज्वल्यमान प्रकाश स्तम्भ हैं। भले ही मेरा यह कथन अन्य लोगों को अतिशयोक्ति प्रतीत हो किन्तु मुझे उनके निबन्ध पढ़ने के पश्चात् यही प्रतीत हुआ कि उनका प्रत्येक निबन्ध नैतिकता का एक पाठ है, आदर्श की एक सीख है और भारतीय समाज के लिये अनुकरणीय उदाहरण है। जितनी ही बार उनके निबन्धों को पढ़ा उतनी ही बार लगा कि ये निबन्ध समाज में विषैले सर्प की तरह पल-पल डसने को बढ़ती हुई अनैतिकता, भ्रष्टाचार और खोखले आदर्शो के विरूद्ध एक शब्द-व्यूह, साहसिक-क्रान्ति और सर्जनात्मक आन्दोलन के मुखर नारे एवं पैने शस्त्र हैं।

शिवानी ने ऐसा कुछ भी नहीं लिखा और न ही लिखने का यत्न किया जो समाज के लिये औषधि या पथ्य के बदले कुपथ्य हो। उनका एक-एक शब्द आदर्श की कसौटी पर खरा उतरता है। उनके अनुसार- "जीवन का लक्ष्य सुख नहीं है, जीवन का लक्ष्य है आत्म-साक्षात्कार एवं व्यक्तित्व का पूर्ण उदय। इन दोनों के लिये संघर्ष करने में ही अनायास सुख स्वयं उपजता है।"[1] एक अन्य स्थान पर शिवानी जी पुनः लिखती हैं- "किसी भी आदर्श सम्पादक के लिये सम्पादन का कार्य केवल उदरपूर्ति का साधन नहीं होना चाहिये, जनजागृति का कार्य ही उसके कर्त्तव्य साधन का पुनीत लक्ष्य बना रहे।"[2] जीवन सम्पादन में भी जन-जागृति का लक्ष्य होने से व्यक्तित्व और आचरण दिग्भ्रमित नहीं होते।

यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह बात उन्होंने विशेष रूप से सम्पादक एवं सम्पादन के सन्दर्भ में लिखी है लेकिन परोक्ष रूप से यह बात साहित्यकारों को भी उनके लक्ष्य एवं आदर्श के प्रति इंगित करती है। शिवानी इसी मायने में एक ऐसी साहित्यकार कही जा सकती हैं जिन्हें साहित्य के सृजन के साथ-साथ समाज के सृजन की भी चिन्ता है।

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 134

2- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 136

क- शिवानी के निबन्धों में आदर्श का आधार:

अहिंसा के पुजारी एवं सत्य की प्रतिमूर्ति महात्मा गांधी के जन्म प्रदेश और जन्म मास अक्टूबर में जन्मी शिवानी भला उस महात्मा के सदाचरण से कैसे न प्रभावित होतीं जबकि उस समय गुजरात क्या सम्पूर्ण भारत उस महात्मा की अहिंसावादी आदर्श के बयार से पल-प्रतिपल नैतिक स्फूर्ति एवं उत्साह प्राप्त कर रहा था। उसी दिव्य विभूति के प्रभाव को गुरूदेव की वाणी में शिवानी ने प्रस्तुत किया है- "जय हो उस तपस्वी की जो इस समय मौत को सामने लेकर बैठा है। भगवान को हृदय में बिठाकर, समस्त हृदय के प्रेम को तपाकर, जलाकर। तुम लोग जयध्वनि करो उनकी, जिससे तुम्हारा कण्ठस्वर उनके आसन के पास पहुंच सके। कहो- तुमको ग्रहण कर लिया है, तुम्हारे सत्य को हमने स्वीकार कर लिया है। वह जिस भाषा में कह रहे हैं, वह कानों के सुनने की नहीं, प्राणों के सुनने की भाषा है। मेरी भाषा में जोर कहां है। वही मनुष्य की चरम भाषा है जो अवश्य ही तुम्हारे प्राणों में भी पहुंच रही है।"[1]

यह संभवतः सत्य के पुजारी उसी तपस्वी का प्रभाव है कि शिवानी को झूठ गवारा नहीं है। तभी तो वे एक नन्हें से पुत्र के द्वारा मां के मिथ्यावाक्याडम्बर की धज्जियां उड़वाते हुये सत्य का आदर्श संस्थापित करने की सुचेष्टा करती हैं- "झूठ क्यों बोलती है री इजा! बक्सा ही नहीं है तो पैण्ट कहां से होगी ? बाबू जी पांच रूपये में बक्सा बेचकर क्या सड़ी खूबानी नहीं ले आये थे ?"[2] यद्यपि यह बात सामान्य सी दिखती है लेकिन एक पुत्र द्वारा मां के झूठ को झूठा सिद्ध करने का प्रयास क्या बालक में सत्य के प्रति निष्ठा उपजाने का बोध हमें नही कराता! हममें से कितने माता-पिता इसके प्रति सचेष्ट रहते हैं, यह वाक्य इसी की प्रतिध्वनि है।

विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिये सुविधाजनक होगा यदि उनके निबन्धों में आदर्श का क्या आधार रहा है, इसका सरल वर्गीकरण कर लें। अपने निबन्धों में शिवानी ने कई प्रकार के आदर्शों को आधार बनाया है। उनके आदर्शों के प्रमुख आधार हैं-

---

1- आमोदर शान्ति निकेतन, शिवानी, पृष्ठ 66

2- कस्तूरीमृग, शिवानी, 112

1-शिवानी के निबन्धों में आदर्श का आध्यात्मिक आधार, 2-शिवानी के निबन्धों में भारतीय समाज के पारिप्रेक्ष्य में आदर्शों का सामाजिक आधार, 3-शिवानी के निबन्धों में आदर्श का सांस्कृतिक आधार. 4-शिवानी के निबन्धों में आदर्श का पारिवारिक आधार, 5-शिवानी के निबन्धों में वैयक्तिक आधार 6-शिवानी के निबन्धों में आदर्श का साहित्यिक आधार।

शिवानी के निबन्धों में आदर्श का आध्यात्मिक आधार:

उच्च शिक्षा, अभिजातीय पर्यावरण, देश, विदेश भ्रमण, एवं वैविध्यपूर्ण आधुनिक जीवन शैली के होते हुये भी शिवानी की ईश्वर पर आस्था कम नहीं है। पुण्य के लिये भले ही प्रयास न करें किन्तु पाप से डरती अवश्य हैं। इहलोक से अधिक उन्हें परलोक की चिन्ता है- "जहां पाप के प्रति ऐसी सहज सहिष्णुता है, वहां यदि ऐसे जघन्य अपराध बढ़ते ही रहे तो आश्चर्य की गुंजाइश ही कहां है ? न यहां ईश्वर का भय है न परलोक की चिन्ता।"[1] लन्दनवासी नरराक्षस निल्सन के सन्दर्भ में कही गई उक्त बात लन्दनवासियों के लिये कम किन्तु भारतवासियों के सन्दर्भ में अवश्य चिन्तनीय है। वैतरणी या जोर्डन नदी का भय प्रत्येक भारतीय के मन में बिठाकर वे व्यक्ति को पापकर्मों से दूर रहने का आदर्श व्यक्त करते हुये लिखती हैं- "मृत्यु के पश्चात् किसी नदी का अस्तित्व हो या न हो, आत्माओं के विवाह की बात भले ही हास्यास्पद लगे; किन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि परलोक का भय मनुष्य को अनेक अविवेकी कृत्यों से कवच की भांति रक्षा करता है।"[2]

इहलोक से परलोक की यात्रा आत्मा की अमरता का द्योतक है। शायद इसी हिन्दू भावना से अभिभूत होकर शाहजहां ने जिसे उसके पुत्र औरंगजेब ने कैदखाने में डलवा दिया था, कहा था- "धन्य है हिन्दू जाति जो अपने पिता के मर जाने पर भी उसे पानी देना नहीं भूलते और एक तू है जो अपने जीवित पिता को भी पानी के लिये तरसा रहा है।"[3] जहां शाहजहां का यह कथन हिन्दू संस्कृति के उत्कर्ष, पिता-पुत्र

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 46
2- वही " " " 47
3- वही " " " 48

के जन्म-जन्मान्तरों तक चलने वाले सम्बन्ध प्रवाह की महत्ता को दर्शाता है, वहीं शिवानी के आध्यात्मिक आदर्श का पुष्टिकरण भी करता है।

विज्ञान के असीमित साधनों एवं सीमाओं को दर्शाते हुये वे अलौकिक शक्ति सम्पन्न ईश्वर पर भारतीयों के अटल विश्वास की अभिव्यक्ति करती हुई लिखती हैं- "इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे जीवन में कई ऐसी विलक्षण घटनायें घटती हैं जिनका हमारे पास कोई वैज्ञानिक समाधान नहीं रहता।"[1] अपनी पितामही (दादी) की मृत्यु के सम्बन्ध में उनका यह चिन्तन भारतीय आदर्शवादी दर्शन के अनुरूप ही है। यह सब देखकर उन्हें लगता है- "विज्ञान से परे एक ऐसी दिव्यशक्ति अवश्य है, जिसे न इतिहास छू सकता है न वैज्ञानिक की तीक्ष्ण बुद्धि।"[2]

लन्दन में मिष्ठान्न भण्डार चला रहे भारतीय शंकरलाल जब शिवानी को अपने घर के उस सुसज्जित कोने में ले जाते हैं, जहां उनकी कुलदेवी "धौला देवी" का चित्र लगा था, अखण्ड घृत ज्योति जल रही थी। गणेश-लक्ष्मी एवं अन्य देवी-देवताओं की नन्हीं मूर्तियां करीने से सजी थीं। शिवानी उन्हीं शंकरलाल जी के मुख से भारतीय आध्यात्मिकता के प्रति विदेश में भी उनकी निष्ठा को व्यक्त करते हुये लिखती है- "मैं दुकान में प्रवेश करता हूँ तो बिना दायें-बायें देखे पहले इन्हीं के दर्शन करता हूँ। ब्राह्मण हूँ, गायत्री का नित्य जाप मेरा नियम है।"[3] यह शिवानी की आध्यात्मिक आदर्शों के प्रति समर्पित निष्ठा ही है।

सीता और सावित्री युगों से भारतीय नारियों का आदर्श एवं सतीत्व का पर्याय रही हैं। शिवानी आज भी उन्हें उसी रूप में जीने की, संघर्ष करने की और परिवार को सुखी बनाने की कामना रखते हुये अपने आध्यात्मिक एवं धार्मिक विश्वास का परिचय एक बार पुनः अपने ही सन्दर्भ में देती हुई लिखती हैं- "अपने पति की मृत्यु के बाद मैंने

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 50

2- वही " " 64

3- वही " " 56

इस पुस्तक {परलोकेरकथा} को न जाने कितनी बार पढ़ा, जितनी बार पढ़ती, मुझे लगता मैं अकेली नहीं हूँ, पति-आत्मा निरन्तर मेरे साथ है। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि पारलौकिक अस्तित्व को लेकर लिखी गई कहानी हमें भीरू नहीं बनाती, साहसी बनाती है।"[1]

सत्य है भारतीय सावित्रियों की सत्यनिष्ठा आज भी यम के नियम को उलट देने का संयमित सामर्थ्य रखती है। व्यक्ति का अलौकिक शक्ति में जितना ही अटूट विश्वास होता है वे लौकिक कष्टों को उतनी ही सहजता और सफलता से सहन कर लेते हैं। शारीरिक कष्ट उनके लिये गौड़ हो जाते हैं। वे सच्चिदानन्द स्वरूप में लीन हो इतने आनन्द निमग्न हो जाते हैं कि उन्हें अपने तन और परिवेश का कोई ध्यान ही नहीं रहता। चाहे मामला परिवार का हो, चाहे संस्कार का, चाहे प्यार का हो या व्यापार का। वह सभी कुछ ईश्वर की इच्छा और अनुकम्पा मानकर, भाग्य या संयोग समझकर उनके लाभ और हानि को समभाव से स्वीकार करता है।

भारतीयों की ऊपर वाले पर इसी अटूट निष्ठा को अपने भारत-भ्रमण के दौरान देख-सुनकर एक विदेशी ने टिप्पणी की थी- "भारत की सरकार ऊपर वाले के भरोसे चलती है न कि नेताओं के संचालन द्वारा।" यहां ऊपर वाले की इच्छा सर्वोपरि होती है, ऐसी अवधारणा है। भारतीय मनीषियों का मत है कि आत्मा अजर-अमर है, मृत्यु केवल कायारूपी वस्त्र परिवर्तन है-

> वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृहणाति नरोऽपराणि
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।"[2]

पंचतत्व निर्मित काया पंचतत्व में विलीन हो जाती है और आत्मा देह से अलग हो नवीन देह धारण करती है। यह कहां तक सत्य है, कहना भले ही प्रामाणिक न हो किन्तु हमारे आध्यात्मिक ग्रन्थ इसी धारणा के समर्थक हैं। आज का विज्ञान इसे

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 115

2- श्रीमद् भगवद्गीता, अध्याय2, श्लोक 22

अपनी प्रयोगधार्मिता की परखनली में न परख पाने के कारण महज एक कोरी गप्प या सुनियोजिक कपोल-कल्पना कहकर हंसी उड़ाये, यह बात अलग है। लेकिन पुनर्जन्म और भूतप्रेत की घटनायें विज्ञान की अल्पज्ञता और साधन सीमितता की पोल खोल देती हैं।

शिवानी ने अपने पितामह के मुख से अपनी बड़ी बहन की अतृप्त प्रेतात्मा की शांति के लिये उनके श्वसुर को गया जाने की सलाह देते हुये कहलाया है- "गया जाकर प्रेतशिला में उसे पिण्डदान दीजिये, क्षमा मांगिये, उसी से वह फिर नहीं आयेगी।"[1] उन्होंने यही किया और उनकी (शिवानी की) बहन की प्रेतात्मा ने अपने श्वसुर के अन्यायों को क्षमा कर दिया और फिर कभी उनके पायताने बैठकर उन्हें आग्नेय दृष्टि से नहीं घूरा।

घटनापरक निबन्ध "जुनूं तो थयुं" भी उनके पुनर्जन्म में विश्वास और प्रेतात्माओं की लीला का सकारात्मक प्रमाण ही है। वस्तुतः शिवानी आध्यात्मिक आदर्शों के प्रति सचेष्ट हैं और उन्होंने इसे अपने निबन्धों का आधार बनाया है। यह उनके निबन्धों का सूक्ष्म गहन मन्थन करने के बाद वस्तु तथ्य प्राप्त हुआ है। मैंने जब उन्हें (शिवानी जी को) पत्र (दिनांक 23/9/90) लिखकर उनकी रचनाधर्मिता का आधार जानना चाहा तो मेरे इस प्रश्न- "तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत, जन्म-पुनर्जन्म में आप भी विश्वास रखती हैं या केवल आपके पात्र ? के प्रत्युत्तर में उन्होंने स्वीकार किया था- "आत्मा के अस्तित्व को मानती हूँ, मृत्यु के पश्चात् जीवन को भी।"[2]

1- शिवानी के निबन्धों में भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में आदर्शों का सामाजिक आधारः

शिवानी को जहां परलोक सुधारने की चिन्ता रही है वहीं उनमें इहलोक यानी समाज के आदर्श स्वरूप की इच्छा। वे भारतीय समाज को केवल उस सीमा तक पाश्चात्य रंग में रंगने की छूट देती हैं जहां तक उसका रूप विकृत न हो। भारतीय मिट्टी की सोंधी सुगन्ध सदैव उसमें गमकती रहे। शिवानी किसी भी मूल्य पर भारतीय

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 116

2- 8/10/90 को शोध छात्रा को प्रत्युत्तर में लिखे गये शिवानी जी के पत्र से उद्धृत।

समाज के सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास होते नहीं देखना चाहतीं। जहां कहीं भी और जब भी उन्हें इस तरह के अवसर प्राप्त हुये हैं, उनकी आत्मा कचोट उठती है, उन्हें कष्ट हुआ है, तभी तो वे सरोष लिखती हैं- "हमारी संस्कृति डूब ही नहीं रही है, डूब चुकी है।"[1] यह आवेशमय शब्द प्रहार उन्होंने उस समय किया जब दूरदर्शन पर दिखाई जा रही जन्माष्टमी पर भगवान श्रीकृष्ण की झांकियों के सम्बन्ध में निवेदिका का यह कहना- "बच्चो, जानते हो जन्माष्टमी क्यों मनाई जाती है ? आज श्रीकृष्ण का हैप्पी बर्थ डे" है, आओ हम सब मिलकर हैप्पी बर्थ डे गायें।"[2] इतने में भी उनके रोष का पारा नीचे नहीं उतरता है। वे उसी धाराप्रवाह में बहती हुई लिखती हैं- "आदर्शभ्रष्ट होकर हम स्वयं संस्कृति की डाल पर बैठकर उस कुल्हाड़ी चला रहे हैं। सृष्टि से अधिक चिन्ता हमें अब संहार की होने लगी है। आज मानव का मानव से ही विश्वास उठ गया है।"[3]

इस आचरण भ्रष्टता की दावाग्नि में दग्ध होते हुये समाज को शिवानी ने अपने निबन्धों का वर्ण्य-विषय बनाया और उन भारतीय सामाजिक आदर्शों की प्रतिस्थापना की जोरदार वकालत की जो सार्वकालिक हैं और जिनको अपनाकर विदग्ध समाज शीतलता का अनुभव कर सकता है। उनके निबन्धों में इन आदर्शों की झलक सर्वत्र देखी जा सकती है।

"मिठास लन्दन की" नामक निबन्ध में शिवानी ने सामाजिक आदर्श के जिस मिष्ठान्न को भारतीय जिह्वा पर रखकर चखा, वह लन्दन की मिठास उन्हें फीकी लगी। लन्दन की सामाजिक रूक्षता से आहत होकर उन्होंने लिखा है- "इस देश में किसी को भी किसी की सेवा का अवकाश नहीं है, यहां जन्म से लेकर मृत्यु तक एक रूखी औपचारिकता की एक लम्बी चलायमान कड़ी चलती रहती है। न ग्राहक का स्वागत करने को भारतीय

1- आकाश, शिवानी, पृष्ठ 35

2- वही " "

3- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 65

दुकानदार की विनम्र मुस्कान है, न बिल बनाने का सिरदर्द, न मोल-तोल की हुज्जत।"[1]

इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि सभी विदेशी व्यक्ति रूखे और औपचारिक ही होते हैं। "हे विदेशिनी! हम तुम्हें पहचानते हैं" निबन्ध में पेरिस की शिक्षिका मैदमोजेल क्रिस्टीना बौजानिक का व्यवहार भारतीय आदर्शों से इतना साम्य रखता था कि शिवानी उनके व्यक्तित्व और आदर्शों के प्रति सदैव नतमस्तक ही रही हैं। उनका अनुशासन शिवानी के लिये उद्धरणीय संस्मरण बना हुआ है, जबकि वे स्वयं अनुशासन भंग करने की सजा प्राप्त कर शान्ति निकेतन की "नियमभंगिनी" (नियम भंग करने वाली छात्रा) के रूप में छात्रों की भीड़ में पहचानी जाने लगी थीं। उन्हीं अनुशासन प्रिय वार्डेन और स्नेहमूर्ति संरक्षिका के दो विपरीत व्यवहार में शिवानी क्या, हर कोई आश्चर्यचकित हो सकता है- "मैंने उन्हें किसी को जोर से डपटते नही सुना पर रौब ऐसा था कि श्रीभवन के जिस कमरे से गुजरतीं, लड़कियों को सांप सूंघ जाता।"[2] एक बार शिवानी ने आश्रम की एक नौकरानी को चवन्नी (रिश्वत में) देकर रातभर के लिये लालटेन मांगी तो वह भयभीत शब्दों में कहती है- "दीदीमनि बाघिनी देख ले, आमार चाकरी जावे।"[3] (यदि वार्डेन ने देख लिया तो निश्चित मेरी नौकरी चली जायेगी) लेकिन शिवानी के बीमार हो जाने पर उनके मातृवत् स्नेह-निर्झर का चित्रण शिवानी ने स्वयं इन शब्दों में किया है- "एक बार मेरी आंख के नीचे व्रण हो गया था, रात-रात भर मेरे सिरहाने बैठकर दीदी ने कई दिनों तक पुल्टिश बांधा, जितने दिन बीमार रही, स्वयं अपने हाथों से नाश्ता बनाकर मुझे खिलाती रहीं।"[4] यह भारतीय गुरु-शिष्य परम्परा के सामाजिक आदर्श का जीवन्त उदाहरण है।

आज आत्मीयता का यह पुनीत सम्बन्ध देशदुर्लभ हो गया है। गुरू का वह औषधिमय व्यवहार जो स्वाद में तिक्त किन्तु प्रभाव में सदैव गुणकारी होता था। वह

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 55

2- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 56

3- वही " "

4- वही " 59

अब स्वाद में मीठा और प्रभाव में रिक्त हो गया है। गुरू-शिष्य में मानस पिता-पुत्र का जो आदर्श सम्बन्ध प्राचीन साहित्य में बहुलता से प्राप्त है, वही सम्बन्ध अब घनिष्टता (मित्रता) में बदल गया है। आज गुरू-शिष्य के बीच स्नेह और श्रद्धा की भावना कहीं भी नजर नहीं आती। लेकिन शिवानी की यह विदेशिनी दीदी आदर्श की मूर्ति ही थीं। उनके माध्यम से शिवानी ने भारत से लुप्त हो रहे उस आदर्श को भी दर्शाया है जो भारत की स्वच्छता पर कलंक है। उन्हें कहना ही पड़ा- "मुझे भारत में एक चीज अखरती है, तुम लोगों में पलंग के नीचे कूड़ा-करकट खिसकाने की बहुत बुरी आदत होती है। चप्पलें हो या जूते, खिसका दिये पलंग के नीचे और चट से पलंगपोश से ढक दिया------प्रत्येक लड़की को दो बातें अवश्य सीखनी चाहिये, एक अपना बेडरूम स्वच्छ रखना, दूसरा बाथरूम।"[1]

जिन भारतीय सामाजिक आदर्शों की दुहाई देकर शिवानी भारतवासियों को महिमामण्डित बनाना चाहती हैं, उन्हीं के अभाव में भारतीय प्रतिभाओं को विदेशों की ओर पलायन करते हुये देखती हैं तो उनकी चिन्ता मुखर हो उठती है- "चिन्ता उस स्नेह पदार्थ की है जो मूल का छना हुआ असली माल है अर्थात् अन्त तक हमारे श्रेष्ठ रत्न ही विदेश के होकर रह जायेगें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब ऐसा छना हुआ श्रेष्ठ माल ही देश से निकलकर पराया हो जाता है तो देश अपने एक गुणी रत्न को ही नहीं खोता, देश की सम्पदा का कुछ अंश भी उसके साथ-साथ हाथ से निकल जाता है। पितृऋण की ही भांति प्रत्येक भारतवासी के लिये मनुष्य ऋण भी उतना ही महत्वपूर्ण है।"[2]

पलायन की हुई यही प्रतिभायें जब विदेशों में परिवार सहित बस जाती हैं तो उनकी भारतीय सोच का पाश्चात्यीकरण किस प्रकार हो जाता है इसका उल्लेख उन्हीं के (प्रवासी भारतीयों के) शब्दों में- "भारत में है ही क्या, केवल भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद,

---

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 60

2- वही " " 95

स्वार्थपरता, लालफीताशाही, कोई चीज शुद्ध नहीं मिलती, सबमें मिलावट, रेलगाड़ियों की यात्रा बैलगाड़ी की यात्रा से भी बदतर हो गई है।"[1] यह देख सुन कर शिवानी की लेखनी चीत्कार कर उठती है। प्रत्यालोचना में वे उन्हें धिक्कारती हुई सचेत करती हैं- "सामान्य सी वस्तु को भी मिल बांट कर खाना भारतीय परिवार के बच्चे को ककहरे के रूप रटाया जाता है, वहीं पर विदेश प्रवास बचपन से ही स्वार्थपरता की वर्णक्षिरी जाने-अनजाने स्वयं रटा देता है।"[2] इसी लेख में वे पुनः लिखती हैं- "यदि स्वदेश में शिक्षित हो विदेश में सेवारत होने की कामना करते हैं तो भले ही इनमें से (देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण एवं मनुष्य ऋण) कुछ ऋणों से वहां रहकर भी मुक्त हो लें, मनुष्य ऋण से कदापि उऋण नहीं हो सकते।"[3]

इस कथन का यह अर्थ नहीं कि शिवानी भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार से अनभिज्ञ हैं। वे भारत की प्रतिभाओं की विवशताओं को भी भलीभांति जानती हैं- "बिहार के उस असामान्य प्रतिभा के धनी गणितज्ञ को लीजिये जो स्वदेश मोह से आकृष्ट हो भारत लौटे और देश की स्वार्थपरता, लालफीतेशाही और कुण्ठा ने उनका मस्तिष्क विकृत कर दिया। आज वे रांची के पागलखाने में हैं।"[4] (हाल की सूचनाओं के अनुसार जब उन्हें रांची से ट्रेन द्वारा दूसरी जगह ले जाया जा रहा था तभी वे रास्ते में पता नहीं कहां उतरकर चले गये और इसके बाद से आज तक उनकी कोई खबर नहीं है। उस महान गणितज्ञ का नाम डा० वशिष्ठ नारायण सिंह था।

यद्यपि शिवानी स्वदेश की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जा रही दशा से चिन्तित तो दिखती हैं किन्तु हताश नहीं। वे कहती हैं- "किन्तु मैं ऐसा नहीं सोचती, जब स्थिति बिगड़ती है तो उसी बिगड़ी स्थिति का सूत्र पकड़ कर मनुष्य स्वयं नई युक्तियां सोचने लगता है। असंतोष एवं विवशता उत्पन्न होने पर ही नई युक्तियों के लिये मनुष्य

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 96
2- वही " " 95
3- वही " " 97
4- वही " " 94

का मन व्याकुल होता है और ये युक्तियां तब तक सार्थक नहीं हो सकतीं जब तक हम आदर्श एवं कर्त्तव्यनिष्ठा के प्रति जागरूक न हों।"[1]

अपनी इसी सोच को दृढ़ता प्रदान करती हुई वे एक अन्य स्थान पर लिखती हैं- "विधाता मानव के भाग्य के सब द्वार एक साथ बंद नहीं करता, एक न एक खिड़की खोल ही देता है------यदि आप पर अन्याय हो रहा है तो एक ही राह है, घृणा को त्यागकर कर्त्तव्य के नाते अत्याचार का प्रतिरोध करें तथा संघर्ष करें और जो भी फल मिले, छोटा हो या बड़ा, उसे प्रभु कृपा समझकर स्वीकार करें। कमजोर पिटता अवश्य है, पर सताने वाला मिटता है।"[2] यह उस टैक्सी ड्राइवर महिला के उद्‌गार हैं जो अपनी उंगली डिक्की में दबकर घायल हो जाने के बाद भी असह्य पीड़ा को सयत्न सहन करती हुई शिवानी को उनके गन्तव्य तक सही समय पर पहुंचाने का कर्त्तव्य निर्वाह करती हुई उस भारतीय सामाजिक आदर्श का उज्ज्वल स्वरूप प्रस्तुत कर यह दर्शाती है कि अभी भी भारत भूमि ऐसे आदर्शों से शून्य नहीं है। शिवानी की अभिलाषा को व्यक्त करता हुआ उनका यह निबन्ध "गहरे पानी पैठि" हमें आदर्शवान बनने की प्रेरणा देता है और उनकी "हे विदेशिनी" देती है हमें प्रतिदान के आदर्श की सीख- "ईश्वर ने तुम्हें उदार करपुट दिया है इसलिये कि इसे भरकर जितना ग्रहण करो उतना ही बांट सको।"[3]

2- शिवानी के निबन्धों मे आदर्श का सांस्कृतिक आधार:

संस्कृति संस्कारों की मंजूषा है, जिसमें मानव जीवन के भिन्न-भिन्न संस्कारों की गुंथी हुई मालायें हैं। संस्कृति समाज का ही एक अंग है और इसे सामाजिक सन्दर्भ में समझना भी चाहिये किन्तु संस्कृति के प्रति शिवानी का मोह कुछ इतना अधिक है कि उसकी विवेचना अलग से न करना उनकी सोच के साथ अन्याय करना ही होगा।

1- आकाश, शिवानी, पृष्ठ 58

2- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 133

3- वही " " 62

वैसे तो शिवानी ने भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल आदर्शों को अपने साहित्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है किन्तु पहाड़ी ﴾कुमाऊंनी﴿ संस्कृति को वर्णन में वरीयता मिली है।

अपने लन्दन प्रवास के मध्य शिवानी ने लन्दन को सांस्कृतिक दृष्टि से भी देखने का प्रयास किया। लन्दन के एक सज्जन जो अपनी भारत यात्रा के पश्चात् दूरदर्शन पर अपना साक्षात्कार दे रहे थे, उन्होंने किसी के यह पूछने पर कि "उन्हें भारत में कौन सी बात अखरी" इसके उत्तर में उन्होंने कहा- "लोगों का घूरना"। उस समय शिवानी जी भी लन्दन में ही थीं और उक्त महोदय का यह साक्षात्कार दूरदर्शन में देख रही थीं। उनके इस साक्षात्कार को देखकर शिवानी अपने निबन्ध "घूमने और घूरने का दर्शनशास्त्र" के माध्यम से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुये उन्हें ﴾पर्यटक को﴿ आगाह कराना चाहती हैं कि "भारत भ्रमण को आये विदेशी सज्जन शायद नहीं जानते कि मनुष्य घूरता कब है, जब वह कुछ ऐसा देख ले जो उसने पहले कभी न देखा हो। जब वहां के फिल्म निर्देशक ही सड़क में बैठे हुये नाइयों से ﴾सड़क में बैठकर ही﴿ दाढ़ी बनवायेगें तो भारतीय भीड़ उन्हें घूरेगी ही।"[1] उन्हें ही प्रत्यारोपित करती हुई शिवानी कहती हैं- क्या वे हमारे देश में आकर संपेरे की बीन के सम्मुख झूमते सांप को नहीं घूरते ? क्या मणिकर्णिका घाट की जलती चिताओं को वे नहीं घूरते ? घूरते ही नहीं, कभी-कभी तो गांजे-चरस की दम लगाते साधुओं को घूरते-घूरते स्वयं भी दम लगाने लगते हैं।"[2]

इस आधार पर शिवानी का लन्दन परिदर्शन एक प्रकार का घूरना ही है। इसी घूरने के सन्दर्भ में शिवानी ने देखा कि ------"बड़े-बड़े मनकों की माला का आजकल यहां बहुत प्रचलन है। किसी ने उनसे कहा, "ये यहां बहुत फैशन में हैं"। जी में आया कहूँ ये फैशन तो हमारे देश की गाय-भैंसे चालीस साल पहले चला चुकी हैं।"[3] व्यंग्य के पश्चात् उन्हें पश्चाताप भी होता है कि हम अपनी जिस आदर्श संस्कृति

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 67

2- वही " "

3- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 71।

को निन्दनीय समझकर त्यागते जा रहे हैं। विदेशी उसे ही वंदनीय समझकर अंगीकार करते जा रहे हैं। अपनी सांस्कृतिक ह्रास की व्यथा वे एक दृष्टान्त देकर कहती हैं- "एक नवीन सज्जा कल और देखी, मुंड़े सर के बीच दीर्घ शिखा। यह सब देखकर कभी-कभी दहशत सी होती है, हमारी ग्रहण करने योग्य संस्कृति के सशक्त आयुध ये धारण कर रहे हैं और इनको न ग्रहण करने योग्य जंग लगे कुछ आयुधों को धारण करने में हम ललक से आगे बढ़ रहे हैं। शिखा तो यहां पहुंच ही चुकी है, योग और गुरू भी चीमटा गाड़ चुके हैं, चन्दन चर्चित ललाट भी हैं, हरे राम भी हैं, कृष्ण भी। यहां तक कि यहां जहां दीवारों में कुछ लिखना जुर्म है, क्यू ब्रिजपर ही बड़े-बड़े अक्षरों में किसी रामभक्त ने, प्रहलाद के से दुःसाहस से अंग्रेजी में लिखा है, "राम्हा सीता"। मुझे लगता है कि कोई सच्चा विदेशी भक्त ही इस प्रमुख चौराहे पर यह दो नाम लिख गया है जिससे हम आते-जाते प्रवासी भारतीय यह तथ्य हृदयंगम करते रहें, कि जिन्हें हम भूल रहे हैं उन्हें कोई विदेशी बाल्मीकि उल्टा जपकर भी अपना लोक-परलोक सुधार रहा है- राम्हा सीता।"[1]

उन्होने लन्दन में शव की जो दुर्गति देखी तो उनका अन्तःकरण अपने ईष्टदेव से प्रार्थना कर बैठा कि "प्रवासी प्राणदास यहां प्रयाण न करें" क्योंकि- "हमारे सोलह संस्कारों में अन्त्येष्टि एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संस्कार है। यहां तक कि शव ढोने वाले की भी हमारे धर्मग्रन्थों में भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। उसे एक-एक पद पर एक-एक यज्ञ संपादन का पुण्य प्राप्त होता है, ऐसा कहा गया है। हो सकता है कि एक दिन हमारे इस महत्त्वपूर्ण अन्तेष्टि संस्कार में हम स्वयं ही संशोधन कर इसका नवीनीकरण कर लें। कलकत्ता, बम्बई जैसे कुछ शहरों में बिजली द्वारा शव दाह ही अधिकाधिक होने लगा है, किन्तु चार कन्धों पर जाने की कल्पना में भी जो सुख एवं गरिमा है, वह काठ के बाक्स में बन्दी बन बिजली से झुलसाने में भला कहां मिल सकता है।

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 7।
2- वही " " 7।

न चिता, न चिता की परिक्रमा, न मुख में तुलसीदल, न "नमो वासुदेवाय"का श्रवणामृत."[1]

ब्रिटेन की धरती में टूटते सम्बन्धों का मूल कारण नितान्त व्यक्तिवाद है। सांस्कृतिक आधार की अवधारणा तो भारतीय सोच है। मृत्यु के पश्चात् शव की सुख-सुविधा की आकांक्षा केवल भारतीय दार्शनिक और प्राणी ही कर सकते हैं क्योंकि उनका पुनर्जन्म में और आत्मा की अमरता में विश्वास होता है। इस अन्तिम संस्कार का महत्त्व प्रथम संस्कार से कम नहीं है। लन्दन में होने वाले अन्तिम संस्कार की दुर्गति देखकर शिवानी इतना अधिक घबरा गई कि उन्हें "मरनो भलो स्वदेश को" नामक निबन्ध की सृष्टि ही करनी पड़ी- जिसमें उन्होंने भारत में होने वाले दाह-संस्कार को सर्वश्रेष्ठ माना है- "चार कंधों पर हुलस-हुलसकर जाने का सुख भला यहां (लन्दन में) कैसे मिल सकता है, जब जीवनकाल में ही यहां पत्नी को, सहारा लेने के लिये पति का कंधा नहीं मिलता, न पिता को पुत्र का, तो मृत्यु के पश्चात् कंधा मिलने की संभावना ही कैसे हो सकती है।"[2]

रहन-सहन, खान-पान, वेषभूषा, बोल चाल, बात-व्यवहार शनैः-शनैः संस्कृति के अंग बन जाते हैं और कभी-कभी इन सबकी स्मृति आत्मविभोर कर देती भारतीय मन को। वास्तव में शिवानी अपनी पहाड़ी (कुमाऊंनी) संस्कृति के प्रति विशेष अनुरक्त रही हैं। उनका यह संस्कृति प्रेम उनके निबन्धों तक में रच-बस गया है। "बदल रहा है प्रकृति का पैंतरा भी" नामक निबन्ध में वे वहां की सांस्कृतिक स्मृतियों में डूब कई विशिष्टताओं का उल्लेख करती हैं- "कुमाऊं वासियों का प्रिय मासाला जम्बू जो अब रीवां के सफेद शेरों की ही भांति अप्राप्य हो चला है। दाल हो या आलू, गर्म घी में चुटकी भर डाल छौंक लगाइये तो मदमस्त खुशबू एक साथ चार घरों को महमह महका दे।"[3]

गुड़पू जो एक पहाड़ी व्यंजन है की याद करती हुई वे लिखती हैं- "मुझे

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 51-52

2- वही " 51

3- वही " 122

याद है जब बड़े-बड़े सगगड़ों में बांज के डौठों (सूखे फल) के कोयला और गोबर मिश्रित बमगोले से लड्डू जलाकर कमरों में रख दिया जाता, सांझ होते ही घर के द्वार, खिड़कियों को बंद कर दिया जाता, उसी गोलाकार अंगीठी मे एक बर्तन में गुड़-घी मिलाकर भदभदाने रख दिया जाता। गृह की आर्थिक सामर्थ्यानुसार उसमें कटे मेवे छोड़े जाते या फिर विपन्नों की मेवा मूंगफली, सोंठ। फिर उसे थाली में फैलाया जाता। इसे कहते थे "गुड़पू"। हम पहाड़ी बच्चों का यही कैडबरी चॉकलेट था तब।"[1]

पर्वतीय क्षेत्र की संस्कृति जुड़ी हुई है पर्वतों से और पर्वत पुत्रों के रूप में मां की छाती से चिपके वृक्षों से। स्वार्थवश पहाड़ों के साथ विकास के नाम पर जो अन्याय किया जा रहा है उससे शिवानी दुखी प्रतीत होती है। उनके क्षोभ की झलक इन पंक्तियों में मिल जाती है- "पेड़ों के कटने से दिन पर दिन रिक्त होती जा रही कुमाऊं की रत्नगर्भा धरणी में न अब वह तेज रह गया है, न ताप। न फलों में अब वह प्रकृतिजन्य मिठास रह गई है, न जल प्रपातों में वह मृत्युंजयी जलकण। इस काट-छांट का प्रकृति ने कसकर प्रतिशोध लिया है। अल्मोड़ा अब वह शहर नहीं रहा, जिसे हम जानते थे।"[2]

भले ही आलोचकों को शिवानी के इस वर्णन में साहित्य और संस्कृति की झलक न दिखे किन्तु उन्होंने जिन छोटी-छोटी बातों के माध्यम से पहाड़ की लोक संस्कृति का दिग्दर्शन पहाड़ से दूर बसने वाले लोगों को कराया है और पहाड़ में रहने वालों को उनकी विलुप्त होती जा रही संस्कृति के प्रति आगाह किया है। वे केवल पहाड़ी संस्कृति की ही नही, वरन् देश के प्रत्येक क्षेत्र और प्रदेश की तथा समग्र भारत की सांस्कृतिक सुरक्षा के प्रति जागरूक हैं। इस सांस्कृतिक संचेतना के माध्यम से शिवानी सांस्कृतिक संरक्षा को प्रत्येक व्यक्ति का परम कर्तव्य मानती हैं। यही उनके आदर्श का सांस्कृतिक आधार है।

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 119-120

2- वही " " 123

3- **शिवानी के निबन्धों में आदर्श का पारिवारिक आधार:**

समाज की संगठित इकाई के रूप में परिवार की भूमिका सर्वमान्य है। संयुक्त परिवार कभी भारतीय समाज की एक विशिष्टता थी। आज बदलते परिवेश और सुविधागामी सोच के परिणाम स्वरूप एकाकी परिवारों का आकर्षण एक दिवसीय क्रिकेट मैचों की तरह बढ़ता जा रहा है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि उनकी मूल भावना का गला घुट रहा हो। एकाकी होकर भी वे पारिवारिक स्नेह, एक-दूसरे के प्रति समर्पण, सेवा, निष्ठा एवं सहयोग की भावना अक्षुण्ण रखते हुये परिवार के सदस्यों की सुरक्षा एवं चरमोत्कर्ष हेतु सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। शिवानी परिवार की इन्हीं मूलभावनाओं को अपने निबन्धों में स्थापित करती हुई लिखती हैं- "भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। हमारे शास्त्रों में स्त्री को सदैव ऊँचा स्थान दिया गया है। एक आदर्श माता, आदर्श वीरांगना, आदर्श पत्नी के लिये जो शिक्षा हमारे विभिन्न धर्मग्रन्थों में दी गयी है वह पूरे संसार के इतिहास में सर्वथा विलक्षण है।"[1]

शिवानी का अभिमत है कि नारी ही परिवार की धुरी होती है। यदि यह धुरी सुदृढ़ नहीं हुई तो परिवार का चक्र अपने आरों सहित बिखर जाता है। सुखी एवं सफल परिवार की संरचना के लिये नारियों को अपने पतियों का संरक्षण एवं प्रभुत्व, जो एक प्राचीन भारतीय आदर्श है, स्वीकार करना चाहिये। अन्यथा परिवार का संतुलन धराशायी हो सकता है। परिवार के स्थायित्व के में शिवानी की विचारधारा समभाव रखती है। उनके अनुसार- "विवाह एक पावन अनिवार्यता है, उसके समुचित सुखद निर्वाह के लिये आवश्यक है कि गृहतुला के दोनों पलड़े समान रूप से गरिमामय हों। नारी ने विशेषकर भारतीय नारी ने बहुत अन्याय सहा है, आज घूरे की भांति उसके भी दिन फिर रहे हैं, किन्तु इस संभावना को वह अपनी ख्यातिलोलुपता, अपने स्वार्थ से कहीं विकृत न कर दे। वह निश्चिन्त रहे, उग्र विषधर उसे अब डसने की धृष्टता नहीं कर सकता, किन्तु उस पराजित सर्प की फुफकार बनी रहे एवं उस बेचारे पर अनावश्यक पत्थर न पड़ें। वही फुफकार उसकी सुरक्षा का प्रतीक बनी रहेगी।"[2]

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृ0 104

2- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 103

शिवानी ने परिवार की दूसरी इकाई पुरूष या पति द्वारा भी पत्नी के प्रति आदर एवं सहयोग का भाव बनाये रखने का आदर्श प्रस्तुत किया है-

"चक्की पीसे नार बड़ी दुखियारी।

फूटे तिनके भाग जो कंता घर बैठारी।"[1]

जब अकर्मण्य पति किसी पत्नी के पल्ले पड़ जाता है तब पत्नी की क्या स्थिति होती है, कैसे वह घर चलाती है, कैसे बच्चे पालती है, कैसे उन्हें पढ़ाती है आदि का सूक्ष्म चित्रण शिवानी ने अपने निबन्ध "रोगशय्या पर स्मृतियों के कारवां" में प्रस्तुत किया है।

परिवार की तीसरी इकाई सन्तान होती है। सन्तान में भी बेटों को समाज में विशेष महत्त्व देने की प्रथा युगों से चली आ रही है। वंशवृक्ष को पुष्पित, पल्लवित और फलित एवं उसके अस्तित्व को बनाये रखने तथा पितृ-ऋण से उऋण होने के लिये समाज ने बेटों को प्राथमिकता दी। पुरूष प्रधान समाज ने पुत्रों में अपने प्रतिरूप को पाया और परिणामस्वरूप वे उनके प्रिय बनते रहे। पुत्रियों को हमेशा पराया धन मानकर भारस्वरूप समझा जाता रहा। शिवानी ने इस पर आपत्ति एवं खेद व्यक्त करते हुये बेटी और बेटे के अन्तर को दूर करने का आदर्श भी अपने निबन्धों के माध्यम से समाज के सुदृढ़ीकरण हेतु प्रस्तुत किया है- "मैं अपनी सब बहनों से कहती हूँ अपनी ताकत पर भरोसा रखो। अपनी बेटियों को इस लायक बनाओ कि वह किसी से सिर्फ इसलिये न दबें कि वह बेटा नहीं है। हमारे मर्ज की दवा हमारे ही पास है, किसी और के पास नहीं।"[2]

शिवानी के निबन्धों में आदर्श का वैयक्तिक आधार:

शिवानी ने जहां देश, समाज और संस्कृति को अपने निबन्धों में आदर्श का आधार बनाया है। वहीं उन्होंने कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का चरित्रांकन कर उन आदर्शों को समाज के लिये उपयोगी समझकर वर्णित किया है। यथा- "हे विदेशिनी हम तुम्हें

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 113

2- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 143

पहचानते हैं" की फ्रेंच महिला मैदमोजेल क्रिस्टीना बौजानिक, जो रवीन्द्र नाथ टैगोर के विशेष अनुरोध पर शान्ति निकेतन छात्रावास में वार्डेन के गुरुतर दायित्व अपने आदर्श अनुशासन द्वारा वहन कर भारतीयों के लिये भी एक आदर्श छोड़ गई हैं। शिवानी जी ने लिखा है- "हमारे शास्त्रों ने गुरु का मौलिक अर्थ पिता बतलाया है। इस दृष्टि से मैदमोजेल क्रिस्टीना बौजानिक निश्चय ही आश्रम की जननी थीं।"[1] इसके अतिरिक्त "सुख-दुख गोद के" नामक निबन्ध में एक विदेशी महिला मिसेज मर्च की समाज सेवा अपने वैयक्तिक श्रेष्ठता के कारण मदर टेरेसा की भांति आदर्शमयी हैं। मिसेज मर्च के शब्दों में शिवानी का अभीष्ट प्रतिस्थाप्य आदर्श इस प्रकार मुखरित हुआ है- "समस्यायें कभी स्वयं नहीं बनतीं, हम उन्हें बनाते हैं। मैं हिसाब रखती हूँ, आज तक इस गोदी में पूरे साठ बच्चे पल चुके हैं। उन्होंने अपनी पुष्ट जंघाओं पर हथेलियां थपकाकर कहा था, इस पृथ्वी पर पूरे साठ मर्चों को जन्म दिया है मैंने।"[2] मिसेज मर्च के कोई सन्तान नहीं थी। प्रभु यीशु की कृपा से उन्हें साठ अनाथ बच्चे गोद में खिलाने को मिले। अतः वे प्रभू यीशु को धन्यवाद देती हुई कहती हैं- "ही इज ग्रेट, ही इज ग्रेट"। लेकिन शिवानी उनकी महानता, ममत्व और हृदय की विशालता को देखकर उन्हें "शी इज ग्रेज, शी इज ग्रेट" कहने को लालायित हैं।

खण्डित मूर्तियों को प्राणवंत बनाने वाले शिल्पी कृपालदत्त त्रिपाठी को अपने शब्द शिल्प द्वारा वैयक्तिक आदर्श की अनुपम मूर्ति के रूप में गढ़ने का सत्प्रयास करते हुये शिवान ने लिखा है- "अपने छोटे से साधनहीन साधनापीठ में त्रिपाठी जी को किसी अनुकूल बयार की अपेक्षा नहीं है। उन्होंने जीवन को सदैव चुनौती के रूप में स्वीकार किया है। जीवन की विवशताजन्य चुनौतियों को भी झेल, मनुष्य कैसे आगे बढ़ सकता है, इसका वह एक ज्वलंत उदाहरण हैं।"[3]

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 56

2- वही " पृष्ठ 128

3- आकष, शिवानी, पृष्ठ 93-94

इसी क्रम में बूढ़ी अंगुलियों का रसीला जादू बिखेरने वाले सारंगी सम्राट बैजनाथ मिश्र पर अपनी लेखनी चलाकर शिवानी ने समाज को कलाकारों के सम्मान की प्रेरणा दी है। शिवानी ने इस आदर्श की स्थापना मिश्रजी की उस मार्मिक चोट के फलस्वरूप की जब वे (शिवानी) उन्हें कार्यक्रम की सफलता के पश्चात् बधाई देने गयीं- "बधाई तो आप देंगी, पर लिखेंगी बड़े ही कलाकारों पर। हम जैसे लोगों को तो मौखिक बधाइयां ही मिला करती हैं।"[1]

इसी प्रकार संगीत के गौरव पुरूष पं0 कृष्णराव शंकर पण्डित की संगीत साधना का परिचय देकर शिवानी ने जहां एक ओर पण्डित जी के प्रति अपनी कृतज्ञता एवं श्रद्धा व्यक्त की है, वहीं इतने ख्यातिलब्ध संगीतकार की जीर्ण एवं जर्जर दशा देखकर उन्हें अति वेदना हुई, जिसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है- "एक बात बार-बार खटक रही थी। हमारे देश में किसी भी कलाकार की कला का स्मरण हमें तब होता है, जब वह इहलोक के बन्धन काट चुकता है, या वार्धक्य ने उसे जर्जर कर दिया है। किसी भी कलाकार को हम निश्चय ही उसके प्रति अतीत के कृतित्व के लिये ही पुरस्कृत करते हैं किन्तु ऐसे निमर्म विलम्ब से, क्या कलाकार वास्तव में लाभान्वित होता है ? किसी के कंधे का सहारा लेकर यदि कोई कलाकार मंच पर पुरस्कार ग्रहण करने जाये तो क्या वह हमारे लिये चुल्लू भर पानी में डूब मरने जैसी बात नहीं है।[2]

इस प्रकार शिवानी ने इन वैयक्तिक आदर्श पात्रों के माध्यम से यह लोकादर्श स्थापित करने का प्रयास किया है कि समाज के सच्चे सेवकों, साधकों एवं शिल्पियों को यथोचित सम्मान समय से मिलना चाहिये।

1- आकर्ष, शिवानी, पृ0 95
2- वही " 105

4- **शिवानी के निबन्धों में आदर्श का साहित्यिक आधार:**

साहित्यकार होने के नाते शिवानी ने साहित्य के क्षेत्र में भी आदर्श स्थापित करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि वे बहुभाषाविद हैं फिर भी हिन्दी के प्रति उनकी जो निष्ठा है वह स्वयं में आदर्श है। हिन्दी की दुर्दशा देखकर उनका हृदय व्यथित हो उठता है- "मातृभाषा अब हमारे लिये ऐसी ननिहाल है, जहां अब भी गाय-भैसें बंधी हैं। माटी का लिपा-पुता चौतरा है। हिन्दी हमारे लिये उसी नानी का प्रतीक बन गई है जो अब भी बड़े स्नेह से हमारी आंखों में अंजन आंज ललाट पर अपना डिठौना लगा देती है। भला उस देहाती डिठौने को लेकर कौन अब सभ्य समाज में जाना चाहता है। इसी से आज भारत के सम्पन्न शिशु की ननिहाल है विदेश------ इसी से हिन्दी के नौबत खाने से भले ही शहनाई की कितनी ही धुनें गूंजें। हिन्दी के पक्षधरों को वह धुन बेसुरा ही लगती है।"[1]

आज हमारे ही हिन्दुस्तान में हिन्दी के प्रति जो सौतेला व्यवहार बरता जा रहा है, उदासीनता बरती जा रही है, कान्वेण्ट स्कूलों की बढ़ोत्तरी एवं अंग्रेजी मीडियम शिक्षा को जो खूबी मिल रही है, हिन्दी के प्रति बरती जा रही इस उपेक्षा और अंग्रेजी के प्रति लोगों के उत्कट प्रेम को देखकर शिवानी उन पर, उनकी इस भावना पर प्रहार करती हुई कहती हैं- "हमारे दासत्व की श्रृंखला तो दयालु विधाता ने काट दी पर खलकन अभी भी नहीं गई, न कभी जायेगी।"[2]

हिन्दी के प्रति शिवानी की यह वेदना आदर्श की वह भावभूमि है, जहां शब्द प्राणवान होते हैं। शिवानी को अपनी मातृभाषा हिन्दी पर गर्व है। अपनी मातृभाषा पर उनका अगाध स्नेह और विश्वास है। वे हिन्दी को मां का दर्जा प्रदान करती हैं। उनके एक सम्बोधन में हिन्दी के प्रति उनका अनन्य अनुराग परिलक्षित होता है- "हिन्दी को मां की तरह पूजें। संस्कृत की अनेक बेटियां हैं जिसमें सबसे बड़ी, मां की

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृ0 83-84

2- वही " " 85

हमशक्ल और सबसे सुघड़ बेटी हिन्दी है और उसी हिन्दी को हम लोग हेय और तुच्छ समझने लगें, तो इसमें भाषा का दोष नहीं, दोष स्वयं हमारा है। हमारी हीनता की भावना, हमारी मानसिक गुलामी अभी तक गयी नहीं है। वैसे भी हिन्दी को प्रतिष्ठित करने का सवाल नहीं, वह तो स्वयं सोने के आसन पर बैठी हुई है। केवल इतना है कि हम लोगों ने उसे भुलाना सीख लिया है। यही हमारा दुर्भाग्य है और यह भी सही है कि उसके ऋण से उऋण होना भी इतना आसान नहीं। गांधी जी ने कहा था हमको डर अंग्रेजी से नहीं, भारतीय अंग्रेजी से है।"[1]

हिन्दी के प्रति उनकी इस उत्कट भावना से प्रेरित होकर भारतीय स्टेट बैंक स्थानीय प्रधान कार्यालय, लखनऊ द्वारा राजभाषा मास के अन्तर्गत प्रसिद्ध कथाशिल्पी श्रीमती गौरापंत शिवानी को (नवम्बर, 1990 में) सम्मानित किया गया था।

शिवानी स्वयं बहुभाषा विज्ञ हैं। कई भाषाओं का ज्ञान होना अच्छी बात है किन्तु उनके निरंकुश प्रयोग को शिवानी कतई बरदाश्त नहीं कर सकतीं। "हिन्दी को हम कहां ले जा रहे हैं" नामक निबन्ध में उनका विचार है कि हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी के आधे से अधिक शब्दों एवं मुहावरों के प्रचुर प्रयोग वाली एवं पात्रों के मुख से मां बहन को गालियां दिलाने वाली रचनायें कदापि सत्साहित्य की श्रेणी में नही आ सकतीं- "यह निरंकुश साहित्यिक स्वेच्छाचारिता क्या साहित्यिक प्रयोजन के क्षेत्र में दीर्घस्थायी सौष्ठव संचारित कर पायेगी।"[2] उन्हें आशंका है, यदि हम इसी प्रकार "हिन्दी के लुप्तप्राय गुणों की ओर उदासीन बने रहे तो आश्चर्य नहीं कि स्वयं अपनी ही धरणी में हिन्दी हमें एक दिन खींचकर अल्प-संख्यकों की कतार में खड़ी कर देगी।"[3]

शिवानी मातृभाषा हिन्दी की पक्षधरता का आदर्श उपस्थित कर उर्दू के सन्दर्भ में स्पष्ट कहती हैं कि हमें उस भाषा का भी सम्मान करना चाहिये, जो हमारे हिन्दुत्व का, हमारी संस्कृति का, हमारी भाषा का सम्मान करती है, जो हमें अपने से हीन

1- धर्मयुग, 16 नवम्बर, 1990, "सांस्कृतिक समाचार", पृष्ठ 3।

2- आकष, शिवानी, पृष्ठ 70

3- वही " पृष्ठ 71।

नहीं समझती, जो अपने शाही ताज को उतार हिन्दी से गले मिलकर उसे सरस बनाती है। किन्तु यदि वह प्रतिद्वन्द्विनी के रूप में हिन्दी को दुत्कारने की ओछी भावना से, द्वेष एवं विलास का प्रचार करने की भावना से हिन्दी के समकक्ष खड़ी होती है, तो वह जनभाषा या मुल्की जबान कहलाने की अधिकारिणी कदापि नहीं हो सकती।"[1]

ख- आदर्शवादी विचारधारा की प्रधानताः

शिवानी के निबन्धों में आदर्शवादी विचारधारा की प्रधानता है, इसमें कोई सन्देह नहीं हैं। "श्री दुर्गाप्रसाद नौटियाल को हिन्दी दिवस पर दिये गये अपने विशेष साक्षात्कार में शिवानी ने स्वीकार किया है कि "मैंने साहित्य का सृजन किया है, शब्दों का व्यापार नहीं, यह शिवानी की गर्वोक्ति नहीं है। उनकी सृजनशीलता का उद्देश्य रहा है जनमानस को आदर्शों के शिखर तक ऊँचा उठाने की सार्वजनीन सोच। उनकी रचना धर्मिता इसका ज्वलन्त उदाहरण है- "जो रचना जनमानस को ऊँचा नहीं उठाती, उसे सोचने समझने के लिये विवश नहीं करती, मैं उसे साहित्य नहीं मानती। जो साहित्यकार समाज में व्याप्त विकृतियों पर प्रहार नहीं करता, उसका साहित्य किस काम का ?"[2]

साहित्य समाज का एक ऐसा "एक्सरे चित्र" है जिसमें समाज की अन्तर्विकृतियों का स्पष्ट अंकन होता है और साहित्यकार एक कुशल चिकित्सक की भांति उन विकृतियों का शल्यीकरण अपनी संतुलित लेखनी द्वारा करता है। यही साहित्यकार की नैतिकता है और यही उसकी सर्जना का आदर्श।

शिवानी के निबन्ध ऐसे ही सर्जनात्मक आदर्श की अभिव्यक्ति के सम्पुष्ट प्रमाण हैं। अपने निबन्धों के माध्यम से शिवानी ने समाज में लगभग सभी प्रकार की विकृतियों पर दृष्टिपात किया है। जहां विभिन्न आवरणों के कारण सूर्य का प्रकाश भी पहुंचना सम्भव नहीं है, वहां शिवानी की सूक्ष्म दृष्टि पहुंची है। इसीलिये शिवानी सर्वसम्मति से आज हिन्दी साहित्य की एक

1- आकष, शिवानी, पृष्ठ 75

2- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 9 सितम्बर, 1990, पृष्ठ 33

शीर्षस्थ कथाशिल्पी मानी जाती हैं।

शिवानी ने अनेक स्थलों पर उल्लेख कर स्वीकार किया है कि उनके अंदर साहित्य सर्जना के बीज बाल्यकाल से ही विद्यमान थे। अनुकूल वातावरण ने उन्हें अंकुरित कर विशाल रसालवृक्ष की तरह अमृत फलदायी बनाया है । इसका श्रेय वे बहुत अंशों तक गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर को देती हैं। गुरुदेव आदर्शों की प्रतिमूर्ति थे। भला ऐसे जीवन्त आदर्श का सान्निध्य पाकर किसका जीवन और सृजन आदर्शमय नहीं हो उठता। शिवानी के ने आदर्श जो उनके साहित्य की पहचान हैं, उनके निबन्धों के प्राण हैं, जिनमें समाज का कल्याण निहित हैं, गुरुदेव की ही देवत्वमयी देन है।

कुछ विरले लोग ही अपनी उपलब्धियों का श्रेय दूसरों को दे पाते हैं। शिवानी की यह ध्वनि उनकी आदर्श वादी विचारधारा की प्रतिध्वनि है।

यदि शिवानी के निबन्धों से आदर्शवादी तत्व निकालकर अलग कर दिया जाये तो उनके निबन्ध वैसे ही धोखे का बछड़ा सिद्ध होंगे, जैसे ग्वाला अपनी गाय को दुहने के लिए मृत बछड़े की खाल में भूसा भरकर गाय के सामने खड़ा कर देता है। तब शिवानी का लेखन मात्र पैसे के लिए लिखा जाने वाला {फुटपाथी} साहित्य होता । प्रसिद्ध पत्रकार श्री दुर्गाप्रसाद नौटियाल के प्रश्नों " आपके साहित्य सृजन का उद्देश्य क्या रहा है- लोककल्याण, आत्मसुख जिसके अंतर्गत धन प्राप्ति का लक्ष्य भी शमिल है या कुछ और ?, के उत्तर में उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है-" मैं पेशेवर लेखिका हूँ, अपनी रचना का मूल्य चाहती हूँ किन्तु केवल पैसे के लिए ही मैंने साहित्य सृजन नहीं किया। लेखन के बदले में जो कुछ सहजता से मिल गया, उसे स्वीकार कर लिया।" 1.

शिवानी के निबन्धों का अध्ययन करने के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि उनका एक-एक निबन्ध आदर्शवादी विचारधारा से आप्लावित है। माँ के ममत्व

1- साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 9 सितम्बर 1990, पृष्ठ 33.

का महत्त्व बालक के विकास में कितना अधिक होता है, इसका सहज बोध उनके निबन्ध "बच्चे को जन्म देना ही काफी नहीं है, मैं हो जाता है- " संसार का कोई भी शिशु माँ के स्तन से कपोल सटाकर यदि नहीं सो पाता तो बड़ा होने पर उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कभी नहीं हो सकता।"[1]. इस प्रकार के आदर्शवादी विचार प्रवाह शिवानी के सभी निबन्धों में सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

शिवानी ने उस भारतीय आदर्श के धीरे-धीरे विलुप्त होते जा रहे स्वरूप को देखकर जिसे हम जन्मदिन की बजाय "बर्थ डे कहना और केक पर जलती हुए मोम बत्तियों को बुझाना अधिक आधुनिक समझते हैं, हमें सचेत किया है- "हद है, अकल पर पत्थर पड़ गये हैं क्या? तीन बेटियों के बाद का तेरा बेटा है और फूंक-फूंककर लौ बुझवा रही है। हमारे यहां तो जन्म दिन के दिन अखण्ड ज्योति जलाई जाती है, बुझाई नहीं जाती। यह तो मनहूस अंग्रेजों का रिवाज है।"[2].

शिवानी अपनी माँ की इस फटकार को सुनकर सोचने पर विवश हो जाती हैं कि वास्तव में वे एक क्षण के लिए अपने बेटे की बालहठ के सामने पराजित हो गई थीं। जबकि धैर्य हमारा भारतीय सांस्कृतिक आदर्श है- "हमारी संस्कृति ने हमें दीप के निर्वाण का सबक कभी नहीं सिखाया। तीव्र झंझावात तूफान में भी हमारे दीप की शिखा सदा निष्कम्प रहे, यही हमें सिखाया जाता है।"[3]

शिवानी की एकसरे दृष्टि वर्तमान भारतीय समाज की, व्यक्तिगत हिंसा द्वेष भावना, भ्रष्टाचारी नीति और चरित्र की दुर्बलता आदि को भी दर्शाती है। जिसमें उनकी आदर्शवादी सोच झलकती है- " आज कभी-कभी लगता है इस संस्कृति की जो क्षति आक्रमण नहीं कर पाये, वह स्वयं हमारे ही आक्रमण करते जा रहे है।"[4].

1- आकष, शिवानी, पृष्ठ 27.

2- वही वही पृष्ठ 32

3- वही वही पृष्ठ 32

4- आकष, शिवानी, पृष्ठ 79.

कितने क्षोभ की बात है कि हमारी जिस अमर संस्कृति को विदेशी आक्रमण भी निष्प्राण नहीं कर पाये, उस संस्कृति के नैतिक मूल्यों का ह्रास हम स्वयं ही कर रहे हैं। काश ! इस प्रश्न को हम गंभीरता से सोच पाते? इसका कोई निदान निकाल पाते?

हमारे धार्मिक कृत्यों का भी एक सामाजिक आदर्श एवं आधार रहा है। आज के भक्तों में भक्ति भावना कम, प्रदर्शन ही अधिक देखने को मिलता है। इस प्रदर्शन से शिवानी क्षुब्ध हो उठती हैं- " क्या अब हमारे देवी- देवताओं की श्रवण शक्ति इतनी क्षीण हो गई है कि देवी का स्तवन-कीर्तन हो या गुरुग्रन्थ साहब का जाप, जब तक भक्त माइक में मुंह फाड़कर चीखे-चिल्लायें नहीं, वे सुन ही नहीं सकते, अपने जागरण के साथ हम कितनों को व्यर्थ जागरण करवाते हैं।"[1]

शिवानी की अभिव्यक्ति में व्यंग्य के आवरण से झाँकता है-आदर्श विचार का एक पड़ाव। आज हमारे धार्मिक अनुष्ठान हों या सामाजिक तीज-त्योहार, सभी विकृत रूप धारण करते जा रहे हैं जबकि "हमारे सभी उत्सवों का आयोजन, सात्विक भावनाओं को पुष्ट करने की दृष्टि से ही किया जाता रहा है, भले ही वह दशहरा हो या दीवाली, होली हो या ईद, ये सभी उत्सव पवित्रता के, भाईचारे के, सह-अस्तित्व एवं सौजन्य के पोषक रहे हैं, यही कारण है कि भारत के तीज- त्योहार भले ही वे किन्हीं धर्मावलम्बियों के क्यों न हों, विधर्मियों द्वारा भी सराहे जाते थे।"[2]
किन्तु आज इन तीज-त्योहारों के आदर्श की धज्जियाँ पाश्चात्य संस्कृति की वर्ण संकरी सन्तानों द्वारा जिस प्रकार उड़ायी जा रही है, उसका आँखों देखा हृदय को विगलित करने वाला नग्न चित्र शिवानी के निबन्ध "हमारी गुलामी बरकरार है" में दृष्टव्य है- "एक टिटिहरी सी टांगों वाला किशोर अपनी आयात पूरे चेहरे पर बिखेरे "महबूबा-महबूबा" के स्वर में "अम्बा माँ अम्बा माँ गा रहा था और मुग्ध किशोरियों की भीड़ दोनों पिचके कपोल फुला, विचित्र स्वर- लहरी में बदबू निकाल रहे उस लोकप्रिय नायक को आँखों ही आँखों में पी रही थी। क्या देवी अष्टभुजा का ऐसा आह्वान वांछनीय है?"[3]

1- आकष, शिवानी, पृ0 79
2- वही वही पृष्ठ 79.

3- वही वही पृष्ठ 78

शिवानी इन आदर्शों के फिल्मीकरण पर क्षुब्ध है। उनका यह क्षोभ ही उनके निबन्धों की आदर्शमयी धारा को क्षिप्रता प्रदान करता है।

नारी होकर भी शिवानी ने नारी के अन्तर्मन में जितनी गहराई तक झांका है और उसके अन्तर्मन के मनोभावों को जो अभिव्यक्ति दी है, वह शिवानी जैसी समर्थ लेखिका के लिए ही संभव है। वे स्वयं स्वीकार करती है कि महिला साहित्यकार पुरूषों की भाँति सामाजिक सत्यों के चित्रण में संकोची होती है। वे चाहे, जितना शिक्षित और वाचाल होने का भ्रम पाले रहें लेकिन उनकी पुरानी संस्कृति कहीं न कहीं आड़े अवश्य आती है लेकिन यदि नारी लिखने का साहस जुटा ले तो वह पुरूषों से श्रेष्ठ लेखन समाज को दे सकती है। साहित्य महीयसी महादेवी वर्मा एवं अमृता प्रीतम जैसी महिला लेखिकाएं अपनी सहज-सरल एवं संप्रेषणीय शैली के कारण पुरूषों से बहुत आगे निकल गई हैं। शिवानी भी अपनी आदर्शोन्मुखी लेखन शैली द्वारा नारियों को अप्रत्यक्ष रूप से उपदेश देकर एक आदर्श नारी बनाना चाहती हैं। नारियों को सचेत करती हुई वे लिखती हैं- "अभिमान से दूर रहना, कटु भाषण न करना, ऐसे वस्त्रों का त्याग जिसमें अंग दिखें, पतियों के अभिप्राय पूर्ण संकेतों का अनुसरण, पर पुरूष स्वयं देवता ही क्यों न हो उनसे दूरी, समय पर भोजन देना, घर में गुप्त रूप से अनाज का संचय कुलटा स्त्रियों के पास न फटकना आदि।"[1] ये नारी जगत के लिए शिवानी के ऐसे आदर्श सूत्र है । जिनको अपनी गांठ में बांधकर कोई भी नारी अपना इहलोक और परलोक दोनों संवार सकती है, क्योंकि उनकी दृष्टि में नारी ही परिवार की संचालिका और संस्थापिका होती है।

पुरूषों की नारी-लोलुप दृष्टि के शरसंधान से विवश नारी अनादि काल तक क्षत- विक्षत होती रहे, क्या यही उसकी नियति है? ऐसा लिखकर यद्यपि शिवानी ने पुरूषों की नारी- लोलुपता की तीखी आलोचना की है फिर भी पत्नियों को भी एक नारी होने के नाते सीख दी है-" यदि आपको अपने पति पर विश्वास है

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 105

तो चाहे उर्वशी रखिये या शूर्पनखा।"[1] अर्थात पत्नियों को अपने पति पर विश्वास रखना चाहिए तभी वे उन्हें सुधार सकती हैं और उनकी विश्वास पात्र बन सकती हैं, अन्यथा घर के बाहर रहने वाला प्राणी पति दफ्तर, बाजार, घर पार्टियों आदि अनेक स्थलों में नारियों के सम्पर्क में आता है। कहां तक इनकी निगरानी की जा सकती है। अतः उस पर विश्वास करने में ही अपना कल्याण हैं।

इस प्रकार शिवानी ने आदर्श की जो धारा अपने निबन्धों में प्रवाहित की है, वह सम-विषम मार्गों से गुजरती हुई गहन, विस्तृत, तीव्र और प्रगति-गामी हुई है।

6• ग शिवानी के निबन्धों में नैतिकता का आग्रह

जहां आदर्श होते हैं, वहां नैतिकता स्वयमेव आ जाती है अतः शिवानी के निबन्धों में नैतिकता के प्रति आग्रह का पाया जाना स्वाभाविक हैं, क्योंकि शिवानी के निबन्ध उनकी नैतिकता का घनीभूत रूप हैं। उनकी यह नैतिकता साहित्य और समाज के प्रति सर्वत्र दृष्टव्य है। पशु-पक्षियों के प्रति भी हमारी कुछ नैतिकता होती है, इसका सजीव चित्रण करते हुए शिवानी ने लिखा है-"एक बार हमारे निवास स्थान से लगे वन में भयानक आग लग गई थी। सामने ही लहराती जमदाड़ नदी बहती थी, देखते-देखते न जाने कितने भयभीत वन्यपशु नदी तट पर आकर खड़े हो गये थे। इधर नीलकण्ठ, खञ्जन, तोता, ललमुनिया, झरैया, पुट्टैयया, स्यामा, तीतर आदि पक्षियों के भयभीत कलकण्ठ की ध्वनि असंख्य वाद्ययंत्रों से झनझना रहे थे। आखेट के दीवाने कितने ही कुशल शिकारियों का जमघट उस दिन हमारी छत पर था। पर मजाल थी कोई भरी बंदूक के घोड़े पर हाथ तो धर ले। प्रकृति की मूक चुनौती के सम्मुख कठोर से कठोर हृदय मानव {शिकारी} भी कभी नतमस्तक पराजित खड़ा रह सकता है, यह अनुभव जीवन में पहली बार हुआ था।"[2]

1- आकष, शिवानी, पृष्ठ 106

2- आकष,शिवानी, पृ05।

ठीक इसके विपरीत- "दो सगी बहनें अपने बुजुर्ग पिता के साथ एक शादी में शरीक होकर लौट रही थीं। सहसा तीन गुण्डों ने उन्हें घेर लिया। उनके पिता की वहीं पर हत्या कर वे दोनों बहनों को अपने साथ कार में घसीट ले गये। दोनों लड़कियों की हृदयभेदी चीत्कार लोगों ने सुनी, पर किसे साहस था जो उन्हें बचाता। दो दिन बाद करांची के ही कब्रिस्तान में उन दो अभागिनियों को क्षत- विक्षत नुची लाशें पड़ी थीं। चादर और चहारदीवारी भी उनकी रक्षा नहीं कर पाई।"[1] इस अनैतिक कार्य की निंदा करते हुए लिखा गया- "मर्दों को अल्लाह ने हमारी देखभाल का काम सौंपा था और आज वे ही हमारे दुश्मन बन गये हैं। लगता है वह जमाना अभी गया नहीं, जब बाप अपनी बेटियों को पैदा होते ही जला देते थे। अभी भी हम मर्दो से ही रहम की भीख मांगती है, हम बिना बुर्के के बाहर निकलती हैं तो कहा जाता है कि हम हुस्न- फरोश हैं। आखिर हम औरतों को क्यों हमेशा दबाया जाता है? किस गुनाह की सजा मिल रही है हमें? क्या हम नशीली दवाओं का व्यापार करती हैं, क्या हम बम बनाती हैं? क्या हम बेकसूर लोगों का गला रेतती हैं? यदि नहीं तो हमारा क्या कसूर है? बस यही न कि हम औरतें है।[2] इस प्रकार शिवानी नैतिकता के प्रति अपनी जागरूकता दर्शाती हैं। एक अन्य सन्दर्भ में वे एक घटना का उल्लेख करती हुई " को माता को पिता तुम्हारे" नामक निबन्ध में उन पुत्रों का दुर्भाग्य लेखा प्रस्तुत करती हैं, जिसका पिता ही उसे पुत्र मानने से इनकार कर देता है- "श्री सिसिल पारकिंसन (ब्रिटेन कैबिनेट के एक सदस्य) आकाशवाणी पर तो गर्व से सीना फुलाकर कह गये कि मैं "सारा" (पारकिंसन की सेक्रेटरी) के अजन्मा पुत्र का पिता हूँ एवं उससे विवाह करने की घोषणा करता हूँ। किन्तु घर जाकर अपनी दबंग पत्नी के सामने उन्होंने पैतंरा बदल दिया- "मैंने निश्चय किया है कि अपने परिवार के हित में मैं अपनी पत्नी के साथ ही रहूँगा। शिवानी कहती हैं कि उनकी पत्नी "हमारे देश की उन सरल-साध्वी पत्नियों सी नहीं हैं जो लपककर सौत को भी गले लगा पति के चरणों में बिछ जायें।"[3]

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 141

2- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 141----143

3- वही वही, पृष्ठ 43

इस घटना के द्वारा शिवानी ने यह दर्शाने की कोशिश की है कि "अवैध सम्बन्धों में विजय सदा पुरुष की ही होती है, नारी अपनी शक्ति और धन के बावजूद न कभी विजयिनी हो पाती है, न समाज की सहानुभूति ही उसे प्राप्त हो सकती है --- यद्यपि इसे हम एक सुखान्त कहानी नहीं कह सकते। पति ने सदा-सदा के लिए पत्नी का विश्वास खो दिया। एक रक्षिता ने वंचक के कपटी कलेवर को पहचान एक प्रेमी को खो दिया और एक अजन्मे निर्दोष शिशु ने पिता को खो दिया। हो सकता है उसका पिता सचमुच ही एक दिन ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बन जाये किन्तु जब वह स्कूल में पहले दिन जायेगा तब किस जनक की कैफियत देगा।"1.

नारी होने के नाते शिवानी ने नारी की प्रत्येक भूमिका एवं परिस्थिति पर अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने उसके प्रति हो रहे अन्यायों की जहां कड़े शब्दों में भर्त्सना की है, वहीं उसे उसके कर्त्तव्यों के प्रति सचेत भी किया है। सास और बहू के बीच जो दूरी निरन्तर बढ़ती जा रही है, उसके कारणों पर प्रकाश डालने के साथ ही साथ शिवानी ने उसे मिटाने के कुछ अचूक एवं स्वयं अनुभूत नुस्खे अपने निबन्धों के माध्यम से सुझाये हैं। यदि सासें इन नुस्खों का प्रयोग करना सीख जाएं तो निश्चित ही वे शिवानी की तरह एक कुशल सास बनकर बहू को जलाने आदि के झंझट से मुक्ति पा सकती हैं। उन्हें न तो बहू को मारने की युक्तियाँ सोचनी पड़ेंगी और न ही उससे शत्रु की तरह सावधान रहने की आवश्यकता ही महसूस होगी। बल्कि सास बहू के लिए एक अनिवार्यता होगी और बहू सास के लिए एक आवश्यकता।

शिवानी के अनुसार-- "देखा जाए तो न सास ही बुरी होती है न बहू। न अचानक आकर पुत्र की लगाम सास से हथिया उसकी चिरसंगिनी बनने वाली पुत्रवधू से अकारण ही ईर्ष्या करने वाली सास ही कभी सुखी हो सकती हैं, न पुत्र को नौ माह गर्भ में धारण कर उसे अपने रक्त-मांस से लालित-पालित करने वाली सास को देखते ही ब्रम्हतालु से लेकर नाभिमंडल तक जल-भुन जाने वाली बहू। यह संसार का सबसे कठिन रिश्ता है जिसका निर्वाह करना "क्षुरस्य धारा" पर चलने

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 44

की ही भाँति कठिन अवश्य है असंभव नहीं।"1

वस्तुतः सास और बहू के रिश्ते में सबसे दुःखदायक फांस होती है दुराव-छिपाव की। दोनों के बीच में यह दुराव-छिपाव नहीं होना चाहिए क्योंकि निष्कपट व्यवहार से ही निष्कपट व्यवहार का प्रतिदान मिल सकता है। शिवानी ने वर्तमान समाज की सासों को उनके नैतिक कर्त्तव्यों के प्रति उन्हें आगाह कराते हुए लिखा है- " प्रत्येक सफल सास के लिए गीता के निष्काम योग का सत्य हृदयंगम करना अत्यन्त आवश्यक है। अपना कर्त्तव्य करो। फल की आशा मत रखो। चाहे इकलौता बेटा हो या इकलौती बहू। एक दिन स्वयं ही हमें यह अनुभव होगा कि जो मांगने पर भी शायद हमें कभी नहीं मिलता वह स्वयं मिल रहा है। हमारा निःस्वार्थ स्नेह, त्याग, विवेक, सहिष्णुता, समर्पण स्वयं पुत्रवधू के हृदय तक हमारा पथ प्रशस्त कर स्वयं उसकी अर्गला खटका कर खोल देंगे।"2

शायद अपनी मां के इन अचूक नुस्खों का प्रयोग कर शिवानी की पुत्री इस नैतिक किंतु कठिन रिश्ते का सफलतापूर्वक निर्वाह करके अपनी सास की भी सास बन जाती है, अपने दबंग स्वभाव के कारण नहीं, सास की समझदारी के कारण। स्वयं शिवानी कहती हैं------"यह मैं कपोल-कल्पित लेखा-जोखा प्रस्तुत नहीं कर रही हूँ। स्वयं अपनी पुत्री के गृह में ही मैं ऐसी ही समझदार सहिष्णु सास की छवि देख चुकी हूँ। यहां तक कि एक दिन मेरी पुत्री अपने गृह अतिथियों से मजाक कर रही थी, "क्या करूं आजकल मेरी गृहस्थी अस्त-व्यस्त है, असल में मेरी बहू आजकल मायके गई है।"3

शिवानी को सास के लिए अपेक्षित इस कर्तव्य निर्वाह से क्षुब्ध होकर एक पाठिका सास ने उन्हें पत्र लिखकर पूछा-- "क्या आपकी दृष्टि में सास केवल आयागीरी के लिए ही रह गई है? के उत्तर में शिवानी ने सास के वर्तमान दायित्व को प्रस्तुत करते हुए लिखा है-- " मैं इसके उत्तर में एक ही प्रश्न इस पाठिका से पूछना चाहूँगी

1- उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 128

2- यथोपरि

3- उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 129

कि हमने जब अपनी संतान का लालन-पालन किया, उसके पोतड़े धोए, रात-रात भर उसे लेकर जागी, तब क्या एक क्षण को भी हमें यह लगा कि हम आयागीरी कर रही हैं? फिर उसी संतान की संतान का लालन-पालन हमें क्यों इस व्यर्थ श्रेणी भेद की पट्टी पढ़ाने लगा है? मैं मानती हूँ कि सास का दायित्व बहू से कहीं अधिक कठिन है।"1.

इस प्रकार सास-बहू के बीच की दूरी को दूर करने वाले नुस्खे बताकर स्वयं शिवानी ने अपने लिए स्वीकार किया है कि वे एक आदर्श बहू भी रही हैं और एक आदर्श सास भी-- "न मैंने कभी पुत्रवधू के रूप में पारिवारिक त्रास झेला है और न ही कभी सास बनने पर मेरी स्थिति ऐसी दयनीय हुई है।"2.

सास और बहू के अतिरिक्त नारी सामान्यतया एक नारी ही है। आज उसके लिए समाज और संसार काफी उदार हो चुका है। किन्तु समाज की यह उदारता नारी के लिए घातक न सिद्ध हो, इसके लिए शिवानी ने वर्तमान नारी समुदाय को राय दी है--- "आज सौभाग्य से संसार का प्रत्येक दरवाजा नारी के लिए बुलंद बन चुका है, उसने सिर उठाकर भी चलना सीख लिया है। किन्तु फिर भी आधुनिक माता-पिता द्वारा उदारता और समानता का व्यवहार पा चुकी आज की नारी को सदैव स्मरण रखना होगा कि कभी कहीं किसी तंग दरवाजे से सहसा टकराने की संभावना उपजे भी तो वह उसी सूझबूझ से सिर को तनिक झुकाकर, उसे आहत होने से बचा ले, कुछ पाने के लिए कुछ देना भी पड़ता है।"3.

ऐसा नहीं कि शिवानी ने नारी समुदाय को ही अपनी लेखनी का विषय बनाया हो। उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा समाज में व्याप्त उन तमाम आडम्बरों पर भी कटाक्ष किया है, जिनके प्रदर्शन में लोग दिल खोल कर व्यय करते हैं। नैश्य भोज, जिनका बचा हुआ जूठन भूख से व्याकुल अनाथालयों में रह रहे बच्चों के उदर पोषण का साधन बनता है। क्या यह हमारी नैतिकता की होली नहीं है, हमारे अत्याधुनिक

1- उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 113-14.

2- उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 127

3- उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 103

समाज की विडम्बना नहीं हैं? जहां एक ओर आधे से अधिक लोग आधे पेट से भी कम खाकर जीवित रहने का उपक्रम कर रहे हों, वहीं दूसरी ओर नैश्य भोजों में उपलब्ध विशिष्ट नाना व्यंजनों की संख्या से ही लोग संतृप्त हो रहे हों और शिष्ट लोगों का यही अवशिष्ट भोजन अनाथालयों का विशिष्ट भोजन बन जाता है एवं समाचार पत्रों में दाता के औदार्य का प्रमाण-पत्र माना जाता है। शिवानी ने एक ऐसे ही नैश्य भोज के खोखले पन एवं बाह्य प्रदर्शन पर करारा प्रहार किया है। जब किसी सज्जन ने शिवानी को बड़े गर्व से बताया कि उनके किसी आत्मीय के पुत्र जन्मोत्सव के विराट नैश्य भोज में एक लाख रूपया खर्च हुआ। एक हजार अतिथि सम्मिलित हुए पर अनाज का एक दाना भी बर्वाद नहीं हुआ। शिवानी को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने पूछा,"वह कैसे"? सज्जन ने बताया-- "बस मदर टेरेसा को फोन किया, उनकी वैन सब जूठन उठाकर ले गई। पत्तलों में अधिकांश मिष्ठान्न धनवान लोग ज्यों-के-त्यों छोड़ देते हैं, उन्हें कूड़ेदान में फेंकने से क्या लाभ? बम्बई में भी सुना हैं ऐसी ही व्यवस्था है। जहाँ सामन्त सम्पन्न सह भोजों के पश्चात् एक समाज सेवी दम्पति वैन से जूठन उठाकर दीन-दीरद्रों में वितरित कर देते हैं। आम के आम और गुठली के दाम।"[1] किन्तु यह सब सुनकर शिवानी का मन क्षुब्ध हो गया-- " क्यों इतना अधिक खाना और रोटी के लिए ईमान खुली हाट में बिक रहा है? दावत, दहेज और दिखावे में हम लाखों रूपया खर्च करने में नहीं हिचकते किन्तु दीन-दीरद्रों के क्षुधातुर उदर के लिए हमारे पास है, केवल हमारे पत्तलों की जूठन। आज धन संग्रह की यही होड़ दुश्चरित्रता एवं अनैतिकता को बढ़ावा दे रही, "किं न करोति पापं । भूखा क्या पाप नहीं करता।"[2]

ऐसे ही अनेक मार्मिक चित्रों के माध्यम से शिवानी ने अपने निबन्धों में नैतिकता की मांग की है। देश-विदेश से जुड़े उनके अनुभव-सम्पन्न उदाहरण प्रत्येक स्थल पर नैतिकता की गुहार लगाते हुए दिखते हैं। शिवानी के संस्कार ही नैतिकोन्मुखी

1- उपप्रेती, शिवानी, पृष्ठ 95,

2- यथोपरि

हैं। चाहे पात्र हो या घटना, उसमें नैतिकता का तत्व किन्हीं अंशों तक अवश्य पाया जाता है । उनके निबन्धों के शीर्षक भी नैतिकता का आग्रह करते हुए प्रतीत होते हैं । उदाहरणार्थ "मरनों भलो स्वदेश को", "मोरा पिया मोरि बात न पूछे, तऊ सुहागन नाम", "इसलिए न दबें कि वह बेटा नहीं है", "हमारी गुलामी बरकरार है", "अव्यवस्था की जड़ें भ्रष्टाचार में हैं", "बच्चे को जन्म देना काफी नहीं है", "क्या इतना आसान है मां का ऋण चुकाना ?" आदि शीर्षक शिवानी की नैतिकता के ऋणी हैं ।

घ. <u>निबन्ध विधा में नैतिक दर्शन एवं आदर्श अभिव्यक्ति का समन्वय</u>

रोचक एवं सरस शैली में लिखे हुए शिवानी के ललित निबन्ध नैतिकता और आदर्श के समन्वित स्वरूप की सफल अभिव्यक्ति हैं । शिवानी के निबन्धों में नैतिकता और आदर्श नीर-क्षीर की तरह घुल-मिल गये हैं । कहीं पर नैतिकता का पलड़ा भारी दिखता है तो कहीं आदर्श का और कहीं-कहीं नैतिकता में आदर्श का भ्रम हो जाता है । वैसे नैतिकता और आदर्श एक-दूसरे के परिपूरक हैं । नैतिकता विहीन व्यक्ति या समाज आदर्शवान् नहीं हो सकता है । इसी प्रकार आदर्शवान व्यक्ति या समाज अनैतिक नहीं हो सकता है । आदर्श के लिए नैतिकता का होना अत्यावश्यक है । संभवतः इसलिए आदर्शवादी शिक्षाविद् हरबर्ट महोदय नैतिकता को ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य मानते हैं । नैतिकता के अभाव में आदर्शों की कल्पना दिवास्वप्न मात्र है । नैतिकता की सीढ़ी पर चढ़कर ही कोई आदर्श के शिखर पर पहुँच सकता है चाहे वे गांधी हों या गौतम। यीशु रहे हों या मोहम्मद साहब। चाहे राजाराम मोहन राय रहे हों या कबीर दास, चाहे स्वामी दयानन्द हो या स्वामी विवेकानन्द। सभी नैतिकता के प्रकाशपुंज रहे है । तभी आज हम उनके आदर्शों पर चलने को अपना अभीष्ट मानते हैं और ये महापुरूष हमारे आदर्शमय देवालय हैं ।

जब समाज में स्त्रियों को संज्ञा तो सती की दी जाती थी किन्तु पति की चिता के साथ उसे निर्ममतापूर्वक उसकी इच्छा के विरुद्ध बलात् भस्मीभूत कर दिया जाता था । इन सामाजिक भस्मासुरों से नारियों को मुक्ति दिलाने का श्रेय महापुरूष

राजा राममोहन राय को है जिन्होंने इस अनैतिक कुप्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई और उसे अमानुषिक ठहराकर समाप्त करवा कर ही दम लिया । उन्होंने इस अनैतिकता के विरूद्ध अपनी नैतिकता का प्रदर्शन किया, अनेक आरोप सहे, कठिनाईयां झेली, तब तक शांत नही हुए जब तक सफलता नहीं मिली । उनका यह नैतिक आचरण ही उन्हें आदर्श पुरूष के रूप में प्रतिष्ठित करता है ।

आज भारत में महात्मा गांधी को एक आदर्श चरित्र के रूप में सम्मान प्राप्त है । यह सम्मान उनके इस नैतिक व्यक्तित्व के कारण मिला है जिनका निर्वाह उन्होंने आजीवन किया है और जिसके लिए उन्होंने असह्य पीड़ा सही है, दुलर्भ सहिष्णुता का परिचय दिया है । यही आदर्श आज भारत के अनुकरणीय आदर्श हैं। ऐसे ही एक नैतिकता एवं आदर्श के समन्वित स्वरूप को चित्रित करती हुई शिवानी अपने निबन्ध "सुख-दुख गोद के" में मिसेजमर्च के बारे में लिखती हैं - "लोगों ने उनकी {मिसेज मर्च की} कितनी ही कुख्याति उड़ाई कि वह हिन्दू घरों की सन्तान को ईसाई बनाकर भ्रष्ट कर रही हैं । विदेशियों को बच्चे बेचती हैं, पाल-पोसकर इन्हीं चूजों को आस्ट्रेलिया भेजकर लाखों रूपया कमा चुकी हैं आदि-आदि किन्तु, जब अपनी ही सन्तान को कोई अविवेकी पिता, अपने प्राणों के भय से, चौराहें पर छोड़ दिया तब कहां गया था हिंदुओं का तर्क-प्रवण चित्त ? एक वित्तहीन महिला, भले ही उसके हृदय में कहीं अपने धर्म प्रचार की भावना रही हो, इतना अवश्य जानती थी कि जो कुछ भी उदात्त है, वांछनीय है, वह जातिगत या देशगत नहीं है । समुदाय के नाम पर आदर्शों की स्थापना हो या किसी विशिष्ट धर्म का प्रचार, मानवता का गला घोंटता है । पैगम्बरों पर या संतों पर किसी विशेष जाति का एकाधिकार नहीं हो सकता । यदि मिसेज मर्च में ऐसी धार्मिक सहिष्णुता न रही होती तो आज उनके वसुधैव कुटुम्बकम् के वातावरण में पली नैली मर्च भौगोलिक अक्षांश और देशांतर के भेद को चीर अपने बिना रक्त-मांस की डोर से बंधे, बीमार भाई ज्यौजी मर्च से मिलने इतनी दूर जाती ?"।

दिन-प्रतिदिन भारतीय संस्कारों की क्षीण होती जा रही काया को देखकर शिवानी की नैतिकता अपने प्राचीन आदर्शों को स्थापित करने के लिए मुखर

1- [illegible] शिवानी पृ0 129

हो उठती है । अपने नैतिक दर्शन एवं आदर्श की अभिव्यक्ति का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करती हुई शिवानी लिखती हैं - "संस्कारों का निर्वाह इस युग में कठिन भले ही हो किन्तु यह कहना कि इनका अब कोई महत्त्व नहीं है, उचित नहीं है । हमें स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक सामाजिक विषय में गुण और दोष दोनों रहते हैं । उनकी कुछ भी उपादेयता नहीं रही, ऐसा हम नहीं कह सकते। जो संस्कार हमारे नहीं हैं उन्हें बरबस ग्रहण कर उनका निर्वाह क्या सुखद हैं ? समय आ गया है कि हम चेतें। अपनी संस्कृति के चारों ओर जम गई इस काई को बुहारकर दूर फेंक एक बार फिर उसकी सहज स्वच्छता को ग्रहण करें।"[1] जहाँ शिवानी ने इसमें संस्कारों के साथ हो रहे खिलवाड़ को अनुचित माना है वहीं वे विदेशी संस्कारों को न अपनाने की बात कहकर भारतीय आदर्शों की रक्षा का प्रयास करती हुई दिखती हैं। लेकिन "जापान की समृद्धि का रहस्य" खोलते हुए शिवानी फैक्टरी मालिक "हौंडा" की उस नैतिकता का गुणगान करना नहीं भूलतीं जिसके कारण शिवानी की दृष्टि में ही नहीं वह सबकी दृष्टि में आदर्श व्यक्ति है। उसकी अभिव्यक्ति देखिए- "मेरी फैक्टरी का छोटे से छोटा कर्मचारी भी उसका मालिक है। उसे पूर्ण अधिकार है कि यदि वह किसी कल-पुरजे की बनावट से सन्तुष्ट नहीं है तो एक सफेद बटन दबाकर पूरी फैक्टरी बंद कर दे । फिर भी कठिन परिश्रम से अर्जित उनकी विरासत से उनका परिवार सदा वंचित रहेगा। अपनी पत्नी एवं बत्तीस वर्षीय इकलौते पुत्र की उपस्थिति में उन्होंने कहा, मेरी सम्पत्ति में भला इनका क्या अधिकार हो सकता है ? इसके उत्तराधिकारी होंगे मेरे सहयोगी कर्मचारी, जिनके अथक परिश्रम से यह उद्योग इस ठोस भित्ति पर खड़ा है।'"[2]. हौंडा की इस सरलता में नैतिक दर्शन एवं आदर्श की अभिव्यक्ति का कितना सुन्दर समन्वय झलकता है। काश, ऐसी विरासत हमारे देश के पिता भी अपने पुत्रों के लिए छोड़ पाते ।

कला के क्षेत्र में भी शिवानी का दृष्टिचक्र घूमा है। कृपाल दत्त त्रिपाठी जैसे कला मर्मज्ञ जिन्होंने कला के प्रति अपनी नैतिकता का निर्वाह कर कलाकारों के लिए एक आदर्श प्रस्तुत किया है, वह स्तुत्य है। ऐसे कलाधनी की प्रशंसा में शिवानी

1- आकष, शिवानी, पृष्ठ 34-35

की लेखनी स्तवन सी करती हुई प्रतीत होती है, "सौभाग्य से हमारे इसी देश में अब भी कुछ मनीषी कलाकार ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी त्यागमय साधना से अर्जित अपनी तपायी ज्ञानराशि को कलाप्रेमी जिज्ञासुओं को वितरित करने में ही अपना जीवन अर्पित कर दिया है । कृपालदत्त त्रिपाठी भारतीय संस्कृति के एक ऐसे ही मूर्धन्य कलाकार हैं । उनकी मूर्तियाँ, धातु में ढाली गयी कृतियाँ, चित्र, देश-विदेश में सार्वजनिक स्थलों में, व्यक्तिगत संकलनों में स्थान पा चुके हैं। उनकी कला की, कला एवं भारतीय संस्कृति में गहन रुचि रखने वालों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की, उन्होंने कला की अध्यात्ममयी शक्ति के दर्शन कर भारतीय संस्कृति की गहराइयों में उतर न केवल मौलिक योगदान दिया, अपितु ऐतिहासिक, प्रसिद्ध खंडित मूर्तियों का बड़ी दक्षता से पुनर्निर्माण कर कलामर्मज्ञों की प्रशंसा भी प्राप्त की। किन्तु यह कैसी विचित्र विडम्बना है कि आज उन्हें कोई नहीं जानता। उनकी वयः भार नमित वृद्ध क्षीण काया को देखकर कौन कह सकता है कि कभी इन्हीं दुर्बल हाथों ने भारत के विभिन्न पुरातत्व संग्रहालयों के विनष्ट हो रहे वैभव को सँवारा था।"[1] शिवानी समाज की विडम्बना पर प्रहार करते हुए कहती हैं कि जब पं0 कृपालदत्त त्रिपाठी समर्थ थे, उनकी कला में जीवन था, खण्डित मूर्तियों में प्राण फूंकने की शक्ति थी तब यह समाज उन्हें पहचानता था, उनका सम्मान करता था। आज जब वे विवश एवं श्रीहीन हो गए हैं, तब यही समाज उन्हें पहचानने से इन्कार कर रहा है- "अजंता-एलोरा की मूर्तियों एवं भित्ति चित्रों को नया जीवन देने वाला यह समर्थ मसीहा आज स्वयं उन्हीं खण्डित मूर्तियों की भाँति विवश एवं श्रीहीन है। जिसने कभी भारहुति यक्षिणी का खण्डित अधोभाग पुनः प्राणवंत बना दिया था, आज स्वयं उनके दोनों अवश पैर, उनके सामर्थ्य को चुनौती दे रहे हैं। अपने कलापीठ में घिसट-घिसट कर छात्रों का मार्गदर्शन करते त्रिपाठी जी को देखकर आज कौन कह सकता है कि यह वही कलाकार है जिसकी कला की सराहना राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, लेडी माउंटबेटन, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, होमी मोदी, गोविन्द वल्लभ पन्त आदि ने की थी । यही नहीं, राय कृष्णदास जैसे कलामर्मज्ञ ने भी उन्हें एक कुशल मूर्तिकार माना है।"[2] शिवानी की आदर्शमयी नैतिकता चीत्कार कर

1- आकष, शिवानी, पृष्ठ 89.

उठती है कि हमारी सरकार एवं समाज का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि ऐसे मूर्धन्य कलामर्मज्ञों को, जीवन के अन्तिम क्षणों तक, उन्हें उनका उचित सम्मान मिलना चाहिए ताकि उन्हें वयः भार नमित अपने वृद्द क्षीण कलेवर का भार वहन करने के लिए दीन-विगलित न हो पड़े। पं0 कृपालदत्त त्रिपाठी के प्रति व्यक्त की गई शिवानी की यह श्रद्धोत्स-मिश्रित नैतिकता उनके आदर्शमय व्यक्तित्व की सफल अभिव्यन्जना है।

शिवानी कलाकारों, कवियों एवं साहित्यकारों को आदर्श और नैतिकता के संस्थापक के रूप में मानती हैं । उनका विचार है कि ये अपनी कला और वाणी के माध्यम से अनीतियों का विरोधकर आदर्शों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। इनके ही निर्धारित नियम तत्कालीन समाज की नैतिक मूल्यों की परिधि में आ आदर्श बनते हैं। समाज शास्त्री तो केवल नैतिकता को परिभाषित करते हैं, उसके गुण-दोषों की विवेचना करते हैं और उसमें होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख करते हैं, लेकिन साहित्यकार केवल समाजशास्त्री की भाँति नैतिकता की व्याख्या कर मौन नहीं हो जाते। वह समाजशास्त्री की भाँति नैतिक आचरण के लिए प्रेरणादायी साहित्य का सृजन करते हैं। शाश्वत् आदर्शों को नैतिकता के सांचे में ढालकर उपास्य मूर्ति के रूप में समाज को भेंट करते हैं। उदाहरण के लिए तुलसी से अच्छा कौन आदर्श कवि हो सकता है, जिन्होंने अपने पावन ग्रन्थ "राम चरित मानस" को नैतिकता और आदर्श का समन्वित ग्रन्थ ही बना दिया। उन्हीं तुलसी के विषय में शिवानी का अभिमत है- "तुलसी ने मानस में जो प्रमुख आदर्श प्रस्तुत किया है कि वही श्रेष्ठ है जिसके यश, वैभव एवं सर्वस्व का उपयोग सर्वजनहिताय होता है, वह समाज श्रेष्ठ है, जहां ऐसा व्यक्ति है, वह साहित्य श्रेष्ठ है जो सबके लिए हितकारी है। यदि समाज श्रेष्ठ है, उसमे रहने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ है तो निश्चय ही उसे साहित्य भी उसी के अनुरूप मिलेगा।"[1]

समाज और व्यक्ति की श्रेष्ठता नैतिकता और आदर्शों की उपस्थित में ही संभव है। शिवानी ने अपने निबन्धों में नैतिकता और आदर्श का मणिकान्चनीय समन्वय प्रस्तुत कर अपने निबन्ध साहित्य को सर्वजनहिताय बनाकर तुलसी की उक्ति को चरितार्थ कर अपनी लेखनी की उपादेयता सिद्ध कर दी है।

1- कस्तूरीमृग, शिवानी, पृष्ठ 76

सप्तम अध्याय

शिवानी के साहित्य में आदर्शवाद का लक्ष्य एवं नैतिकता की उपलब्धि

शिवानी के साहित्य में आदर्शवाद का लक्ष्य एवं नैतिकता की उपलब्धि

मानवीय जीवन चरित्र में जहाँ भी आदर्श जीवन्त रूप लेता है, वहाँ नैतिकता के सहज दर्शन होते हैं । नैतिकता के अभाव में आदर्श की परिकल्पना सहज नहीं है । संभवतः इसलिये श्रीमती गौरा पंत शिवानी ने अपने उपन्यासों, कहानियों, संस्मरणों एवं निबन्धों में विभिन्न सन्दर्भों में नैतिकता एवं आदर्श की उपस्थापना के लिये संघर्षशील व्यक्तित्व की संरक्षा भी की है । वास्तव में आदर्शवाद का लक्ष्य समाज को अपना अनुगामी बनाना होता है । समाज में आदर्श पात्रों के माध्यम से ही आदर्शवाद के इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है । समाज अपने आदर्श चरित्रों से नैतिकता की जो अपेक्षा करता है, वही शिवानी के साहित्य में अभिव्यक्त है । आदर्शवादके लक्ष्य की आपूर्ति में नैतिकता पाथेय बनती है और इसी पाथेय की सफलता उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है अर्थात् आदर्शवाद की उपस्थापना को प्रकारान्तर से नैतिकता की उपलब्धि मानना चाहिये ।

शिवानी अपने साहित्य में कहीं भी इस उपलब्धि का उद्घोष नहीं करतीं, लेकिन शिवानी के विभिन्न चरित्र हमारे भीतर छटपटाते हुए प्रतीत होते हैं और हम उन चरित्रों को अपने भीतर जीवित रखने के लिये चाहे - अनचाहे सचेष्ट हो जाते हैं । यह कम उपलब्धि नहीं है । वस्तुतः नैतिकता शिवानी के साहित्य का परम लक्ष्य है ओर मानवीय जीवन का शाश्वत् सत्य भी ।

शिवानी के समग्र साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि शिवानी शाँति निकेतन के गुरूजनों से सर्वाधिक प्रभावत थीं। मेरी समझ में शिवानी के आदर्शवाद का लक्ष्य गुरूदेव श्री रवीन्द्र नाथ थे, लेकिन शिवानी उस लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकी और न ही उस लक्ष्य के समकक्ष उन्हें अन्य कोई परिलक्षित हुआ ।

प्रज्ञावान पुरूष की तरह शिवानी स्तुति और निन्दा से परे बढ़ती हुई प्रतीत होती है - ' स्तुति और निन्दा की अनेक घुमावदार पगडंडियों पर चलते-चलते मैंने अनेक अभिज्ञतायें प्राप्त कर ली है ।'[1] शिवानी के अनुसार राजनीतिज्ञ की ही भाँति साहित्यकार को भी सिर उठाकर ही चलना पड़ता है ।

1- कालिंदी : कुछ अनुभव, शिवानी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 22 जुलाई -1990 पृष्ठ -26

आदर्शवाद और नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में ही शिवानी में आत्मदृढ़ता परिलक्षित होती है, इसीलिये वे कहती है - "भावशून्य कला को मै कला नहीं मानती । भाव, कला और भाषा का परस्पर अटूट सम्बन्ध है । भावात्मक धरणी पर चलती भाषा कभी शिथिल नही हो सकती । वह भले ही निरामरण हो, उसमें दैन्य नहीं हो सकती है ।"[1]

सत्य आदर्श का एक पक्ष है और यह शिवानी के अनुसार प्राकृतिक निष्कर्ष है - "यह प्रकृति का विचित्र नियम है कि जिस सत्य को ग्रहण करने की हमारी बौद्धिक क्षमता नही रहती , उस सत्य को हम सत्य मानकर विश्वास नहीं कर पाते हैं । किन्तु फिर भी सत्य सत्य ही रहता है । "[2]

वस्तुतः शिवानी की सोच अत्यन्त सुविचारित है । ऐसी सोच आदर्श की संवाहिका होती है तथा नैतिकता से इसे पुष्टि मिलती है । गाँधी का आदर्शवाद हो या भक्त वत्सल भगवान का, नैतिकता का निर्वाह आदर्श की अनिवार्यता है ।

समाज और नैतिकता -

समाज जटिल मानव - व्यवहार की एक अवधारणा है । मानव सम्बन्धों पर आधारित सामाजिक व्यवस्था मानव - व्यवहार के लिये जिन नियमों का निरूपण करती है, वही नियम उस समाज विशेष के लिये नैतिकता का रूप ग्रहण करते हैं । कोई भी समाज बिना नियन्त्रणकारी नियमों के संगठित नहीं रह सकता है । अतः नैतिकता के रूप में नियामक शक्तियों का महत्व समाज के लिये आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य भी है । ज्यों - ज्यों समाज विकास की क्रमिक अवस्था से गुजरता है, उसके नियमों में भी परिवर्तन होते रहते हैं । तदनुसार उसकी नैतिकता के मापदण्ड भी बदल जाते हैं । वही नैतिकता समाज - सापेक्ष होती है जो सामाजिक संगठन को सुदृढ़ता प्रदान करने के साथ ही उसके स्वस्थ विकास के लिये उसके सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित एवं नियमित कर समाजोपयोगी बनाती है । ऐसी दशा में समाज विरोधी आचरण अनैतिकता की श्रेणी में स्वतः आ जाते हैं । अपने समाज को अनैतिकता से बचाने के लिये प्रयासरत व्यक्तियों के प्रयास भी नैतिकता की परिधि के अन्तर्गत आते हैं ।

1- कालिंदी: कुछ अनुभव, शिवानी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 22 जुलाई 1990, पृष्ठ 26

आज के समाज में नैतिकता-रूपी मनचाहा पुष्प-पौधा अनैतिकता- रूपी खर-पतवारों के बीच कृशकाय एवं अस्तित्व विहीन होता जा रहा है । अनैतिकता के बढ़ते चरण वामन के चरणों से भी उपर निकल गये हैं । आज न तो परिवार का महत्व परिवारीजनों के लिये रह गया है और न ही समाज की आवश्यकता सामाजिक सदस्यों के लिये है । देश और विश्व के हित-चिन्तन की कल्पना निराशावादियों की द्रृष्टि में फूटे हुए गुब्बारें में हवा भरने के अतिरिक्त कुछ नहीं है । नैतिकता की उपज तो निजी संकट के समय होती है ।

प्रणय-प्रसंग से शुरू होकर कलंकित, कुण्ठित एवं मग्न जीवन जीने वाली नारी कथायें, दहेज के दावानल में जलने वाली वनवृक्षों सी नव-बधुओं की चर्चाए आज इतनी आम हो गयी है कि उनकी तुलना में ग्रीष्म ऋतु के आम भी उतने सहज-सुलभ नहीं है । धूर्त नेताओं, पाखण्डी साधु-सन्यासियों और मक्कार फीताशाहों ने समाज से नैतिकता का दोहन उसी प्रकार कर लिया है जिस प्रकार दूध वालादूध से मक्खन निकालकर वसाहीन दूध अपने ग्राह्कों को बड़े एहसान के साथ देता है । ऐसे में जो जागरूक सदस्य हैं जिनकी नैतिकता का स्रोत सूखा नहीं होता है, वे अपने चिन्तन, भाषण, लेखन एवं आचरण द्वारा निरन्तर अनैतिकता की ओर उद्यम समाज को नैतिक बनाने का प्रयास करते हैं । वे अवश्य ही समाज के प्रति अपनी सम्बद्धता व्यक्त करते हुए अपने उत्तर दायित्व का सफल निर्वाह करते हैं । यह आवश्यक नहीं कि उनके प्रयासों से अनैतिक समाज एक ही दिन में नैतिक होकर देवलोक बन जाये । किन्तु यह तो निश्चित ही है, कि वे पूरे समाज को राक्षसी लंका बनने से अवश्य बचा लेगें । हमारे समाज सुधार के प्रयास समाज को स्वस्थ बनाने में अपनी सक्रिय भूमिका अवश्य निभायेगें। शिवानी का लेखन भी इसी भूमिका का एक महत्वपूर्ण चरण है ।

समाज - सुधार के पूर्व स्वयं में सुधार अतयावश्यक है और स्वयं - सुधार का यह कार्य आत्मसंयम के अभाव में संभव नही है । भारत की प्राचीन संस्कृति एवं नैतिक प्रतिष्ठा के आदर्श वाङ्मय वेद भी जितेन्द्रिय वन संयमित जीवन जीने का उद्घोष कर नैतिकता का शाश्वत् संदेश प्रसारित करते हैं । हमारी भारतीय संस्कृति आदर्शमूलक रही है । अतः सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नैतिकता का होना आवश्यक है।'जालक' में शिवानी ने भी इसका

उल्लेख किया है - "प्राचीन काल में यह उल्लेख मिलता है कि शासक के लिये इन्द्रिय संयम अत्यन्त आवश्यक है । जो यह संयम नहीं कर सकता , वह राज्य का पालन भी नहीं कर सकता । वह समाज का मुखिया है, जितना लेना है, उतना ही ले - न अधिक, न कम यही आयुर्वेद का भी अभिमत है, यदि इसमें हम असंयम बरतते हैं उसका दुष्परिणाम भी भले ही देर - सबेर हो, भोगना हमें अवश्य पड़ेगा । यही असंमय, यही अहंकार विजया के मद की भाँति कभी - कभी जिह्वा को भी आवश्यकता से अधिक प्रगल्भा बना देता है ।"[1] यही कारण है कि सुसंयमित भारतीय जीवन विदेशियों के लिये आज भी आकर्षण की वस्तुत ही नहीं, एक अदर्शमय जीवन संस्कृति है - " हमरी संस्कृति ने सदा संस्कारों को ही सर्वाधिक महत्व दिया है । व्यक्ति हो या समाज उसे श्रेष्ठ बनाने में संस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है, यह हम सदा मानकर चलते हैं । आज अनेक पाश्चात्य विद्वान, 'यूजेनिक्स' के शोध कार्य में संलग्न है । ' यूजेनिक्स' अर्थात् सुसंतान शास्त्र । इसमें विवाह, परिवार, परम्परा आदि पर शोध कार्य कर विद्वान इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि केवल भारतीय संस्कृति में ही उन सभी तथ्यों का समावेश है जो व्यक्ति एवं समाज को एक परिष्कृत रूप देते हैं ।"[2]

भारतीय संस्कृति के इसी परिष्कृत रूप में आदर्शमूलक नैतिकता के कारण ही विदेशी आक्रांता अपार सैन्य शक्ति के होने पर भी हमारे देश की अमर संस्कृति को विनष्ट नहीं कर पायें - " भारत पर अनेक आक्रमण हुए है ।, शक,हूण, ग्रीक, मुगल आदिकितने ही हृदयहीन आक्रमणकारियों ने देवी - देवताओं को खंडित कर उनमें जड़े हीरे- मरकत आदि लूटे हैं फिर भी भारत की अपेक्षा कहीं अधिक सैन्य शक्ति होने पर वे उसकी अमर संस्कृति को सर्वथा निष्प्राण नहीं कर पाये हैं।" [3]

1- जालक, शिवानी, पृष्ठ 43

2- यात्रिक, शिवानी , पृष्ठ 53

3- आकष, शिवानी, पृष्ठ 79

भारतीय संस्कृति आदर्शमूलक ही नहीं धर्ममूलक भी है । धर्म संस्कृति का एक एक पक्ष है । अतः भारतीय मनीषियों का अभिमत है कि व्यक्ति का नैतिक धर्म ही समाज की समृद्धि का आधार है, क्योंकि जब तक व्यक्ति की वैयक्तिक ईमानदारी, नैतिकता व अनुशासन आदि समाज के विकास में सहयोगी न होगें तब तक एक अच्छे और स्वस्थ समाज की संरचना नहीं की जा सकती । यद्यपि आज के समाज में भ्रष्टाचार काफी हद तक अपनी जड़े जमा चुका है फिर भी ऐसा नहीं है कि हम और हमारा समाज एकदम अनैतिक हो गया है । यदि ऐसा होता है तो हमारे समाज का स्वरूप ही कुछ और होता । हाँ, इतना अवश्य है कि किसी समय हमारा देश ओर हमारी संस्कृति विश्व में एक आदर्श उदाहरण के रूप में अग्रगण्य थी किन्तु आज हम स्वयं पाश्चात्यसभ्यता की मरीचिका में भटक कर अपनी संस्कृति को भुलाते जा रहे हैं, आज हम स्वयं अपनी निजी स्वार्थपरता के लिये रिश्वत जैसे अनैतिकता को बढ़ावा देकर समाज को अनैतिक बना रहे हैं । इसके लिये दोषी समाज नहीं हम स्वयं हैं। यदि हम अपनी निष्ठा पर अडिग रहे तो आज भी हम अपने इतिहास के उस गौरवमय उत्कर्ष को प्राप्त कर सकते हैं, इस तथ्य को शिवानी जी ने भी स्वीकार किया है - " यदि हम अपनी निष्ठा पर टिके रहें तो कोई कारण नहीं कि हमें घुटने टेकने ही पड़ें । भारत में एक भी निष्ठावान -कर्त्तव्यप्रिय अधिकारी है, भले ही उनका अस्तित्व मुट्ठी भर ही क्यों न हो और शायद आज उन्हीं के क्षीण अस्तित्व के बूते देश चल भी रहा हो ।"[1]

1- आकष, शिवानी, पृष्ठ - 85

ख- साहित्य और नैतिकता -

समाज जिन व्यक्तियों का सम्बन्ध जाल है - साहित्य उन्हीं का आचरण चित्र है । समाज और साहित्य दोनों ही नैतिकता की नींव पर टिके भवन है । नैतिकता समाज का ही नहीं, साहित्य का भी प्राणतत्व हैं । नैतिकता के अभाव में न तो स्वस्थ समाज की परिकल्पना ही सम्भव है और न ही श्रेष्ठ साहित्य का सृजन । साहित्य शब्द का लालित्य ही सार्वहित्य में निहित है और नैतिकता इसी हित का साधन है । जब नैतिकता के स्वर साहित्य में मुखर हो उठते हैं तो वे वैदिक मन्त्रों की तरह प्राणवान हो जनमानस को सद्कर्मो की ओर प्रेरित करते हैं । जिस साहित्यकार ने अपने साहित्य को देश, काल और नैतिकता की पृष्ठभूमि पर रचा और सवारा है, वही साहित्य और साहित्यकार कालजयी बनकर अमर हुआ है । महान् साहित्यकार वह नहीं है जिसने अधिक संख्या में पुस्तक लेखन किया हो और उनमें समुद्र सा विस्तार भरा हो, उसकी तुलना में उस साहित्य कार को महान् माना जायेगा जिसने साहित्य के लघु गागर में नैतिकता का विस्तृत सागर भरने का सद्प्रयास किया हो ।

आज कुंठा प्रबुद्व पाठक अपने प्रबुद्व परिवेश एवं वैज्ञानिक द्रृष्टिकोण के कारण काल्पनिक साहित्य से परहेज कर यथार्थवादी साहित्यिक चित्रण को अधिक महत्व देने लगा है, किन्तु उसका यह व्यामोह उसे निरन्त कुंठा और संत्रास की गहरी खाई की ओर भी ले जाता है । ऐसे में कभी कभी जब उसे अनैतिकता के बीच नैतिकता के दर्शन हो जाते हैं तो उसे अपार आनन्द की अलोकिक अनुभूति होती है । पाठकों की इस मनोदशा को ध्यान में रखते हुए साहित्यकार को समाज सापेक्ष साहित्य भी रचना चाहिये । यदि साहित्यकार केवल पाठकों की रूचि को ही अपना अभीष्ट मानकर लेखन कार्य करता रहेगा तो वह लोकप्रिय तो हो सकता है, किन्तु साहित्यिक हस्ताक्षर कभी नहीं । सफल साहित्यकर वही है जो अपने सामाजिक मूल्यों की नैतिक धर्मिता से पाठकों को नैतिकोन्मुखी बनाने का सद् प्रयास करते हैं । जब तक साहित्यकार द्वारा चित्रित अनैतिकता पाठकों को झकझोर कर नैतिकता की ओर ले जाने के लिये उत्साहित न करे तब तक उस साहित्य का स्थायी मूलय नहीं होता है । ऊस का वर्णन एवं सत् का अर्जन दोनों ही साहित्य के लिये आवश्यक है । साहित्य का स्थायित्व उसके शाश्वत् नैतिक मूल्यों में ही सन्निहित रहता है । नैतिकता साहित्य का गौरव है , मर्यादा है, शील और सत्व है । नैतिकता के बिना साहित्य की सृष्टि निरर्थक है ।

नैतिकता ही साहित्य का परम लक्ष्य है और जीवन का शाश्वत् सत्य भी । भारतीय संस्कृति के नीतिपरक तत्वों के अभाव में सृजित साहित्य कभी भी पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता और न ही वह युग को दिशाबोध देने में सक्षम हो सकता है । शिवानी ने साहित्य के इन्हीं शाश्वत् सत्य-सूत्रों का चयन कर अपने सृजन का आधार बनाया है । साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं एक शब्द चित्र भी है । अतः साहित्यकार अपने यथार्थ चित्रण से समाज में व्याप्त विकृतियों एवं विसंगतियों से पाठकों को आगाह कराता है एवं उन्हें दूर करने का यथासाध्य प्रयास भी करता है । यही साहित्यकार की नैतिकता और सामाजिक निष्ठा है और यही उसके साहित्य की उत्कृष्टता भी है । शिवानी जी ने भी यथार्थ के धरातल पर नैतिक धर्म से समन्वित साहित्य को ही उत्कृष्ट साहित्य की संज्ञा दी है - " उत्कृष्ट साहित्य वही है जो लोभ, स्वार्थ और परनिन्दा से परे हैं । साहित्यकार उसे ही ईमानदारी से चित्रित करे, जिसे उसने देखा है, जिसने उसे सोचने को विवश किया है और अपनी यह विवशता एक सामान्य पाठक तक भी पहुँचा सके । उसे संवेदनशील बनाये । उसे मनुष्यत्व के सिंहासन पर बिठाये । सामाजिक विसंगतियों की ओर उसका ध्यान खींचे, क्योंकि कोई भी कला, समाज से विलग होकर जी नहीं सकती ।"[1]

साहित्य का घड़ा यदि नैतिकता के निर्मल नीर से रिक्त होगा तो उसकी उपयोगिता ही क्या रह जायेगी ? सच्च साहित्यकार तो साहित्य रूपी प्याऊ खोलकर नैतिकता का पावन नीर पिला कर समाज को स्वस्थ मानसिकता प्रदान करने की सतत् चेष्टा करता है । साहित्य का अर्थ ही सबका हित करना है अर्थात् साहित्यकार उस प्रवृत्ति का व्यक्ति होता है जो अपने लेखन से एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना कर उसके हित की बात करता है । हित सदैव नैतिकता में ही निहित होता है । जब तक असद् से सद् की ओर हमारी चिन्तन प्रक्रिया उन्मुख नहीं होगी तब तक सुख की मृग मरीचिका में भटकते हुए हम दुःख का ही मुख देखते रहेगें ।

साहित्यकार अपने यथार्थवादी चित्रण से अथवा आदर्शमय काल्पनिक वर्णन से 'कु' और 'सु' का ही अन्ततः रेखांकन करता है । दोनों में ही उसका लक्ष्य नैतिकोन्मुखी होता है । 'कु' की कुरूपता का दर्शन कराकर वह 'सु' की सुन्दरता की कामना करता है और सत्य, शिव, सुन्दर का बोध कराकर सात्विक आनन्द के लिये प्रेरणास्त्रोत बनता है ।

1- यात्री आमी ओरे ' (संस्मरण), शिवानी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान. 6 अक्टबर 1991

सच पूछा जाये तो वह लेखन साहित्य की श्रेणी में आ ही नहीं सकता जिसमें नैतिक मूल्यों की सृष्टि न हो । आदि काल से नैतिक मूल्यों को साहित्य का प्राण तत्व माना गया है । शिवानी जी आज भी मानव के निर्माण में उन्हीं नैतिक आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों की परिकल्पना करती है - 'वैदिक साहित्य में नैतिक आदर्शों पर बल दिया गया है । नैतिक आदर्श ही मानवता के निर्माण में सहायक होते थे, कोरा आदर्श नहीं । उपनिषदों में आचार्य भी शिष्य को यही उपदेश देता है कि सत्य एवं धर्म के पालन में प्रमाद मत करो । माता के भक्त बनो, पिता के भक्त बनो, आचार्य के भक्त बनो एवं अतिथि के भक्त बनो ।'[1] किन्तु सम्प्रति हम जिस तीव्र गति से अपनी संस्कृति को भुलाते जा रहे हैं, उसका दुष्प्रभाव हमारे साहित्य पर भी पड़ता जा रहा है । आज नैतिकता व्यक्ति-चेतना से असम्पृक्त सी परिलक्षित हो रही है जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक अव्यवस्था, जीवन - धर्म के प्रति अनास्था एवं मानसिक - सुख की अपेक्षा भौतिक सुखों के प्रति लालसा, अनस्तित्व एवं संभास के विकृत स्वर अधिक मुखर हो रहे हैं । इसका एक मात्र कारण नैतिक पथ से बिलग होकर साहित्य में केवल युगबोध का दिग्दर्शन कराना ही है ।

यदि हम अपने नैतिक मूल्यों के प्रति पुनः उन्मुख हो जायें तो कोई कारण नहीं कि हमारे साहित्य में अनैतिक विकृतियों के स्वयं मुखर हो सके क्योंकि कलम में जो ताकत है वह राजदण्ड में भी नहीं । शिवानी ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया - " जहाँ तक साहित्यकार का सम्बन्ध है, मैं उसे राजनीतिज्ञ से अधिक महत्व देती हूँ । क्योंकि कलम में वह ताकत है जो राजदंड में भी नही है ।"[2] इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि साहित्य को नैतिक उपदेशों का संकलन ही बना दिया जाये बल्कि मुंशी प्रेमचन्द्र के अनुसार साहित्य और साहित्यकार का लक्ष्य -" केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, - उसका दरजा इतना न गिराइए- वह देश - भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने - वाली सचाई है ।"[3]

1- वातायन, शिवाजी, पृष्ठ 86

2- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 14

3- कुछ विचार, मुंशी प्रेमचन्द्र पृष्ठ 22

प्रगतिशील लेखक 'संघ' के लखनऊ अधिवेशन में सभापति के आसन से दिये हुए अपने भाषणों में प्रेमचन्द जी ने साहित्य की उत्कृष्टता के सन्दर्भ में कहा था - "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो - जो हमें गीत और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है ।"[1] ऐसा ही अभिमत पं0 जवाहर लाल नेहरू का भी है - "मेरी राय में लेखक का कल्पनालोक में ही विचरण, उसके हित में नही है । जब तक उसके पास कुछ ठोस तथ्य (Something fundamental in his mind) पाठकों को देने को न हो, जब तक वह यथार्थ का सशक्त चित्रण करने में समर्थ न हो, उसका कृतित्व कभी कालजयी नहीं हो सकता ।"[2]

अततः देश की कल्पना, देश का साहित्य, देश का इतिहास महान् हो, जीवंत हो, इसके लिये आवश्यकता है नैतिक साहित्य की सर्जना और व्यक्ति - चेतना को झंकृत करने के लिये अनिवार्य है नैतिक नियम - जो व्यक्ति को कर्त्तव्य - भावना के प्रति सजग करते हैं, उसे अधिकार - भावना की ओर सचेष्ट करते हैं एवं दायित्व के प्रति आग्रहशील करते हैं । अतः मानव के विकास में नैतिक मूल्यों एवं नैतिक साहित्य का आग्रह अपरिहार्य है । क्योंकि पूर्ण विकसित मानव ही देश में रामराज्य की कल्पना कर सकता है, सत्साहित्य की सर्जना कर सकता है, तभी देश का इतिहास महान् एवं जीवन्त हो सकता है ।

1- कुछ विचार, मुंशी प्रेमचन्द, पृष्ठ 27

2- आकाश, शिवानी, भूमिका में पं0 जवाहर लाल नेहरू का कथन जिससे शिवानी को प्रेरणा मिली, पृष्ठ 7-8

ब- मानवतावादी नैतिकता -

मानव ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति है । फिर कोई क्यों न मानव से आशा करे कि वह ईश्वरीय गुणों की अनुकृति बने । मानव में जब ईश्वरीय गुणों की वृद्धि होती है तो वह देवता की भाँति अपने समाज का आदर्श एवं आराध्य बन जाता है । क्षमा, दया, प्रेम, करूणा, कल्याण की भावना, सत्यवादित, कर्त्तव्य - भावना अतिथि सत्कार, साधुता, शील, धैर्य, त्याग, संतोष , कृतज्ञता, स्वाभिमान, राष्ट्र-प्रेम, भ्रातृत्व आदि देश - काल निरपेक्ष नैतिक गुण ही वे देवगुण है जिनके अर्जन के लिये विश्व के सभी धर्म, समाज सुधारक, साहित्यकार एवं महापुरूष युगों - युगों से मानव को प्रेरित करते आये हैं । मानव के इन्हीं नैतिक गुणों से मानवता का जन्म विकास होता है और जब मानव इन नैतिक मूल्यों के लिये चिन्तन और मनन कर समाज में उन्हें प्रतिष्ठित करने के लिये प्रयास करता है तो उसका चिन्तन मानवतावादी हो जाता है । इस चिन्तन को स्वस्थ दिशा प्रदान करने का जितना सत्प्रयास साहित्यकार अपने सरस सहित्य के माध्यम से कर सकता हे, उतना धर्माचार्य अपने उपदेशों से दार्शनिक अपने दर्शन से एंव वैज्ञानिक अपने अनुसंधानों से नहीं कर सकते हैं । नैतिकता में मानव कल्याण की सोच आवश्यक हे, क्योकि नैतिकता में मानवता की प्राणवत्ता ही होती है । इसी मानवता का आलोडन साहित्यकार करता है ।

वहीं साहित्यकार अपनी उपलब्धियों के शिखर पर पहुँच सकता है जो अपने कथाप्रसंगों के माध्यम से अपने सुधी पाठकों को नैतिकता का पाठ पढ़ाता ही नहीं, सिखाता भी है । मानव के समस्त कार्यो की व्यवस्था नैतिकता के परिप्रेक्ष्य में ही की जाती है । नैतिकता ही वह बिन्दु है जिसके एक ओर आसुरी प्रवृत्तियों का साम्राज्य होता है तथा दूसरी ओर देवत्व का अमरलोक । मानव से यह अपेक्षा करना कि वह पूर्णरूपेण नैतिक बने, भले ही अतिशयोक्ति प्रतीत हो, किन्तु कोई भी समाज अपने सदस्यों से यह अपेक्षा भी नही करना चाहेगा कि उसके सदस्य असभ्य एवं बर्बर हों ।

नैतिकता ही मानवीयता का केन्द्र बिन्दु है । यही कारण है कि साहित्यकारों ने अपने साहित्य में अधिक से अधिक नैतिक गुणों का समावेश कर मानवीय मूल्यों के

प्रतिष्ठापन के लिये प्रयास किया है । शिवानी ने भी विकृत हो रहे मानवीय मूल्यों के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए अपने समाज के प्रतिनिधि चरित्रों के माध्यम से स्वस्थ नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना करते हुए जिस साहित्य का सृजन किया है, वह पाठकों का क्षणित मनोरंजन ही नहीं करता अपितु नैतिकता का अक्षुण्ण कोषं भी प्रदान करता है ।

अधुनातन समाज में जितनी विपन्नतायें, विसंगतियों, अभाव और कुण्ठायें बढ़ती जा रही है, इन सबका कारण संत्रस्त मानवता की पुकार ही है ----" विश्वविद्यालयों में आज व्याप्क छात्र अशांति हैं, श्रमिक असंतोष अपनी चरम पराकाष्ठा पर है, महार्घता दिन - प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, आरक्षण की नीति हमारा अनिष्ट ही अधिक कर रही है ।[1] इस मानवतावादी चिन्तन के द्वारा शिवानी हमें स्वयं जागरूक रहने के लिये परामर्श देती है क्योंकि हमारी यह जागरूकता, यह सचेतनता हमारे लिये ही हितकर होगी ------" मानव के दोनों हाथों को विधाता ने दो विपरीत शक्तियाँ प्रदान की हैं । वह एक हाथ से जिस नवीन परिवेश की सृष्टि करता है, वहीं दूसरे हाथ से उतनी ही तत्परता से उसका विध्वंस भी करने में समर्थ है । उसके भीतर ही भीतर सुलग रही असंतोष, अभाव एवं विद्रोह की नन्नहीं चिनगारियाँ कभी भी लपलपाती लपटों से नव - निर्मित परिवेश को भस्मीभूत कर सकती हैं, इस संभावना कें प्रति हमें निरन्तर जागरूक रहना है। हमारी यह जागरूकता, स्वाधीनता के प्रति यह सचेतनाता हमारा हित ही करेगी, अनहित नहीं ।[2]

1- जालक, शिवानी, पृष्ठ 67.

2- जालक, शिवानी, पृष्ठ 45

समाज में व्याप्त इन विकृतियों एवं विसंगतियों को दूर करने के लिये शिवानी ने अपने साहित्य में मानवतावाद की सशक्त स्वरों में पुनः माँग की है । शिवानी का साहित्य मानवता का संदेश प्रचारित करने के लिये प्रयत्नशील है । मानव आज अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये नैतिक मूल्यों को ही भुला बैठा है । शिवानी का मानवतावादी दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं है । शिवानी का मानवीय दृष्टिकोण विश्वबन्धुत्व की भावना को भी व्यक्त करता है - "क्षमाशील ग्रामवासी नवजात अवैध शिशु की जननी के कलंक, उसकी नानी के कलुषित अतीत और सुरेश भट्ट के जघन्य अपराध को भूल-बिसरकर रह गये थे । पगली पूरे गाँव की बेटी थी और उसका पुत्र पूरे गाँव का पौत्र ।[1]" सचमुच पगली के पुत्रजन्म का आनन्द पूरे सरल ग्रामवासियों का आनन्द बन गया था । ग्रामवासियों के इस मानवतावादी नैतिकता के माध्यम से शिवानी ने सम्पूर्ण मानवता का हृदय विश्वजनीन एवं उदान्त रूप में दिखाने की चेष्टा की है ।

मानवीय मूल्यों को कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता । मानवता ही मानव को पशु की श्रेणी से विलग कर मानव की श्रेणी में लाकर खड़ा करती है । मानव में यदि मानवीयता ही न रही तो वह मानव नहीं अपितु पशु ही माना जायेगा । मानव-जीवन का उद्देश्य सत्कर्म करना एवं अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेष्ट रहना है । मानव को किसी का अपकार नही करना चाहिये । हो सके तो उसे उसके कर्त्तव्य से आगाह कराना चाहिये । कर्त्तव्य भावना की इसी पाव स्रोतस्विनी को प्रवाहित करने की दृष्टि से 'मायापुरी' का अविनाश सतीश को उसके कर्त्तव्य का बोध कराते हुए कहता है - ' एक अबोध - अनाथ सरला को क्यों व्यर्थ में स्वर्ग का द्वार दिखाते हो । देखते नहीं उसकी निर्दोष आँखें । मुझे भविष्य के तूफान में बादल अभी से दीख रहे हैं सतीश । तुम नही जानते, तुम में कितना आकर्षण है, कितने वांछनीय हो तुम । बायरन का सा तुम्हारा व्यक्तित्व उसे भी न ले डूबे । मैं तो चलता हूँ पर सावधान किये जाता हूँ सतीश आग से खेलना क्या ठीक है ?[2]

1- कैंजा, शिवानी, पृष्ठ -39

2- मायापुरी, शिवानी, पृष्ठ 38-39

शिवानी का मानवतावाद केवल भारत भूमि का नहीं है, अपितु विश्वबन्धुत्व के धरातल का है । इसीलिये शिवानी के विदेशी मात्र भी मानवतावादी हैं । इस मानवतावादी दृष्टिकोण के सन्दर्भ में धर्म और देश दीवार नहीं बन सकते - शिवानी ने जापान के तोशीबा कम्पनी के संचालक डोको एवं वीडियों, टेपरिकार्डर, कलर टी0बी0 के निर्माण कर्त्ता 'सोनी' एवं 'होंडा ' की सरल मानवता का भी चित्रण किया है "एक वृहत् अल्युमिनियम फैक्ट्री की स्थापना कर अपने प्रखर प्रतिद्वन्दी अमरीका को भी पराजित करने वाले डोको एवं वीडियों, टेपरिकार्डर, कलर टी0वी0 के निर्माण को अमरीका को भी धूल चटा देने वाले ' सोनी' एवं 'होंडा ' की सरलता भी एक मिसाल है।"[1] 'डोको ' प्रख्यात तोशीबा कम्पनी के एकछत्र सम्राट थे फिर भी उनके पारिवारिक जीवन के विषय में किसी को कुछ ज्ञात नही था कि वे कितनी सादगी से अपना जीवन यापन कर रहे हैं । ' सोनी ' की सफलता का रहस्य है, कम से कम दामों में जनता को उत्कृष्टतम् उत्पादन उपलब्ध कराना । और 'होडा' की विनम्रता तो मानवता की पराकाष्ठा को भी लाँघ जाती है - 'मेरी फैक्ट्री का छोटे - से छोटा कर्मचारी भी उसका मालिक है ।"[2]

शिवानी ने नैनीताल में रहने वाली विदेशी महिला मिसेच मर्च के विलक्षण मानवीय दृष्टि कोण का भी चित्रण किया है - " न जाने कितने अनाथ, परिव्यक्त बाल-मण्डली ने उसकी डौरमेटरी में अपना स्वाभाविक शैशव बिताया था - प्रत्येक को वे आते ही अपना नाम देकर बपतिस्मे की परिधि में बाँध लेती - ऐनी मर्च, एलीजबेथ मर्च, ज्यौजी मर्च एवं नीलिमा मर्च आदि ।[3]" इन अनाथ एवं परिव्यक्त बच्चों का मातृवत् स्नेहपूर्वक पालन - पोषण करके मिसेज मर्च अपनी उदान्त भावना का ही परिचय देती हैं ।

1- आकष, शिवानी , पृष्ठ -86-87

2- आकष,, शिवानी, पृष्ठ - 87

3- कस्तूरी मृग , शिवानी, पृष्ठ 127

मानवतावादी दृष्टिकोण होने के कारण शिवानी का साहित्य भी मानवतावादी है इसीलिये भारतीय संस्कृति के आदर्शपरक मूल्यों के अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिये शिवानी का स्वर मुखर हुआ है - " हमारे देश की संस्कृति मूल रूप से मानवतावादी रही है, किन्तु अब कभी कभी महाभारत की उक्ति "नहिं मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्" पर सहसा विश्वास डिगने लगता है । क्या अब यह एक कोरी आदर्शवादी कल्पना - मात्र नहीं रह गया है ? सेवा, औदार्य, अपरिग्रह ये कौन - से गुण आज मानव में रह गये हैं ।[1]" शिवानी आज के मनव में भी आदर्शपरक नैतिक मूल्यों के अस्तित्व को देखना चाहती है । किन्तु जातीय संकीर्णता से जकड़ा व्याधिग्रस्त मानव आज, विश्वकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के पावन उद्घोष को समझना ही नहीं चाहता, जिसने कभी कहा था " हमारा एक ही देश है, जिसका नाम है वसुन्धरा, हमारी एकमात्र जाति है मानव जाति ।[2]"

शिवानी अपने साहित्य के अमृतघट के द्वारा मानव के हृदय में कर्त्तव्य भावना को जागृत कर समस्त मानवता को उपकृत करना चाहती है - "इसमें कोई सन्देह नहीं कि मानव सर्वदा एक महत्तर नवीन जीवन रचना में संलग्न रहना चाहता है । मानव ही व्यक्ति और संसार के बीच एक कड़ी बनकर सम्पूर्ण सार्थकता की सृष्टि कर सकता है । यश , ख्याति एवं वैभव ये तीन ही उसकी ' देहे तिष्ठति तस्कराः ' हैं- इन तस्करों से हम बच सकें, तब ही मानव -तीर्थ के सच्चे तीर्थयात्री कहला पायेगें, अन्यथा संस्कृति की मिथ्या परिभाषा रटते - रटते स्वयं एक दिन उसे ही सच्ची परिभाषा मानने लगेगें ।[3]"

अंततः शिवानी का मानवतावादी दृष्टिकोण भारतीय संस्कसृति की इस मंगलमय भावना का ही प्रतिपान करता है -

" सर्वेडपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।।"

1- वातायन, शिवानी, पृष्ठ - 54

2- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 138

3- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 139

घ- नारी प्रतिष्ठा का नैतिक आग्रह -

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:'[1] कहकर मनुस्मृतिकार ने मनुष्य को नारी प्रतिष्ठा के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाने का सद्‌विचार व्यक्त किया है वह प्रत्येक युग एवं देश के लिये ध्रुव सत्य रहा है और आगे भी समाज को संगठित बनाये रखने में अपनी महती भूमिका निभाता रहेगा । नारी को चरणदासी मानकर चरणापादुकाओं से उसका सत्कार करने वाले अथवा उसे योग्य सम्पदा समझने वाले पुरूष भले ही मनु के इस कथन से सहमत न हो - किंतु इसका आशय यह नहीं कि मनु का कथन अप्रसांगिक है । यह तो उन व्यक्तियों की स्वार्थलिप्सा है जो न तो समाज के लिये जीते हैं और न ही संसार के लिये, वे तो केवल स्वयं के लिये जीते हैं । भारतीय दर्शन नारी और पुरूष के उन श्रेष्ठ सम्बन्धों का उदान्त दर्शन है जिसमें नारी - नारी होकर भी पुरूष की अर्द्धांगिनी ही होती है और पुरूष - पुरूष होकर भी बिना नारी के अपूर्ण ही रहता है दोनों का एकत्व ही उनका पूर्णत्व है । एक के अभाव में दूसरा निष्क्रिय ही नहीं, निष्प्राण भी हो जाता है । दोनों की पारस्परिक समर्पण भावना ही परिवार का रूप धारण करती है । यही कारण है कि भारतीय परिवार आज भी अपनी अस्मिता बनाये हुए हैं । जहाँ नारी ने अपने को पुरूष से भारी समझने की भूल की अथवा पुरूष ने अपने को प्रशासक के रूप में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की, वहीं परिवार का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है ।

वे आदर्श परिवार जिनकी स्थिरता समाज के लिये गौरव की वस्तु है, उन परिवारों में नारी और पुरूष एक दूसरे के प्रति निष्ठावान ही नहीं प्रेम और त्याग की पवित्र भावनाओं से अनुप्राणित होते हैं । एक दुख दूसरे की आँखों के आँसू बन जाते हैं और दूसरे का सुख स्वयं को स्वर्ग । इन्हीं कोमल भावनाओं को लेकर जब साहित्यकार पुरूषों को नारी की असीम शक्ति का परिचय दिलाकर उसे अबला से सबला के रूप में स्वीकार करने को उत्प्रेरित करता हे तथा नारी को पुरूष के संरक्षण की शीतल छाँव में सुरक्षित होने का आभास कराता है वे उसका लेखन साहित्य की एक सारगर्भित रचना ही नहीं समाज का एक सशक्त सुधारात्मक दस्तावेज भी बनता है शिवानी की लेखनी ने भी नारी को उसकी खोई हुई प्रतिष्ठा दिलाने का यथासाध्य प्रयास किया है ।

1- मनुस्मृति , मनु, 3/6

मनु ने नारी को पूजनीय माना है । शिवानी भारतीय संस्कृति में नारी के स्थान को सर्वोपरि मानती हैं -- " भारतीय संस्कृति में नारी का स्थान सर्वोपरि है । वह मूल रूप में सौन्दर्य की मूर्ति है, उसके योगदान के बिना मनुष्य की ललित कलायें कभी सप्राण नहीं हो सकती ।[1]" महाभारत में वेद व्यास ने नारी की परिभाषा करते हुए उसकी प्रतिष्ठा में लिखा है--

' न भोगेषु न कामेषु नैश्वर्ये न सुखे तथा ।
स्पृहा यस्यायथा पत्यौ सा नारी धर्म भागिनी ।[2]

जो भोग, काम, ऐश्वर्य तथा सुख से स्पृहाहीन होकर पति के साथ रहती है, वह नारी धर्म भागिनी है । मध्ययुगीन संस्कृति ने तो नारी के अस्तित्व को ही मिटा यिा और उसे मात्र उपभो की सामग्री मान ली । हिन्दी साहित्य में एक प्रचेता कवि की तरह प्रसाद जी ने नारी स्वतन्त्र को स्वीकार किया है !

' तुम भूल गये पुरूषत्व मोह में
कुछ सत्ता है नारी की ।
समरसता सम्बन्ध बनी
अधिकार और अधिकारी की ।।न्3स

प्रसाद जी ने नारी को कोमलता का प्रतीक माना है । उसे गरिमामय द्रृष्टि से देखा है । प्रसाद जी ने नारी के भीतर आशा, विश्वास, क्षमा, श्रद्धा, कल्याण-भावना, त्याग-संकल्प एवं मानवता के दर्शन किये हैं । तभी तो उन्होनें कामायनी के दर्शन सर्ग में नारी की इतनी सुन्दर परिभाषा प्रस्तुत की है -

" हे सर्वमंगले । तुम महती
सबका दुःख अपने पर सहती ।
कल्याणमयी वाणी कहती
तुम क्षमा - निलय में ही रहती ।।न्4स

1- वातायन, शिवानी, पृष्ठ -17
2- महाभारत अनुशासन पर्व ।46/55 वेदव्यास
3- कामयनी, जयशंकर प्रसाद, इडा सर्ग ।
4- कामायनी, जयशंकर प्रसाद , दर्शन सर्ग ।

शिवानी के साहित्य में अनेक नारी पात्रों से हमारा साक्षात्कार होता है - इनमें से कुछ पात्र उदान्तता, त्याग एवं समर्पण की भावना से समन्वित हैं तो कुछ पात्र दुर्बलता लिये हुए भी हैं । शिवानी ने नारी के स्वरूप का चित्रण करते हुए लिखा है-- ' स्त्री मानवी है, देवी नहीं, इसी से उसमें भी मानव ही की भाँति दोष-गुणों का समावेश स्वाभाविक है । नारी की सृष्टि केवल विलास के लिये ही नहीं हुई , वह बंदनीया है । उसका यह स्वरूप अखंडित रहे इसके लिये यह आवश्यक नही है कि वह अपने सौन्दर्य का प्रदर्शन करें। सौंदर्य प्रदर्शित किया नही जाता, सूर्य की प्रखर किरणों की भाँति वह स्वयं प्रदर्शित होता है । जैसे भी, किसी भी प्रदर्शन के पीछे एक न एक मानवीय दुर्बल पक्ष अवश्य रहता है । जो स्वयं में संपूर्ण है, सबल है, सार्थक है, उसे किसी भी प्रकर की मान्यता या पुरस्कार की आकाँक्षा नहीं रहती है ।[1]"

शिवानी के कुछ नारी पात्रों के गरिमामय आदर्शों की सुरक्षा करते हुए भारतीय संस्कृति को भी गौरवान्वित किया है । कुछ नारी पात्रों में उनके हृदय की विशालता और पवित्रता परिलक्षित होती है तो कुछ प्राचीन परम्पराओं के प्रति आस्थावान हैं और कुछ पात्रों में आदर्शमय एवं त्याग की भावानाओं के पूर्ण दर्शन होते हैं - जैसे 'मायापुरी' उपन्यास की शोभा अदर्शमय प्रेम एवं त्याग की प्रतिमूर्ति है । 'चौदह फेरे ' की 'नंदी ' भी सर्वस्वत्यागिनी है । आदर्शनिष्ठ नारी पात्रों में ' कृष्णकली' की 'कली', 'भैरवी' की 'चंन्दन' , 'श्मशान चंपा ' की 'चंपा' 'सुरंगमा' की ' वैरोनिका एवं मीरा' , 'अतिथि' की 'ज्या', 'कालिंदी' की 'कालिंदी', 'कैंजा' की 'नंदी तिवारी', रतिविलाप' की 'अनुसूया', 'किशुनली' की 'काखी' , 'अभिनय' की 'जीवन्ती', 'स्वयंसिद्धा' की 'माधवी', 'विषकन्या' की 'दामिनी', 'माणिक' की 'नलिनी मिश्रा' , 'गैण्डा' की 'सुपर्णासेन', 'षिवन्र्त' की 'ललिता', 'तीसरा बेटा' की 'सावित्री', 'पूतोवाली' की 'पार्वती', 'चल खुसरो घर अपने) की 'कुसुम जोशी ' , 'पाथेय' की 'तिलोत्मा', 'उपप्रेती' की 'रमा' आदि पात्र अपना गरिमामय अस्तित्व रखते हैं । शिवानी के ये नारी पात्र जीवन-सत्य को समझने वाले तथा अनासक्त विचार धारा में जीते हुए भी गार्हस्थ्य धर्म में कर्त्वव्यशील हैं ।

हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक मान्यताओं के बदलते हुए परिवेश के साथ नारी के स्वभाव, गुण एवं आदर्शों में भी परिवर्तन हो गया है । बदलती हुई मान्यताओं के साथ, नारी का वह रूप जो कभी परम बन्दनीय रहा , धीरे धीरे बदल गया । उसमें सुकृति के साथ विकृति का भी समावेश हो गया । फलस्वरूप वह कटु आलोचनाओं की शिकार बनी।

1- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 106

यहाँ तक कि कालिदास जैसे महान् कवि ने उसे ' नार्यः श्मशान कुसुमा इव वर्जनीया' तक कह डाला - किंतु शिवानी कालिदास के इस ' नारी वर्जन' से सहमत नहीं है तभी तो उनके कुछ नारी पात्र अन्याय के प्रति विद्रोही एवं रूढ़ियों को तोड़ने के लिये दुस्साहसी तक हो उठे हैं - "आधुनिक युग ने पुरूष के साथ -साथ नारी को भी विद्रोह की प्रेरणा दी है । आधुनिक नारी आज किसी भी क्षेत्र में पुरूष से पीछे नहीं है । अध्यापन, चिकित्सा, प्रशासन, वकालत, राजनीति आदि प्रत्येक क्षेत्र में नारी पुरूष के साथ अग्रसर ही नहीं हुई, उसने निरन्तर अपनी श्रेष्ठता को भी सफलता से प्रतिपादित किया है । कुछ तो नारी के प्रति अब पुरूष का रवैया भी बदल गया है - आज की नारी अब अपनी स्वतन्त्रता का ढिंढोरा पीट, अपने अधिकारों के लिये दया की भीख नहीं माँगती ।[1]"

नारी का यही नवीन रूप साहित्य में भी स्पष्ट होकर उभरा है । आज के युग में हमारे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों में बड़ी तीव्रता से ह्रास हुआ हे । दहेज-प्रथा, अन्तरजातीय विवाह आदि इस युग की ऐसी समस्यायें है । जिन्होनें नारी समाज की रूढ़ियों को तोड़ने की प्रेरणा दी । महिला साहित्यकारों को इन समस्याओं ने प्रेरित किया । नारी - जीवन से सम्बन्धित विविध समस्याओं का यही निरूपण हमें अनेक महिला साहित्यकारों की रचनाओं में मिलने लगा । आशापूर्णा देवी, अमृता प्रीतम, मन्नू भण्डारी, शैलबाला घोषजाया, कृष्णा सोबती, शिवानी एवं महादेवी वर्मा आदि महिला साहित्यकारों ने साहित्य के क्षेत्र में पुरूष के कौशल को भी पराजित किया है । शिवानी महादेवी वर्मा के साहित्य को पुरूषों के साहित्य से कहीं अधिक हृदय ग्राही मानती हैं - " महादेवी कि हिन्दीगद्य की एक मात्र साम्राज्ञी है एवं चिरकाल तक रहेंगी । कौन पुरूष लेखक आज तक उनका - सा सरल हृदयग्राही गद्य लिख पाया है ? ऐसे मार्मिक रेखा चित्र क्या किसी पुरूष की लेखनी हिन्दी साहित्य को दे पायी है ? उनके गरिमामय व्यक्तित्व की ही भाँति उनके गद्य की गरिमा की विशिष्टता है, उनकी प्रौढ़ शालीन भाषा ।[2]"

1- आकब, शिवानी, पृष्ठ - 64

2- आकब, शिवानी, पृष्ठ 66-67

नारी शारीरिक रूप से पुरूष से दुर्बल भले ही हो, किन्तु उसकी अद्भुत सूक्ष्म द्रृष्टि पुरूष से कहीं अधिक प्रखर होती है । नारी की इस पारखी द्रृष्टि के सम्बन्ध में शिवानी भी उसे पुरूष की अपेक्षा अधिक सशक्त पाती हैं - " नारी का परम शक्तिशाली आयुध है विधाता प्रदत्त उसकी सूक्ष्म द्रृष्टि । यथार्थ की पकड़, वह भी भोगे हुए यथार्थ की पकड़, पुरूष की अपेक्षा नारी में ही अधिक है । उसका स्नेहप्रवण स्पर्श - कातर भावुक चित्त उस कच्चे सीमेन्ट की भाँति है जिस पर पाँच अंगुलियों की छाप पड़ते ही सदा के लिये अमिट होकर उभर आती हैं । वह न प्रेमी को भूल पाती है, न प्रवंचक को ।[1]"

यही नहीं, शिवानी ने अपने परम श्रद्धेय एवं आदर्शमय गुरूदेव को भी 'भारती' पत्रिका के संपादन में एक नारी के संपादकत्व से पराजित होते दिखाया है - "एक ही वर्ष तक ' भारती " पत्रिका का संपादन कर रवीन्द्र नाथ ने धैर्यच्युत होकर हाथ धो लिये, वहीं पर स्वर्णकुमारी (गुरूदेव की बहन) ने ग्यारह वर्ष तक इसकी सुदक्ष संपादना कर यह सिद्ध कर दिया कि असमान्य धैर्य एवं अध्यवसाय में नारी पुरूष से दो कदम पीछे नहीं, दो कदम आगे ही निकलने में पूर्ण रूप से समर्थ है ।[2]"

हमारे नीति - वागीश स्त्री-चरित्र को देवताओं के लिये अज्ञात होने की बात करते हैं । कैसी विडम्बना है यह कि हमारा पुरूष समाज नारी के चरित्र पर ही क्यों उंगली उठाता हे, वह अपना दामन क्यों नहीं देखना चाहता । नीति - वागीश के उक्त कथन के प्रतिरोध में शिवानी ने लिखा है - " नारी का चरित्र दुरूह नहीं होता, उसे दुरूह बनाता है पुरूष । ----- मनुष्य ही मनुष्य का शिकारी है, वही नारी को वेश्या बनाता है और पुरूष को भिखारी ।[3]"

पुरूष की प्रवंचना ही नारी को विद्रोहिणी एवं दुस्साहसी बनाती है । 'अतिथि' उपन्यास की छंदा जो स्वयं पुरूष की प्रवंचना की शिकार हो चुकी होती है, अपने दुस्साहस से पति की गर्दन दबोच सौत को झाडू मारकर भगा देती है, वही छंदा इस छलना की शिकार हुई मालती से कहती है -- ' यह युग पति के चरणों की दासी बनने का नहीं है मालती, पति को चरणों का दास बनाने का है । तुम फिर अपना पद पा सकती हो, बशर्ते तुम्हारी रीढ़ की हड्डी में ताकत हो ।[4]"

1- जालक, शिवानी, पृष्ठ 124

2- जालक , शिवानी, पृष्ठ 58

शिवानी के नारी पात्र आत्माभिमानी भी हैं । 'अतिथि ' उपन्यास की जया पति के अकारण अपमान को बर्दाश्त नहीं कर पाती - -- 'घर जाते ही उसे अब स्वयं अपने भविष्य की भूमिका संजोनी होगी । पति से निरन्तर लांछित - अपमानित हो, गृह की चहारदीवारी में ही अपने भाग्य से समझौता वह कदापि नहीं करेगी । किस बात की कमी है उसमें ? गर्व से उसकी गर्दन स्वयं सतर हो गयी ।[1]"

ऐसा भी नहीं है कि युग-परिवर्तन एवं क्षीण होते जा रहे मानवीय मूल्यों के साथ नारी के वंदनीय स्वरूप में अन्तर न आया हो । नारी के वर्तमान परिवर्तित स्वरूप को देखकर शिवानी क्षुब्ध होती हैं और उनकी लेखनी नारी के उसी वन्दनीय स्वरूप की परिकल्पना में मुखर हो उठती है -- ' नारी होकर भी, मुझे यह स्वीकारने में संकोच नहीं, होता कि युग परिवर्तन के साथ- साथ, नारी के स्वभव, गुणों में ही परिवर्तन नहीं आया, उसके उस आदर्श मातृत्व के उच्च निःस्वार्थ स्तर का सिंहासन भी कभी कभी डगमगा गया है नारी का जो परम वन्दनीय स्वरूप था, जिस मातृत्व की सुकृति की ऐतिहासिक ख्याति थी, -------- उसमें विकृति का समावेश भी होता जा रहा है ।[2]"

सनातन मातृत्व ही नारी का यथार्थ स्वरूप है, नारी में मातृत्व भाव की इसी श्रेष्ठता को भारतीय संस्कृति ने भी स्वीकर किया है । शिवानी आज भी सनातन मातृत्व को ही स्वीकार करती है और नारी के इसी प्रतिष्ठित स्वरूप के लिये नारी से आग्रह करती हैं । शिवानी ने अपने नारी पात्रों के माध्यम से नैतिक मूल्यों की सुरक्षा के लिये आत्म-त्याग की इसी भावना का आग्रह किया है, क्योंकि नारी के बिना गृहस्थ जीवन अपूर्ण है ।

शिवानी के कुछ नारी - पात्र नारी सुलभ दुर्बलताओं से भी ग्रस्त हैं, फिर भी वे अंततः कर्त्तव्यपरायण, उदार हृदय, मानवता के सिद्धान्तों के संरक्षण में तत्पर ममतामय, करूणा एवं परोपकार की भावनाओं से आपूरित हो ही जाते हैं । नारी ही पुरूष को सद् वृत्ति की ओर प्रेरित करती है एवं मानवता के मूल्यों की रक्षा के लिये वह आत्म स्वार्थ कापरित्याग कर संघर्षो के मध्य जीवन जीने का संकल्प ले बैठती है । सामाजिक मान्यताओं के अनुसार नारी ही वह देवी है जो विश्व में शान्ति की पीयूष धारा बहाने में समर्थ है ।

1- अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 153
2- वातायन, शिवानी, पृष्ठ 136

ङ.- वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का निर्वाह -

शिवानी के साहित्य में जहाँ नारी प्रतिष्ठा के प्रति नैतिक आग्रह पाया जाता है वहाँ वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता के निर्वाह का दायित्व - बोध स्वयं हो जाता है, क्योंकि वैवाहिक जीवन का एक अनिवार्य पक्ष नारी है । नारी और पुरूष विवाह द्वारा जिस पवित्र बन्धन में बंधते हैं, वह एक दूसरे के प्रति कर्त्तव्य निष्ठा, प्रेम, त्याग, सहयोग, सुरक्षा एवं विश्वास की स्वस्थ भावनायें रखने का बन्धन होता है । स्वार्थ एवं अविश्वास का इसमें किच्चित स्थान नहीं होता । यदि भूल वश स्वार्थ या अविश्वास दाम्पत्य जीवनमें किसी के भी मन में घर कर जाये तो वैवाहिक जीवन नारकीय हो जाता है अन्यथा सफल दाम्पत्य जीवन के समक्ष स्वर्ग का दुर्लभ वैभव भी फीका लगता है ।

वैवाहिक जीवन की सफलता नारी और पुरूष दोनों पर आधारित है । जब तक दोनों एक - दूसरे के लिये जीने का भाव नहीं रखते हैं । तब तक वैवाहिक जीवन का उत्कर्ष देखने को नहीं मिलता है । आज के बदलते परिवेश में वैवाहिक जीवन की परिभाषा भी बदल गयी है ।

पहले जहाँ विवाह का प्रमुख लक्ष्य वंश की निरंतरता को बनाये रखना होता थावहीं आज यह लक्ष्य गौण हो गया है । वैवाहिक जीवन का दूसरा उद्देश्य था मानव की सहज भूल प्रवृत्ति काम की तुष्टि । यह उद्देश्य आज इतना महत्व पूर्ण हो गया है कि इसकी पूर्ति के लिये वैवाहिक जीवन ही दाँव पर लगता दिखाई दे रहा है । काम भावना से ग्रस्त न जाने कितने नर और नारियों ने वैवाहिक जीवन को ठेंगा दिखाकर शिवानी को वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का निर्वाह करने वाले उत्तम कथानकों की पोटली थमाकर उन्हें इस सन्दर्भ में लिखने को विवश किया है । पुरूषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में काम का तत्व आज इतना प्रभावी है कि मोक्ष जैसे महत्वपूर्ण लक्ष्य अर्थ हीन होकर रह गये हैं और इसी का दुष्परिणाम है भग्न, परिवार , अवैध सन्तानें और तलाक । काम के साथ ही आज अर्थ भी अधिक अर्थवान हो गया है जिसके कारण पति और पत्नी दोनों को ही गृहस्थी का दुर्वह बोझ ढोने के लिये अर्थोपार्जन के क्षेत्र में पदार्पण करना पड़ता है । फलस्वरूप उनका दाम्पत्य - जीवन प्रभावित होता है । कामकाजी पत्नी केवल अपने पति

के लिये ही निष्ठावान नहीं रह गयी है । उसकी नैष्ठिक परिधि में घर के अतिरिक्त दफतर भी आ गया है । वह पहले से अधिक सामाजिक हो गयी है । घर की इस मण्डूकता से स्वयं को निकाल कर उसने विशाल विश्व की विस्तृत दिशायें देख ली हैं । उसकी सोच का दायरा बढ़ा है । वह दकियानूसी विचारों को मानने के लिये विवश नहीं है । धीरे -धीरे आत्मनिर्भर बनकर वह अपने अन्दर से अबलापन की निर्बलता को पीछे धकेलती जा रही है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसने अपनी श्रेष्ठ प्रतिभा का परिचय देकर पुरूषों को अपनी महत्ता स्वीकृत करने के लिये बाध्य कर दिया है ।

नारी ने जहाँ अल्प समय में इतनी अधिक ऊचाईयाँ उपलब्धियों के गगन में नापी हैं वहीं वह गृहस्थी की धरती से कुछ दूर अवश्य हुई है और इन सब उपलब्धियों ने उसके वैवाहिक जीवन को प्रभावित किया है । अब जातीय विवाहों के स्थान पर अन्तरजातीय विवाहों को बढ़ावा मिला है । पत्नियों का चुनाव अब पिताओं पर नहीं पतियों पर निर्भर होकर रह गया है । इसीलिये अब परिवार का आकार सिमट कर प्रति - पत्नी तक ही सीमित होकर रह गया है । ऐसे में जब कभी पति या पत्नी अपने अविवेक पूर्ण आचरण से एक - दूसरे को ठेस पहुँचाते हैं तो दूर - दूर तक उनको सान्त्वना देने वाला कोई नहीं दिखता है । यही आज शिक्षित एवं अभिजात परिवारों की विडम्बना है ।

शिवानी ने अपने साहित्य में नारी और पुरूष के बदलते दृष्टिकोणों के प्रति चिन्ता दर्शाते हुए पतिब्रता नारियों और एक पत्नी निष्ठ पतियों की भारतीय संस्कृति के अनुरूप महत्ता प्रतिपादित कर सुदृढ़ सामाजिक संगठन एवं सुखद पारिवारिक जीवन जीने हेतु सभी को अपने वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिक बनने का आग्रह किया है ।

मानव जीवन को सहज एवं सरस बनाने के लिये विवाह एक आनुवंशिक अनिवार्यता है - दाम्पत्य जीवन का प्रथम अध्याय विवाह एक परम्परागत सामाजिक व्यवस्था है और इस व्यवस्था को भी नैतिकता के सम्बल की आवश्यकता पड़ती है । समाज में विवाह के अनेक स्वरूप प्रचलित रहे हैं - जैसे - गाँधर्व विवाह (इसे आज के युग में प्रणय विवाह कहते हैं) , राक्षस- विवाह, पिशाच विवाह, स्वयंवर विवाह आदि । किन्तु माता- पिता की स्वीकृति से सामाजिक परम्परा के अनुसार दाम्पत्य-सूत्र में बँधने वाले विवाह को वैदिक -

विवाह कहा गया है और इसे ही हर युग और हर समाज में सर्वाधिक मान्यता मिली है । शिवानी भी इसी विवाह की पक्षधर है न कि विषम विवाहों की । शिवानी प्रेम विवाहों से भी सहमत नहीं हैं । मुक्त हृदय से एक - दूसरे को स्वीकार कर लेना ही प्रणय विवाह है । इसमें सामाजिक परम्पराओं के निर्वाह की आवश्यकता नहीं पड़ती , शायद इसीलिये शिवानी इस विवाह की पक्षपाती नहीं है । तभी तो शिवानी की 'कृष्णकली[1] प्रवीर को चंपा[2] मधुकर को एवं कृष्णवेणी [3] भास्करन को मुक्त हृदय से स्वीकार तो कर लेती हैं किन्तु सामाजिक बंधन में बंधकर जीने के लिये छटपटाती ही रह जाती है, उन्हें शून्य और विरक्त जीवन जीने के लिये विवश होना पड़ता है ।

हृदय की पवित्रता ही विवाह की कसौटी है । मुक्त एवं स्वच्छन्द प्रणय शिवानी को कदापि स्वीकार नहीं है । स्त्री-पुरूष का विवाह के बन्धन में बंधकर रहना एवं एक दूसरे का पूरक एवं सहभागी बनना ही नीतियुक्त सामाजिक व्यवस्था है ' तिलपात्र' उपन्यास की नायिक दिलराज कौर शिवानी की इस नीतियुक्त नैतिकता से परिचित है , वह शिवानी से साक्षात्कार के दौरान कहती भी है - ' एक बार पहले भी आने को थी, जब भारत - दर्शन को निकली थी , ये (पति) भी इन दिनों किसी मीटिंग में लखनऊ आये थे । पर सोचा, बिना विवाह किये इन्हें अपने साथ लाई तो इनका क्या परिचय दूँगी ? आपकी कहानियाँ पढ़ी हैं, इतना जानती हूँ , कि बिना विवाह किये साथ साथ घूमने वाले अबाध्य जोड़ों को आप पसन्द नहीं करती है ।[4]

विषम-विवाह[5] भी एक विसंगति है - चाहे ये विवाह माता-पिता द्वारा किये गये हों या युवक - युवतियों द्वारा स्वेच्छा से किये गये विवाह हो । शिवानी ने इन विषम विवाहों पर भी तीक्ष्ण प्रहार किया है । जिसके कारण दाम्पत्य जीवन कुण्ठाग्रस्त एवं नारकीय हो जाता है । इस विसंगति से मुक्त होने के लिये शिवानी ने अपना नैतिक समर्थन प्रस्तुत किया है । शिवानी के साहित्य में विषय - विवाह के अनेक सन्दर्भ हैं ।

1- कृष्णकली उपन्यास

2- श्मशान चंपा उपन्यास

3- कृष्णावेणी उपन्यास

4- तिलपात्र (चल खुसरो घर अपने में संकलित) शिवानी, 126

5- विषम-विवाह का आशय मानसिक रूप से विक्षिप्त, शारीरिक रूप से रूग्ण, वयस में अत्यधिक अन्तर अरूचि होते हुए भी किसी का किसी से हठात

'सुरंगमा' में राजलक्ष्मी का अपने प्रेमी शिक्षक गजानन से गृहपलायन कर स्वेच्छा से किया गया विवाह एक विसंगति ही है, जिसकी परिणति अत्यन्त दुखद है । 'रतिविलाप' में अनुसूया का उसके सगे मामा के द्वारा विक्षिप्त एवं उन्मादी विक्रम से किया गया विवाह, 'बदला' उपन्यास में रत्ना की इच्छा के विपरीत पिता द्वारा एक शराबी -जुआरी एवं कदर्य -कुत्सित सिटी बैंक आफीसर के साथ जबरदस्ती किया गया विवाह, 'पाथेय' उपन्यास में तिलोत्तमा ठाकुर के सगे मामा के द्वारा टी0बी0 के मरीज प्रतुल के साथ किया गया विवाह, 'चीलगाड़ी' कहानी की मातृहीना नायिका का विमाता के षड़यन्त्र के द्वारा मृत्यु पथगामी रूग्ण व्यक्ति से किया गया विवाह, 'पिटी हुई गोट' कहानी का विपन्न नायिका चन्दो का साठ वर्षीय वृद्ध से किया गया विवाह, 'घण्टा' कहानी की लक्ष्मी का टी0बी0 के मरीज से जानबूझकर किया गया विवाह 'छि:मम्मी तुम गन्दी हो ' कहानी की जानकी का तिगुनी उम्र की आयु वाले पति से विवाह- ये सब विषम- विवाह की विसंगतियाँ ही हैं, जिनकी परिणति असमय में ही नारियों के वैधव्य एवं नारकीय जीवन में होती है ।

अपने इस उपन्यासों एक कहानियों के माध्यम से शिवानी ने इन विषम-विवाहों की तीव्र भर्त्सना की है । इन विसंगतियों के कारण उक्त उपन्यासों एवं कहानियों के नारी पात्र त्याग, बलिदान पीड़ा, असीमित धैर्य तथा नैतिक मूल्यों के निमित्त मायावादी जीवन जीने को विवश हो गये, फिर भी ये नारी पात्र अपने सुख- वैभव की उपेक्षा करते हुए वैवाहिक जीवन के नैष्ठिक निर्वाह के लिये स्वयं को समर्पित कर देते हैं । शिवानी के ये पात्र (रत्ना के अतिरिक्त) प्रतिशोध की भावना से परिवेष्टित भी नहीं दिखायी देतें ।

वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का निर्वाह करने में शिवानी के नारी पात्र ही अधिक नैष्ठिक हो सके हैं, उनके पुरूष पात्र नारी पात्रों की तरह आदर्शनिष्ठ नहीं रह सके, क्योंकि पुरूष तो भ्रमर होता है - रूप का लोभी, वह किसी एक पुष्प की कारा में नहीं रह सकता । वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का निर्वाह करने वाले नारी एवं पुरूष पात्र-

----

शिवानी के समग्र साहित्य में वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का निर्वाह करने वाले पात्रों का बाहुल्य है । विस्तार -भय के कारण प्रत्येक की सम्यक् विवेचना नहीं की जा सकती । वैवाहिक जीवन के प्रति अपने नैष्ठिक कर्त्तव्यों का पालन करने वाले प्रमुख नारी एवं पुरूष पात्रों का विवरण इस प्रकार है -

आत्माभिमानी जया -

जया पति के द्वारा तिरस्कृत होने पर भी शेखर के पुनर्विवाह के प्रस्ताव को ठुकरा देती है - " मेरा विवाह हो चुका है, तलाक लेने या देने में मैं विश्वास नहीं करती[2]। वैवाहिक जीवन के प्रति उसकी इस पवित्र निष्ठा का संबल पाकर ही शायद उसके पति कार्तिक में अभूतपूर्व परिवर्तन होता है और वह जया को उसके अस्तित्व के साथ स्वीकार करता है ।

रामरती -

रामरती शिवानी की स्वाभिभक्त सेविका है । पति के द्वारा दिन - रात ढोल-दमाये सी पीटी जाने पर जब उसकी नानी उससे दूसरा घर बसाने को कहती हैं, तब वह अपनी नानी को ही हड़का देती है - " खबरदार, जो कबहु इहु बात दोहरायों ।[2]

ललिता -

ललिता अपने पति सुधीर की प्रवंचना की शिकार हे । अपने प्रवंचक पति की क्षणित सुखद स्मृतियों को स्मृत कर ही वह शेष जीवन काट लेना चाहती है । पुनर्विवाह में उसका विश्वास नहीं है - " ब्राहम्ण दुहिता का अंगूठा एक ही बार थामा जाता है, उसके संस्कार स्वयं ही उसे दूसरा अंगूठा थामने की अनुमति नहीं देते हैं । [3]

1- अतिथि, शिवानी, पृष्ठ 211-105।

2- एक थी रामरती, शिवानी, पृष्ठ 5।

3- विवर्त्त, शिवानी, पृष्ठ 62

पार्वती:-

पार्वती पहले कदर्य-कुत्सित होने के कारण पति की उपेक्षा की शिकार बनती है किन्तु वह सहिष्णु धरती सी सबकुछ सहकर वैवाहिक जीवन के प्रति अपने दायित्वों का पालन करती है और अंत में अपने सुदर्शन पति का हृदय विजित कर ही लेती हैं । उसके पति शिवसागर मिश्र उससे क्षमायाचना तक करते हैं - "मुझे माफ कर दिया न पार्वती । तूने नहीं किया तो भगवान भी मुझे माफ नहीं करेगा । यौवन में किए गये एक एक अपराध का पूरा प्रायश्चित्त कर रहे थे वें । [1]"

सुधा-

स्त्री अपने सौन्दर्य एवं रूप की स्वर्णाभ ज्योति से पुरूष को मुग्ध तो कर सकती है किन्तु उसके मन की कोमल भावनाओं पर विजय कभी नहीं पा सकती किन्तु सुधा एक ऐसी विलक्षण नारी है, वह अपने वैवाहिक जीवन के प्रति इतनी अधिक निष्ठावान है कि एक नहीं दो - दो पतियों को वह अपने मधुर प्रणय की विकलता का आभास कराती है - "भोला रहमान अली, जिसकी पवित्र आँखों में ताहिरा (सुधा) के प्रति प्रेम की गंगा छलकती थी, जिसने उसे पालतू हिरनी - सा बनाकर अपनी बेड़ियों से बाँध लिया था उस रहमान अली से वह क्या कहती "[2]

हिन्दुस्तान - पाकिस्तान बंटवारे में बिछड़ गये अपने पूर्व पति को भी वह नहीं भूल पाती । वह बिल्वेश्वर महाराज के निर्जन देवालय में आँचल पसारकर अपने पूर्व पति के लिये मनौती माँगती है -" हे भोलानाथ, उन्हें सुखी रखना । उनके पैरों में काँटा भी न गड़े "।[3] इस प्रकार सुधा अपने प्रणय की विकलता में जीते हुए अपना सर्वस्व समर्पित कर दोनों पतियों के प्रति अन्त तक निष्ठावान बनी रहती है ।

1- पूतोवाली, शिवानी, पृष्ठ -25

2- लाल हवेली, कहानी, शिवानी (चिरस्वयंवरा में संकलित) पृष्ठ 59

3- लाल हवली, कहानी, शिवानी (चिरस्वयंवरा में संकलित) पृष्ठ 63

ठाकुर की तीन पत्नियाँ -

ठाकुर हयात सिंह ने पुत्र - प्राप्ति के लिये तीन शादियाँ की और तीनों ऐसे धुलमिलकर रहीं जेसे सगी बहने हों - " कौन कहता है कि एक मियान में दो तलवारें नहीं रह सकती । छोटी ठकुरानी चन्द्रा कहती - खूब रह सकती हैं, बशर्ते मियान भी मखमली हो ।[1] " सचमुच हयात सिंह के दिल की मियान भी मखमली ही थी । उन्हें न किसी से अधिक दुराव था, न अधिक प्रेम । वे आभूषण तो क्या प्रेम की मदिरा भी तनों को नाप तोलकर नियत मात्रा में देते थे ताकि नारी - सुलभ ईर्ष्या द्धेष के अस्त्र - शस्त्र अनेक सुखी जीवन में छिद्र न कर सकें । परिवार विखण्डित न हो इसके लिये पति पत्नी दोनों का परस्पर सहयोग अनिवार्यत उपलब्धि हेतु है ।

आरती सक्सेना -

आरती सक्सेना एक आबकारी अधिकारी है । उसकी शादी असुन्दर होने के कारण एक गाँव के लड़के से होती है फिर भी वह अपने पति के प्रति निष्ठावान रहती है । अचानक उसका पति भजन एक गंजेडी साधु की चपेट में आ जाता है और घर छोड़ देता है । आरती उसके लिये विकल हो उठती है और उस पाखण्डी साधु के अड्डे पर अकेली पहुँचती है - " भजन, घर चलों, उसके अस्फुट करूण अति-स्वर में केवल समर्पण था, अनुशासन नहीं।[2]" एक उच्च अधिकारी होकर भी वह अपने पति की अशिष्टता को अनदेखा कर देती है और अपने वैवाहिक जीवन के प्रति नैतिकता का पूर्णतया निर्वाह करती है तथा दाम्पत्य की रक्षा हेतु पति को पुनः प्राप्त कर स्वाभाविक उपलब्धि को सिद्ध करती है ।

माधवी -

यद्यपित माधवी व्यक्तिवादी नारी थी । उसने अपने पति की अवज्ञा की थी, किन्तु स्वयंदूती कुलटा राधिका के क्रूर परिहास के साक्ष्य में हुई उसकी यह अवज्ञा उसके अहं

1- ठाकुर का बेटा, कहानी, शिवानी(चिर स्वयंबरा में संकलित) पृष्ठ 106

2- अपराजिता, कहानी, शिवानी (स्वयं सिद्धा में संकलित) पृष्ठ 58

की परिणिति नहीं कही जा सकती है अपितु उसकी वैचारिक - क्रान्ति की सफल परिणिति अवश्य सिद्ध होती है । पिता के पत्र के द्वारा अपने पति के रूग्ण होने का समाचार सुनकर वह भारतीय नारी के शाश्वत मूल्यों की रक्षा के निमित्त वह पतिगृह जाती है - " नारी कैसी ही पाषाणी क्यों न हो, पावन अग्नि के फेरे क्या सहज ही वे भूल सकती है ? वह उतरी और धीर -मंथर गति से चलती पति का द्वार पकड़कर खड़ी हो गयी ।"[1] मृत पति के चेहरे की भव्य शांति एवं देदीप्यमान क्रान्ति को देखकर श्रद्धावनत हो वह गहन पश्चात्ताप में डूब गयी । तभी तो उसे शाश्वत मूल्यों की उपलब्धि होती है । परिहास के रहस्य के उजागर हो जाने के पश्चात् माधवी जीवन भर अपने पति कौस्तुभ के प्रति श्रद्धावान रही ।

इसी प्रकार ' कोयलिया मत कर पुकार ' कहानी की बेगम अख्तरी, 'चन्नी' कहानी की चन्नी, 'उपप्रेती' उपन्यास की रमा, 'गैंडा' उपन्यास की सुपर्णा सेन, 'नथ' कहानी की पुट्टी आदि नारी पात्र भावनात्मक वृत्तियों में जीती हुई सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण के लिये प्रयत्नशील रहकर वैवाहिक जीवन के प्रति अपनी नैतिकता का निर्वाह करने में पूर्णतया सफल हुई हैं ।

पहले भी कहा जा चुका है कि शिवानी के पुरूष पात्र उनके नारी पात्रों की तरह अपने वैवाहिक जीवन के प्रति अधिक निष्ठावान नहीं रह सके हैं । किन्तु फिर भी उनके पुरूष पात्रों में कप्तान जोशी ("लाटी" कहानी) वकीलपुत्र एवं रहमान ('लाल हवेली) कहानी) , इश्तियाक अहमद अब्बासी ('कोयलिया मत कर पुकार' कहानी) हयात सिंह ('ठाकुर का बेटा' कहानी) आदि पात्रों ने अपने वैवाहिक जीवन के प्रति अपनी नैतिकता एवं आदर्शनिष्ठता का परिचय दिया है ।

शिवानी के पुरूष पात्रों में से कुछ या तो परस्त्रीगामी हो गये हैं या पूर्व पत्नी के होते हुए भी दूसरी शादी करके उनसे प्रवंचना की है या दूसरी पत्नी को ही ठेंगा दिखा

1- स्वयंसिद्धा , उपन्यास, शिवानी, पृष्ठ 30

गये हैं । इस तरह के पात्रों में है - ' रोहिताश्व [1], उमेश [2], सुधीर[3], डॉक्टर [4], विक्रम[5] महेश[6], कर्नल[7], रॉबर्ट [8] आदि ।

अंततः शिवानी के नारी पात्रों में जो आत्मविश्वास, पवित्रता, दृढ़ संकल्प एवं निस्वार्थ भावनाये विद्यमान हैं, प्रणय की आदर्श- वेदी पर अमर त्याग की जो लालसा है, वैवाहिक जीवन के प्रति जो समर्पण भाव है वह पुरूष पात्रों में नहीं है । शिवानी के नारी पात्र पति द्वारा प्रदत्त पीड़ा को भी विश्वमय मानते हुए अपने सुख-दुःखों को स्मृतियों के साथ समन्वित करते हुए क्षणिक प्रणय की मधुर झंकृतियों में ही अपने आपको तन्मय कर अपनी सात्तिवक विचार धाराओं में अवलम्बित रहकर अपने वैवाहिक जीवन के प्रति अपनी नैतिकता का निर्वाह करते हुए अपनी आदर्शनिष्ठता का ही परिचय देते हैं ।

1- गैंडा

2- उपप्रेती

3- विवर्त

4- मास्टरनी' कहानी (चिरस्वयंवरा में संकलित)

5- भैरवी

6- 'सोत ' कहानी (स्वयंसिद्धा में संकलित)

7- चौदह फेरे

8- मोहब्बत (आकाश में संकलित)

शिवानी के साहित्य में आदर्शवाद का लक्ष्य -

मानव जीवन का लक्ष्य है मानवता की उपलब्धि , और आदर्शवाद का लक्ष्य है मानव को मानव बनाना एवं उसे दैवीय गुण प्रदान कर आदर्शोन्मुखी बनाना । फिर भी मानव - मानव है , वह अपने जीवन लक्ष्य से भ्रष्ट होकर विभिन्न विकृतियों के मध्य दिग्भ्रमित हो ही जाता है । उसे सत्पक्ष की ओर उन्मुख करने का कार्य करता है साहित्य ' हित सम्पादयति इति साहित्यम् ' अर्थात् जो हित का सम्पादन करे वह साहित्य है । वास्तव में साहित्य हित सम्पादन की ललित कला है । संभवतः इसीलिये कहा गया है ' हितं सन्निहितं तत् साहित्यम् ' अर्थात् जिसमें हित छिपा हो वह साहित्य है । इस प्रकार साहित्य का प्रमुख उद्देश्य आदर्श हित का सम्पादन करना है । मानव जीवन तथा समस्त सृष्टि के सांगोपाँग चित्रण द्वारा सार्वजनिक हित सम्पादन के आदर्श एवं आदर्शवाद की अभिव्यञ्जना ही साहित्य का लक्ष्य है ।

शिवानी इसी लक्ष्य को लेकर आगे बढ़ी है । मानव जीवन कैसा हो या मानव को मानव कैसे बनाया जाये, इस आदर्श की उपस्थापना के लिये सत्साहित्य की सृष्टि आवश्यक है । साहित्य का कार्य है मानव को असत्पक्ष की ओर से सत्पक्ष की ओर उन्मुख करना एवं सत्पक्ष के प्रति उद्बुद्ध श्रद्धा को अधिकाधिक परिपुष्ट करना । शिवानी के समग्र साहित्य में इसी लक्ष्य का प्राधान्य है ।

आदर्शवाद का मूल आधार हमारी अमर संस्कृति है - जो मानवीय जगत् को जीवन्त बनाने में पूर्णतया समर्थ है । किन्तु अफसोस है कि जिस संस्कृति ने हमें, हमारे देश को विदेशी आक्राँताओं से विनष्ट होने से बचाया, अपनी उसी संरक्षिका संस्कृति को हम भूलते जा रहे हैं । जिस संस्कृति ने हमें मातृभूमि के प्रति प्रेम, पुरूषार्थ तथा उद्योग, धैर्य तथा निर्भयता, संकल्पशील मन, क्षमा, दया करूणा, कर्त्तव्य एवं त्याग- भावना आदि प्रवृत्तियाँ प्रदान की हैं, जिस संस्कृति ने सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का मार्ग प्रशस्त किया है, उसकी अवमानना क्या उचित है ?

आज हमारे विकृत हो रहे समाज में नाना यायावरी विसंगतियों का समावेश हो गया है । हम विपथगामी होते जा रहे हैं । शिवानी का आदर्शवाद हमें आदर्शवादी भले ही

न बना पाये किन्तु विपथगामी होने से बचाता अवश्य है । शिवानी का अधिकाँश साहित्य निवृत्ति मूलक है अर्थात् 'यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिये ' के स्वर ही अधिक मुखर हुए हैं । इसके अतिरिक्त शिवानी के साहित्य में नीति एवं मर्यादा की भी प्रधानता है । शिवानी के कुछ पात्र मानवीय मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों के प्रति अत्यधिक सजग दिखायी देते हैं एवं अपने उत्सर्ग - त्याग तथा कर्त्तव्य से आदर्शवाद के लक्ष्य को प्राप्त करते हैं ।

'मायापुरी ' की नायिका अपने प्रणय-उत्सर्ग से , 'चौदह फेरे ' की 'नंदी' अपने विरक्त जीवन से , 'कृष्णकली' की 'कली' अपने निस्वार्थ प्रणय से, 'श्मशान चंपा' की 'चंपा' अपने यायावरी जीवन से, 'सुरंगमा' का ' रॉबर्ट म्यूरी ' अपनी महानता से, 'अतिथि' के 'माधव बाबू' अपने देवदुर्लभ गुणों से, 'कृष्णवेणी' की 'कृष्णवेणी' अपने शून्य जीवन से, 'माणिक' की 'नलिनी मिश्रा' अपने निस्वार्थ त्याग से , 'उपप्रेती' की 'रमा' अपने वीतराग से , ' कैंजा ' की नंदी तिवारी अपने निस्वार्थ कर्त्तव्य बोध से, 'करिये छिमा ' कहानी की 'हीरावती' अपने पावन प्रणय से, 'चल खुसरो घर आपने' की 'कुमुद जोशी ' अपने सर्वस्वत्याग से, 'किशुनली' की 'काखी' अपने निश्छल वात्सल्य से, ' अनाथ' कहानी की 'मिसेज बनर्जी', अपने सतीत्व से, ' मौसी' कहानी की ' मिसेज बेदी ' अपने पावन त्याग से आदि आदर्श पात्र के रूप में अवतरित होकर शिवानी के साहित्य में सन्निहित आदर्शवाद के लक्ष्य को प्रस्तुत करते हैं ।

संक्षेप में, भारतीय संस्कृति की संरक्षा, नैतिक समाज की परिकल्पना, सत्साहित्य की सृष्टि, संत्रस्त मानवता की पुकार, नारी के साथ हो रहे अनाचार की परिसमाप्ति एवं वैवाहिक जीवन में सनातन धर्म का परिपालन शिवानी के साहित्य का परम आदर्श है ।

निष्कर्षतः शिवानी के साहित्य में चरित्रॉकन एवं मानवीय चित्रण में विविधता के मध्य आदर्श का समन्वय स्वयं में एक परिलक्षित उपलब्धि है ।

शिवानी के साहित्य में नैतिकता की उपलब्धि-

नैतिकता साहित्य का उत्कर्ष विधायक अनिवार्य तत्व है । नैतिकता ही मानवीयता का केन्द्र -बिन्दु है । नैतिक साहित्य की सर्जना ही समाज को, देश को, साहित्य एवं इतिहास को महान् बना सकती है । नैतिकता के अभाव में एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना एवं सत्साहित्य की सृष्टि असम्भव है । जब तक असद् से सद् की ओर हमारी चिन्तन - प्रक्रिया उन्मुख नहीं होगी तब तक नैतिक आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों की उपलब्धि संभव नहीं हो सकती ।

शिवानी ने अपने साहित्य में विकृत हो रहे मानवीय मूल्यों की पुनः प्रतिस्थापना की है एवं समाज के प्रतिनिधि चरित्रों के माध्यम से क्षमा, दया, प्रेम, करूणा, कल्याण की भावना, कर्त्तव्य भावना, शील, धैर्य, संतोष त्याग, सत्यवादिता, कृतज्ञता, स्वाभिमान, साधुता आदि नैतिक गुणों की सम्प्रस्तुति भी की है । शिवानी के समग्र साहित्य में नैतिकता का ही बाहुल्य है और शिवानी के आदर्शवाद के लक्ष्य की आपूर्ति में यही नैतिकता पाथेय बनी है और इसी पाथेय की सफलता शिवानी की सबसे बड़ी उपलब्धि है अर्थात् शिवानी के साहित्य में आदर्शवाद की उपस्थापना नैतिकता की ही उपलब्धि है ।

*****

अष्टम अध्याय - उपसंहार

शिवानी की आदर्श एवं नैतिकता प्रधान जीवन शैली

अष्टम अध्याय - उपसंहार

शिवानी की आदर्श एवं नैतिकता प्रधान जीवन शैली

शिवानी का समस्त लेखन एक ईमानदारी पूर्ण लेखन है । इस तथ्य को शिवानी भी स्वीकार करती हैं और उनके पाठक भी और यही उनके लेखन का आदर्श और उनकी साहित्यिक नैतिकता के स्वयं सिद्ध प्रमाण है । भोगा हुआ या निकट से देखा हुआ जीवन जब कथानक का रूप धारण कर कागज पर उतरता हे तो कथाकार की जीवन शैली और लेखन शैली समरस हो जाती है । शिवानी के विषय में भी यही सत्य है । इसी सत्य के कारण अतिरंजनावश उनके पाठक प्रत्येक घटना को शिवानी की जीवनी का अंश मान लेने की भूल कर बेठते हैं । पाठकों का यह विभ्रम ही शिवानी की सफलता का चरमोत्कर्ष है ।

"मैं" प्रधान शैली में लिखने के कारण शिवानी का साहित्य अत्यधिक जीवन्त हो उठा है । उनके पात्र काल्पनिक न होकर शिवानी के ही परिचित- से प्रतीत होते हैं । इसका एक कारण यह भी है कि जहाँ - जहाँ शिवानी रही या गई हैं, वहाँ के पात्र भी उनके कथानकों में चित्रित हुए हैं । इसलिये शिवानी से उनका परिचय जोड़ देना पाठकों के लिये स्वाभाविक ही है ।

आत्मकथात्मक प्रधान लेखन शैली ने जहाँ घटनाओं को कल्पना के आरोप से मुक्त कराकर वास्तविक होने का प्रमाण पत्र उन्हें थमाया है, वहीं आदर्श और नैतिकता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर पाठकों को केवल नीतिगत कोरे उपदेश ही नहीं दिये हैं बल्कि उन उपदेशों को स्वयं के जीवन से जोड़कर *Example is better than precept* की कहावत को चरितार्थ कर पाठकों के लिये अनुकरणीय उदाहरण ही प्रस्तुत किये हैं । पाठक जब साहित्यकार के जीवन में इस प्रकार के उदाहरण देखता है तो वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है । उदाहरण के लिये शिवानी जब अधिकारी और कर्मचारियों की लालफीताशाही का उदाहरण स्वयं अपने पति की पेंशन लेने के समय भोगी हुई व्यथा के माध्यम से करती हैं तो पाठकों के लिये यह लेखन केवल कोरी आलोचना न होकर एक भोगा हुआ यथार्थ दिखता है और वही उनके अन्तर्मन को छूकर शिवानी के लेखन को उत्कृष्ट जीवन्तता प्रदान करता है ।

रेल यात्रा का दुःख किसने नहीं सहा होगा किन्तु जब वही दुःख शिवानी की लेखनी से उनकी बिहार यात्रा के सम्बन्ध में पाठकों के समक्ष उभरता है तो पाठक उसे अपना दर्द समझकर शिवानी के प्रति कृतज्ञ भाव से नत होकर कहने को विवश होते हैं कि कम से कम कोई साहित्यकार तो हमारे दर्द को उजागर करने वाला हमदर्द की तरह मौजूद है । जबकि इसी दर्द को समाचार पत्रों के सम्पादकीय भी समय-समय पर उजागर करते आये हैं, किन्तु कोरी आलोचना के कारण वे पाठकों के मस्तिष्क को भले ही झकझोर गये हों, लेकिन हृदयस्पर्शी नहीं बन पाये हैं । शिवानी ने ऐसे ही न जाने कितने प्रसंगों का उल्लेख अपने साहित्य में किया है जो दो ओर दो मिलकर चार होने की तरह इतना वास्तविक बन गये हैं ×××××××××××××××××××××× कि पाठकों को दो के पहाड़े की तरह रट गया है । शिवानी ने आदर्श और नैतिकता के पाठ अपने पाठकों को इन्हीं उदाहरणों की सहायता से पहाड़ों की तरह रटवाकर अपनी लेखनी की सार्थकता सिद्ध की है ।

शिवानी के पात्र और परिवेश दोनों ही आदर्श और नैतिकता के प्रकाश स्तम्भ बन गये हैं । जिन्हें उनके लेखन में देखा जा सकता है । शिवानी के विषय में कोई भी मत निर्धारित करने के पहले उन्हें समझना आवश्यक होगा । शिवानी के साहित्य में आदर्श एवं नैतिकता का प्रतिपादन करने में उनके पात्र, संयोग तत्व, परिवेश एवं उनकी भाषा- शैली भी सहायक सिद्ध हुई है । अब हम क्रमशः प्रत्येक बिन्दु पर प्रकाश डालेंगें ।

किसी भी प्रकार की जीवन शैली के चित्रण के लिये पात्रों से अच्छा कोई अन्य माध्यम नहीं हो सकता है । जहाँ पात्र नहीं होते हैं वहाँ लेखक को ही सब कुछ स्वयं कहना पड़ता है और इस प्रकार का लेखन सैद्धान्तिक प्रतिपादन के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता है । साहित्यिक लेखन में चाहे वे महाकाव्य हों या उपन्यास, कहानी हो या नाटक पात्रों की अनिवार्यता इस तथ्य से आँकी जा सकती हे कि जब मानवीय पात्र उपयुक्त न समझे गये तब जीव-जन्तुओं तथा निर्जीव पदार्थो का मानवीकरण कर उनके मुख से आदर्श और नैतिकता के सिद्धान्त प्रतिपादित कराये गये ।

कालिदास के "मेघदूत", प्रियप्रवास (हरिऔध) की "पवनदूतिका", पंचतन्त्र की कहानियाँ, गिद्धराज जटायु की सहयोग-गाथा किसे यह सोचने पर विवश नहीं करेगी कि समाज

में आदर्श और नैतिकता के उत्कर्ष को प्रतिष्ठापित करने के लिये मानव पात्रों की आवश्यकता अनिवार्य नहीं है । स्वयं शिवानी ने भी तो अपनी बालोपयोगी रचनाओं में चूहा, लोमड़ी, शेर, शेरनी, ऋगाल आदि के माध्यम से मानव-व्यवहार को निरूपित करने का प्रयास किया है । ऐसे में पात्रों का महत्त्व उपन्यासों एवं कहानियों के सन्दर्भ में निर्विवाद रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाता है । शिवानी के पात्र भी उनकी आदर्श एवं नैतिकता प्रधान जीवन शैली के प्रतीक हैं, उनके आदर्श एवं नैतिकता के संवाहक हैं । ये पात्र चाहे पशु-पक्षी हों या मानव । किशोरावस्था से ही शिवानी का दृष्टिकोण आदर्श एवं नैतिकोन्मुखी रहा है । उनका यह नैतिक एवं आदर्शोन्मुखी दृष्टिकोण उनके बाल- साहित्य में भी झलकता है । बाल कहानी संग्रह "राधिका सुन्दरी" में भी शिवानी कुमायूँ चित्रण का लोभ संवरण नहीं कर पाई । कुमायूँ परम्परा की नैतिकता का चित्रण करते हुए शिवानी ने लिखा है -" आपका इच्छित भोजन इस समय हमारे माननीय अतिथिगण हैं और अतिथि को खा लेना कुमायूँ परम्परा के विरूद्ध हैं ।[1] भामर सम्राट शेर की राजकन्या राधिका की शादी बिजैसिंह (गीदड़) की धूर्ततावश उनके पुत्र खड़कसिंह से हो जाती है । पति कहता - ' ये रधुली ! मेरे पैर दाब --- सास कहती - 'बहू है या ठीकरी ! कैसा सीना तानकर चलती है । " बेचारी राधिका, सबकी सहती , सबकी सुनती । फिर भी पति का अनुगमन करती है - " जहाँ पति जाये वहाँ तू भी जाना, यही मेरी माँ की सीख है महाराज ! भला मैं आपको कैसे छोड़ूँ? लेकिन जब खड़कसिंह की कलई खुल जाती है तो भी राधिका उसे जान से नहीं मारती - " अपने हाथों अपना सुहाग कैसे छीनूँ ? यह हिन्दू नारी का धर्म नही हैं ।[2] शेर की राजकन्या गीदड़ जैसे धूर्त से ब्याह हो जाने पर उसकी ज्यादतियाँ सहती है, उसका अनुगमन करती है और कलई खुल जाने पर उसकी जान नहीं लेती क्योकि पति कैसा भी हो हिन्दू नारी के लिये पूज्य है । वन्य पशुओं का कैसा सुन्दर मानवीकरण है यह। और कैसा सुन्दर सामञ्जस्य है आदर्श और नैतिकता प्रधान जीवन शैली का । इसी प्रकार " सूखा-गुलाब" एवं 'स्वामिभक्त चूहा' आदि बालोपयोगी पुस्तकें भी शिवानी के आदर्श एवं नैतिकता से ओतप्रोत है । निस्संदेह शिवानी का बालमानस भी आदर्श एवंनैतिकता के प्रति सजग रहा है ।

1- राधिका सुन्दरी, शिवानी, पृष्ठ -4
2- वही , वही, पृष्ठ 6-7-8

पशु-पक्षियों के अतिरिक्त शिवानी ने पुरूष और नारी पात्रों को समाज में आदर्श एवं नैतिकता के प्रतिमान स्थापित करने वाले प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है । आदर्श एवं नैतिकता के संवाहक शिवानी के यही प्रतिनिधि उनकी आदर्श एवं नैतिकता प्रधान जीवन शैली को उजागर करने में पूर्णतया सफल हुए हैं । अच्छा होगा हम पहले पुरूष एवं नारी पात्रों के जीवन दर्शन को पृथक-पृथक समझ लें ।

पुरूष पात्र -

शिवानी के कथाक्षेत्र में पुरूष पात्रों की कमी नहीं है । इनमें से अधिकांश आभिजात्य वर्ग के हैं । शिक्षित होने का सौभाग्य तो लगभग सभी को मिला है । इन्हीं में से कुछ उदारवादी आधुनिकता के प्रबल समर्थक हैं तो कुछ कट्टर परम्परावादी । सभी की जीवन शैली की भिन्नता उनके जीवन के प्रति अपनाये हुए दार्शनिक दृष्टि कोणों में पाई जाने वाली निजता के कारण है । उच्च शिक्षित लोग विदेशों में बस गये या विदेश जाकर वापस आने वाले भारतीयों में जातीय बन्धन की जो शिथिलता देखने को मिलती है, वह ग्रामीण अँचलों में बसने वाले भारतीयों के लिये विश्व का नया आश्चर्य ही दिखाई देता है । फिर भी शिवानी ने यथासाध्य प्रयास यही किया है कि उनके पात्र सजातीयता के बन्धन को तोड़कर कुमायूँ संस्कृति को छिन्न - भिन्न न करने पायें । इसलिये उनके अधिकांश पात्र उच्चशिक्षित एवं उच्चपदाधिकारी होने के बाद भी कुमायूँ की कन्याओं को ही वरीयता देते हुए दिखाई देते हैं । 'चौदह फेरे' के कर्नल पाण्डे के स्वरों में यही सांस्कृतिक प्रतिबद्धता मुखर हुई है - 'बेटी, मैं चाहता हूँ कि तुम्हारा विवाह अपने ही समाज में हो ।"[1]

पुरूषों की नारी विषयक दुर्बलता के कारण जो सामाजिक विकृतियाँ और विसंगतियाँ सामाजिक जीवन में परिलक्षित हो सकती हैं, उनका चित्रण शिवानी ने जिस कौशल के साथ किया है उसमें अनैतिकता की दुखद परिणति दिखाकर अप्रत्यक्ष रूप से आदर्श एवं नैतिकता का ही सौन्दर्य बोध कराया है । वैदिक काल से ही प्रवृत्ति और निवृत्ति की सोच परिलक्षित होती रही है, प्रवृत्ति के लिये 'इदम् इत्थम्, इदम् इत्थम् ' और निवृत्ति के लिये 'नेति-नेति' शब्दों का प्रयोग वैदिक साहित्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है । शिवानी के साहित्य में उनकी सोच भी प्रवृत्ति मूलक अर्थात् इदम् इत्थम् इदम् इत्थम्वत् है किन्तु जहाँ उन्हें

1- चौदह फेरे ,शिवानी, पृष्ठ - 159

कुछ निवृत्ति मूलक दिखा वहाँ उन्होनें नेति-नेति की शैली में उसके विरोध के लिये आग्रह किया है । शिवानी ने पुरूषों की प्रवंचना की शिकार होने वाली सुशिक्षित ललिता[1], डॉ बैदेही बर्वे,[2] , मास्टरनी[3], राजलक्ष्मी[4] एवं सुरंगमा[5] के माध्यम से उसके दुष्परिणामों को प्रकट करके अप्रकट रूप से ऐसा न करने का आदर्श अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है ।

शिवानी के साहित्य में नारी के अतिरिक्त पुरूष की दूसरी दुर्बलता अर्थ लोलुपता रही है । धन के लिये वह अमानवीय आचरण करने पर भी नहीं हिचकता है । 'श्मशान चंपा' में चंपा के पिता धरणीघर जब सी0बी0आई0 की रिपोर्ट में भ्रष्ट साधनों द्वारा धन अर्जित करने के दोषी पाये जाते हैं तो परिणाम स्वरूप केवल उनकी दुखद असामयिक मृत्यु ही नहीं होती, अपितु उनकी कोठी तक नीलाम हो जाती है । साथ ही पत्नी और पुत्रियों का जीवन भी अभिशप्त हो जाता है । इसी प्रकार 'अभिनय' उपन्यास के शेखर, 'तिलपात्र' उपन्यास के अखिलेश्वर शर्मा एवं 'चल खुसरो घर आपने' के धरणीधर आदि 'रिश्वत' जैसे अनैतिक साधनों से अर्थसंचय के आरोप में पकडे जाते हैं एवं परिणाम स्वरूप नारकीय जीवन जीने को विवश होते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं । उनकी इस दुष्प्रवृत्ति के कारण उनके परिवारीजनों को भी अनन्त अभिशाप झेलने पड़ते हैं । अतः ऐसा न करने का नैतिक आदर्श शिवानी की नैतिक जीवन शैली का ही परिचायक है ।

ऐसा नहीं है कि शिवानी के सभी पुरूष पात्र पूर्णरूपेण दुर्बलताओं के ही शिकार हैं । उनके इन्हीं पात्रों में से डॉक्टर खजानचन्द्र (मेराभाई) , माधव बाबू (अतिथि), देवेन्द्र एवं डॉक्टर जोशी (कालिन्दी), रहमान एवं वकील पुत्र (लाल हवेली), रॉबर्ट (सुरंगमा), पं कृपालदत्त त्रिपाठी (आकष), प्रवीर (कृष्णकली), श्रीधर (करिए छिमा) कप्तान जोशी (लाटी कहानी) आदि पात्र ऐसे हैं जो आदर्श एवं नैतिकता के प्रतिरूप एवं भारतीय संस्कृति के संरक्षक भी हैं।

1- विवर्त उपन्यास की नायिका।
2- मोहब्बत उपन्यास की नायिका
3- मास्टरनी कहानी की नायिका (चिरस्वयंवरा में संकलित)
4- सुरंगमा उपन्यास की नायिका ।
5- सुरंगमा उपन्यास की उपनायिका ।

इस प्रकार शिवानी ने पुरूष पात्रों के नाना स्वरूपों का सृजन कर उनसे वही आचरणं करवायें हैं जो आज के समाज का प्रतिनिधि व्यवहार एवं आचरण है और समाज में प्रचलित है । आज अच्छे व्यक्ति ईद का चाँद होते जा रहे हैं । नारी और धन दोनों पुरूष को इस सीमा तक पतित कर सकते हैं कि वह पति और कुर्सीपति दोनों के दायित्व से दूर होकर किसी ऐसे लोक में जा पहुँचता हे जहाँ अंधकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है।

आज समाज इन पतित व्यक्तियों से ही पीड़ित, प्रताड़ित एवं आतंकित है । इनसे ही मुक्ति का अभीष्ट शिवानी के लेखन एवं उनके जीवन का अभीष्ट है । अपने इस अभीष्ट को प्राप्त करने के लिये शिवानी को अनेक आलोचनाओं एवं आरोपों का सामना करना पड़ा हैं । किन्तु उनकी लेखनी की निरन्तरता एवं उनके दृढ़ संकल्प के समक्ष उनके अभीष्ट के अतिरिक्त कोई भी बाधा ठहर नहीं सकी है । तभी तो शिवानी का लेखन मौलिकता की सोंधी गन्ध से सुवासित, नैतिकता के रस से आप्लावित और आदर्शों की ज्योति से पुंजीभुत है।

नारी पात्र -

नारी को शील का प्रतिमान माना गया है । उसका शील ही सामाजिक नैतिकताका किन्ही अंशों तक पर्याय है । अश्लील आचरण की व्याख्या उसके शीलत्व को आधार मानकर की जाती है । समाज के बहुत से कृत्यों को नैतिक और अनैतिक की श्रेणी में विभाजित करने का प्रयास नारी के शील को ही ध्यान में रखकर किया जाता है । केवल पुरूषों का ही नहीं, स्वयं उसका अपना आचरणशील के शालीन पथ से कितना विचलित हुआ है, यह भी उसके शील के सन्दर्भ में व्याख्यायित होता है । नारी के शालीन स्वरूप को आधार बनाकर न जाने कितने काव्य, ग्रन्थ एवं उपन्यासों की रचना पुरूषों ने की है । किन्तु नारी के शालीन व्यवहार को भी चित्रित करने के लिये उन्हें पर्याप्त कल्पना का सहारा लेना पड़ा है । उसके अश्लील स्वरूप को तो चित्रित करने में वह निरा बौना ही सिद्ध हुआ है । पुरूषों ने नारी के मन की गुत्थियों को न समझ पाने के कारण अपनी असमर्थता को त्रियाश्चरित्रम् कहकर सहज ही स्वीकार कर लिया है, फिर उसका चित्रण कैसा ? उनकी दृष्टि में नारी एक अबूझ पहेली है । नारी के वाह्य एवं आन्तरिक व्यवहारों का चित्रण

करना पुरूषों की अपेक्षा नारी के लिये अधिक सरल होता है । किन्तु नारी अपने संकोची स्वभाव एवं लज्जालु प्रकृति के कारण अक्सर इन चित्रणों में अपनी पलायनवादी प्रवृत्ति का परिचय देती है । उसे डर रहता है कि कहीं समाज उन व्यवहारों के अंश उसके ही आचरण में न खोजने लगे और उसे अनेक अप्रत्याशित आरोपों के कटघरे में खड़ा कर दें । जहाँ वह अपनी दलीलें देकर अपना बचाव करने में भी अपने को असमर्थ पाये । किन्तु सोच की यह सारी प्रक्रिया कायरतापूर्ण ही मानी जायेगी ।

पाठक जहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कथानकों में कथाकार की उपस्थिति का होना आवश्यक मानता है वहीं वह साहित्यिक दृष्टिकोण से उसमें कल्पना का रंग भी देखता है । पात्रों के प्रेम- पत्र कभी भी पाठकों को कथाकार के प्रेम पत्र नहीं प्रतीत होते हैं । यदि कथाकार अपनी कथाओं में स्वयं पात्रों के रूप में अवतरित होने लगे तो वह एक से अधिक कथानक को जन्म दे ही नहीं सकता । इसलिये प्रबुद्ध पाठक प्रत्येक कथानक को साहित्यकार के निजी जीवन से जोड़ने का प्रयास नहीं करता । हाँ, इतना अवश्य है कि वह अपने प्रिय कथाकार को कभी भोक्ता, कभी दर्शक और कभी अनुश्रवण कर्ता के रूप में देखने का कौतूहल व्यक्त कर सकता है अर्थात् कथा प्रसंगों को यथार्थ के रूप में स्वीकार करने के लिये वह साहित्यकार को नेपथ्य में अवश्य देखना चाहता है ।

शिवानी ने नारी के यथार्थ चित्रण में अपनी जो नेपथ्य की भूमिका निभाई है वहीं उनके साहस और लोक प्रियता का कारण बनी है । कथाप्रसंगों में स्वयं को साक्षी की तरह प्रस्तुत कर उन्होंने जहाँ एक ओर घटनाओं को यथार्थ का रंग दिया है वहीं नारी के अन्तर्लोक की झलक दिखाकर अपनी मौलिकता का दिग्दर्शन कराया है । नारी कब दुर्गा बनकर आततायी पुरूष का संहार कर सती है, इसका ज्वलन्त प्रमाण 'तर्पण' कहानी में देखा जा सकता है और कब वह मेनका बन 'करिए छिमा' के नायक को संकल्पच्युत कर सकती है, कब सूर्पनखा के रूप में 'चाँचरी' कहानी के नायक की बहन की भूमिका निर्वाह कर उसकी निर्दोष साध्वी पत्नी को निष्कासित करवा सकती है, कब प्रणयी के लिये 'छिः मम्मी तुम गन्दी हो' की तरह अपने पति के प्राण ले सकती है, कब 'भीलनी ' बन अपनी बहन के सौभाग्य को दुर्भाग्य में बदल सकती है, विषकन्या की कामिनी बन अपनी बहन की माँग का

सिन्दूर पोंछ सकती हे, और कब 'सुख-दुख गोद के' की मिसेज मर्च की तरह साठ-साठ अनाथ बच्चों को सनाथ बना 'शी इज़ ग्रेट' का खिताब पा ले । कब 'चौदह फेरे' की नन्दी की तरह वैराग्य धारण कर ले एवं कब मल्लिका सरकार की तरह नारी रूपों का तिलिस्म प्रस्तुत करे । कब 'चिरस्वयंवरा की पचास वर्षीया 'रजनी दी' चिरकुमारी का चोला फाड़ अपने से कम वयस के पुरूष से स्वयंवर रचाने का निर्णय ले लें और कब पति के सौभाग्य उदय के लिये स्वयं को 'चन्दो' की तरह दाँव में लगा दे ।

यह सब नारी के उन आश्चर्यजनक व्यवहारों की एक झलक है, जिसे शिवानी ने अपनी लेखन सक्षमता, शब्द सामर्थ्य और सजीव शैली से अपने उपन्यासों, कहानियों एवं सस्मरणों में प्रस्तुत किया है । शिवानी ने साहित्यकारों के लिये नारी के अन्तःपुर की एक ऐसी खिड़की खोल दी है जिसमें सब कुछ भले ही न देखा जा सके । किन्तु फिर भी बहुत कुछ देखा जा सकता है । शिवानी के इस साहसिक एवं मौलिक प्रयास के लिये आने वाले कथाकरों को कृतज्ञ होना चाहिये । नारी कहीं अपने शील की रक्षा कर समाज को मर्यादित जीवन जीने का आदर्श सिखाती है तो कहीं अपना शील खोकर समाज को उसके प्रति सतर्क रहने की नैतिक चेतावनी देती है । शिवानी के नैतिक आदर्श का धरातल ही दुष्प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर ले जाना है एवं मानव मन को कर्त्तव्य भावना की ओर प्रेरित करना है।

शिवानी का नैतिक आदर्श कोरा आदर्श नहीं हैं अर्थात् उनका लक्ष्य कोरे एवं काल्पनिक आदर्श को आरोपित करना मात्र नहीं है अपितु व्यक्ति एवं समाज सापेक्ष है । शिवानी की नैतिक प्रवृत्ति के कारण ही उनके पात्र भी नैतिक - मूल्यों की संरक्षा में तत्पर दिखाई देते हैं । शिवानी के इन पात्रों में उनकी आदर्श एवं नैतिकता प्रधान जीवन शैली के सहज दर्शन होते हैं ।

शिवानी के साहित्य में दोनों तरह के पात्र हैं - एक तो वे जो सद् की ओर प्रवृत्त हैं तथा दूसरे वे जो असद् दिशा गामी हैं किन्तु शिवानी के असद् पात्र भी अन्ततः अपने नैतिक आदर्श के प्रति कृत संकल्प दिखाई देते हैं । वे अपनी ही मानसिक ग्लानि से क्षुब्ध होकर निवृत्ति की ओर प्रेरित होते हैं । उनकी यह मानसिक ग्लानि उनके अन्तः-करण की शुद्धि का प्रमाण है । इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी कहा है -

"ग्लानि अन्तःकरण की शुद्धि का एक विधान है, इससे उद्‌गारमें अपने दोष, अपराध, तुच्छता, बुराई इत्यादि का लोग दुःख से या सुख से कथन भी करते हैं, उसमें दुराव या छिपाव की प्रवृत्ति नहीं रहती है । अपने दोष का अनुभव अपने अपराध का स्वीकार, आन्तरिक व्यवस्था का उपचार तथा सच्चे सुधार का द्वार है ।"[1]

एक सफल साहित्यकार होने के कारण शिवानी भारतीय संस्कृति की पक्षधर एवं भारतीय जीवन दर्शन की मर्मज्ञ भी रही हैं । अतः शिवानी के आधुनिक विचारों के पोषक पात्र भी आन्तरिक रूप से भारतीय -संस्कृति के मूलभूत सिद्धान्तों से विमुख नहीं हो पाये हैं। शिवानी के विदेशी पात्र भी भारतीय -संस्कृति से अनुप्राणित होकर भारत के ही वासी हो गयी है । एवं भारत के सरल जीवन व उच्च विचारों के सिद्वान्त का पालन करते हुए देखे गये हैं । जैसे - 'सुख-दुःख गोद के ' निबन्ध की 'मिसेज मर्चे' एवं 'शांतिनिकेतन' की वार्डन एवं शिक्षिका 'मैदमोजेल बौजनिक क्रिस्टीना ' आदि भारतीय संस्कृति का ही प्रतिपालन करती हैं ।

शिवानी का नैतिक दर्शन नीति समस्त है । उनका समग्र साहित्य मानव को सन्मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करता है । चाहे वह प्रवृत्ति मूलक हो या निवृत्ति मूलक । शिवानी सांस्कृतिक परम्पराओं एवं वैयक्तिक स्वतन्त्रता की भी समर्थक रही हैं । वैयक्तिक स्वतन्त्रता से तात्पर्य मानव के आत्मिक - विकास से है । प्रणय के सन्दर्भ में शिवानी ने अपने पात्रों को मुक्त रखा है । किन्तु उनकी यह मुक्तता मर्यादाविहीन स्थितियों से अन्वित नहीं है ।

शिवानी की लेखनी का मुख्य केन्द्र नारी रही है । शिवानी के नारी पात्र जहाँ एक ओर नारकीय जीवन जीने के लिये विवश नहीं हैं, वहीं दूसरी ओर वे क्षणिक विद्रूपता अथवा असमानता के कारण सनातन मान्यताओं को विखण्डित करने के लिये भी स्वतन्त्र नहीं है । शिवानी की ये मान्यतायें हमें नैतिक जीवन जीने का संदेश देती है एवं उनकी आदर्श एवं नैतिकता प्रधान जीवन शैली को इंगित करती हैं ।

1- चिन्तामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ -58

संयोग तत्व -

उपन्यासों एवं कहानियों में संयोग तत्व (*Chance Factor*)के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है । यद्यपि अतिशाय्य की दशा में यह आलोचना का विषय बनता है । शिवानी ने भी अपने कथा - प्रसंगों को नैतिक स्वरूप देने के लिये प्रर्याप्त संयोगों की रचना की है । इनमें से अनेक संयोगों में वे स्वयं उपस्थित हो जाती हैं । उनके संयोग उनके कथाप्रसंगों को चमत्कारिक ढंग से कथानकों को आगे बढ़ाने या उन्हें कौतूहलपूर्ण मोड़ देने एवं अप्रत्याशित उपसंहार कराने में सहायक हुए हैं ।

' मेरा भाई '[1] कहानी का इनामी लुटेरा सुब्य्या जो शिवानी का राखीबंद भाई था, वर्षों पश्चात् अचानक शिवानी को ट्रेन में लूटते समय उनके पासपोर्ट में लगी फोटो से उनको पहचान कर उनके प्रति राखी के रक्षात्मक मूल्य की रक्षा करते हुए वह शिवानी को उनका लूटा हुआ सामान ही नहीं लौटाता है बल्कि उन्हें अपना रूपयों से भरा हुआ पर्स राखी बंधवाने के नेग के रूप में दे जाता है । यह एक संयोग ही था कि वह रात्रि रक्षा बन्धन के पर्व की रात्रि थी और सुब्य्या उनका राखीबन्द भाई ही था । इस संयोग प्रसंग के द्वारा शिवानी ने यह तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया है दुर्नाम व्यक्ति भी अपनी नैतिकता के आलोक से समाज को दिशा दे सकते हैं ।

' श्मशान चंपा' उपन्यास की चंपा अपने हठी स्वभाव के कारण मधुकर के साथ रूक्ष व्यवहार कर उसके पति बनने की सम्भावनाओं पर तुषारापात करती है, उसी चंपा की असहाय रूग्णावस्था में सहायता करने का दुर्लभ संयोग प्रदान कर शिवानी मधुकर को नैतिक पुरूषों की श्रेणी में खड़ा कर देती हैं ।

'सुरंगमा' उपन्यास की राजलक्ष्मी नितान्त एकान्त में आत्मघात करने जा ही रही थी कि संयोग बश रॉबर्ट उसका रक्षक बनकर सामने आ खड़ा होता है। वह उसकी मृत्यु से ही रक्षा नहीं करता अपितु उसके पूर्व पति की संतान को सामाजिक मान्यता दिलाने के लिये उससे विवाह कर अपने आदर्श का कीर्तिध्वज फहराता है ।

1- पूतो वाली में संकलित ।

इस प्रकार के अनेक संयोगात्मक प्रसंग शिवानी के आदर्श एवं नैतिकता के मील-पत्थर बन गये हैं ।

परिवेश -

शिवानी को आदर्शवादी एवं नैतिक बनाने में उनके परिवेश का भी बहुत बड़ा योगदान है । शान्ति निकेतन के अनुशासनमय वातावरण, कुमायूँ अँचल के सुकुमार परिपेश एवं महानगरीय जीवन की संत्रस्त स्थितियों ने शिवानी को यथार्थवादी बना दिया है । यही कारण है कि शिवानी ने अपने साहित्य में यथार्थ के माध्यम से आदर्श की सम्प्रस्तुति की है । जहाँ उक्त परिवेश ने शिवानी को नैतिक आदर्शोन्मुखी बनाया है, वहीं शिवानी ने अपने परम श्रद्धेय गुरूजनों, स्नेही छात्र-छात्राओं एवं अपने आस-पास के स्थलों के आदर्श परक संस्मरण लिखकर अपनी आदर्शप्रियता एवं नैतिकता का परिचय दिया है ।

शिवानी का साहित्य 'कुमायूँ अंचल' प्रधान है फिर भी उन्हें आँचलिक उपन्यासकार के रूप में प्रसिद्ध देना एक साहित्यिक भूल होगी क्योंकि उनका साहित्य कुमायूँ अंचल विशेष का साहित्य न होकर उसके इर्द-गिर्द घटने वाली घटनाओं का संस्मरणात्मक रोचक आख्यान है - ' आज तक स्मृति गह्वर से न जाने कितने कंकाल खींच पाठकों को थमा चुकी हूँ ।'[1] यदि शिवानी के सभी उपन्यासों एवं कहानियों और संस्मरणों के शीर्षकऔर आवरण हटाकर क्रमवद्ध रूप में रख दिये जाये तो वे शिवानी की आत्मकथा का रूप ले लेगें । इसका एक मात्र कारण शिवानी की बहुत सी कहानियाँ एवं उपन्यास संस्मरणात्मक एवं सत्य कथानक पर आधारित है । जिनकी सृष्टि कुमायूँ परिवेश के इर्द-गिर्द ही हुई है और जिनमें उनका भोगा हुआ यथार्थ बोलता है । यह बात काफी हद तक सत्य भी है - यदि प्रेमचन्द जी को ग्राम्य जीवन का इतना विशद अनुभव न होता तो उनका 'गोदान ' यथार्थ के धरातल पर कभी भी इतना सशक्त व जीवन्त न हो पाता । यदि वृन्दावन लाल वर्मा जी का जन्म बुन्देलखण्ड में न होता तो उनके साहित्य में 'बुन्देलखण्ड' इस कदर सजीव न होता । टालस्यटाय यदि स्वयं सैनिक न होते तो उनकी 'वार एण्ड पीस' कृति कालजयी न बन पाती ।

1- पूतोंवाली, शिवानी, पृष्ठ 100

भाषा - शैली -

शिवानी की भाषा का आदर्श उनके विशिष्ट व्यक्तित्व एवं उनके पात्रों के सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर के आधार पर बना है । शिवानी की भाषा का शब्द भण्डार व्यापक और समृद्ध है । उन्होंने अभिव्यंजना को सशक्त बनाने वाले सभी शब्दों का यथास्थान उपयोग किया है । उन्हें बंगला, पहाड़ी, गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी और संस्कृत आदि भाषाओं का विशेष ज्ञान है । इन सभी भाषाओं को लेकर वे हिन्दी साहित्य जगत् में अवतरित हुई हैं । कई भाषाओं का समन्वय ही उनकी भाषागत विशिष्टता है । ठाकुर प्रसाद सिंह शिवानी की भाषा एवं शैलीगत विशिष्टता के सन्दर्भ में लिखते हैं -' सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का छोटे-से-छोटा अंश भी अलग से पहचाना जा सकता है वैसे ही जैसे आप हिन्दी के गद्य लेखकों की भीड़ में श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी या उनके स्तर के शैलीकारों को अलग से पहचान लेते हैं। शिवानी के सम्बन्ध में भी यह बात बिना हिचक के कही जा सकती है।[1]

शिवानी की भाषा-शैली में अद्भुत सूक्ष्म दृष्टि है, सहज विचित्र भाव है 'स्टाइल इज दन मैन हिमसेल्फ' अर्थात् शैली ही व्यक्ति है एवं उसकी पहचान है । उनकी इस विशिष्ट भाषा- शैली के बारे में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवदी ने कहा है 'तुममें छोटी-छोटी किन्तु महत्त्वपूर्ण आत्मीयता व्यंजक बातों के द्वारा सम्पूर्ण को जीवन्त बनाने की बड़ी क्षमता है ।[2] वस्तुतः शिवानी की भाषा में भावनाओं के नये मूल्यों को प्रस्तुत करने की क्षमता है ।

शिवानी की भाषा - शैली के सन्दर्भ में सुप्रसिद्ध आंग्ल आलोचक ब्लैक मूलर का यह कथन - ' भाषा केवल हमारे भावों तथा विचारों का वहन नहीं है, जिसे ठोक -पीटकर हर समय काम में लाया जा सके । उसका एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व और वातावरण होता है, जो सूक्ष्म दृष्टि से देखा जा सकता है । हमारी ही तरह उसकी भी शक्ति, इच्छा होती है और उसके भी संस्कार होते हैं ।[3] शत- प्रतिशत खरा उतरता है ।

1- 'मेरी प्रिय कहानियाँ, शिवानी, भूमिका: ठाकुर प्रसाद सिंह, पृष्ठ -7

2- शान्ति निकेतन से शिवालिक : समपादक-शिवप्रसाद सिंह पृष्ठ -21

3- 'लेंग्वेज एण्ड गैस्चर ' : आलोचक - ब्लैकमूलर, पृष्ठ 21.

अंततः शिवानी की भाषा शैली का भी अपना एक विशिष्ट महत्व है , अपना व्यक्तित्व अपना एक आदर्श है । उनकी भाषा शैली शक्तिशाली, इच्छावती एवं संस्कारशीला भी जिसमें माधुर्य, लालित्य, काव्यात्मकता एवं सरसता भी है ।

उपसंहार -

शिवानी के समग्र साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिकता का विश्लेषण कर चुकने के पश्चात् यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि शिवानी की जीवन शैली आदर्श एवं नैतिकता प्रधान है क्योंकि आदर्शों में आस्था रखने वाला एवं नैतिक जीवन जीने वाला व्यक्ति ही आदर्श एवं नैतिक साहित्य की स्पष्ट एवं सफल सर्जना में सक्षम होता है, शेष सृजन 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे ' की भाँति थोथे ही सिद्ध होते हैं । प्रभावमूलक साहित्य का सृजन वहीं संभव है जहाँ वर्ण्य विषय को हृदय की अतल गहराइयों तक अनुभव किया गया हो । सर्जक की स्वानुभूति ही पाठक को सुखानुभूति करा सकती है । शिवानी का लेखन स्वानुभूति के अक्ष के परितः परिभ्रमण करता रहता है । कभी सौर्यमण्डल के सूर्य की केन्द्रीय स्थिति में अवस्थित शिवानी के चारों ओर उनके औपन्यासिक पात्र ग्रहों की भाँति विभिन्न कक्षाओं में सूर्य की भांति शिवानी की ही परिक्रमा करते प्रतीत होते हैं तो कभी परकार की नोक की तरह एक केन्द्र बिन्दु पर खड़ी होकर शिवानी पेन्सिल की दूसरी नोक से विभिन्न त्रिज्याओं के भिन्न-भिन्न वृत्तों का निर्माण करती हुई दिखती हैं ।

ज्यों-ज्यों शिवानी का अनुभव क्षेत्र बढ़ता गया एवं उनकी अनुभूति सघनतम होती गयी, त्यों-त्यों उनके साहित्यिक वृत्तों की त्रिज्या एवं परिधि भी विस्तृत होती गयी । इसके साथ ही उनके चरित्रांकन की विविधता में रंगों का निखार (कलर कांबीनेशन) भी बढ़ता गया ।

शिवानी के साहित्य की शाश्वत समस्या है नारी और नारी के जितने अधिक या संभावित रूप हो सकते हैं, लगभग सभी के सजीव चित्रण द्वारा शिवानी ने यह सिद्ध कर

दिखाया है कि कुंभकार एक चाक और मिट्टी से विभिन्न पात्रों का निर्माण कर अपने निर्माण - कौशल का परिचय देता है । ठीक उसी प्रकार शिवानी ने स्वयं को केन्द्र में रखकर नारी विषयक जिन वृत्तों का निर्माण किया है, वे त्रिज्याओं की भिन्नता के कारण नारी के विविध रूपों को प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं ।

इसके अतिरिक्त शिवानी के प्रमुख साहित्यिक वृत्तों की परिधि में आने वाली प्रमुख समस्यायें जिनको शिवानी ने अपने आदर्श स्थापना का आधार बनाया है, वे हैं - आज के प्रगतिशील समाज में प्रतिभाओं की उपेक्षा, सांस्कृतिक मूल्यों की अवमानना, मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का ह्रास, धार्मिक उन्माद, समाज की विद्रूपता, राजनीति में बढ़ती जा रही स्वार्थलिप्सा, शिक्षा का गिरता स्तर, बढ़ती जा रही बेरोजगारी, लालफीताशाही एवं देश का अर्थ नैतिक संकट आदि समस्यागत वृत्तों को शिवानी ने साहित्यिक पृष्ठभूमि, परिवेशीय रंग एवं भाषाई संयोजन देकर यथार्थ के फेम में मढ़ी हुई जिन स्वानुभूत अल्पनाओं को जन्म दिया है, वही पाठकों की प्रिय औपन्यासिक या कथात्मक कृतियाँ बनी हैं । अपनी इन कृतियों में शिवानी जी उन्हीं मान्यताओं के साथ सम्पृक्त हुई है जो स्वस्थ विचारधाओं के साथ युग को नवीन दिशा देने में समर्थ हैं और आदर्श समाज की व्यवस्था में सहयोग रखती हैं ।

भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था में ब्राह्मण शीर्ष पर थे । वे आदर्श के प्रतिमान एवं नैतिकता के आधार माने जाते थे । आदर्श एवं नैतिकता के लक्ष्य से प्रेरित एवं ब्रह्मणीय संस्कृति में संस्कारित शिवानी के साहित्य में ब्राह्मण पात्रों की बहुलता आलोच्य होने के स्थान पर सहर्ष स्वीकार्य है क्योंकि आदर्श, नैतिकता एवं संस्कृति के पालक, पोषक एवं संवाहक ब्राह्मणों से अच्छा आदर्श एवं नैतिक आचरणों की प्रतिस्थापना का माध्यम और क्या हो सकता है ? शिवानी ने अपने इन पात्रों को आदर्श निष्ठ ही नहीं बनाया अपितु उन्हें यथार्थ के साँचे में ढालकर उनके प्राणों में नैतिकता की श्वाँस भी भर दी है ।

शिवानी ने अपने उपन्यासों में अधिकाँशतः ऐसे पात्रों का चरित्राँकन किया है जो समाज के आदर्श स्तम्भ माने गये हैं । चाहे वे वर्ण-व्यवस्था के शीर्षस्थ ब्राह्मण हों या वर्ग व्यवस्था के आभिजात्य व्यक्ति, चाहे वे तपो श्रेष्ठ साधु- महात्मा हों या नीति नियन्ता राजनेता ।

यह एक सरल सामाजिक प्रक्रिया है कि समाज उक्त उल्लिखित आदर्श-स्तम्भों को ही अपना आदर्श मान तदनुरूप आचरण करने और कभी कभी अनुकरण करने का प्रयत्न करता है । यही कारण है कि संस्कृति और फैशन आदि ऊपर से नीचे की ओर प्रचारित एवं प्रसारित होते हैं । शिवानी ने इन्हीं आदर्श- स्तम्भों को गिरते या निर्मित होते हुए दिखाकर उनके अस्तित्व की अनिवार्यता को सिद्ध करने का लक्ष्य अपने सम्पूर्ण साहित्य में दर्शाकर अपनी पहचान एक आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी साहित्यकार के रूप में बना ली है ।

शिवानी की इन्हीं विशिष्टताओं एवं उनके आदर्श मय व्यक्तित्व से प्रभावित होकर श्रीमती पद्मा सचदेव जी शिवानी की तुलना विशाल समुद्र से करती हुई लिखती है - 'शांत, धीर, गंभीर, भव्य, अनन्त, अपार, विशाल, पुरातन, तपस्या में लीन ऋषि की तरह समुद्र के हृदय में हो रहा मंथन कोई नहीं देख पाता । आकाश की रंग -बिरंगी झीनी चादर ताने समुद्र अपलक आकाश के बदलते रंगों को अपने मन के भीतर उतारता रहता है । इसके भीतर बनते कई महल-चौबारों की अटारियों, छतों व वातायनों से कहानियाँ समुद्र की छाती के रंगों से अपनी लहरियेदार चुनरियाँ रंग -रंग कर धूप के कोसे सेक में सुखा कर जब तहाती हैं, तब असंख्य माणिक - मोती - शंख- कौड़ियों और जवाहरात की सृष्टि होती है जिन्हें समुद्र की लहरें नृत्य करती हुई , किनारों पर अपने पाँवों के घुघरूओं की तरह छोड़ जाती हैं । फिर भी समुद्र के पास बहुत रहता है । उसके खजाने लुटने पर ही भरते हैं । लहरें शैतान लड़कियों की तरह उसके खजाने खेल - खेल में रेत पर बिछा जाती हैं । समुद्र कुछ नहीं कहता । वो रहता है शांत, निर्विकार, भरा - पूरा , सन्तुष्ट- ऐसी ही हैं मेरी शिवानी दीदी।[1]

अंततः आदर्श का लक्ष्य लेकर चलने वाली शिवानी जितनी संस्कृति के प्रति सजग है उतनी ही परिवेश एवं पर्यावरण के प्रति सचेत । आदर्श स्तम्भो एवं नैतिक मूल्यों के खण्डित हो रहे स्वरूपों के प्रति जितनी वे चिन्तित है । उतनी ही विसंगतियों एवं

1- धर्मयुग, 16 मार्च 1992, शिवानी, शब्द - शब्द कहानी' , पद्मा सचदेव द्वारा प्रस्तुत, पृष्ठ 14

विभ्रमों के दुष्परिणामों को भोगने वालों के प्रति संवेदनशील। उनकी शिक्षा, कुलीन संस्कार, व्यापक भ्रमण, बहुभाषाविज्ञता ,पाण्डित्य, उच्च वर्गीय जीवन शैली, जन्म भूमि प्रेम एवं विनोद प्रिय शैली ने उनके सृजन को हिन्दी साहित्य की एक अनुपम निधि बना दी है । जिस पर आज ही नहीं आने वाला कल भी गर्व का अनुभव करेगा ।

****

सन्दर्भ-ग्रन्थ

परिशिष्ट

(सन्दर्भ ग्रन्थ)

	हिन्दी सन्दर्भ ग्रन्थ	लेखक	पृष्ठ संख्या
1-	अतीत के चलचित्र	महादेवी वर्मा	02
2-	आधुनिक हिन्दी साहित्य	डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय	149
3-	आलोचना, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य विशेषांक	-	128
4-	आधुनिक हिन्दी साहित्य	नन्द दुलारे बाजपेई	393
5-	एक दुनिया : समानान्तर	राजेन्द्र यादव	20
6-	कुछ विचार	मुंशी प्रेमचन्द	52,53, 22,27,49,145
7-	कर्मनाशा की हार	शिव प्रसाद सिंह	06
8-	काव्य के रूप	बाबू गुलाब राय	169, 175,221
9-	कुमॉयू का लोक साहित्य	डॉ कृष्णानन्द जोशी	09
10-	कादम्बरी	बाणभट्‌ट	05
11-	कामायनी	जयशंकर प्रसाद	इडा एवं दर्शन सर्ग
12-	गद्य गरिमा में संग्रहीत 'प्रमाण' शीर्षक	महादेवी वर्मा	162
13-	चिन्तामणि	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	58
14-	छन्दोमंजरी		श्लोक 109 वॉ
15-	'प्रेमचन्:जीवन, कला और कृत्तिव	हंसराज रहबर	219
16-	प्रसाद साहित्य में आदर्शवाद एवं नैतिक दर्शन	आचार्य उमेश शास्त्री	395,401
17-	बदलते परिप्रेक्ष्य	नेमीचन्द जैन	
18-	मॉस का दरिया	कमलेश्वर	06
19-	मनुस्मृति	मनु	3/6
20-	महाभारत (अनुशासन पर्व)	वेदव्यास	146/55

21-	मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्य खण्ड	नगेन्द्र	35
22-	मृच्छकटिक	शूद्रक	श्लोक 48
23-	यही सच है	मन्नू भण्डारी	कहानी फलैप
24-	रघुवंश	कालिदास	10/10 वें सर्ग का
25-	वैशेषिक सूत्र	-	दसवा श्लोक
26-	वाङ्.मय विमर्श	पं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	
27-	शिवानी के उपन्यासों का रचना विधान	कु0 शशिवाला पंजाबी	13,14
28-	श्वेत श्याम रतनार	वेद प्रकाश मिश्र	56
29-	स्मारिका	अल्मोडा द्वारा प्रकाशित (1973)	105
30-	समीक्षा शास्त्र	डॉ दशरथ ओझा	135
31-	साहित्य में आदर्श और यर्थाथ	जीवन प्रकाश जोशी	
32-	'साहित्यालोचन'	आचार्य श्यामसुन्दर दास	166
33-	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आपटे	146,450
34-	संस्कृत काव्यों में नीति तत्व	डॉ0 गंगाधर भट्ट	12,22,28
35-	संस्मरण	पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी	04
36-	हिन्दी साहितय का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	423
37-	हिन्दी का गद्य साहित्य	डॉ रामचन्द्र तिवारी	24
38-	हिन्दी कहानियाँ और फैशन	उपेन्द्र नाथ अश्क	113
39-	हिन्दी गद्य के विविधि रूपों का उद्भव और विकास	डॉ0 कोतमिरे	253
40-	हिन्दी साहित्य में विविधवाद	डॉ0 प्रेमनारायण शुक्ल	189,90
42-	श्रीमद् भागवतद् गीता	संकलन कर्ता-वेदव्यास	अध्याय 2,22वाँ श्लोक

अंग्रेजी सन्दर्भ ग्रन्थ -

42.	An Introduction to the study of literature	William Henery Hudson	74
43.	Cultural Sociology	Gillin & Gillin	35
44.	Educational Theories & Modern Trends	D.N. Gaind & R.P. sharmas	35
45.	Ground work of Educational Theory	James. S. Ross.	131
46.	Hand Book of Socialogy	Ogburns & Nimkajj	
47.	Hand Book of Sociology	E.B. Reuter	157.
48.	Human Society	K. Davis	73
49.	Language & Gasture	Black Moolar.	--
50.	Les negles de la Sociologique	Emile Durkhim.	
51.	Literature & Life	Maxim Gorkee.	
52.	OP, cit	Gisbert	183
53.	Philosophy of Education	H.H. Horne.	
54.	Priciples of sociology	E.A. Ross	667.
55.	Principles of sociology	Giddings	27
56.	Society	R.M. Maciner & C.H. Page	06 05,06,141
57.	Sociology	Bogardus	15

पत्रिकायें

58-	धर्मयुग	16 अक्टूबर 1990	23,27
59-	धर्मयुग	16 नवम्बर 1990	31
60-	धर्मयुग	01 नवम्बर 1991	4,5,7

61-	धर्मयुग	16 मार्च 1992	14,15,16,17,18
62-	शांतिनिकेतन से शिवालिक	सम्पादक -शिवप्रसाद	21
63-	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	16 अप्रैल 1990	25
64-	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	22 जुलाई 1990	26
65-	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	9 सितम्बर 1990	33
66-	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	29 सितम्बर 1991	52
67-	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	6 अक्टूबर 1991	52
68-	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	13 अक्टूबर 1991	52
69-	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	20 अक्टूबर 1991	52
70-	हिन्दी डाइजेस्ट	सन् 1973	95-96

शिवानी का साहित्य -

1- अपराधिनी - 1972

2- अतिथि-1987

3- आमादेर शांति निकेतन - 1986

4- आकब -1984

5- उपप्रेती - 1991

6- एक थी रामरती-1991

7- करिए छिमा-1989

8- कस्तूरी मृग-1990

9- कालिन्दी-1991

10- कैंजा -1975

11- कृष्णकली-1962

12- कृष्णवेणी - 1981

13- गैंडा - 1978

14- चरैवेति - 1987

15- चल खुसरो घर अपने -1987

16- चिरस्वयंवरा - 1989

17- चौदह फेरे - 1960

18- जालक - 1979

19- दरीचा - 1980

205 पूतोवाली - 1986

21- भैरवी - 1969

22- मायापुरी - 1957

23- माणिक - 1978

24- मेरी प्रिय कहानियाँ - 1978

25- मेरा भाई - 1989

26- यान्त्रिक - 1987

27- रथ्या - 1977

28- रति विलाप - 1975

29- वातायन - 1975

30- विवर्त्त - 1985

31- विषकन्या - 1977

32- श्मशान चंपा-1972

33- स्वयंसिद्धा - 1987

34- सुरंगमा - 1979

35- राधिका सुन्दरी - 1989

36- स्वामिभक्त चूहा - 1988

37- सूखा गुलाब - 1987

बाल साहित्य